इन्दुमती

लेखक
गोविन्ददास

भूमिका-लेखक
भारतरत्न डा० भगवानदास
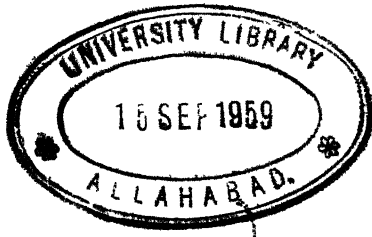
१९५९

प्रकाशक
भारतीय विश्व-प्रकाशन
फव्वारा — दिल्ली

निवेदन

मेरे 'इन्दुमती' उपन्यास का यह संक्षिप्त सस्करण है । इसे श्री गिरिजादत्त जी शुक्ल 'गिरीश' ने यह रूप दिया है । उन्होने जिस चतुराई से यह काम किया उसके लिए मै उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ ।

• इन्दुमती उपन्यास एक महिला की मनोवैज्ञानिक जीवनी है । इसकी पृष्ठ-भूमि मे सन् १९१६ से भारतीय स्वतन्त्रता तक का सम्पूर्ण इतिहास आ जाता था । और यह प्रयत्न किया गया था कि आधुनिक भारतीय जीवन के ऊँचे से ऊँचे स्तर से लेकर नीचे से नीचे स्तर तक के सभी चित्र इस उपन्यास मे आ जायँ। ऐसे उपन्यास का लगभग एक हजार पृष्ठ का हो जाना एक स्वाभाविक बात थी । इसीलिए हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्य मर्मज्ञ पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने इस उपन्यास के सम्बन्ध मे यह लिखा था—"उपन्यास की पोशाक मे यह भारतवर्ष की तीस वर्षो की जन-जागृति का इतिहास है। कथापथ ऐसा घुमावदार है कि उसके किनारे-किनारे शहर, गॉव, मजदूरो की बस्तियॉ, क्लब, वनिताश्रम, वेश्यालय, तीर्थ, अदालत, नदी, घाट आदि सभी चर्चावाले स्थान आ गये है । और उन पर लेखक ने अपनी जानकारी का अद्भुत परिचय दिया है ।" फिर मै यह भी नही मानता कि इस लम्बे उपन्यास का कोई भी अश अरोचक या निरर्थक था । श्री रामनरेशजी त्रिपाठी इस सम्बन्ध मे लिखते है—"लेखन-शैली रोचक और साद्यन्त आकर्षक है । कोई वाक्य ऐसा नही जो पाठक को ज्ञान की सीमा मे और आगे न ले जाता हो ।" हिन्दी के ही प्रसिद्ध आलोचक पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी ने इस उपन्यास के सम्बन्ध मे लिखा है—"यह उपन्यास मानव-जीवन की इन्साइक्लोपीडिया है ।"

हिन्दी के अन्य सभी आलोचको और विद्वानो ने ही इस उपन्यास पर कुछ लिखा हो इतना ही नही, भारत की अन्य भाषाओ के अनेक विद्वानो और कई विदेशी पत्रो और विद्वानो ने भी इस उपन्यास पर कुछ न कुछ लिखने की कृपा की है ।

अतएव, इन्दुमती उपन्यास के इस सक्षिप्त संस्करण में इस उपन्यास की

सभी बाते आगयी है, यह तो किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता , क्योकि यदि यह कह दिया जाय तब तो यह भी मानना होगा कि जो कुछ इस उपन्यास मे से निकाला गया है वह निरर्थक ही था, जो न मै मानने को तैयार हूँ और न वे आलोचक ही मानने को तैयार होगे, जिन्होने इस उपन्यास की आलोचना मे न जाने क्या-क्या लिख डालने की कृपा की है। भारतरत्न डॉ० भगवान-दासजी तो इस उपन्यास के सम्बन्ध मे यहाँ तक लिख गये है—"मैने श्री प्रेमचन्द की (जिनको साहित्यिक समाज ने उपन्यास सम्राट की पदवी दी है) प्रायः सभी छोटी-बडी कहानियो को पढा है, किन्तु, बहुविधि विविधता और मनो-विश्लेषण की दृष्टि से उनका कोई भी आख्यानक सेवा-सदन, कर्मभूमि वा रगभूमि जो उनके सबसे बृहत् ग्रन्थ है, इन्दुमती की स्पर्द्धा नही कर सकता।"

ऐसे हजार पृष्ठो के उपन्यास को लगभग आधा कर देने पर उसकी सभी बाते इस संक्षिप्त संस्करण मे अक्षुण्ण नही रह सकती। फिर भी मैं यह मानता हूँ कि उपन्यास के ऐतिहासिक विवरणो और आधुनिक भारतीय समाज के विभिन्न चित्रो को घटाने के सिवा इन्दुमती तथा उपन्यास के अन्य पात्रो के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण को इस सक्षिप्त संस्करण मे अवश्य अक्षुण्ण रखा गया है। साथ ही कथा के भी किसी स्थल को नही छोड़ा गया है। इस प्रकार इस सक्षिप्त संस्करण द्वारा इन्दुमती उपन्यास की कथा तथा पात्रो का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण अवश्य पाठको के सम्मुख आ जाता है। साथ ही जो अश घटाये गये है वे इस प्रकार घटाये गये है कि उपन्यास के पठन मे झटके (Jerks) भी प्रतीत नही होते। जो उपन्यास को केवल उपन्यास की दृष्टि से पढ़ना चाहते है उनके लिए यह सक्षिप्त सस्करण सर्वथा उपयुक्त है।

३०, फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली —गोविन्ददास
२-१०-५८

भूमिका

लेखक—भारतरत्न डॉ० भगवानदास, वाराणसी

८४ वर्ष के अपने इस दीर्घ जीवन मे अपने ग्रन्थो के निर्माण और भाँति-भाँति के व्यावहारिक और आधिकारिक कार्यभार से जो कुछ भी अवकाश मिला उसमे मैने अग्रेजी के सहस्रो और हिन्दी के पचासो आख्यायिकाओ का पाठ किया होगा, जिनमे मानव-जीवन के विविध पक्षो का निरूपण किया गया है; किन्तु मैने कोई ऐसी कथा नही पढी जिसकी नायिका, सेठ गोविन्ददासजी की इन्दुमती सरीखी हो। कृत्रिम गर्भाधान के फलस्वरूप उत्पन्न सन्तान की माता के रूप मे इन्दुमती एक अपूर्व और अनुपम नायिका है। वह एक अत्यन्त रूपवान, विद्वान् और साधन-सम्पन्न पुरुष की विधवा है, जिसे अपने पति के प्रति इतनी प्रगाढ अनुरक्ति थी कि सन् १९२२-२३ मे, राजनैतिक बन्दी के रूप में, जेल मे होनेवाले नृशस अत्याचार और दुर्व्यवहार के कारण सन् १९२४ मे जब उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह छै महीने तक सचमुच पागल रहती है।

"इन्दुमती" एक महान् कृति है ; कलेवर और वर्ण्य-विषय दोनो की दृष्टि से। इसकी पृष्ठ सख्या, हिन्दी मे, छोटे अक्षरों (टाइप) मे लगभग साढे नौ सौ है। इसका अब अग्रेजी अनुवाद भी हो गया है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी इन्दुमती प्राजल हिन्दी में लिखित विशाल एव सुन्दर कथा है जिसमे पात्रो के अनुरूप यत्र-तत्र उपभाषाओ का समावेश है। बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के वास्तविक इतिहास को भारतीय जनता के विभिन्न वर्गो, भागो और व्यवसायो के अनेक व्यक्तियो के विचारो, भावनाओ और कृतित्वो के साथ ऐसे अद्वितीय कौशल से गूँथा है कि इस इतिहास की सजीवता एव रोचकता की अपार वृद्धि हुई है। भारत के तत्कालीन वैयक्तिक एव सामाजिक जीवन के सभी मुख्य तथ्य इस उपन्यास मे प्रतिबिम्बित होते है।

आख्यान के पृष्ठ, ऐतिहासिक क्रमानुसार भारत के उन सभी वीर सपूतो

के चित्रण से अलकृत है जिन्होने अतुलित नि स्वार्थ आत्म-त्याग से जननी के पैरो की बेडियाँ काटकर उसे स्वराज्य की अभीष्ट भूमि तक पहुँचाया। मुख्यतः लखनऊ तथा कानपुर और गौणत दिल्ली, कलकत्ता बम्बई और कश्मीर के धनकुबेरो और निर्धन, फटेहाल लोगो के जीवन और नेकी-बदियो का बडा सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। रूढिप्राण हिन्दुओ के नितान्त असगत जातीय पक्षपात एव विद्वेष, इन्दुमती के ससुर की, रूढियो के इन बन्धनो पर क्षणिक विजय, पुत्र की दु खद मृत्यु के पश्चात् उनका फिर रूढिपाश मे जा पड़ना, जीवन के अन्तिम वर्षो मे उनकी दशा, आदि घटनाओ का बडा यथार्थ निरूपण हमे इस कथा मे मिलता है जिनमे कही-कही हास्य का पुट है, फिर अथाह करुणा का साम्राज्य, मिल मालिको द्वारा श्रमिको का शोषण, एक बार उनका क्रूर प्रतिशोध, फौजदारी अदालत ("साहस-विवाह न्यायालय") मे उनके मुकद्दमे ("विवाह") की पेशी, दोनो पक्षो के वकीलो की युक्ति-प्रतियुक्तियाँ, इन सभी घटनाओ के बडे सप्रमाण चित्र उपस्थित किये गये है। विशेषत उनकी युक्ति-प्रतियुक्तियाँ इतनी सबल और निरुत्तर कर देनेवाली है कि शायद कोई वास्तविक वकील भी उनसे अच्छी युक्तियाँ प्रस्तुत न कर सकता। विद्रोही मिल मजदूरो के साथी और नेता के साथ ऐन्द्रिय तृप्ति की लालसा के रूप मे इन्दुमती के सामने आनेवाले प्रलोभनो का, मृत पति के प्रति निष्ठा का भार उतार फेकने की दुर्दमनीय इच्छा का, सो भी एक ऐसे व्यक्ति के साथ जो सचमुच नितान्त अनाकर्षक, यहाँ तक कि बर्बर है, पर शरीर से बडा हृष्ट-पुष्ट और सुदृढ, जो इन्दुमती के चम्पई वर्ण के ठीक विपरीत उतना ही काला है, जो हर दृष्टि से उसके स्वर्गीय पति के ठीक विपरीत है, जो उतना ही अशिष्ट और असस्कृत है जितनी वह स्वय सस्कृत है, अप्रत्यक्ष रूप से उस विद्रोही नेता के नेकी और साहस के कार्यो तथा साथ ही साथ घृणास्पद अपराधो के कारण इन्दुमती के पतन से बचने का, एव अन्य घटनाओ का, ऐसा रोचक और मनोहारी वर्णन ग्रन्थकार ने किया है कि पाठक की समस्त चित्तवृत्तियाँ उसी ओर केन्द्रित हो जाती है और कथा को समाप्त किये बिना बीच मे छोड देना असम्भव-सा हो जाता है।

आख्यान की अनेक आश्चर्यजनक विशेषताओ मे से एक यह भी है कि उसमें विभिन्न योरपीय, अमरीकी तथा भारतीय लेखको एव कवियो के

सदर्भोचित सुप्रसक्त उद्धरण दिये गये है। उन सबके नाम गिनाने के लिए स्थानाभाव के कारण मै क्रमानुसार कुछ सुविख्यात लेखको एव कवियो के ही नाम लूँगा—एच० जी० वेल्स, कीट्स, बर्न्स, शैली, बायरन, विक्टर ह्यूगो, बालजाक, मोपासा, नैपोलियन, (जोजफीन को लिखे गये प्रेम पत्रो मे से), मैटरलिक, पिरानडैलो, स्ट्रिण्डबर्ग, एमरसन, हेगल, सर एडविन आरनोल्ड, रस्किन, कार्ल मार्क्स, फ्रायड, कालिदास, बिहारी, श्रीधर पाठक, सूरदास, तुलसीदास, अकबर इलाहाबादी। मुझे सेठ गोविन्ददासजी से ज्ञात हुआ कि समय-समय पर राजनैतिक बन्दी के रूप मे कारागार मे वास के वर्षो मे उन्हे अध्ययन के लिए पर्याप्त अवसर मिल जाता था।

१९वी शताब्दी के राजा राममोहनराय से आरम्भ होकर ऐतिहासिक चरित्र और भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम के सभी प्रमुख सेनानी श्री एनीबीसेण्ट, लोकमान्य तिलक, श्री मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु सी० आर० दास, स्वामी श्रद्धानन्द, महामना मालवीयजी, महात्मा गान्धी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री यतीन्द्रनाथ दास, भिक्खु विजय पुगे तथा डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और श्री जवाहरलाल नेहरू—जो दो सज्जन भारत के सौभाग्य मे आज भी देश-सेवा मे सलग्न है, पाठक के मानस चक्षुओ के सामने आते है। इनके अतिरिक्त गत दोनो महायुद्धो के प्रमुख ऐतिहासिक पात्र—कैसर विलियम, लेनिन, वुडरो विलसन, लायड जार्ज, विलमैनसिओ और मुसोलनी, हिटलर, स्टालिन, रूजवेल्ट, चर्चिल और कुछ कम महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी जिनके अन्तर्गत भारत के कई वायसराय तथा अग्रेज सैनिक अधिकारी भी आ जाते है, जो अमृतसर के राक्षसी हत्याकाड और "मार्शल ला" के रोमाचकारी अत्याचारो के लिए उत्तरदायी थे, ग्रन्थकार की लेखनी के सहारे पाठक की कल्पना मे मूर्तिमान हो उठते है। आख्यान के अनैतिहासिक पात्रो के जीवन और क्रिया-कलाप के साथ इन ऐतिहासिक चरित्रो के सम्बन्ध का वर्णन बडा मनोरंजक है। एक नाम का उल्लेख न किया जाना मुझे कुछ खटका, वह है काशी विद्यापीठ के (जिसका उल्लेख उपन्यास मे किया गया है) सस्थापक और उन्नायक तथा अद्वितीय "भारत माता मन्दिर" के निर्माता, बनारसवासी श्री शिवप्रसाद गुप्त। मन्दिर का उद्घाटन सन् १९३६ मे महात्मा गान्धी ने किया था और इसके द्वारा यह सभी भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायियो के लिए उन्मुक्त है। अब

यह बनारस का एक मुख्य धर्म स्थान बन गया है। श्री शिवप्रसाद गुप्त प्रथम कोटि के नेता चाहे भले ही न रहे हो, किन्तु राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी के प्रसार के लिए जो कुछ उन्होने किया है वह अन्य किसी भी एक व्यक्ति ने नही किया, स्वय गान्धीजी ने भी नही। काशी विद्यापीठ के कुछ विद्यार्थी और अध्यापक आज देश के कुछ सर्वोच्च प्रशासन पदो पर आसीन है।

कथानक मे मुख्य पात्रो के प्रकट होने की क्रमिक दृष्टि से देखे तो सर्वप्रथम पहले ही पृष्ठ पर अवधबिहारीलाल और उनकी धर्म-पत्नी सुलक्षणा आते है। कथा का प्रारम्भ अवधबिहारीलाल के अपनी पत्नी के प्रति कहे गये इन वाक्यो से होता है—"विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को ही केन्द्र मान, सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने ही आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सुखी और सफल होता है।"

ये वाक्य कथा के मूल-सूत्र है, जिनकी उपन्यास में अनेक आवृत्तियाँ हुई हैं। इसी मे इन्दुमती के मानसिक विकास और क्रिया-प्रतिक्रियाओ का रहस्य गर्भित है। अवधबिहारीलाल एक सहृदय व्यक्ति है। लखनऊ के एक प्रतिष्ठित नागरिक है। सुयोग्य वकील हैं जो झूठे मुकद्दमे नही लड़ते, यद्यपि वह ऐसे वादियो की सहायता अवश्य कर देते है जिनके दावे कानून की दृष्टि मे सही हो, चाहे वे नैतिकता के प्रतिकूल ही क्यो न हो। सुलक्षणा पुराने ढग की हिन्दू गृहिणी है, जिसे अपने पति मे श्रद्धा-भक्ति है, और एकमात्र सन्तान इन्दुमती के प्रति अपार स्नेह है, जब तक वह सयानी होकर अपने पिता के सद्भाव प्रेरित किन्तु नितान्त भ्रान्त उपदेशो के अनुकूल (जो उनके उक्त वाक्यो मे प्रतिबिम्बित होते है) स्वतन्त्र और आत्म-केन्द्रित नही बन जाती। मगलमूर्ति सुलक्षणा एक अदृश्य देवी की भाँति सदा परिवार के कल्याण मे निरत रहती है। कभी-कभी ही, केवल अनिवार्य कारणो से ही, विशेष परिस्थितियो में दृष्टिगोचर होती है। इन्दुमती के स्कूल और कालिज के सहपाठियो में एक वजीरअली है, जो इन्दुमती का राखीबन्द भाई बन जाता है। बाद मे वह एक कालिज मे प्रोफेसर हो जाता है, और अन्त तक इन्दुमती के प्रति सच्चे भाई के सदृश अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। राजनैतिक सघर्ष में उसे बहुत कष्ट उठाने और बलिदान करने पड़ते है। इन्दुमती के अध्ययन-काल का एक

और मित्र है त्रिलोकीनाथ। किन्तु सर्वथा भिन्न प्रकार का व्यक्ति। वह डॉक्टरी करता है, मानव मात्र के कल्याण मे प्रयत्नशील रहता है। गम्भीर विचारक एँव व्यावहारिक दार्शनिक है, और प्लेग-पीडित प्रदेशो मे, एक सहृदय कार्यकर्त्ता के रूप मे, दिखायी पड़ता है। अन्त मे इस त्रिलोकीनाथ के सत्परामर्श से ही इन्दुमती की विकल आत्मा को शान्ति मिलती है। कानपुर के सर रामस्वरूप एक ठेठ मारवाडी है। अवधबिहारीलाल उनके वकील है। रामस्वरूप ४५ वर्ष पूर्व राजस्थान के अपने गाँव से, काँसे का लोटा और डोर लेकर कानपुर की ओर चले आये थे। अन्न की एक छोटी-सी दूकान से प्रारम्भ करके अब वह करोडपति बन चुके थे। लोगो का कहना है कि यदि वह मिट्टी को छू दे तो सोना हो जाय। वह विधि-विधान (कानून) के बल पर बहुत से लोगो का सर्वनाश कर चुके है, पर इसकी चिन्ता किसे है? भारत की अग्रेज सरकार द्वारा पोषित कार्यों मे, सुयोग देखकर बडी-बडी धन-राशियाँ दान देकर वह पहले 'रायबहादुर' और फिर 'सर' की उपाधि से विभूषित होते है। जाति के अग्रवाल है, अवधबिहारीलाल कायस्थ। दोनो मे घनिष्ठ मित्रता है, पर रामस्वरूप कभी अवधबिहारीलाल के घर नही जाते, विशेष प्रयोजन पडने पर अवधबिहारीलाल ही उनके पास जाते है। अवधबिहारीलाल के जीवन के ५० वर्ष पूरे होने पर उनकी पुत्री और मित्र स्वर्ण-जयन्ती मनाने का निश्चय करते है, जिसमे एक बृहत् उद्यान-भोज (गार्डन पार्टी) और नाटक का आयोजन किया जाता है। रामस्वरूप के पास निमन्त्रण-पत्र पहुँचने पर वह मारवाड़ी बोली मे अपना क्रोध व्यक्त करते है और आधुनिक रग-ढग की बडी निन्दा करते है। यह सबसे बहुत मनोरजक है। वह स्वय न जाकर अपने पुत्र ललितमोहन को अवधबिहारीलाल के यहाँ भेजने का निश्चय करते है। आधुनिक राग, रग-ढग और पश्चिमी सभ्यता को हेय समझने पर भी सर रामस्वरूप ने अपने पुत्र ललित को स्कूल, कालिज मे और प्राइवेट शिक्षको द्वारा शिक्षा दिलवायी है। पश्चिमी पुस्तके खरीदने (क्रय करने), पढने और पश्चिमी चाल के वस्त्र धारण करने के लिए उसे सदा प्रोत्साहित किया है। जयती मे ललित सम्मिलित होता है, इन्दु को नाचते देखता है, वह भी उसे देखती है और दृष्टि विनिमय के साथ ही दोनो प्रेम की डोर मे उलझ जाते है, क्योकि दोनो शिष्टता और सौन्दर्य में एक दूसरे से बढकर है। प्रेम पत्रो का

आदान-प्रदान आरम्भ हो जाता है। ललित अवधबिहारीलाल के यहाँ बहुधा पाहुन (मेहमान) के रूप मे आकर ठहरने लगता है ; कभी-कभी पिता की ओर से व्यावसायिक कार्य मे ही। क्रमश विवाह का आयोजन होता है और जयती के पाँच सप्ताह के भीतर ही, गुप्त रूप से हिन्दू रीतियो के अनुसार ही उनका विवाह सम्पन्न हो जाता है। विवाह कराने के लिए वजीरअली एक ब्राह्मण को पकड लाता है जो एक लम्बी दक्षिणा स्वीकार करके वेदोक्त विधि से उन्हे एक दूसरे मे बाँध देता है, यद्यपि उनकी जाति भिन्न है। रामस्वरूप को सूचना मिलती है तो वह क्रोध के मारे आपे से बाहर हो जाते है, अवधबिहारीलाल मे अपने सारे व्यावसायिक सम्बन्धो का विच्छेद कर लेते है और पुत्र को उत्तराधिकार से वचित कर देते है। नवदम्पति, अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा के पाहुन (मेहमान) के रूप मे कुछ दिन रहते है, फिर देशभ्रमण करते है, और एक वर्ष वैवाहिक जीवन का स्वर्गीय सुख लूटते है। इसके पश्चात् ललित राजनैतिक सघर्ष के चक्र मे फँस जाता है और जेल जाता है। ग्रन्थ रचयिता ने स्वय भुक्तभोगी होने के कारण कारागार के जीवन की दुर्दशाओ का बडा सच्चा चित्रण किया है। उन्होने भारत और अन्य देशो में बन्दियो के जीवन की तुलना भी की है। रूस की जेलो का वर्णन अधिकाश सत्य है, किन्तु पूर्ण सत्य नही, क्योकि उसमे आधुनिकतम बातो का समावेश नही किया गया। उत्तर के हिम-समुद्र (आर्कटिक सी) के तट के नये-नये बडे-बडे शहरो के समीप बन्दियो के उन भयकर कारा-सदृश शिविरो की चर्चा कही भी नही की गयी है, जिनका वर्णन, रूस मे तीन वर्ष तक अमरीकी राजदूत के रूप में रहते हुए, स्वय अपनी आँखो से देखने के पश्चात् श्री विलियम सी० बुलिट ने अपने लेखो मे किया है। इसमे सन्देह नही कि क्रान्ति के पश्चात् तीस वर्ष मे रूस ने अनेक चमत्कार दिखाये है किन्तु उनमे एक ओर जहाँ बहुत अच्छाइयाँ है वहाँ कुछ बहुत बडी बुराइयाँ भी है, जो द्वन्द्वात्मक प्रकृति का अनिवार्य नियम है। छाया बिना प्रकाश का और प्रकाश बिना छाया का अस्तित्व सिद्ध नही हो सकता।

लाड-प्यार में पला ललित जेल मे बहुत बीमार हो जाता है। उसके गुर्दो में पथरी पड जाती है। मरणासन्न अवस्था मे उसे जेल से मुक्त किया जाता है। उसके पिता, जिनके हृदय मे पुत्र-स्नेह कभी कम नही हुआ, केवल छिपा

लिया गया था, उसे घर ले आते है। स्नेहातिरेक मे वह पुत्र से लिपट जाते है और अपनी पुत्रवधू को न केवल क्षमा कर देते है वरन् उसे सच्चे हृदय से स्नेह करने लगते है। उस दृश्य का चित्रण सचमुच बडा सजीव हुआ है, जिसमे वह अपनी पुत्रवधू की ठोड़ी हाथ से ऊपर उठाकर मारवाडी शब्दो मे कहते है—'फूटरी, घणी फूटरी, बीदनी।' (सुन्दर, बहुत सुन्दर बहू है।) यह दृश्य कोमलता मिश्रित करुणा से ओत-प्रोत है और साथ ही साथ हास्य का पुट भी लिये हुए है। इन्दु अब तक अपनी समस्त अहम्मन्यता और उच्छृखलता खो चुकी होती है, वह अपने ससुर के चरणो पर गिर पडती है। वही इन्दु, जो अब तक 'धर्म' को उपहासास्पद समझती थी, ललित की परिचर्या मे दिन-रात एक कर देती है और मन्दिर मे जाकर देवमूर्ति के सामने उसके नीरोग होने के लिए नित्य प्रार्थना करती है। पूर्वी और पश्चिमी—दोनो चिकित्सा पद्धतियो के अनुसार बडे से बडे चिकित्सको का उपयोग होता है, और रोगी को कलकत्ता, जयपुर, काश्मीर आदि कई स्थानो पर ले जाया जाता है। हर स्थान के दृश्यो, पेड़-पौधो, पशुओ आदि का ठीक-ठीक वर्णन किया गया है और यह भी कि उनका रोगी पर क्या प्रभाव पडता है। किन्तु कोई उपाय सफल नही होता। उसे वापस कानपुर लाया जाता है। अपने अन्तिम दिनो मे ललित इन्दु से कहता है—"मेरे जितने अधूरे काम है उनको पूरे करना। तुममे वह क्षमता है। तुम वह कर सकती हो।" वह वचन देती है। बडे कष्ट सहन करने के पश्चात् ललित का देहावसान हो जाता है। किन्तु डॉक्टर त्रिलोकीनाथ के सत्परामर्श से उसके अन्तिम क्षण शान्ति मे व्यतीत होते है।

शोकग्रस्ता इन्दुमती सचमुच पागल हो जाती है। छै महीने बीत जाते है। इन्दुमती का अपने आपको सुसज्जित और अलकृत करना ललित के मानव परिमाण (आदमकद) चित्र के समक्ष नृत्य-गान, उसकी एकान्त मुद्राएँ और भगिमाये, बहुत समय तक मौन रहना, फिर अचानक ही आँसुओ का बाँध टूट पडना—इन सभी का बड़ा गम्भीर और मार्मिक वर्णन किया गया है। धीरे-धीरे उसकी स्मृति लौट आती है। अवधबिहारीलाल की, पक्षाघात (लकवे) के आकस्मिक प्रहार से, बहुत पहले मृत्यु हो चुकी थी। कुछ दिन-पश्चात् इन्दुमती लखनऊ जाती है। ललित की इच्छानुसार वह राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने का निर्णय करती है। घर मे ललित के चित्र बनाने मे उसे शान्ति और

सान्त्वना मिलती है। ललित के देहान्त के एक वर्ष पश्चात् रामस्वरूप इन्दुमती को कानपुर बुलाते है और उसे एक बच्चा गोद लेने की सलाह देते है तथा सोचने-विचारने का अवकाश देते है। वह लखनऊ लौट जाती है। उसकी आत्मकेन्द्रित अहम्मन्यता फिर प्रबुद्ध होती है। वह भूल जाती है कि रामस्वरूप ने उसके लिए क्या कुछ किया और उनकी प्रार्थना का विपरीत अर्थ लगाती है। किन्तु उसके हृदय मे मातृ-भावना तीव्रतर हो उठती है। सयोग से उसे कृत्रिम गर्भाधान के सम्बन्ध मे कुछ पढने का अवसर मिलता है। दूसरे विवाह का विचार उसके लिए असह्य है। ललित के प्रगाढ आलिंगनो के पश्चात् किसी भी अन्य व्यक्ति के साथ शारीरिक सम्बन्ध जोडने का विचार ही उसके लिए नितान्त घृण्य है। वह कृत्रिम गर्भ धारण के सम्बन्ध मे त्रिलोकीनाथ से बातचीत करती है। त्रिलोकीनाथ उसे इस विचार से विमुख करने का प्रयत्न करता है, उसे अप्राकृतिक और अनैतिक कहता है, किन्तु इन्दुमती अपनी बात पर दृढ रहती है और उससे कहती है कि अगर उसने आवश्यक "आपरेशन" न किया तो वह किसी अन्य डॉक्टर के पास जावेगी जो उससे (त्रिलोकीनाथ से) बुरा ही होगा। बड़ी अनिच्छापूर्वक वह स्वीकार करता है। पीछे, वह इस सम्बन्ध में वजीरअली से बातचीत करती है। वह भी अपनी असहमति प्रकट करते हुए यह युक्ति प्रस्तुत करता है कि "औरत मर्द के ताल्लुकात मे जो जजबात रहते है वही खास बात है। 'आर्टीफिशल इनसेमिनेशन' मे वे जजबात कहाँ से आयेगे ? दूसरे······इतनी आबादी बढ रही है कि लोग जा रहे है बर्थकण्ट्रोल (सन्तान निरोध) की तरफ, 'आर्टीफिशल इनसेमिनेशन' को जगह कहाँ ?"

किन्तु इसका कोई प्रभाव नही पडता। त्रिलोकीनाथ विवश होकर आवश्यक "आपरेशन" कर देता है। इन्दुमती गर्भवती होती है और सभी सार्वजनिक सस्थाओ, क्लब, समाजवादी सघ, विधान सभा आदि से, जिनकी वह सदस्या बन गयी थी, त्याग-पत्र दे देती है। समय पूरा होने पर वसन्त पचमी के दिन उसके पुत्र होता है जिसका नाम "मयकमोहन" रखा जाता है।

रामस्वरूप, जिनकी आयु अब ७० वर्ष की हो गयी है, स्वय एक लडके को गोद ले लेते हैं। इससे पूर्व, वे इन्दुमती की सार्वजनिक रूप से निन्दा करके उससे अपना सम्बन्ध पूर्णत तोड़ लेते है।

कथा के तीन और मुख्य पात्र है। परम साहसी किन्तु बर्बर वीरभद्र

जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है, उसकी सन्तोषी चिरपीडिता पत्नी पार्वती और इन्दुमती का पुत्र मयकमोहन। वीरभद्र को सर रामस्वरूप के पुत्र का घर जलाने के अपराध के लिए जिसमे सर रामस्वरूप का गोद लिया हुआ पुत्र और उसकी पत्नी भी जल मरते है, आजीवन कारावास का दण्ड मिलता है। इन्दुमती पार्वती को एक विधवाश्रम मे भरती करा देती है। आश्रम का मैनेजर उसे स्त्री-विक्रय का व्यवसाय करनेवाले एक व्यक्ति के हाथ बेच देता है जहाँ से वह, एक के पीछे एक कई व्यक्तियो के हाथ मे पड़ती हुई, अन्ततः परिस्थितियो से निरुपाय होकर बनारस मे प्रकट रूप से वेश्यावृत्ति अपनाकर रहने लगती है।

समूची कथा को सक्षेप मे नये सिरे से कह जाने का लोभ होता है, किन्तु उसका सवरण किया जाना आवश्यक है। इतना कह देना ही पर्याप्त है कि उपन्यास अपने ढग का "इनसाइक्लोपीडिया" एक छोटा-मोटा सर्वज्ञान कोष है, जिससे भारत सम्बन्धी हर प्रकार की जानकारी प्राप्त हो सकती है। भारत के महत्त्वपूर्ण नगरो, फल-फूलो, पक्षी और उनकी बोलियो, योरपीय नृत्य और भारतीय नृत्य-सगीत, सहशिक्षा, दैनिक समाचारपत्रो, महामारी, गन्दे गॉव, गाँववासियो का ऋतु सम्बन्धी ज्ञान, अन्धविश्वास, रेलवे स्टेशन के दृश्यो, शरीर पर बिना कोई चोट का चिह्न डाले यन्त्रणा देने के पुलिस-वालो के प्रकारो, जेलो, ताडी और मदिरा की दूकानो, गन्दगी, जुआ, शराब पीने, श्रमिक बस्तियो मे होनेवाली आपसी लडाइयो आदि सभी का वर्णन यथास्थान आपको इस कथा मे मिलेगा।

सन् १९४२ की देशव्यापी क्रान्ति मे भाग लेने के सन्देह मे वजीरअली और इन्दुमती दोनो पकडे जाते है। इन्दुमती के साथ तो फिर भी कुछ नर्मी का व्यवहार होता है, पर वजीरअली को असह्य यन्त्रणाये पहुँचायी जाती हैं। दोनो बडे साहस के साथ इन यन्त्रणाओ का सहन करते है। इन्दुमती और मयक की तनातनी का बडा मार्मिक चित्रण किया गया है। मयक को जब अपने जन्म के सम्बन्ध मे और सार्वजनिक कार्यो मे अपनी माता के साहसपूर्ण आत्म-बलिदान के सम्बन्ध मे सब कुछ ज्ञात हो जाता है, तो वह भी अपना माता को सच्चे हृदय से प्यार करने लगता है। किन्तु जब षोडशवर्षीय मयक अपने एक अध्यापक से कृत्रिम गर्भाधान के सम्बन्ध मे बातचीत करता है, तो

अध्यापक बडे दुख के साथ उससे कहता है—"मेरी राय है कि तुम्हारी माँ ने उचित काम नही किया, और तर्क की युक्तियो से सिद्ध करता है कि यह प्रकृति के विरुद्ध पाप था।

सन्दर्भ मे यह स्पष्ट नही होता कि कथाकार इस अध्यापक से सहमत है या नही। अध्यापक का यह उत्तर दिया जा सकता है—सत्य तो यह है कि शिष्ट जीवन की समस्त कला प्रकृति का ही विस्तार है। माना कि वह सब कला मानव-प्रकृति का कार्य है, पर मानव-प्रकृति का निर्माण भगवत प्रवृत्ति से हुआ है। अत कृत्रिम गर्भाधान को प्रकृति के विरुद्ध पाप तभी माना जा सकता है जब सभ्यता के अन्य कार्यो और परिणामो के विषय मे भी यही स्वीकार कर लिया जाय। पर यह भी सच है कि जनसाधारण के कल्याण और समृद्धि पर उनका अच्छा प्रभाव पडता है या बुरा। कृत्रिम गर्भाधान को निन्द्य मानने का शायद सबसे उचित और सबल कारण यह है कि उसकी लोकप्रियता नही बढी। जिस तरह वोरोनोफ नामक जर्मन वैज्ञानिक का कायाकल्प का प्रकार, कुछ वर्ष चमककर धीरे-धीरे लुप्त हो गया, वैसे ही यह भी हो गया है। पालतू जानवरो की नस्ल सुधारने और सन्तानोत्पत्ति के लिए अब भी इसका प्रयोग किया जा सकता है और किया जाता भी है। किन्तु मानव-शिशु उत्पत्ति के लिए अब इसका उपयोग होते नही सुना जाता। इसके आविष्कार के पश्चात् हो सकता है अमरीका, रूस और कुछ अन्य देशो मे इस तरह के कुछ प्रयोग किये गये हो, परन्तु कही भी इसका प्रचलन बढा नही, घटता ही गया। इसका कारण स्पष्टत यही है कि इसके द्वारा हृदय की आवश्यकताये पूरी नही होती। माता-पिता की सन्तान के प्रति पारस्परिक प्रेम-भाव की अदम्य लालसा अधूरी रह जाती है।

साथ ही इस बात का भी कोई कारण नही कि इस तरह पैदा होनेवाले मनुष्य से, यदि बुरे स्वभाव का नही, घृणा की जाय या उसे बुरा कहा जाय। उस अध्यापक की विवेकहीन बातचीत ने मयक के अपरिपक्व मस्तिष्क मे प्रश्नो और सन्देहो की एक आँधी चला दी और वह अपनी माँ को फिर इतनी घृणा की दृष्टि से देखने लगा कि उसे माँ से सर्वथा छुटकारा पाने की इच्छा हुई।

इन्दुमती ने इस बात को समझा और अपने जीवन की धारा सर्वथा बदल देने का निश्चय किया। दूसरी ओर, इसी बीच बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटनाये

घटित होती है। द्वितीय विश्व-युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो रही है। महात्मा गान्धी ने "भारत छोड़ो" की पुकार ऊँची की है; वह और अन्य सभी बडे-बडे नेता पकडकर कारा मे बन्द कर दिये गये है। देश भर मे क्रान्ति की लहर दौड जाती है। इन्दुमती अपना नाम बदलकर 'शशिबाला" रख लेती है। अमरीका का "पासपोर्ट" प्राप्त करके किसी चाल से वहाँ जा पहुँचती है। प्रोफेसर सुधीन्द्र बोस और डॉ० आनन्दकुमार स्वामी से सम्पर्क होता है। सब दर्शनीय स्थान देखती है। एक विशेषकर इन्दुमती के किये गये नाटक में जिसके मुख्य पात्र राधा और कृष्ण है, वह राधा का अभिनय करती है और सबके आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। फिर इस सबसे थककर भारत लौट आती है। लखनऊ पहुँचकर सीधे डॉ० त्रिलोकीनाथ के यहाँ जाती है। वहाँ उसे पता चलता है कि उसकी माँ एक दिन पूजा करते-करते बडी शान्ति के साथ इहलीला समाप्त कर चुकी है। वह अपने गत जीवन का सारा कच्चा चिट्ठा त्रिलोकीनाथ के सामने रख देती है और उसका परामर्श चाहती है। वह कहता है—जो कुछ तुम्हारे पिता ने बताया है वही ठीक है। वह विस्मय-पूर्वक उससे अपनी बात और स्पष्ट करने का आग्रह करती है। त्रिलोकीनाथ कहता है अपने व्यक्तित्व का अर्थ यह नही कि व्यक्तित्व हाड, मास और रक्त के एक शरीर मे, और उसी तक सीमित है। प्रत्युत इसका अभिप्राय उस विश्वात्मा परमात्मा से है जिसमे समस्त व्यक्ति-रूप जीवनात्माओ का समावेश हो जाता है। इस बात मे पश्चिमी विज्ञान और प्राच्य दर्शन एकमत है। इसका कथन है कि सब कुछ "मैटर" (मात्रा, जड) ही है। दूसरे का कथन है कि स्थावर जगम जो कुछ भी है सब ब्रह्म परमात्मा है, ब्रह्म का रूप है तथा चेतन और जड़ पुरुष-प्रकृति अभिन्न और अपृथक् है। विज्ञान इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तु को देखता है, दर्शन अतिन्द्रिय को, इन्द्रियातीत को। दोनो का अन्तिम निष्कर्ष एक ही है। "अभेद"। इन्दु कहती है "पर कितने व्यक्तियो को यह अनुभव हुआ है ?"

त्रिलोकीनाथ—बहुत कम को। इसीलिए दुनियाँ मे इतने दुखी दीख पडते है। और सुखी बिरले ही। आपका आज तक का जीवन (आध्यात्मिक) विस्फोटक पदार्थो से खेलने मे ही बीता है। ·· अब आप ४५ वर्ष के लगभग हो गयी है। यह वह अवस्था

> है जब जीवन की बहुत सी आँधी जीवन पर से बह चुकती है, और जीवन मे एक प्रकार की शान्ति आ जाती है। ऐसी शान्ति जो शिथिलता से रहित होती है। अभी भी आप बहुत से अच्छे कार्य कर सकती है।"

इन्दुमती उस गाँव मे एक प्रसूति-आलय बनवाती है जहाँ वह त्रिलोकीनाथ के साथ पहले गयी थी। उसने उसमे स्वय सक्रिय सेवा का कार्य भी किया। धीरे-धीरे उसने गाँव को आदर्श बना दिया। गाँव स्वच्छ है। उसमे एक स्कूल है जहाँ लड़के-लडकियो को नैतिकता का पाठ पढाया जाता है, और अच्छी लाभप्रद बाते बतायी जाती है। पुस्तकालय है, साप्ताहिक सभाएँ होती है जिनमे समाचारपत्र पढे जाते है और नयी घटनाओ पर विचार-विनिमय होता है। चिकित्साशाला (अस्पताल) है। एक आदर्श गोशाला (डेरी फार्म) और कृषि-क्षेत्र है। पचायत है जो यदाकदा होनेवाले आपसी झगड़ो का निपटारा करती हैं। सहकारिता के आधार पर खेती होती है। अनेक घरेलू उद्योग है, जिनके कारण ग्रामवासी न केवल समृद्धि प्राप्त करते है वरन् आत्मनिर्भर भी हो जाते है और सब प्रकार की सार्वजनिक सेवा के लिए एक स्वयसेवक दल है। गाँव की प्रसिद्धि दूर-दूर तक होती है। अनुकरण आरम्भ होता है। दूर-दूर तक इस गाँव की कीर्ति फैली थी और कई स्थानो मे इसके अनुसरण का प्रयत्न हो रहा था। १५ और १६ अगस्त, १९४७ के बीच की रात को भारत मे स्वराज्य की स्थापना होती है, पर भारत के तीन खण्ड कर दिये जाते है। भारत, पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान। देश मे विभाजन के पूर्व और अनन्तर भयकर रक्तपात होता है। किन्तु इन्दुमती और त्रिलोकीनाथ बराबर अपने मार्ग पर चलते रहते है। जब भी सम्भव होता है, पीडितो की सहायता करते है। सन्तुष्ट और निरासक्त, स्थिर मन से सब कुछ सहन करने को तैयार रहते है।

उपन्यास की समाप्ति, योगसूत्र के "सन्तोषाद् अनुत्तम सुखलाभ", अ० २ सूत्र ४२ : और गीता के "यो मा पश्यति सर्वत्र, सर्व च मयि पश्यति ; सर्व भूत हिते रतः , कर्मण्यैवाधिकारस्ते" आदि उपदेशो के साथ होती है। इन्दुमती के मन में अब भी तरह-तरह के प्रश्न उठते है। दैव और पुरुषकार, स्वतन्त्र प्रयत्न और भाग्य,—जीवन का उद्देश्य आदि के सम्बन्ध मे और इस जगत

की रचना क्यो, कैसे और किससे हुई, आदि। पर त्रिलोकीनाथ के पास इन सब का कोई उत्तर नही।

पाठक के मन मे यह जानने की उत्सुकता होती है कि मयक और इन्दुमती के राखी-बन्द भाई धर्मवीर वजीरअली का क्या हुआ ? सम्भव है लेखक हमे ऐसे ही मनोहारी, आकर्षक और दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यो से परिपूर्ण दूसरे भाग मे इस सम्बन्ध मे कुछ बताये। कथा मे, सस्कृत साहित्य शास्त्र द्वारा नवरसो मे से प्रत्येक का यथास्थान प्रदर्शन हुआ है; शृगार (सात्त्विक भी और राजस तामस भी दोनो), हास्य, करुण, वीर (सशस्त्र युद्ध द्वारा नही, किन्तु नि शस्त्र स्वतन्त्रता-सग्राम मे दृढता से यन्त्रणाएँ सहन करने और स्त्री-बालको की रक्षा के लिए जलते हुए गृह मे पैठ जाने के साहस-पूर्ण कार्यो द्वारा), रौद्र (बन्दियो को यन्त्रणा देने के समय), भयानक (मिलो और बसे हुए घरो को जलाने मे), अद्भुत (प्राकृतिक दृश्यो द्वारा) वीभत्स (गाँवो और मिलो की बस्तियो की जुगुप्सा-उत्तेजक परिस्थितियो द्वारा), और अन्तत वेदान्त के उपदेशो द्वारा शान्त रस का परिपाक हुआ और जनतोपकारी कार्यो मे परिणाम हुआ है।

अन्त मे हम कह सकते है कि पुस्तक के कई अश, शायद कोई अन्य सुयोग्य कथाकार भी लिख सकता, किन्तु इन्दुमती के साथ अपने मन का इतना पूर्ण तादात्म्य करके कल्पना द्वारा उसे अपनी मानस-भूमि पर प्रतिष्ठित करके, उसकी निरन्तर परिवर्त्तमान मनोदशाओ का, तथा परस्पर विरोधी विचारो, भावनाओ, वासनाओ और क्रियाओ के बीच झूलती हुई उसकी अस्थिर चित्त-वृत्तियो का ऐसा अद्वितीय और मार्मिक निरूपण करने के लिए केवल योग्यता ही अन्त नही, अपितु उत्कृष्ट प्रतिभा (जीनियस) भी चाहिए।

मैने श्री प्रेमचन्द की (जिनको साहित्यिक समाज ने "उपन्यास-सम्राट्" की पदवी दी है) प्राय सभी छोटी-बडी कहानियो और कथाओ को पढा है। किन्तु बहुविधि विविधता और मनोविश्लेषण की दृष्टि से उनका कोई भी आख्यानक "सेवा-सदन", वा "कर्मभूमि", वा "रगभूमि" जो उनके सबसे बृहत् ग्रन्थ है इन्दुमती की स्पर्द्धा नही कर सकता। दुर्भाग्यवश, उनकी रचनाये उनके जीते-जी अधिक लोकप्रिय नही हो सकी। वह जीवन भर आर्थिक कठिनाइयो से खिन्न

रहे और कभी विदेशो का तो क्या, भारत मे भी भ्रमण नही कर सके ; श्री गोविन्ददासजी ने देश मे भी और विदेशो मे भी बहुत भ्रमण किया है। न प्रेमचन्द को कभी जेल-जीवन के व व्यवहारिक राजनीति के अनुभव का ही अवसर मिला, सेठजी को इन क्षेत्रो का साक्षात अनुभव से, बहुत ज्ञान है। श्री गोविन्ददासजी की आयु अभी केवल ५५ साल की है। उन्होने बीसियो छोटे-बड़े नाटक भी लिखे है। मेरी कामना है कि वे शतायु हो और हिन्दी साहित्य के भण्डार को "इन्दुमती" जैसे उज्ज्वल रत्नो से निरन्तर समृद्ध करते रहे।

काशी —भगवानदास

१६-७-१६५२

: १ :

'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को ही केन्द्र मान, सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सुखी और सफल होता है।'

किस तरह ठहर-ठहर कर और खास-खास शब्दो पर जोर दे-देकर यह कहा गया था, फिर ठहरने और जोर देने के क्रम में कृत्रिमता का स्पर्श तक न हुआ था, कथन के सारे ढँग से स्वाभाविकता टपकी-सी पडती थी।

बातचीत चल रही थी लखनऊ के प्रसिद्ध वकील अवधबिहारीलाल और उनकी पत्नी सुलक्षणा के बीच, उन्ही के मकान के बैठकखाने मे। अवधबिहारीलाल कायस्थ जाति के, अधेड अवस्था और साँवले रग के, कुछ ठिगने और मोटे-से व्यक्ति थे। चेहरे में सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वाली दो चीजे थी—आँखे और मूँछे। आँखो का छोटापन और मूँछो की लम्बाई आकर्षण का कारण थे। चेहरे के भराव मे आँखे वैसी ही छोटी-छोटी दीखती थी जैसी हाथी के चेहरे मे उसकी आँखे, किन्तु जिस तरह हाथी की छोटी आँखो मे भी एक प्रकार का विचार-गाभीर्य दिखायी पडता है, उसी तरह की विचार की गभीरता वकील साहब की आँखो मे भी थी। मूँछे थी काकातुए की कलगी के समान बटी हुई तथा सिरो पर ऊपर को उठी हुई। इस बटाव मे उपयोग किया गया था विलायती 'कास्मैटिक' का, जिसका सन् १४-१५ मे काफी प्रचार था। मूँछो के उठे हुए सिरे आँखो के निकट तक पहुँच गये थे। फिर मूँछे गगा-जमुनी थी—काले और सफेद बालो का मिश्रण। अवधबिहारीलाल विलायती सर्ज का सूट पहने हुए थे। नीले रग की जमीन पर सफेद धारियाँ थी। यह कपडा उस समय के कपड़ो मे एक विशेष स्थान रखता था।

सन् १९०४ मे बग-भग के विरुद्ध जो आन्दोलन चला था उसमें स्वदेशी

का यद्यपि काफी प्रचार हुआ था तथापि एक तो वह बगाल तक ही सीमित रहा, दूसरे उसे अब लगभग दस वर्ष बीत चुके थे, अत फिर से विलायती वस्तुओ का दौर-दौरा शुरू हो गया था।

सुलक्षणा का स्वरूप वकील साहब के रूप के ठीक विपरीत था। वकील साहब जितने साँवले थे उतनी ही सुलक्षणा गोरी। वे जितने ठिगने थे उतनी ही ये ऊँची, पर फिर भी वकील साहब से ऊँचाई मे कम, और वे जितने मोटे थे उतनी ही ये दुबली। वे उन बिरली स्त्रियो मे थी जिनमे अधेड़ अवस्था मे एक विशेष प्रकार का प्रौढ सौन्दर्य आ जाता है। सुलक्षणा की आँखे उतनी ही बड़ी थी जितनी अवधबिहारीलाल की छोटी। फिर उनमे ऐसी शान्ति थी जिस शान्ति में सुख, सम्पन्नता और दूसरो के लिए जीवित रहने के भावो का इकट्ठा समावेश रहता है। वे आँखे घृत से जलती हुई फूलबत्ती की उस निधूम लव के समान थी जो मन्दिर के उस सुरक्षित प्रकोष्ठ मे जलती है जहाँ भीषण से भीषण झझावात का भी प्रवेश नही हो पाता। उनके चेहरे मे दो सबसे अधिक आकर्षक चीजे थी उनकी ये आँखे और मुख पर गाभीर्य का अटल-सा राज्य। सुलक्षणा सुनहली लैस लगी हुई एक फूलदार गुलाबी रग की साडी पहने हुए थी। साडी के अन्दर आसमानी रग का इधर-उधर झालरो से सुशोभित शलूका था। गले मे सोने का हार था, नाक मे हीरे की कील, कानो में सोने के झुमके, हाथो मे सोने के कडे तथा सोने और काँच की चूडियाँ। उँगलियो में नव-रत्न की अँगूठियाँ थी और पैरो मे पतले-पतले चाँदी के छडे। पैरो के अँगूठो के निकट की उँगलियो मे चाँदी की बिछियाँ थी और पैर थे बिना जूते के, लाल महावर लगे हुए। लाल रग दो जगह और भी दिखायी दे रहा था—एक बालो की माँग में सदुर का तथा दूसरा ललाट पर ईगुर की टिकली का! ओठो पर पान का जो रंग था, वह लाल नही कहा जा सकता; पान खाये काफी समय बीत जाने की वजह से इस रग ने गहरा गुलाबी वर्ण धारण कर लिया था।

पश्चिमी वेष-भूषा और पूर्वी ढंग से अलकृत यह जुगल-जोडी जिस बैठकखाने में विराजमान थी, वह कमरा भी दोनो दिशाओ की सजावट का एक अद्भुत मिश्रण था। दीवारो पर तैल रग था और उस पर के बेल-बूटे हिन्दुस्तानी पुष्पो और फलो के। यत्र-तत्र भारतीय पक्षी भी चित्रित थे। बेलो में

गुलाब थे, आम थे। इधर-उधर तोते और मोर बने थे। दरवाजो और उनके गुलबरो मे जो कॉच थे, उन पर भारतीय देवताओ के चित्र चित्रित थे, जो बाहर से आनेवाले प्रकाश से चमक रहे थे। कमरा यद्यपि लखनऊ मे था, तथापि रगाई राजपूताने की थी। बैठकखाने की छत भी इसी तरह रगीन थी और उससे जो रग-बिरगे झाड-फन्नूस लटक रहे थे वे थे नवाबी काल के। फर्श पर था मोटा ऊनी मिरजापुरी गलीचा। दीवारो पर लगे थे विलायत के विभिन्न दृश्यो के तैल-चित्र तथा शीशे के ही रगीन फ्रेमो से युक्त बेल्जियम के शीशे। दरवाजो पर विलायती फूलदार मखमली महराबी पर्दे दोनो ओर बँधे हुए थे, पीतल की एक विशेष प्रकार की जजीरो से। इन झाडो के बीच लटक रही थी रग बिरगी 'शेडो' से युक्त बिजली की बत्तियाँ तथा पखे। इस गलीचे पर सजा हुआ था विलायती ढँग का बूटेदार मखमली सोफा-सेट तथा विलायती ढँग की इटली के सगमरमर के बडे-बडे तख्तोवाली टेबिले। टेबिलो पर जो फूलदान थे उनमे सजे थे 'आस्टर', 'पैजी' आदि विलायती फूल, विलायती 'क्रोटन' इत्यादि की रगीन पत्तियो के साथ।

एक सोफा पर अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा बैठे हुए थे। बाहर से आते हुए प्रकाश से जान पड़ता था कि सूर्य अस्ताचल के समीप था। छुट्टी के दिन प्राय पति-पत्नी की बाते होती थी, और बहुत लम्बे समय तक। आज भी बातो का सिलसिला बहुत देर से चल रहा था। दोनो बातो में इतने मग्न थे कि यद्यपि बाहर जाने के लिए तैयार होकर बैठे थे तथापि उठने को जी ही न चाहता था। वार्तालाप के एक खास स्थल पर वकील साहब ने उक्त वाक्य कहा था। सुलक्षणा ने उसे बडे ध्यान से सुना। कुछ देर वे चुपचाप सोचती रही और फिर अपनी ओर चुप होकर देखने वाले पति से बोली—'नारी विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ नही मान सकती। ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानने से उसका जीवन सुखी और सफल नही हो सकता।'

'क्योकि पुरुष ने स्त्री को अपना गुलाम बना लिया है, गुलाम!', वकील साहब ने गभीरता से कहा, और वाक्य समाप्त होते-होते उनके ओठो पर गभीरता की ही एक रेखा-सी खिच गयी।

सुलक्षणा थोड़ा-सा सिर उठाकर बोली—'गुलाम!' उनके स्वर में कुछ

आश्चर्य का मिश्रण था ।

'हाँ, गुलाम ! और जानती हो इस गुलामी का कारण ?'

'क्या ?'

'औरत की आर्थिक पराधीनता ।'

उनका स्वर ऐसा दृढ था मानो उनकी कही हुई बात अकाट्य थी; उसमे शका का कोई स्थान ही न था । थोडा-सा रुकते हुए वे आगे बढे, अब तो जान पडने लगा जैसे वे किसी मुकदमे मे कोई लम्बा बयान पढ रहे हो—'विवाह है इस आर्थिक पराधीनता का फल । उसे कही धर्म और कही कानून का रूप दे दिया गया है, लेकिन दरअसल विवाह स्त्री को जन्म भर क्रीत दासी बनाये रखने का सबसे बडा विधान है । जब नर और नारी दोनो कमाते थे, आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे पर अवलम्बित नही थे, तब विवाह-सस्था ही नही थी, दुनिया मे कही नही, हिन्दुस्तान मे भी नही । महाभारत के आदि-पर्व में महर्षि उद्दालक और श्वेतकेतु का उपाख्यान मेरे इस कथन की सचाई का प्रमाण है ।'

'हाँ, वह उपाख्यान मैने भी पढा है, परन्तु

'किन्तु, परन्तु की यहाँ कोई गुंजाइश ही नही है ।' सुलक्षणा की बात को बीच मे काटते हुए अवधबिहारीलाल बोले । जिस प्रकार पूर के समय किसी सरिता का प्रवाह बीच मे आयी हुई छोटी-सी चट्टान को अपने जल मे निमग्न कर जल्दी से आगे बहता है, उसी प्रकार वकील साहब का कथन सुलक्षणा के इस छोटे से वाक्य रूपी अवरोध को अपने मे विलीन कर आगे बढा ।

'आरम्भ होने के पश्चात् इस विवाह ने स्त्री पर कौन-कौनसे जुल्म नही ढाये, यहाँ तक कि मृत पतियो के साथ उसे जीवित चिताओ पर जलवाया, मुर्दा शौहरो के सग उसे जिन्दा कब्रो मे दफनवाया । पर ऐसी अस्वाभाविक प्रथाये सदा चल नही सकती थी । इस तरह के रीति-रिवाजो के विरुद्ध आन्दोलन हुए, बलवे हुए, और अब तो विवाह-सस्था के ही विरोध मे आवाज उठी है । वह वक्त बहुत दूर नही जब शादी का रिवाज ही खत्म हो जायगा । स्त्री फिर से स्वतन्त्र हो जायगी, पर यह होगा तब, जब औरत आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होगी, उसकी स्वय की सम्पत्ति होगी, वह खुद

कमाना शुरू करेगी।'

पति का भाषण समाप्त हो जाने पर भी सुलक्षणा कुछ नही बोली। जब कुछ सेकिण्ड सन्नाटा रहा तब अवधबिहारीलाल फिर बोले—'क्यो, क्या कहती हो, तुम्हे कुछ नही कहना ?'

'आप पहले अपना कथन खत्म कर लीजिए। इस वक्त आप ऐसी मुद्रा मे है कि बीच में किसी दूसरे की सुननेवाले थोडे ही है।'

अवधबिहारीलाल हँसते हुए बोले—'मुझे जो कहना था मै कह चुका। अब सुनना चाहता हूँ अपने मत पर तुम्हारी राय।'

सुलक्षणा कुछ गम्भीर होकर बोली—'यद्यपि इस विषय पर आप कई बार चर्चा कर चुके है, पर आज आपने जितनी साफ बाते कही उतनी इसके पहले कभी नही कही थीं। आपके इस स्पष्ट कथन पर भी मै अपनी पुरानी राय पर ही कायम हूँ। अपने जीवन के अनुभवो के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि कम-से-कम नारी निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ नही मान सकती। ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन माननेवाले किसी को भी आनन्द मिल ही नही सकता।'

कुछ रुककर सुलक्षणा धीरे-धीरे कह चली—'मेरी अभी भी यही राय है कि इस ससार मे निरन्तर सुख पाने की अभिलाषा ही भूल है। कुछ लोगो का यह मत ही गलत है कि दु ख सुख को तीव्र करने के लिए है, क्योकि फिर तो यह भी कहा जा सकता है कि सुख दुःख को तीव्र करने के लिए है। पहले मनुष्य ससार-सागर को तरने की बात सोचते थे और अब सोचते है ससार मे आनन्द पाने की। दुनियाँ मे सुख तथा दु ख दोनो ही है। ससार-सागर को तरने वाले भी दोनो पाते थे, पर वहाँ उद्देश्य रहता था त्राण पाने का। इस-लिए दुःख उन्हे इतना क्लेश न पहुँचाते थे। सुख पाने का उद्देश्य होते ही दु.खो का अधिक दुखदायी होना स्वाभाविक है और सुख पाना जीवन का उद्देश्य होते ही इन सुखो के काल्पनिक रूप विशालकाय हो जाते है। सुख मिलने पर भी इन सुखो का प्रत्यक्ष रूप काल्पनिक रूपो से कही छोटा हो जाता है। कल्पना और यथार्थता का यह अन्तर अवश्यभावी है, इसलिए सुखो की प्राप्ति भी निराशा की उत्पत्ति करती है, फिर खासकर नारी का विकास तो पत्नीत्व और मातृत्व मे है। विवाह उसे क्रीत दासी के रूप में

रखने का सबसे बड़ा विधान नही, वह उसके कल्याण का महान् अनुष्ठान है। अर्थ ही विश्व मे सब कुछ नही, उससे बड़ी भी कोई चीज है।'

'तुम्हारी राय से मै सहमत नही। दुनियाँ से त्राण पानेवाली बात को तो मै इस देश के सारे दुःखो का कारण मानता हूँ।'

'पर···'

'देखो, अब बीच मे न बोलो, और इस विषय पर मै कुछ कहूँगा भी नही, मेरे कथन का तो मूल विषय आधुनिक समय मे स्त्रियो का जीवन है। स्त्रियो के सम्बन्ध मे इस तरह की स्वतन्त्र भावनाएँ रखनेवाले पति की जगह तुम्हे कोई आततायी पति मिलता, इन्दुमती के स्थान पर अगर तुम्हारे कोई क्रूर पुत्र होता, तो तुम्हारी राय इसके ठीक खिलाफ होती।'

कुछ रुकते हुए वे आगे बढे—'और देखो, समाज की इस समय की हालत में मै इन्दु के विवाह के भी खिलाफ नही, पर अगर उसका विवाह ही होना है तो ऐसे व्यक्ति से हो जो उसका गुलाम रहे, न कि वह उस व्यक्ति की।'

'चाहे तुम उसके विवाह के खिलाफ न हो, पर तुम्हारे उपदेशो के कारण वह अपने विवाह के खिलाफ हो गयी है।'

'इसमे मै हानि नही समझता। शादी कर खाविन्द की गुलाम होने से कुमारी रहना कहीं अच्छा।'

अवधबिहारीलाल ने फिर कुछ रुककर कहा—'और एक बात · · आज मैने तुम्हे यह सब इतने साफ तौर से किस लिए कहा, जानती हो ?'

'किस लिए ?' उत्सुकता से सुलक्षरणा ने पूछा।

'इसलिए कि मैने आज अपना वसीयतनामा लिखा है।'

'वसीयतनामा ?' सुलक्षरणा ने विह्वल-सी होकर पूछा।

'हाँ, वसीयतनामा। इस शरीर का क्या भरोसा है, कल क्या, अभी-अभी नही। और फिर मुझे तो खून के दबाव की बीमारी ठहरी। मै तो किसी क्षण भी चल दे सकता हूँ। मैने अपने जीवन मे काफी कमाया है। भगवान् ने हमे एक-मात्र पुत्री दी है। इस वसीयतनामे मे तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए यथेष्ट प्रबन्ध करने के पश्चात् शेष सारी सम्पत्ति मैने इन्दु को दे दी है। मै नही चाहता हमारी पुत्री आर्थिक दृष्टि से दुनियाँ मे किसी पर भी अवलम्बित रहे। साथ ही मै उसे बनाना चाहता हूँ आधुनिक दृष्टि से पूर्ण

विदुषी । इसीलिए,मै उसे मैट्रिक के बाद कॉलेज मे भी पढाऊँगा । मैं उसके दिल और दिमाग दोनो मे यह बात भर देना चाहता हूँ कि विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है ।'

सुलक्षणा अवधबिहारीलाल के इस कथन का कोई उत्तर न दे सकीं। उनकी आँखो मे वसीयतनामा और उसके साथ पति की 'खून के दबाव' की बीमारी का सम्बन्ध सुनते ही आँसू छलछला आये थे और जैसे-जैसे वकील साहब का कथन आगे बढा था वैसे-वैसे उनके हृदय से कोई द्रवित-सी वस्तु उन्हे अपने कठ की ओर आती हुई जान पडी थी, जिसने कठ में पहुँचकर ठोस-सा स्वरूप धारण कर उनका कठावरोध-सा कर दिया था।

: २ :

सन्ध्या का समय था। इन्दुमती अपनी कुछ सहेलियो के साथ अपने पिता के बाग के एक दूब के मैदान मे बैठी हुई अपनी सहेलियो से बातें कर रही थी।

इन्दुमती की अवस्था लगभग सोलह वर्ष की थी, परन्तु वह अवस्था से कुछ अधिक की जान पडती थी। उसका वर्ण था बरफ के सदृश निर्मल और स्वच्छ तथा सारे अग प्रस्फुटित एव ढले हुए से। नेत्र चचल मीन, ग्रीवा चपल मयूरी, भुजाएँ काँपती हुई लताओ, उँगलियाँ उन लताओ की पत्रावली और पिडलियाँ तथा चरण बिना नृत्य के ही नृत्य कर ताल देनेवाले पद की क्षण-क्षण पर समता कर रहे थे। उसमे जो स्वाभाविक चचलता थी उसका मिलान हरिणी से किया जाय या विहगिनी से यह कहना कठिन था। दिसम्बर का उत्तर हिन्दुस्तान का जाडा तथा सन्ध्या होने पर भी इन्दुमती पतली 'शिफ़ान' की लेवेंडर रग की साडी पहने थी। साडी के नीचे रग-बिरगा गरम स्वेटर और कामदार छोटा-सा लहँगा अवश्य था परन्तु इस कडी सरदी के लिए इतने कम कपडे कभी भी यथेष्ट नही हो सकते। साडी का पल्ला बाँये कधे पर अव्य-

वस्थित-सा पड़ा था और सिर था खुला हुआ। उसके लम्बे केश सुन्दरता से सँवारे हुए थे और पीछे लम्बी वेणी लटक रही थी, जिसमें था पुष्पो का एक गुच्छा। नाक मे कोई भूषण नही था, कानो मे छोटे-छोटे जडाऊ इयरिंग, गले मे जडाऊ हार और हाथो मे एक-एक चूडी थी जिन पर भी जडाव था। पैरो मे न छडे थे न बिछियाँ, हाँ, रेशमी जालीदार मोजे अवश्य थे, और मोजो पर थे बडी ऊँची एडी वाले सफेद चमडे के फूलदार जूते। शेष युवतियो मे कोई उससे कुछ कम और कोई कुछ अधिक उम्र की थी, कोई सुन्दर थी और कोई साधारण। पर इन्दुमती सबका सौन्दर्य ग्रस्त-सा कर रही थी। फिर जो जीवन इन्दुमती में था वह तो अन्य किसी के पास फटका तक नही था। सब-की-सब उसके प्रभाव से प्रभावित दीखती थी, पर इन्दुमती पर किसी के प्रभाव की छाया तक दृष्टिगोचर न होती थी। सभी खूब कपडे पहने हुए थी। मोटी-मोटी साड़ियाँ, पूरी बाहो के शलूके। और कोई-कोई इन पर शाल भी लपेटे थी। अगहन-पूस की इस ठड मे इन सब की इस प्रकार की वेष-भूषा स्वाभाविक ही थी। यदि समय के अनुसार अस्वाभाविक किसी के वस्त्र थे तो इन्दुमती के।

'हाँ, हाँ, मै फिर कहती हूँ, गोमती, तुझे ''तुझे यह विवाह कभी नही करना चाहिए।' निर्णयात्मक, साथ ही आदेशात्मक ढँग से कोई बात कैसे कही जा सकती है इसका यह वाक्य एक नमूना था, जो इन्दुमती ने अपने निकट बैठी हुई एक युवती से कहा और अब उस कथन के ढँग मे एकाएक घृणा-सी आ गयी। 'विवाह'''यह विवाह है बेचारी भोली-भाली स्त्रियो को फँसाने के लिए पुरुषो का जाल!'

गोमती कुछ सिटपिटाती-सी बोली—'पर, बहन, हमेशा से ब्याह होता ही आया है और होता रहेगा।'

कुछ क्रुद्ध-स्वर मे इन्दुमती ने कहा—'कभी नही, न हमेशा से ब्याह होता आया है, और न होता रहेगा। तुम लोग यही तो सब जानती नही हो, न पढती हो, न किसी से पूछती हो। स्कूल मे मैट्रिक या उसके आस-पास तक पढ क्या लियीं, समझती हो विदुषी हो गयी। इस देश में स्त्रियो का यहाँ तक पढ लेना वैसा ही है, जैसा अंधो मे काना राजा। इतनी-सी पढाई से पूरा ज्ञान थोडे ही हो सकता है।'

अब एकाएक उसका स्वर किसी वक्ता का-सा हो गया। 'स्त्री आर्थिक दृष्टि से पहले जब स्वतन्त्र थी तब पुरुष और स्त्री सहचर और सहचारिणी के समान रहते थे। न नारी को बन्धन था एक ही नर के सग रहने का और न नर ही इस तरह किसी बन्धन से जकडा हुआ था। कुछ समय के पश्चात् सन्तान के हित के लिए मातृ-गृह की स्थापना हुई।'

एक दूसरी युवती ने पूछा—'मातृ-गृह ?'

'हॉ, मातृ-गृह। जिस तरह आज पितृ-गृह है, विवाह के बाद बधू वर के साथ उसके घर रहने को आती है, उसी प्रकार आरम्भ मे मातृ-गृह स्थापित हुए थे। स्त्री जिस पुरुष को अपने सग के योग्य समझती थी, उस पुरुष को अगर उस नारी के साथ रहना मजूर होता था तो वह उस स्त्री के घर आकर रहता था और फिर उस नारी पर इस बात का बन्धन भी नही रहता था कि वह एक ही पुरुष को अपने गृह मे रखे।'

तीसरी युवती ने कुछ आश्चर्य से कहा—'तो एक स्त्री के अनेक पति होते थे ?'

इन्दुमती कुछ बिगडकर बोली —'पति नही, पृथ्वीपति, नरपति, गजपति, अश्वपति, के समान नारीपति उस समय नही होते थे। आपस में एक-दूसरे पर आधिपत्य की भावना ही नही थी। पति नही, सहचर कहो।' उपर्युक्त वाक्य कहते-कहते उसका ओठ बॉयी ओर से एक विचित्र प्रकार से मुड गया। कुछ रुककर वह फिर व्याख्याता के ढँग से कह चली—'हाँ, अनेक नारियाँ एक से अधिक सहचर अपने गृह मे रखती थी, लेकिन यह अधिकार उस वक्त पुरुष को नही था, क्योकि नर अपने गृह मे नारी को थोडे ही लाता था, नारी के घर में नर का निवास होता था। हाँ, अगर कोई पुरुष किसी स्त्री के गृह मे नही रहना चाहता था तो उसे उस घर को छोडने की आजादी अवश्य थी। ज्योही स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता गयी त्योही सारी वस्तुस्थिति ही परिवर्तित हो गयी। मातृ-गृह के स्थान पर पितृ-गृह आगये और पितृ-गृह परिवर्तित हो गये पति-गृह में। यही विवाह का जन्म हुआ, और सहचर पति होकर सहचारिणी पत्नी पर आधिपत्य करने लगा। धीरे-धीरे एक पति की अनेक पत्नियाँ होने लगी और फिर तो मामला यहाँ तक बढा कि सती-प्रथा तक बात पहुँची। फिर भी बहुत काल तक एक आजादी स्त्री को अवश्य थी।"

एक अन्य बालिका ने पूछा—'कौनसी ?'

'अपने इस पति कहे जाने वाले साथी को चुनने की। हमारे देश के स्वयवर तो इतिहास-प्रसिद्ध है। पर धीरे-धीरे उसका यह हक भी ले लिया गया। तू ही बता गोमती, जिसके साथ तेरा विवाह होने जा रहा है, उसे तूने चुना है ?'

उत्तर मे गोमती ने सिर्फ एक शब्द कहा—'नही'—और वह भी झिझकते हुए।

'ब्याह हो रहा है तेरा और जिससे विवाह हो रहा है वह बच्चा है, जवान या बूढा, गोरा है या काला, दोनो आँखोवाला है या काना अथवा ऐचाताना · '

कुछ युवतियाँ जोर से हँस पडी। इन्दुमती भी हँसने लगी, जिससे उसके आगे का कथन रुक गया। परन्तु गोमती कुछ बिगडकर बोली—'बाबूजी ने उन्हे अच्छी तरह देख लिया है , क्या वे मुझे गले मे पत्थर बाँधकर कुएँ में ढकेलने जा रहे है ?'

'पर, बाबा, ब्याह तेरा हो रहा है, या तेरे बाबूजी का ?' इन्दुमती ने तत्काल उत्तर दिया। जवाब खाना उसने थोडे ही सीखा था। और यह उत्तर देकर वह और आगे बढी। जिस तरह तैराक किसी ऊँची जगह से कूद कर पानी के अन्दर चला जाता है और फिर ऊपर आकर हाथ मारता हुआ आगे बढता है उसी प्रकार उसका कथन बढ चला।

'कई चीजे जो मेरे बाबूजी को पसन्द आती है, मुझे नही। उन्हे एक तरह का कपड़ा अच्छा लगता है, मुझे दूसरी तरह का, उन्हे एक चीज की खुशबू वाला सेन्ट खुश कर सकता है, मुझे दूसरी वस्तु की। जब इन छोटे-छोटे पदार्थो की पसन्दगी मे भी इतनी भिन्नता हो सकती है, तब इतनी बडी बात कोई स्त्री अपने माँ-बाप पर कैसे छोड सकती है, यह मेरी समझ मे नही आता ?'

एक अन्य युवती ने कहा—'तो बहनजी, आप तो स्वय अपना वर खोजेंगी, क्यो ?'

'मेरा तो विवाह-सस्था पर विश्वास नही। मै तो विवाह ही करने वाली नही हूँ।' इन्दुमती ने बिना किसी सकोच के एक निश्चयात्मक ढँग से

उत्तर दिया ।

'पर आपके बाबूजी आपको अविवाहित रहने देंगे ?' एक दूसरी युवती ने पूछा ।

'मेरे बाबूजी ? वे······वे पुराने दाकियानूसी खयालात के नही । उन्होने ही तो मुझे इस सारी वस्तुस्थिति को समझाया है और इस सम्बन्ध मे···इस सम्बन्ध मे ही क्या, हर बात के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है ।' कितना आदर और प्रेम भरा हुआ था पिता के इस वर्णन करने के समय उसके स्वर मे ।

गोमती ने कुछ ताने से कहा—'पर चाचीजी की राय तो मै जानती हूँ ।'

इन्दुमती ने इस बार चाबुक-सा चलाया—'बाबूजी के सामने उनकी क्या चल सकती है ?'

: ३ :

सन् १९१६ के बडे दिनो की छुट्टियो में काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो के अधिवेशन लखनऊ मे सफलतापूर्वक हो गये । काग्रेस के अधिवेशन के सभापति थे बाबू अबिकाचरण मजूमदार, और काग्रेस के इस अधिवेशन की विशेषता थी सब दिशाओ मे एकता । गरम दल और नरम दल की काग्रेस की जो फूट सन् १९०७ के सूरत के अधिवेशन मे हुई थी वह लखनऊ मे मिट गयी । छै वर्षो की सजा भोगने के बाद गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक पहले-पहल काग्रेस के इस अधिवेशन मे अपने दल के साथ सम्मिलित हुए । उधर रासबिहारी घोष आदि के नेतृत्व मे सब नरम दल के नेता भी मौजूद थे । ऐसे भी कुछ लोग थे जो गरम और नरम दोनो ही नही माने जाते थे । इनमे से मुख्य थे प० मदनमोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बैनरजी, मिस्टर जिन्ना आदि । फिर दो प्रधान राजनैतिक दल एक हुए थे । इतना ही नही, भारतवर्ष की दो प्रधान राजनैतिक जमातो, काग्रेस और मुस्लिम लीग, मे समझौता भी हो गया था और कॉग्रेस-लीग-योजना नामक एक राजनैतिक सुधारा का

विधान काग्रेस के इस अधिवेशन में स्वीकृत किया गया था। सभी दल और सभी समुदायो की उस समय की इस काग्रेस को आशीर्वाद देने सयुक्तप्रान्त के गवर्नर सर जेम्स मेस्टन अपनी धर्म-पत्नी के साथ इस अधिवेशन मे आये थे। मुकम्मिल आजादी, मय ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर जाने के हक के, सदृश कोई आदर्श उस समय देश के सामने नही था, न इसके लिए जनता से कुछ करने के लिए ही कहा जाता था। काग्रेस का ध्येय ही ब्रिटिश सल्तनत के अन्तर्गत उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्राप्त करना था। सन् १९२० मे नागपुर के अधिवेशन ने तथा १९२९ में लाहौर अधिवेशन ने काग्रेस के जो ध्येय स्वीकृत किये उनसे यह ध्येय शब्दो और वाक्यो मे कही अधिक लम्बा-चौड़ा था। फिर जिस तरह काग्रेस मे अग्रेजी मे ही भाषण होते थे उसी प्रकार वह ध्येय अग्रेजी भाषा मे था, तथा ऐसे शब्दो मे, जो हमारी सरकार की समझ में आवे, भारतीय जनता के समझाने के उद्देश्य से न उस ध्येय की इबारत लिखी गयी थी और न वहाँ की कोई कार्रवाई ही होती थी। सरकार से प्रार्थनाएँ, सरकार को अर्जियाँ, सरकार के कुछ अनुचित समझे जाने वाले कार्यो का मुलायमियत से विरोध—यही काग्रेस का कार्य था। उसकी सारी कार्यवाही तीन अग्रेजी के शब्दो में आ जाती थी—'प्रेयर, पेटीशन, प्रोटेस्ट' याने 'प्रार्थना, दरख्वास्ते और विरोध'। बडे दिन की छुट्टियो मे तीन दिन के लिए यह जमाव होकर इन तीन शब्दो के अन्तर्गत सारा कार्य कर डालता था।

ऐसे ध्येय और ऐसे कार्य करनेवाली काग्रेस को आशीर्वाद देने के लिए आने में सर जेम्स मेस्टन को क्या आपत्ति हो सकती थी!

इन्दुमती ने काग्रेस के इस अधिवेशन को बडे चाव से देखा।

काग्रेस अधिवेशन के पश्चात् इन्दुमती के मैट्रिक इम्तहान को बहुत थोड़ा समय बचा था। यद्यपि काग्रेस के अधिवेशन के बाद बहुत समय तक लखनऊ के पढे-लिखे समुदायो में हर जगह उस अधिवेशन की ही चर्चा होती रही, इन्दुमती के मित्रो और उसके घर मे भी, फिर भी उसने पढने मे अधिक समय लगाने का प्रयत्न अवश्य किया। इस कोशिश मे विघ्न न पडे हो, यह बात नही। जहाँ दो-चार व्यक्ति इकट्ठे हुए कि वही चर्चा आरम्भ हो जाती थी—कभी प्रस्तावो की, कभी भाषणो की, कभी उन व्यक्तियो की, कभी उन व्यक्तियो के स्वरूपो, स्वरो और सकेतो की, और कभी स्वागत-समिति के प्रबन्ध इत्यादि

की। और इस चर्चा में इन्दुमती इतनी तल्लीन हो जाती कि पढना-लिखना एक तरफ पड़ा रहता और घटो बात-चीत मे बीत जाते थे। एक बार सभापति की दाढी के समान एक लम्बी दाढी बनाकर उसने अपनी एक सहेली के लगायी और इस पर पूरा सखी-समुदाय पूरे एक पहर तक (बीच-बीच मे रुककर, अवश्य) हँसा। दूसरी बार मूँज की मोटी रस्सी मँगाकर गाधीजी की पगडी के समान पगड़ी बना उसने अपनी एक सहेली को पहनायी और इस पर भी कम हँसी नही हुई। सुरेन्द्रनाथ बैनरजी के सदृश स्वर को चढा-उतारकर कँपाते हुए, मिसेज बेसेन्ट के समान कुछ गाकर और तिलक के समान अटक-अटक कर बीच-बीच मे वह भाषण देने का भी प्रयत्न करती, जिससे समस्त सखियाँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती, फिर भी पढना चल रहा था और इसका कारण थे प्रधानतया अवधबिहारीलाल।

दस बजे के पहले सो जाने का इन्दुमती का कार्यक्रम बँधा हुआ था। कभी-कभी वह रात को देर तक पढती। परीक्षा का समय था, अत वकील साहब उसे रोकते तो नही, पर जब तक उसके कमरे का टेबिल-लैम्प बुझ न जाता तब तक उन्हे नीद न आती। ऐसे अवसर पर जब उन्हे नीद न आती तब सुलक्षणा पहले तो उनका स्वास्थ्य पूछती और जब वे कहते कि तबियत उनकी बिलकुल ठीक है तथा सिर इत्यादि पर हाथ रखने के बाद सुलक्षणा को भी उनके स्वास्थ्य मे कोई बिगाड़ न दीखता तब सुलक्षणा सच्चा कारण समझ जाती। वे किसी बहाने लडकी के कमरे मे जाती और इन्दुमती को समझाकर सुला देती। सुलक्षणा को पति के स्वास्थ्य की जितनी चिन्ता रहती थी दुनिया मे इतनी किसी चीज की नही।

आखिर इन्दुमती मैट्रिक पास हो गयी और वह भी प्रथम श्रेणी मे। इस खुशी के उपलक्ष मे वकील साहब ने अपने बाग मे एक बहुत बडा 'ऐट-होम' दिया। सन् १६-१७ मे हिन्दुस्तानी लडकियो का मैट्रिक पास करना सचमुच ही कोई छोटी बात नही थी।

: ४ :

'ऐट-होम' का समय था छै बजे सन्ध्या को और ठीक वक्त मेहमानो का आना शुरू हो गया। मेहमानो का स्वागत कर रहे थे अवधबिहारीलाल स्वय। अवधबिहारीलाल की पोशाक आज बिलकुल ही बदल गयी थी। वे पहने हुए थे तन्जेब का लखनऊ के चिकन के काम वाला अँगरखा और ढीला पाजामा। सिर पर लगाये हुए थे दोपलिया लखनऊ के चिकन के काम की ही टोपी। कितना नफीस यह काम था! शायद दुनियाँ मे सुई से इतना सुन्दर काम कही नही होता। भारतवर्ष अपनी दस्तकारी मे 'ईस्ट इण्डिया कपनी' की घृणित और क्रूर हरकतो के पहले सारे ससार मे प्रसिद्ध था। ढाके की मलमलो का पतलापन अच्छी-से-अच्छी मशीने आज तक नही ला सकी। काश्मीर के शालो की मुलामियत और गरमी आज भी किसी देश के कपडे को मुयस्सर नही। बनारस और तजोर के कलाबत्तू के काम के सदृश काम आज भी इस दुनियाँ के परदे में कही नही होता। वैसा ही लखनऊ के चिकन का यह काम था। अन्य दस्तकारियो के सदृश इसमें भी पतन हुआ है, पर सन् १६-१७ तक इसकी स्थिति बहुत नही गिरी थी। इन वस्त्रो मे अवधबिहारीलाल के शरीर का भद्दापन चाहे कुछ अधिक दीखता हो, और इसमे कपडो का कोई दोष भी न था, पर उनके कपडे देश की कारीगरी का बडा अच्छा नमूना अवश्य बता रहे थे।

मेहमानो मे लखनऊ का सारा सभ्य समाज पहुँच गया, कुछ स्त्रियाँ भी थी, पर बहुत कम। सयुक्तप्रान्त मे उस समय भी परदे का काफी जोर था, फिर जो स्त्रियाँ परदा नही करती थी वे भी ऐसे सार्वजनिक जलसो मे बहुत कम जाती थी। जब 'ऐट-होम' देनेवाले की पत्नी परदा न करने पर भी वहाँ न आ सकी तब अन्य स्त्रियो के आने की सम्भावना और कम थी। फिर भी कुछ स्त्रियाँ अवश्य आयी थी, और ये थी वे, जो उस वक्त के समाज मे इस बात की डुग्गी पीटना चाहती थी कि भारतवर्ष बर्बर देश है, सभ्य नही और यहाँ के सारे रीति-रिवाज जड़ से उखाड़कर फेक देने चाहिएँ। इस देश मे

परदे का निवारण यथार्थ मे सन् १९२० के बाद हुआ और यह हुआ देश की सेवा मे आगे आने वाली महिलाओ के कारण, जिन्हे देश से प्रेम था, जो परदे को भारतीय समाज के लिए हानिकारक समझ, समाज के समस्त रीति-रिवाजो को न उखाड केवल बुरी रूढियो का निवारण करना चाहती थी। पर सन् १९२० के पूर्व जिन प्रान्तो मे परदे का रिवाज था उन प्रान्तो की महिलाओ मे, जिन्होने परदा छोडा था, उनमे से अधिकाश भारत से प्रेम न कर योरप और अमरीका से प्रेम करती थी। भारतीय समाज की हर अच्छी-बुरी रीति पर उनकी नाक सिकुडती थी, उनकी भवे चढती थी।

मेहमानो मे सभी समुदाय के व्यक्ति थे, और भिन्न-भिन्न वेष-भूषा मे। किसी की पोशाक हिन्दुस्तानी थी, किसी की पश्चिमी। कोई अँगरखा पहने था, कोई शेरवानी, किसी के ढीला पाजामा धारण था किसी के चूडीदार। कई व्यक्ति लखनऊ के चिकन के कामदार कपडे भी पहने थे। किसी-किसी की शेरवानियाँ रेशमी जामेवार की भी थी। सिर पर कोई फैल्ट कैप लगाये था, कोई लखनऊ की दुपलिया टोपी, कोई तुर्की टोपी पहने था और कोई 'हैट' भी, कोई-कोई साफा भी बाँधे थे, पर ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम थे। लखनऊ वाले इस मौसम में साफा बाँधे! आश्चर्य उनकी पोशाक को देखकर होता था, जो जेठ की इस भीषण गरमी मे भी गरम कपडे पहने हुए थे। अनेक लोगो की दुपलिया टोपियो के नीचे बालो के छल्लेदार पट्टे, अनेक के गलमुच्छे, अनेक की मूँछे और दाढियाँ भी देखने योग्य थी। कई लोगो के बालो पर खिजाब था, यह मालूम हुए बिना न रहता था, एक तो उन बालो के रग के ही कारण, दूसरे झुर्रियो से भरे हुए बूढे चेहरे में काले बालो की वजह से। कई के कानो के ऊपरी भाग बडे चिकने-चिकने दीख रहे थे। ये थे वहाँ लगे हुए इत्र के फाहो के कारण। स्त्रियो की वेष-भूषा हिन्दुस्तानी ही थी। गनीमत थी कि उन्होने साडी को छोड़ 'स्कर्ट' और 'गाउन' पहनना कभी भी शुरू नही किया। इसका कारण कदाचित् यह है कि भारतीय साड़ी स्त्रियो की सबसे अच्छी वेश-भूषा है। इसकी सारे ससार मे सदा से चर्चा रही है और गुलाम देश के निवासी अपनी आँखों से देखना तो बहुत कम जानते हैं, वे प्रायः देखा करते है दूसरो की दृष्टि से।

मेहमान उन छतरियों के नीचे बैठ चले। छै बजे भी कुछ धूप अवश्य थी,

परन्तु उन छतरियो के नीचे छाया थी।

अधिकाश मेहमानो के आ जाने पर बँगले से इन्दुमती निकली। कितनी सुन्दर दीखती थी वह आज। आबेरवा पर चिकन के काम की साडी और वैसा ही शलूका धारण किये थी। साडी का रग था धानी और शलूके का नीबू के सदृश हलका पीला। इस मौसम मे ये दोनो रग मिलकर आँखो को कैसा शीतल रस सा पिला रहे थे। आज उसकी साडी का पल्ला अव्यवस्थित रूप से बाँये कधे पर नही पडा था, न उसका सिर ही खुला हुआ था। पल्ला टँका था बाँयी ओर एक मोती के जडाव की लम्बी सी 'सेफ्टी पिन' से और चेहरे के चारो ओर घूम गयी थी सिर को ढाँके हुए साडी। इस धानी रग की साडी के बीच उसका गोरा मुख ऐसा जान पडता था मानो नवीन हरे पल्लव के बीच मे श्वेत कमल फूल गया हो। उसके सारे आभूषण आज मोती के थे, जडाऊ नही, गरमी का मौसम जो था, भारी भरकम सोना और जडाव कैसे पहना जाता ?

अवधबिहारीलाल ने इन्दुमती को अपने साथ ले क्रमश हर छतरी के अन्दर ले जाकर मेहमानो से मिलाया। किस तरह लोगो ने नीची निगाहे करने पर भी बच-बच कर उसे देखा और किस नम्रता से सबने उसे पास होने पर बधाइयाँ दी !

जिस समय इन्दुमती बँगले से निकली थी उस समय खाना-पीना और खानसामो द्वारा मदिराएँ, 'एरेटेड वाटर', शर्बत, चाह, 'फ्रूट सैलड', 'आइस-क्रीम', सिगरेट, सिगार आदि की 'सर्विस' शुरू हो गयी थी। और मेहमानो में खाने-पीने के साथ ही चल रही थी अनेक विषयो पर बातचीत।

एक टेबिल के चारो तरफ बैठे हुए लोगो मे योरोपीय महायुद्ध की चर्चा हो रही थी। इस समय सबसे प्रधान घटनाएँ थी रूस की क्राति के बाद वहाँ की हलचले और अमरीका की 'सीनेट' तथा 'हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टे-टिव्स' मे पास हुआ युद्ध सम्बन्धी प्रस्ताव एव इसके पश्चात् प्रेसीडेण्ट विल्सन द्वारा की जाने वाली लड़ाई की तैयारियाँ।

'रूस की यह क्राति दुनियाँ मे नये-नये रग लाएगी।'—एक ने कहा।

'एक तो फ्रास की क्राति दुनियाँ मे नये रग लायी और एक यह लाएगी।'—दूसरा बोला।

'भाई, ऊश मे और ईश मे फॅरॅक हय।'—तीसरे बगाली महाशय ने कहकर पहले का समर्थन किया ।

दूसरे को भी अनुमोदन की कमी न थी , चौथे सज्जन बोले—'अरे, यह दुनियाँ कुत्ते की दुम के मानिंद हमेशा टेढी ही रहती है। चाहे कितनी ही सीधी करने की कोशिश करो, पर जिस वक्त इन कोशिशो का नतीजा देखने जाओगे, जबान से निकल जायगा—लाहौलबिलाकूबत !'

पहला फिर बोला—'हजरत, जिस समय फ्रास की क्राति हुई थी, उस वक्त इस प्रकार का ससारव्यापी सग्राम नही चल रहा था।'

'और इस लडाई को भी मै ससारव्यापी लडाई नही मानता , योरप की लडाई है , बस।'—दूसरे ने कहा।

पहला जल्दी से शायद इसलिए बोला कि उसे भय था कि कही तीसरा फिर से न बोल दे और उसे चुप रहना पडे। परन्तु उसका भय इसलिए निरर्थक था कि तीसरे ने एक बडा-सा रसगुल्ला मुँह मे रख लिया था। वह रसगुल्ला इतना बड़ा सिद्ध हुआ कि उसका सारा मुँह भरा हुआ था और जब उसे बोलने मे ही कठिनाई हो रही थी तब वह बोलता कैसे ? 'योरप की लडाई ! जापान योरप मे ठहरा। अमरीका में लडाई की तैयारी हो रही है। अमरीका भी योरप का एक हिस्सा है न ?'

दूसरे के हाथ मे समोसा था, पर उसका हाथ मुँह की ओर बढते-बढते रुक गया और उसने उत्तर दिया—'जापान ने युद्ध में शामिल होकर कितनी लडाइयाँ लड़ी है सो हमने देख लिया और अमरीका तो बाते कर रहा है, बाते, वह युद्ध मे आने वाला नही।'

चौथा आम काटते हुए बोला—'भई, जापान जग मे आया था इस वक्त की साइन्टिफिक लडाई की बाते अन्दर से जानने और समझने के लिए। उसका मकसद ही लड़ने का नही था। और अमरीका जग की बाते न करे तो उसे और उसके प्रेसीडेण्ट विल्सन को पूछे कौन ?'

तीसरा रसगुल्ले के युद्ध मे अब विजय प्राप्त कर चुका था—वह बोला—'जो कुछ हो, जीत जर्मनी का ई होगा। ऊशका साइन्टिफिक ऑबिश्कार ही ऐशा है।'

चौथा बोला—'यह मै नही मानता, पहले ही मार लेता तो बात अलग

थी, पर अब जर्मनी को फतह हासिल नहीं हो सकती। उसने अगर साइन्स से मुख्तलिफ-मुख्तलिफ चीजे तैयार की हैं तो वल्लाह! हमारी सरकार और उसके दोस्तो ने भी उन चीजो का मुकाबिला किया है। अब नयी साइन्टिफिक चीजे हमारी सरकार तैयार कर रही है। फतह होनेवाली है हमारे दोस्तो की।'

बात का और आगे बढना रुक गया, क्योकि उसी समय अवधबिहारीलाल इन्दुमती को लेकर पहुँच गये।

एक दूसरी मेज के चारो ओर बैठे हुए अतिथियो मे भारतीय राजनीति के सम्बन्ध मे बाते चल रही थीं।

'हॉ, हॉ, मै कहता हूँ यही वक्त था जब भारतवर्ष स्वतन्त्र हो सकता था। सन् १८५७ की अजादी की लडाई को आज सैनिको का विद्रोह कहा जाता है, पर यथार्थ मे वह गुलामी की जजीरो को तोड़ने के लिए एक सघटित प्रयत्न था। आज यदि नाना साहब और उनके दूसरे साथियो के समान कार्यकर्त्ता इस देश मे होते तो वे लाखो की तादाद में हमारे मुल्क के लोगो को अग्रेजो द्वारा सैनिक बना-बना कर योरप के मैदानो में कटने के लिए न भेजते, काग्रेस और मुस्लिम लीग मे बैठ-बैठ कर बडी-बड़ी स्कीमे न बनाते और धुआँधार भाषण दे-देकर शाब्दिक प्रस्ताव न पास करते, वरन् हमारे देश की सेना को भारतीय आजादी की सेना बना डालते। यह सारी भरती जो अग्रेजो की विजय के लिए की जा रही है, वह हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करनेवाली सेना के लिए की जाती।'—एक बोला।

इसका इतना लम्बा भाषण इसलिए चल रहा था कि इसके बाकी साथी खाने में तल्लीन थे। आखिर जब यह चुप ही हो गया तब किसी-न-किसी को बोलना तो पडता ही।

दूसरे ने कहा—'पर, भाई, यह सब करता कौन? एक ही आदमी ऐसा था जो यह कर सकता था।'

तीसरे ने पूछा—'कौन?' और वह फिर खाने लगा। उसने यह छोटा-सा प्रश्न इसलिए कर दिया कि वह अपने खाने में भी हानि नही पहुँचाना चाहता था और यह भी चाहता था कि कोई यह भी न कह दे कि खाने के मारे वह बोला तक नही।

दूसरा बोला—'तिलक—पर वे थे छै साल तक जेल मे, लडाई के कुछ ही दिन पहले छूटे। इतने थोडे दिनो मे भी उन्होने 'होम-रूल-लीग' का आन्दोलन चलाया। जैसे सगठन की सन् १८५७ के सदृश कार्य के लिए जरूरत थी वैसा सघटन भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति मे इतने शीघ्र थोडे ही हो सकता था ?'

चौथे को भी अब खाना रोकना ही पडा। उसने कहा—'तिलक ने एक बात बहुत बुरी की।'

तीसरे को फिर से एक छोटा-सा प्रश्न करने का मौका मिल गया—'कौनसी ?'

'कान्सक्रिप्शन के खिलाफ आवाज जो उठा दी,'—चौथे ने कहा, 'हर आदमी की जबरन भर्ती उन्ही की वजह से बन्द हुई। अगर वह भरती होती तो हिन्दुस्तान मे इन्कलाब हुए बिना कभी न रहता। इस मुल्क के बाशिन्दगान योरप के मैदानो मे लड़ने की बनिस्बत इसी मुल्क मे लडकर मर जाना या मुल्क को आजाद करना पसन्द करते।'

'जो कुछ हो, पर तिलक ही एक ऐसे नेता है जो इस देश मे कुछ कर सकते है।'—दूसरा फिर बोला—'एक बात और सुनिए—'

तीसरा यह कहकर 'कहिए' फिर सस्ता छूट गया।

दूसरा बोला—'तिलक के सम्बन्ध मे मेरा यह विश्वास है कि वे सन् '५७ के मगल पाडे है। मगल पाडे के मरने की तिथि तथा तिलक के जन्म की तिथि के बीच मे पूरे-पूरे नौ महीने जाते है, मैने हिसाब लगाकर देखा है।'

पहले ने बिना दूसरे की इस बात पर ध्यान दिये कहा—'मेरी दृष्टि से तो १८५७ के बाद से अब तक का इस देश का नेतृत्व असफल हुआ है। बमबाजो ने जरूर कुछ किया पर वे पनप न पाये। अब एक नया आदमी आया है, देखे वह क्या करता है ?'

तीसरे को फिर से एक बार अपना हथकण्डा चलाने को मिल गया। उसने पूछा—'कौन ?'

'गान्धी !'—पहले ने उत्तर दिया। 'पर ये कर्मवीर महोदय अफ्रीका से अहिंसा को साथ लेकर पधारे है। इसमे सन्देह नही कि मानव इतिहास का अन्तिम पष्ठ नही लिखा गया है। और भारतवर्ष ने ससार को नये-नये सदेश

दिये भी है, परन्तु ·· · ··'

आगे का भाषण इसलिए रुक गया कि उसी समय चार डडीदार कॉच के गिलासो मे 'फ्रूट-सैलड' और हर गिलास मे एक-एक छोटा चम्मच लेकर एक खानसामा पहुँच गया। पहले सज्जन इस समय कुछ खा नही रहे थे। मालूम नही खाना ही नही था, या खाना खत्म कर किसी नयी चीज का रास्ता देख रहे थे। 'फ्रूट-सैलड' को देखकर इनके मुँह मे भी पानी आ गया और उसे सावधानी से पीते हुए, जिसमे कोई देख न ले, देश का भाग्य गान्धी पर छोड भिड गये 'फ्रूट-सैलड' से। बोलनेवाले यही अधिक थे। जब यही चुप हो गये तब शेष तीनो को पागल कुत्ते ने थोडे ही काटा था। इन्होने भी अपने-अपने 'फ्रूट-सैलड' के गिलास सम्हाले।

तीसरी टेबिल पर चर्चा चल रही थी कला की। एक सज्जन एक लम्बे भाषण मे—'कला क्या है ?'—इसे अपने साथियो को समझा रहे थे। शायद ये कोई कलाकार ही थे, क्योकि इनके बाल बहुत लम्बे थे तथा मुख भी कलात्मक। इसीलिए शायद इन्हे खाने की अपेक्षा कला की चर्चा मे अधिक आनन्द आ रहा था और इनके मुख से वाक्यावली उसी प्रकार निकल रही थी जिस तरह चाबी खोल देने पर फुहारे से पानी की धाराएँ निकलती है। श्रोता तल्लीन थे खाने और सुनने दोनो मे ही।

एक अन्य मेज पर इसी प्रकार का एक भाषण विज्ञान पर चल रहा था—'ससार मे विज्ञान से बढकर और कोई चीज नही। रेले, तार, टेलीफोन वगैरह तो सब अब बहुत छोटी चीजे हो गयी। इस युग मे विज्ञान ने कैसे-कैसे चमत्कार दिखाये है! पेरिस से सत्तर मील दूर रखी हुई तोप से पेरिस पर गोले बरसते थे और पेरिस वाले भौचक्के थे कि आखिर ये गोले आ कहाँ से रहे है ? 'ब्रेन गन' के समान बन्दूके कभी निकल सकेगी, यह किसी ने कल्पना तक न की थी। 'प्वायजन गैस' कोई जानता था क्या है ? खाइयो पर 'इलेक्ट्रोक्यूडेट बार्ब्ड वायर' की हदबन्दियाँ! स्वय पीछे हटकर सैनिक इन बिजली के तारो की ऐसी हदबन्दियाँ कर देते है कि आगे बढने वाली शत्रु सेनाएँ इन तारो से टकराकर मर जाती है। फिर पहले युद्ध जमीन पर या पानी की सतह पर होता था। अब तो हवा में ऐरोप्लेन, जेप्लिन', पानी के अन्दर सबमरीने और माइन्स। और अभी क्या हुआ है ? लोहे की सेनाएँ तैयार

हो रही है !'

एक सिक्ख से जो उनके साथ खा रहा था अब न रहा गया। उसने खाते-खाते ही पूछा—'आदमी की जगा लोहे की सेनाएँ !'

'जी हाँ,' वैज्ञानिक महोदय की वैज्ञानिक रेल फिर चल पडी—'लोहे के सिपाही बनेगे। उनकी कतारे खाइयो मे खडी होगी। उनमे बिजली का कनेक्शन रहेगा और उस कनेक्शन का स्विच रहेगा बहुत दूर, टेलिस्कोप लिये हुए आदमी के पास। जब टेलिस्कोप वाले को दीखेगा कि शत्रु-सेना बढ रही है तब स्विच ऑन कर दिया जायगा और इन लोहे के सिपाहियो की बन्दूको मे गोलियो की बरसात होने लगेगी। यदि इतने पर भी शत्रु आगे बढ ही आये तो उन्हे जीवित मनुष्यो की जगह मिलेगे लोहे के ये पुतले ! इस तरह के पुतले रोज लाखो की तादाद मे कारखानो से निकलेगे और न इनके खिलाने के लिए कोई खर्च, न पिलाने के लिए पानी का प्रबन्ध ! फिर ऐसी मोटरे बन रही है जो जमीन पर ऊँची-नीची हर जगह चलेगी, पहाडो के पत्थर और जगलो के झाड़-झखाड सबको चूर-चूर करती हुई, और ये ही जमीन पर चलनेवाली मोटरे ऐरोप्लेन के सदृश उडने, जहाज के समान पानी पर चलने, सबमरीन के मानिन्द पानी के अन्दर डुबकी लगाने की भी क्षमता रखेगी। फिर ऐसे बम भी तैयार किये जा रहे है, जिनसे प्लेग, हैजा ही नही, पर ऐसी अगणित प्रकार की महामारियाँ फैलायी जा सकेगी जो आज तक कभी किसी ने सुनी तक ...'

एक टेबिल के चारो तरफ लोगो मे प्रजातन्त्र और राजतन्त्र पर बहस चली हुई थी।

'राजाओ और सम्राटो के दिन चले गये, भाई साहब, बिलकुल चले गये'—एक ने कहा।

'यूनान मे एथेन्स और स्पार्टा के प्रजातन्त्रो के समय कोई यह नही जानता था कि वहाँ सिकन्दर का सितारा चमकेगा।'

तीसरे सज्जन, जो बटरबीनो और सैन्डविचो पर टूटे हुए थे, धीरे-धीरे बोल चले। उनके बोलने के ढग और मुद्रा मे जान पडता था कि जैसे कोई बडा-सा भाषण देने वाले हो। 'अरे बिरादर, दुनिया मे कोई भी बात मुस्तकिल तौर पर हो हीं नही सकती। बहुत दिन तक एक ही चीज चलते-चलते उसमें

बुराइयाँ आ ही जाती है। "मॉनर्की", "डिमोक्रैसी" सब "सिस्टम्स" का यही हाल है। जब बहुत दिन अख्त्यारात एक शख्स के हाथ मे रहते और उनमे जब खराबियाँ नजर आने लगती है तब लोग एक से ज्यादा आदमियो के हाथो मुल्क की बागडोर देना चाहते है और 'डिमोक्रैसी' आती है। जब बहुत वक्त तक 'डिमोक्रैसी' रहती है तब उसमे भी बुराइयाँ पैदा होती है, और लोग चाहते है कि फिर से एक आदमी के हाथ मे सब कुछ सौप दिया जाय और "डिमोक्रैसी" खत्म कर "मॉनर्की" आ जाती है। यह समझना कि "डिमोक्रैसी" ही अच्छी है एक गलत खयाल है। हमारे लखनऊ मे आज भी दुकानदार नवाब आसफुद्दौला का नाम लेकर दूकाने खोलते है। जैसा आराम लोगो को उसकी बादशाहत के वक्त था, क्या किसी "डिमोक्रैसी" मे होगा ?'

'लेकिन, जनाब आली, अब दूसरी ही बात होगी। कार्ल मार्क्स ने "जो काम करे उनके हाथो अधिकार रहे"—यह एक नया सिद्धान्त ससार के सामने रखा है।'—चौथा एक केक का बडा-सा टुकडा मुँह मे भरे-भरे बोला।

'वल्लाह ! क्या दूर की कही है हुजूर ने ? लेकिन, सरकार, कार्ल मार्क्स के "कापिटल" मे कही गयी तमाम सिस्टम उसी तरह की एक "यूटोपिया" है जैसी किसी जमाने मे प्लैटो के "रिपब्लिक" मे थी। देखिए, हजरत '

पर बात आगे बढने के पहले ही एक खानसामा एक बड़ी-सी ट्रे मे सिगार, सिगरेट, माचिस लेकर पहुँच गया। एक सज्जन ने उठाया सिगार और तीनो ने सिगरेट। सिगार और सिगरेट जलाये गये और 'डिमोक्रैसी', 'मॉनर्की' तथा 'कार्ल मार्क्स का नया सिद्धान्त' सब कुछ देर के लिए तो इस तम्बाकू के धुएँ मे उड़ गये।

इसी प्रकार की चर्चाएँ कही 'समाज सुधार और उसमे स्त्रियो का स्थान,' कही 'वर्तमान शिक्षा-पद्धति', कही 'कृषि और उद्योग', कही 'लोकल सेल्फ गवर्नमेट और सैनिटेशन', कही कभी समाप्त न होने वाले 'ईश्वर और निरीश्वरवाद', कही 'पुनर्जन्म' और कही 'फलित ज्योतिष' इत्यादि पर चल रही थी।

कुछ-कुछ अँधेरा हो चला था, अत बिजली जला दी गयी। सारा उद्यान एक नये तरह के प्रकाश से चमक उठा ! रग-बिरगे बल्ब और बाग मे स्थापित मूर्तियो पर पड़ने वाले तेज सफेद बल्बो ने उपवन को एक नयी छटा दे दी।

खाना-पीना प्राय समाप्त हो चुका था, अत अब अतर-पान तथा पुष्प-मालाएँ पहनाना शुरू हुआ। देखते-देखते जिस तरह उद्यान मेहमानो मे भरा था उसी तरह खाली होने लगा। सचमुच हर वस्तु का आरम्भ ही मनोहर होता है, अत नही। इन्दुमती भी घर गयी और अब बाग मे रह गये अवधबिहारीलाल तथा उनके निकटतम कुछ मित्र।

अब महफिल शुरू हुई। उस समय वेश्या-नृत्य का खूब दौर-दौरा था, विशेषकर सयुक्त प्रान्त मे और बनारस तथा लखनऊ इस कला मे प्रसिद्ध थे ही।

: ५ :

जुलाई में जब इन्दुमती ने कैनिंग कॉलेज मे प्रवेश किया तब उसे जान पडा कि वह एक नयी दुनियाँ मे आ गयी है। लडके लडकियो की साथ-साथ पढाई उसने पहली बार देखी थी। बचपन मे उसने घर मे ही पढा था और पाँचवी अंग्रेजी से लड़कियो के हाईस्कूल मे। वहाँ पढानेवाली भी स्त्रियाँ ही थीं। लखनऊ मे ईसाइयो का एक कॉलेज था, जो सिर्फ लड़कियो के लिए ही था, परन्तु वहाँ साइन्स का कोर्स न होने की वजह से इन्दुमती कैनिंग कॉलेज मे गयी थी।

इन्दुमती बडे घर की लडकी थी, असाधारण रूप से सुन्दर और प्रखर बुद्धिवाली, अत स्कूल मे आते ही उसका अपनी कक्षा पर ही नही, किन्तु अपने से ऊपर की कक्षाओ पर भी असर पडा। बहुत जल्दी सारे स्कूल की लडकियो का नेतृत्व उसके हाथ मे आ गया। फिर उसके स्वभाव मे स्नेह और उद्दण्डता का एक विचित्र मिश्रण था। शायद स्नेह उसका स्वाभाविक गुण था और उद्दण्डता आयी थी पिता के उपदेशो के कारण। 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है; जो अपने को ही केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सुखी और सफल होता है।'—बार-बार पिता के इस उपदेश ने उस पर कम असर नही

डाला था। वह अपने व्यक्तित्व को ही सब कुछ समझती थी, अपने को ही केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए ही करती थी और ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानती थी। इस उपदेश के व्यवहार मे आने से उसके स्वभाव मे एक तरह की उद्दण्डता आ गयी थी। उसकी यह उद्दण्डता बढ गयी थी एक और विश्वास से—वह गर्व को आवश्यक मानती थी, और गर्व को आवश्यक मानती हो, इतना ही नही, वह उसे अपनी समस्त कृतियों का जनक समझती थी। उसका विश्वास था कि मोटर-एँजिन मे डाइनैमो का जो स्थान है वही मनुष्य-हृदय मे गर्व का। जिनमे गर्व नही, वे हृदय भी गर्म करते है, क्योकि यो तो साँस लेना भी एक कर्म ही है, पर उनका हल बिना डाइनैमो की बैटरी से चलनेवाले एँजिन के समान होता है। वह कई बार कहती—'बैटरी को चार्ज करनेवाले डाइनैमो के बिना जिस तरह बैटरी की ताकत खत्म हो जाती है और फिर एँजिन भी नही चल पाता, वैसी ही दशा उस हृदय की होती है जिसमे गर्व नही रहता।' इसी कारण उसे उसी सभाषण, उसी कृति में दिलचस्पी रहती, जिसका केन्द्र वह स्वय रहती। फिर उसका स्वभाव ही उद्दण्ड हो गया हो, यह नही, उसकी बाह्य चेष्टाओ और व्यवहार मे भी इस उद्दण्डता की साफ झलक थी। उसकी चाल मे एक तरह की अकड थी। सिर और कन्धे उठा, वक्षस्थल को कुछ फुला, हाथो की मुट्ठियाँ बाँध, लम्बे-लम्बे डग मारती हुई वह चलती थी। उसे अपनी साडी के पल्ले से अपना वक्षस्थल और सिर ढाँकने का बहुत कम अभ्यास था। उसे प्रकृति ने स्त्रियोचित् शरीर और उसके सारे अवयव दिये थे—पतली भवे, लम्बे और रसीले लोचन, नुकीली नासिका और पतले ओठ, छोटे कान और छोटी ठुड्डी, उन्नत वक्षस्थल, कृश कटि, लम्बी भुजाएँ और नोकदार पतली-पतली उँगलियाँ, कुछ भारी जाँघे और छोटे-छोटे पैर। उसका कद न बहुत ऊँचा था और न ठिगना। बडे लम्बे और घने केश उसकी कटि के नीचे तक उसका शरीर नापते थे, किन्तु इस तरह की चाल-ढाल ने उसे स्त्रैण न रहने दिया और उसकी स्वाभाविक कोमलता को एक विशेष प्रकार की प्रखरता से ढक-सा दिया था। इसी तरह उसका स्वर मधुर था, परन्तु वह ऐसे रोब से बोलती थी कि स्वर की मधुरता उस रोब मे विलीन-सी हो जाती थी। उसके दाँत छोटे-छोटे और एकदम पक्ति मे थे, परन्तु उसके हँसने मे—हँसने मे हो नही—

मुस्कराने तक मे एक ऐसी विडम्बना आ गयी थी, जिससे वह हँसी और मुस्कराहट ऐसी जान पडती थी जैसे सारे विश्व का मजाक उडा रही हो !

स्वाभाविकता विचारो और बाह्य व्यवहारो से कितनी आच्छादित हो जाती है ! उसकी दृष्टि, उसके स्वर, उसके स्वभाव, उसके बर्ताव, मब बातो मे दूसरो को तुच्छ मानने की स्पष्ट झलक थी। परन्तु इस दृष्टि, स्वर, स्वभाव और व्यवहार ने उसे और अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बना दिया था, साथ ही उसका रोब पडता था, उसके सपर्क मे आनेवाले उससे केवल प्रभावित ही नही रहते थे, पर डरते भी थे। परन्तु जो उसके निकट आ जाते थे, उन्हे उसके नैसर्गिक स्नेह का भी पता लग जाता था और तब वे उसके मित्र ही नही, अनुयायी हो जाते थे। पहले आकर्षण होता था उसके स्वरूप से, फिर प्रभाव पड़ता था उसके व्यवहार का, और अन्त मे पता लगता था उसके स्नेहमय स्वभाव का। स्कूल के उसके तीन वर्षो के अक्षुण्ण नेतृत्व का यही रहस्य था। लेकिन स्कूल में उसका काम पडा था अपने ही वर्ग से। कॉलेज की दूसरी बात थी। यहाँ थी लड़के-लडकियो की साथ-साथ पढाई। फिर लडकियो की सख्या बहुत कम और पढानेवाले प्रोफेसर सब पुरुष। पर इस नयी दुनियाँ मे भी वह सकुची नही। सकोच तो समूल उसके हृदय मे उखाडकर फेक दिया गया था। घर और स्कूल में ही नही, 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व सब कुछ है,' यह उसे समझाया गया था ? कैनिग कॉलेज विश्व के बाहर की चीज थोडे ही था ? 'ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानना चाहिए,' यह उसके मस्तिष्क और हृदय मे बैठा हुआ था न ? कैनिग कॉलेज की जड़-चेतन सभी वस्तुएँ उसके आनन्द का साधन थी। यहाँ भी उसकी वही अकड, वही व्यवहार रहे। यह अकड़ और यह व्यवहार आदत के कारण उसके लिए अब नैसर्गिक वस्तुएँ हो गयी थी।

इन्दुमती के पहले कॉलेज में सिर्फ दो लडकियाँ थी—एक द्वितीय वर्ष और दूसरी तृतीय वर्ष मे। इसके साथ दो लडकियाँ और आयी थी। इस प्रकार कुल मिलाकर पाँच लड़कियाँ थी। पुरानी लडकियो ने इन आगन्तुको का हार्दिक स्वागत किया और कॉलेज के सारे वायुमण्डल के सम्बन्ध में इन्हे सब बाते समझायी , इनमें मुख्य एक ही थी—'कॉलेज के लड़के बडे शरीर होते है, उनसे बहुत बचकर रहना चाहिए, यहाँ तक कि कक्षाओ मे भी घण्टी बजने के बाद

जब प्रोफेसर आ जावे तब जाना चाहिए ।'

ससार मे मनुष्य बचकर उससे रहता है जिसे वह अपने को हानि पहुँचाने के काबिल समझता है। बन्दूक या शिकारी साथ मे लिये बिना कोई घने जगल मे नही जाना चाहता, क्योकि शायद शेर, भालू या अन्य कोई हिसक पशु निकल आय। जहाँ घनी घास या कूडा-कर्कट रहता है, वहाँ पैर रखने मे हर आदमी सकुचाता है ; क्योकि कदाचित् कही साँप, बिच्छू छिपे हो । शरीर लड़के ! ये भी ससार की उन्ही वस्तुओ मे है न, जो उसके आनन्द की साधन है ? इन लडको से बचने का प्रयत्न, अर्थात् इन्हे अपने से अधिक बलशाली मानना—चाहे फिर वह किसी भी दिशा मे क्यो न हो—किसी को इस प्रकार का महत्त्व देना इन्दुमती ने सीखा ही न था। कक्षा में प्रोफेसर के आने के बाद जाने का मतलब था प्रोफेसर की सरक्षणता स्वीकार करना। इन्दुमती क्या बुजदिल थी कि वह किसी की सरक्षणता मजूर करे ? इन पुरानी लडकियो का उसने उनके मुँह पर ही मजाक उडाया। वे तो भौचक्की-सी रह गयी। उनके सारे उपदेशो के विरुद्ध आचरण करने का इन्दुमती ने निश्चय किया और आरम्भ किया उसने घण्टी बजते ही सबसे पहले क्लास मे जाने का। उसके साथ आयी हुई लडकियो ने भी उसका अनुसरण किया, क्योकि वे तीन वर्षों से उसके नेतृत्व मे रह रही थी।

कॉलेज के लड़के पहले तो उसके रूप से आकर्षित हुए, लेकिन उसके व्यवहार, बोलचाल—सब मे रोब-दाब देखकर एकाएक ही उससे खिच-से गये। कॉलेज के लडके और किसी सहपाठी का रोब—वह भी एक लडकी का ! फौरन ही उसका मजाक उड़ना शुरू हुआ। उसका नाम रखा गया 'श्रू'। जब वह किसी तरफ से निकलती, लडके बहुत सी साँस फेफड़ो मे भरकर उसे मुँह से निकलते हुए साँस के साथ-साथ एक विचित्र प्रकार के स्वर मे बोलते 'श्रू !' और धीरे-धीरे यह साँस निकलने के कारण यह 'श्रू' शब्द बहुत देर तक चलता। नाम के साथ-साथ उसके चलने, बैठने आदि के ढग, बात-चीत, हँसने, मुस्कराने इत्यादि की नकले आरम्भ हुई। धीरे-धीरे क्लास मे उसके ऊपर 'पेप्र-बॉल' चलना शुरू हुए। इन्दुमती इन सारे मजाको की अवहेलना करती रही, और अवहेलना साधारण रूप से नही पर कभी इस प्रकार चलकर और कभी उस प्रकार मुँह बना और बिचकाकर। यह मजाक करनेवालो

को भुनगे, मच्छर या खटमलो से अधिक नही समझती। पेपर-बॉल उसके लिए एक नयी चीज अवश्य थे और पहले-पहल जब ये उसकी गरदन पर कहीं लगते तब वह चौककर इधर-उधर देखने भी लगती, पर ज्योही वह देखती कि जिधर वह देख रही है उधर कुछ मुख हँस रहे है, त्योही फौरन वहाँ से दृष्टि हटा लेती। शनै शनै पेपर-बॉल से भी उसकी झिझक जाती रही और उनसे उसका चौककर इधर-उधर देखना भी खत्म हो गया। पेपर-बॉल लगने पर भी वह इस तरह बैठी रहती जैसे कुछ हुआ ही नही है। पर उसके साथ की लड़कियाँ यह सब बर्दाश्त न कर सकी और उन्होने कॉलेज की दोनो पुरानी लडकियो का अनुसरण आरम्भ किया। अब वे घण्टी बजने के बाद प्रोफेसर के आने पर ही कक्षा मे जाती, पर इन्दुमती ने अपनी सखियो के साथ छोड़ने पर भी न क्लास मे सबसे पहले जाना बन्द किया और न अपने किसी व्यवहार मे कोई अन्तर ही आने दिया।

अपने सारे प्रयत्नो को निष्फल देख लड़के सोचने लगे कि अब क्या किया जाय ? ऐसी परिस्थिति मे मनुष्य स्वभावत दो ही बाते करता है—या तो पूर्ण अवहेलना और या फिर खुशामद। इन्दुमती के महान् आकर्षण के कारण सब लडको का उसके प्रति पूर्ण विराग शायद असम्भव था; कुछ ने तो उसकी पूरी-पूरी अवहेलना शुरू की पर कुछ ने खुशामद। यह खुशामद आरम्भ हुई क्लास मे इन्दुमती के कुछ बुद्धिशालो उत्तरो पर और फिर बढ चली। समीप आनेवालो के प्रति उसका स्नेह उसका एक स्वाभाविक गुण था। धीरे-धीरे वह भी इन लडको के प्रति आकृष्ट हुई और कुछ ही दिनो में एक समूह की नेत्री हो गयी। ज्योही वह नेत्री हुई, त्योही उसके साथ आनेवाली दोनो लडकियो ने फिर से उसका साथ देना आरम्भ कर दिया। उगती हुई सूर्य-किरण को विरले ही प्रणाम नही करते !

अब जो समुदाय उसके विरुद्ध था उसने इन्दुमती और इन लड़को के दूसरी प्रकार के मजाक शुरू किये। 'लेडीज वेटिंग रूम', 'गुसलखाने' आदि स्थानो पर कोयले की भिन्न-भिन्न तस्वीरे बनाना शुरू हुआ। कही एक लडकी और कई लडके तथा उसके नीचे अग्रेजी मे लिखा हुआ 'वन जूलियट एण्ड मेनी रोमिओज', कही एक लडकी और दो लडके तथा उसके नीचे अग्रेजी की इबारत मे 'बेस्ट वूमन विद् कर्व्स एण्ड विथ टू लवर्स', कही एक लड़की लड़के

के वेष में और कई लडके लड़कियो के वेष मे तथा उसके नीचे हिन्दी मे लिखा हुआ 'मर्द लडकी और स्त्रैण लडके'। क्लास के काले बोर्ड पर सफेद चाक से कभी-कभी अग्रेजी मे लिखा जाने लगा 'इन्दुमती विथ सो मेनी, बियान्ड दि होराइजन', 'इन्दुमती विथ थ्री लवर्स बैक आफ दि बियान्ड'।

इन्दुमती ने तो इस सबकी भी अवहेलना की, तथा और भी अधिक घृणा प्रदर्शित की, लेकिन उसके ग्रुप के लडको से यह बर्दाश्त न हुआ। उन्होने बदले मे अपने विरोधी लडको के उपनाम रखना शुरू किया। एक ऊँचे और दुबले लडके का नाम रखा गया 'मि० लैंकी-शैंकी', एक ठिगने लड़के का 'मि० शार्ट', एक बहुत बोलनेवाले का 'मि० चैटरबॉक्स', एक सर्वज्ञ बननेवाले का 'मि० नो-ऑल'। जब इन लडको को यह नव नाम-सस्करण का हाल मालूम हुआ तब उन्होने लडको का तो नही, पर इन्दुमती की दोनो सखियो के नये नाम रखकर उनका खूब प्रचार आरम्भ किया। एक लडकी का नाम रखा गया 'बर्रैया', और दूसरी का 'मधुमक्खी'। शायद कुछ दूर तक ये नाम सार्थक भी थे, क्योकि जिस लड़की का नाम 'बर्रैया' रखा गया था वह बोलने मे कभी-कभी डक-सा मार दिया करती थी और जिसका 'मधुमक्खी' रखा गया था वह जिस तरह मधु-मक्खियाँ सदा मधु-सग्रह के काम मे सलग्न रहती है उसी प्रकार पढने मे दत्तचित्त रहती थी।

एक ओर चल रहा था पढना और दूसरी ओर मजाक। कहना कठिन है कि किसको अधिक महत्त्व था, पर शायद मजाक को ही अधिक होगा।

कैनिग कॉलेज के द्वितीय वर्ष मे त्रिलोकीनाथ नामक एक लड़का पढता था। यह सारे कॉलेज मे 'मिस्टर प्योरिटन' के नाम से प्रसिद्ध था। अवस्था लगभग १९ वर्ष, रग गेहुआँ, कद साधारण, देखने मे न बुरा, न अच्छा। त्रिलोकीनाथ असाधारण रूप से निर्धन और असाधारण रूप से बुद्धिमान् था। उसकी माँ उसके जन्म के समय ही मर गयी थी और पिता तब, जब वह तीन वर्ष का था। पिता के मरने पर उसके किसी नातेदार ने उसे हिन्दू अनाथालय मे भरती करा दिया और वही रहते हुए उसने मैट्रिक पास किया था। अपने स्कूल मे हर परीक्षा मे वह पहले नम्बर पर आया था और मैट्रिक मे प्रथम श्रेणी मे, अत उसे छात्र-वृत्ति मिल गयी थी। अब वह बोर्डिंग मे रहता और छात्र-वृत्ति तथा कुछ लडको को पढाकर अपना काम चलाता था। आदतो मे वह

सचमुच ही प्योरिटन था। जब चाय ही जीवन मे उसने कभी न पी थी तब बीडी-सिगरेट की तो बात ही अलग है। कॉलेज मे पढाई और चरित्र दोनो मे वह सबसे अच्छा विद्यार्थी माना जाता था। हर प्रोफेसर उसे आदर की दृष्टि से देखता था। त्रिलोकीनाथ में न जोश था, न बहस की प्रवृत्ति, न अपनी बात सिद्ध करने का लोभ, न प्रकाश मे आने की महत्त्वाकाक्षा और न किसी प्रकार का दिखावा। न वह प्रत्युत्पन्न मति जान पडता था और न उसमे व्यत्युत्पन्न मति के ही कोई लक्षण थे। उसमे प्रतिभा थी, पर वह उसकी परीक्षाओ के परचो मे ही दीखती थी, अन्य प्रकार से नही। उसकी मुद्रा से यह न जान पडता कि उसे किसी चीज से घृणा है और न यही ज्ञात होता कि किसी वस्तु से कोई खास अनुराग। इन सारे सद्गुणो या दुर्गुणो के कारण उसके व्यक्तित्व मे वह खिचाव भी न था, जिससे खिचकर लोग किसी के मित्र या अनुयायी बनते है। उसके तीन ही काम थे—पढना, पढाना और सेवा—अपने आस-पास वालो की सेवा, और छुट्टी के दिनो मे नगर के गन्दे मुहल्लो मे रहनेवाले निर्धन मजदूरो तथा निकट के ग्रामो मे रहनेवाले किसानो की सेवा।

गत वर्ष जब त्रिलोकीनाथ कॉलेज मे भर्ती हुआ, तब उसका भी कम मजाक नही उडा था, परन्तु यह मजाक उसकी अकड के कारण न उडकर उसकी अत्यधिक विनम्रता की वजह से उडा था। कोई भी असाधारण बात कॉलेज के लड़के बर्दाश्त नही कर सकते, फिर चाहे वह अकड हो या विनम्रता; असाधारणता ही वहाँ मजाक का कारण होती है। लेकिन एक अन्तर था। इन्दुमती की अकड मजाक को लायी और ज्यो-ज्यो उस मजाक की अवहेलना कर इन्दुमती ने और अकडकर मजाक करनेवालो को तुच्छ सिद्ध किया, त्यो-त्यो वह मजाक बढा तथा उसमे कटुता आयी। त्रिलोकीनाथ की विनम्रता भी मजाक को लायी, पर उसने उस मजाक की अकड के साथ अवहेलना नही की। कभी मजाक पर वह हँस देता, कभी खुद ही मजाक करनेवालो मे शामिल हो अपना ही मजाक उडाने लगता। फल यह हुआ कि मजाक न बढकर घटा और उसमें कटुता नही आने पायी। पर एक बात और भी हुई। इन्दुमती की तेजस्विता ने उसके चारो ओर अनुयायियों का एक समूह एकत्रित कर दिया। यदि कुछ विद्यार्थी उसके बडे-से-बड़े विरोधी हो गये तो कुछ बडे-से-बड़े

समर्थक । त्रिलोकीनाथ के चारो तरफ ऐसा कोई समुदाय न बन सका । 'मि० प्योरिटन' एकाकी रह गये और उन दो-तीन विद्यार्थियो को छोड, जिनकी बीमारी में त्रिलोकीनाथ ने असाधारण रूप से सेवा की थी—क्योकि बीमारी में सेवा त्रिलोकीनाथ के स्वभाव का एक अग बन गयी थी—और कोई उससे बात ही न करता था । इन दो-तीन विद्यार्थियो का भी उससे ऐसा सम्बन्ध था जैसा किसी ऋणी का साहूकार से रहता है । ये उससे दबते थे, उसके सामने झेपते थे, पर इनके हृदय मे भी उसके लिए कोई प्रेम नही था ।

'मिस्टर प्योरिटन' और 'मिस श्रू' का कुछ विचित्र-सा सम्बन्ध जुड गया । दोनो का स्वभाव तथा आचरण एक दूसरे के ठीक विरुद्ध थे—एक मे जितनी अकड, दूसरे में उतनी ही विनम्रता । एक ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानती, दूसरा ससार की हर वस्तु के आनन्द के लिए अपने को साधन । एक धनवान, वैभवमय जीवन बितानेवाली, दूसरा निर्धन, सीधा-सादा किसी तरह अपना निर्वाह करनेवाला । और इतने पर भी कॉलेज मे दोनो का सबसे अधिक सम्पर्क ! कभी-कभी एक दूसरे से एकदम विरोधी दो भावनाओवाले हृदयो मे इसी प्रकार का सम्बन्ध हो जाता है । ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन माननेवाली इन्दुमती न जाने क्यो त्रिलोकीनाथ को उस सर्वव्यापी सूची में स्थान न दे सकी । त्रिलोकीनाथ और इन्दुमती प्राय. मिलते रहते, पर उनकी बात-चीत का प्रवाह सदा रुक-रुककर चलता । अनेक बार तो दोनो चुपचाप बैठे रहते, उनके चेहरो से जान पडता कि उनकी समझ मे ही नही आ रहा है कि किस विषय पर किस तरह बात-चीत की जाय । यह चुप्पी इन्दुमती के लिए प्राय असह्य हो जाती और इधर-उधर देखते हुए वह एकाध वाक्य कहती । यह होता बहुधा मौसम या समय के सम्बन्ध मे । त्रिलोकीनाथ इसे दोहरा भर देता, पर इससे बात-चात का प्रवाह आगे न चल पाता ; जैसे इन्दुमती कहती—'आज कितनी गरमी है !'

'हाँ, बहुत ज्यादा गरमी है ।' त्रिलोकीनाथ उत्तर देता ।

इन्दुमती कहती—'कितनी सुन्दर सन्ध्या है आज की !'

'अत्यन्त सुन्दर !' त्रिलोकीनाथ के मुख से निकल जाता । त्रिलोकीनाथ तब तक अधिक न बोल सकता, जब तक किसी गम्भीर विषय की चर्चा न होने

लगती।

अनेक बार इन्दुमती ऊबकर चली जाती। इन्दुमती की यह ऊब त्रिलोकीनाथ से छिपी न रहती, पर उसकी मुद्रा से जान पडता कि इसके निवारण के लिए उसके पास कोई उपाय नही। हाँ, चुपचाप बैठा रहनेवाला त्रिलोकीनाथ इस तरह कभी न ऊबता, वरन् उसके चेहरे से एक तरह का सन्तोष झलकता रहता। वह स्वय इन्दुमती का साथ छोड़ जाने मे उतावली न करता, परन्तु यदि इन्दुमती जाना चाहती तो उसे कभी रोकता भी नही। इन्दुमती और त्रिलोकीनाथ के सम्बन्ध मे प्रेम के किस स्वरूप का कितना अश था, यद्यपि यह कहना कठिन था, तथापि कॉलेज के विद्यार्थियो ने तो उसे प्रणय-सम्बन्ध ही माना और त्रिलोकीनाथ का नाम 'प्योरिटन' से बदलकर एकदम हो गया 'टेमर ऑफ दि श्रू।'

: ६ :

रक्षाबन्धन की सन्ध्या को इन्दुमती ने अपने मित्र सहपाठी और सहपाठिनियो को अपने उद्यान में एक छोटी-सी पार्टी दी। करीब एक सप्ताह की वृष्टि के बाद पानी बन्द हुआ था। फिर भी आकाश मे बादल थे। बादलो की दौड़ भी चल रही थी और इस दौड मे वे कई रूपो को ले-ले कर दौड रहे थे। थलचर, जलचर, नभचर सभी स्वरूप आकाश में बन-बन कर विलीन हो जाते थे। कभी-कभी सूरज निकलकर और कभी छिपे-छिपे ही इन्हे अनेको रगो की पोशाक-सी पहना देता था। यत्र-तत्र बिजली भी चमक जाती थी। पर पानी नही बरस रहा था। अवधबिहारीलाल के उद्यान की हरियाली इस समय देखते ही बनती थी और उस हरियाली मे खिले हुए थे कुछ पुष्प ; मानो उद्यान की भूमि ने हरी साड़ी धारण की हो और ये पुष्प उस साड़ी के बेल-बूटे हो। दूब के जिस मैदान मे पार्टी का प्रबन्ध था, उसकी दूब दो दिन पहले ही मशीन से काटकर उस पर बेलन चलाया गया था। दूब कटने के बाद जो थोड़ी-सी पीली झाँई दूब के मैदान में आ जाती है,

वह दो दिनो में बिलकुल चली गयी थी और मैदान था हरा कच्छ। इस मैदान मे एक ओर कदम्ब का ऊँचा वृक्ष था, जो कदम्ब के केशरी फूलो से लद-सा गया था। इस शाखी की एक शाखा मे झूला पडा हुआ था। कदम्ब के वृक्ष के दोनो ओर दो मौलसिरी के तरु थे और ये इस समय भरे हुए थे अपने भूरे-भूरे फूलो से। इस मैदान की बागड़ जुही के दरख्तो की थी। जुही के छोटे-छोटे श्वेत सुमन तारो के समान इस बागड में छिटक गये थे। बकुल तथा जुही की मदमाती सुगन्ध से यह मैदान भरा हुआ था। फिर इसकी छोटी-छोटी क्यारियो में से कुछ मे रग-बिरगे कुसुमो की गुलमेहँदी, कुछ मे छोटे-छोटे यदि केसरी पुष्पोवाला सूरजमुखी और कुछ मे पीले प्रसूनोवाला नैनिया था। गुलमेहँदी, सूरजमुखी और नैनिया मे सुगन्ध नही थी, पर रग थे। अत मौलसिरी और जुही के फूल घ्राणेन्द्रिय को आकर्षित कर रहे थे तो गुलमेहँदी, सूरजमुखी और नैनिया दृश्येन्द्रिय को। मैदान के बीचोबीच एक लम्बी टेबिल थी, जो सफेद मेजपोश से ढकी थी। इस टेबिल के बीचोबीच गुलदस्तो की कतार थी, जिनमे विविध प्रकार के फूल सजे थे और हर गुलदस्ते के बीच मे एक-एक श्वेत केवडे का फूल खडा किया गया था। रग-बिरगे फूलो तथा पत्तियो के बीच यह श्वेत केवडे का कुसुम ऐसा जान पडता था जैसे किसी रग-बिरगे मन्दिर-शिखर पर चाँदी का कलश दीखता है। गुलदस्ते के दोनो ओर चीनी के प्लेटो मे हिन्दुस्तानी मिठाइयाँ, नमकीन और फल सजे थे। टेबिल के दोनो ओर कुर्सियो की एक-एक पक्ति थी और हर कुर्सी के सामने टेबिल पर एक-एक सॉसर पर चाय का प्याला रखा हुआ था। चाय, कॉफी, सोडा-लेमन, शर्बत आदि के साथ खानसामे गरम-गरम मक्के के भुट्टे और उनके साथ नीबू तथा नमक एव काली मिर्च की भी सर्विस कर रहे थे, और सबसे अधिक माँग भी इन्ही भुट्टो की थी।

खाना-पीना चलते हुए काफी देर हो गयी थी। कई लोगो ने पान खा, सिगार और सिगरेट भी जला लिये थे। अत. अब झूला झूलना शुरू हुआ। पहले इन्दुमती और एक लड़की झूली, फिर कुछ लड़के इन्दुमती के साथ। त्रिलोकीनाथ को छोडकर सभी लड़के उसके साथ झूलने के लिए बडे उतावले नजर आ रहे थे। दूसरी लड़कियो के साथ कोई न झूलना चाहता था और उन्हे तभी झूलने को मिलता था जब इन्दुमती ही थक जाने का बहाना कर

उन लड़कियो को, तथा उनके साथ दूसरे लडको को झूलने के लिए विवश-सी करती थी। इन लडकियो को लडको के साथ झूलने मे पहले-पहल बडा सकोच भी हुआ, पर इन्दुमती का आदेश जो मौजूद था ; जब वह लडको के साथ झूलती थी तब दूसरी लड़कियो को उसके बाग में, उसके सामने झूलने मे आपत्ति करने के लिए जिस साहस की जरूरत थी, वह उनमे नही था।

इन्दुमती झूले को कितना ऊँचा ले जाती थी, उसकी साडी का पल्ला हवा में किस तरह उडता था, उसकी साडी कभी उसके अगो से कैसा सट जाती तथा कभी कैसी फूल जाती थी, उसकी वेणी किस तरह खुल गयी थी और वह अनेक बार झूले के झोके मे किस तरह हँसती तथा किल्कती थी! कैसा मिश्रण था इस युवती मे बाल्यावस्था एव युवावस्था का!

अकस्मात् आकाश मे पूरा इन्द्रधनुष निकला। एक लडका उसे देखते ही बोल उठा—'वह देखिए, इन्द्रधनुष!'

झूले का कार्यक्रम एकाएक रुक गया और सारे समुदाय ने उसकी ओर देखना आरभ किया।

फिर से झूले का कार्यक्रम आरम्भ हुआ और अब यह तब तक चलता रहा जब तक आकाश मे पूर्ण चन्द्र का उदय न हो गया।

इन्दु को देख इन्दुमती बँगले मे चली गयी। सब लोग कुछ आश्चर्य से देखने लगे, पर उन्होने देखा कि शीघ्र ही कई सुन्दर राखियाँ लिये हुए इन्दु-मती वापस आ रही है।

इन्दुमती ने लौटकर कहा—'आज रक्षाबन्धन है न? मेरे खुद के तो भाई नही है, पर आप सब जो मौजूद है!'

पहले वह त्रिलोकीनाथ को राखी बाँधने उसकी ओर बढी, पर उसने देखा कि त्रिलोकीनाथ ने हाथ आगे बढाने के स्थान पर कुछ झिझककर पीछे समेट लिया है।

कुछ आश्चर्य से इन्दुमती ने पूछा—'आप मुझ से राखी न बँधवायेगे?'

लडखडाती हुई जबान से त्रिलोकीनाथ ने उत्तर दिया—'यह बड़ी, भारी जिम्मेदारी है, श्रीमतीजी, और मै···मै···' वह पूरी बात कह भी न सका।

उसकी इस झिझक ने इस सारे समुदाय पर एक विचित्र-सा प्रभाव

डाला और जिस-जिसकी ओर इन्दुमती बढी, उस उसनें वही बहाना लेकर उससे राखी न बँधवायी। जिस त्रिलोकानाथ का कॉलेज मे कोई अनुकरण न करता था उसका आज ऐसा अनुकरण! पर एक लड़का जिसकी तरफ इन्दुमती नहीं गयी थी स्वय आगे आया। उसने अपने पतलून की जेब से अपना दाहना हाथ इस प्रकार बाहर निकाला, जैसे कुएँ मे गिरा हुआ बर्तन काँटे से बाहर निकल आता है। इस निकले हुए हाथ को इन्दुमती की तरफ बढाते हुए वह बोला—'मै इस जिम्मेद्वारी को उठाने के लिए तैयार हूँ; बहनजी, आप मुझे राखी बाँध दे!'

इन्दुमती ने उसकी ओर देखकर यह कहते हुए—'अच्छा, वजीरअली साहब!' उसे राखी बाँध दी।

× × ×

रात्रि का एक प्रहर बीत चुका था। इन्दुमती पार्टी से लौटकर अपने कमरे मे पलँग पर लेटी हुई थी। उद्यान से लौटने के पश्चात् आज वह बेचैन-सी थी। यद्यपि इस बेचैनी का पूरा-पूरा रहस्य उसकी समझ मे नही आता था, फिर भी एक बात वह समझ रही थी कि उसके हृदय मे आज इकट्ठी जितनी बाते उठ रही है उतनी आज के पहले कभी नही उठी। आज बार-बार उसका हृदय अपने ही जीवन के सिहावलोकन के पीछे पडा था, जैसा उसने इसके पहले कभी न किया था और एक साथ मन मे इतनी बाते उठने का यही प्रधान कारण था।

पहले उसे उस समय की याद आयी जब वह छोटी-सी बच्ची थी और माँ का दूध पीती थी। उसे उस समय का पूर्ण स्मरण तो नही था, पर धुँधली स्मृति अवश्य थी और इसका कारण यह था कि दूध न आने पर भी बडी लडैती बेटी होने की वजह से उसका दूध पीना चार वर्ष की अवस्था तक जारी रहा था। दूध के लिए उसका मचलना, माँ का क्रोध, उसका रुदन, माँ की पुचकार और दूध पिलाना। कई बार उसकी चिल्लाहट सुन पिता का आ जाना, एव माँ को डाटना। तो उसके पिता उसे आरम्भ से ही माँ की अपेक्षा अधिक चाहते थे! बहुत याद करने पर भी उसे ऐसा कोई अवसर ही स्मरण न आया जब माँ के सदृश उसके पिता ने उस पर क्रोध किया हो। फिर तो दिन दूने रात चौगुने बढनेवालें अपने पिता के प्रेम की न जाने कितनी बाते याद आयी।

उसे दी गयी निर्बाधित स्वतन्त्रता स्मरण आयी। उनके उपदेश याद आये और उन उपदेशो का सत् 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है,' न जाने घूम फिरकर कितने बार स्मृति-पटल पर लिख गया। उसकी माँ हमेशा इस उपदेश का विरोध करती रही है यह भी वह भूली नही थी, पर जब वह पिता की विद्वत्ता और उसी के साथ अपने प्रति उनके स्नेह का स्मरण करती तब माँ के उपदेशो का महत्त्व घट जाता, इतना ही नही, मिट जाता। कॉलेज मे जाने के पहले उसका जीवन ठीक पिता के उपदेशो के अनुसार चला, पर आज उसे एकाएक महसूस हुआ कि कॉलेज जाने के बाद से उसके जीवन की पटरी मे विस्फोट हुआ है, और जब उसने इस विस्फोट के पता लगाने का प्रयत्न किया तब उमे त्रिलोकीनाथ याद आये बिना न रहा। त्रिलोकीनाथ के प्रति अपनी घनिष्ठता को वह जानती न हो, यह नही, इस सम्बन्ध के विषय मे जो चर्चाएँ तथा आलोचनाएँ कॉलेज मे शुरू हुई थी उनके कारण भी उसका ध्यान इस तरफ आकृष्ट हुआ था, लेकिन इस सम्बन्ध ने एक दिशा मे ठीक तरह से चलते हुए उसके जीवन मे गुप्त रूप से, बिना उसके जाने, कोई परिवर्तन कर दिया है, इसका उसे आज से पहले कभी अनुभव न हुआ था। आज यह अनुभव हुआ तव से, जब से त्रिलोकीनाथ ने उससे राखी बँधवाना अस्वीकार कर दिया। जिस दिन से उसकी त्रिलोकीनाथ से भेट हुई थी उस दिन से उन भेटो की छोटी-छोटी बाते तक उसे अब याद आने लगी। पहले-पहल जब उसने त्रिलोकीनाथ को देखा तब उसमे उसे कोई विशेषता न दीखी थी, दीखती कैसे, जब होती तब तो दीखती ? मामूली सूरत-सीरत, बहुत ही साधारण कपडे एव तीसरी क्या, चौथी श्रेणी का रहन-सहन ! न बातो मे कोई खास पॉलिश, न व्यवहार में कोई विशेष आकर्षण, तथा इन सभी बातो मे उससे बैजनाथ इन्दुमती को कही अच्छा जान पडा। अलोपी-प्रसाद बैजनाथ से भी अच्छा और अलोपीप्रसाद से हजारहो दरजे मदन-मोहन। फिर उसका त्रिलोकीनाथ के प्रति इतना आकर्षण क्यो हुआ ? उसकी बुद्धिमत्ता की वजह से ? पर उसकी बुद्धिमत्ता याद आते ही इन्दुमती को अपनी बुद्धि का गर्व हो आया। अपनी बुद्धि के सामने वह किसी को बुद्धिमान् मानने को तैयार नही थी, अत त्रिलोकीनाथ की बुद्धि ने उसे उसके प्रति आकर्षित किया था, यह उसके हृदय ने मानना किसी भी हालत मे स्वीकार

नही किया । तब त्रिलोकीनाथ मे कौनसा वह चुम्बक है, जिसने उसे खीचा ? बहुत कुछ सोचने पर भी यह उसकी समझ मे न आया और एकाएक एक दूसरी ही बात उसके मन मे उठ खड़ी हुई । ससार की समस्त वस्तुएँ जब अपने आनन्द के लिए साधन है तब त्रिलोकीनाथ के हृदय मे उसके लिए कैसे भाव है, यह जानने के लिए वह क्यो उत्सुक थी ? अन्य कई लड़के कभी उसकी किसी तरह की प्रशसा किया करते, तथा कभी किसी तरह की, पर त्रिलोकीनाथ ने सभ्यतापूर्वक व्यवहार रखने के अतिरिक्त उसकी कभी कोई तारीफ नही की । अन्त मे उसका भावनाएँ जानने के लिए उसे राखी बाँधने का यह प्रपच रचना पडा । इन दिनो अपने प्रति त्रिलोकीनाथ के क्या भाव है, यह जानने के लिए वह कभी-कभी बेचैन भी हो उठती थी, इसीलिए उसने राखी का यह प्रपच रचा था । उसने अपनी बुद्धि को बार-बार सराहा कि उसे अपने प्रयत्न मे सफलता भी मिल गयी, परन्तु त्रिलोकीनाथ की भावनाओ का ठीक पता लग जाने पर भी क्या उसे चन पडी ? उसकी विकलता तो उल्टी बढ गयी थी । अपने इस प्रयत्न की बात सोचते ही एकाएक अब उसके मन मे यह उठा कि त्रिलोकीनाथ के साथ ही कही उसने अपने सभी मित्रो के अपने प्रति ठीक-ठीक भावो का पता लगाने के लिए तो यह प्रयत्न नही किया था ? यह सोचते ही उसे महसूस होने लगा कि सच बात यही थी, अन्यथा वह अकेले त्रिलोकीनाथ को भोजन के लिए बुला सकती थी । तब त्रिलोकीनाथ के प्रति विशेष खिचाव होने पर भी क्या वह अपने सभी विपक्षी वर्ग के मित्रो को उसी तरह चाहती है, जिस तरह त्रिलोकीनाथ को, उसने खिजलाकर अपने हृदय से पूछा । हृदय ने तत्काल उत्तर दिया कि जान तो ऐसा ही पडता है । साथ ही उसे बैजनाथ, अलोपीप्रसाद, मदनमोहन और जिसने उससे राखी बँधवा ली थी उस वजीरअली, सभी मे, कोई न कोई विशेषता दीखने लगी और वजीरअली को छोडकर वे सब भी तो उसे उसी तरह चाहते है, तभी तो उन्होने उससे राखी नही बँधवायी, यह भी सोचे बिना उसका हृदय न रहा । अब वह पलग पर लेटी न रह सकी और एकदम से उठ पलँग पर से कूद इधर-उधर टहलने लगी । अनेक बार बैठे-बैठे सोचना कठिन हो जाता है, मन की गति के लिए शारीरिक गति भी आवश्यक जान पडती है । टहलते-टहलते उसने कमरे की सभी बत्तियाँ

जला दी और इन बत्तियो को जलाते-जलाते उसे अनेक-पति विवाह पद्धति की याद आ गयी। उसने सोचा कि एक स्त्री का अनेक पुरुषो को चाहना तथा अनेक पुरुषो का एक ही स्त्री को, शायद अस्वाभाविक भी नही है। पर तत्काल ही उसे अनेक-पत्नी-विवाह का स्मरण आया। यदि पहली बात अस्वाभाविक नही है तो फिर क्या दूसरी अस्वाभाविक है, यह तर्क करना उसने शुरू किया। अब उसे टहलना भी मुहाल हो गया। उसने एक खिड़की खोली। बिजली चमक रही थी, रिमझिम पानी भी बरसने लगा था। जोर की हवा चल रही थी। अत खिडकी खुलते ही कमरे की सब चीजे हिल उठी। उसने तत्काल खिडकी बन्द कर दी। वायु के वेग के कारण ही लेटने के पहले उसे खिडकियाँ एव दरवाजे बन्द करने पडे थे, यह उसे याद आ गया और यह याद आते ही उसने सोचा इस विश्व में सदा ही तूफान चला करता है, हृदयरूपी कक्ष के द्वार खोल देने पर वहाँ भी कोई चीज स्थिर नही रह सकती। उसने फिर से पिता के उपदेश का स्मरण किया। किसी बीहड रास्ते पर चलने के लिए उसने अनजाने कदम उठा लिया था! नही, नही, वह फिर अपने पुराने रास्ते पर ही चलेगी। ससार की समस्त वस्तुएँ उसके आनन्द के लिए साधन है, उसे किसी के भावो से क्या प्रयोजन ? न अनेक-पति-विवाह ठीक, न अनेक-पत्नी-विवाह । अब उसके मन में एकाएक यह उठा—एक पति और एक पत्नी विवाह। वह और त्रिलोकीनाथ। जिस तरह उसके पिता और माता है तथा ससार मे अगणित युगल, पर इसमे नयी बात क्या है ? वह तो अपने सुख के लिए एक नये रास्ते से चलना चाहती थी। यह विवाह ही तो दुनियाँ के दु खो का प्रधान कारण हुआ है, जिसे वह अब तक मानती आयी है, यही मानने की वजह से तो वह विवाह के विरुद्ध हो गयी थी। विवाह न करने का निश्चय करके बैठी थी। और फिर उसने सोचा कि त्रिलोकीनाथ के प्रति उसका चाहे कुछ अधिक खिचाव हो, पर यथार्थ मे वह जिस तरह त्रिलोकीनाथ को चाहती है, उसी तरह बैजनाथ को, तथा जिस प्रकार बैजनाथ को, उसी तरह अलोपीप्रसाद, मदनमोहन, सब को। अब उसके मन मे यह आया कि सचमुच मे वह किसी को नही चाहती, और जब वह यह सोच रही थी कि वह किसी को नही चाहती, तब एकाएक उसके मन मे विचार आया कि उसे किस रग की पोशाक खिलेगी और उसे

क्या पहनना चाहिए। पर एकाएक वह निर्णय न कर पाई। कुछ देर बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि चाहे अच्छे लगे या बुरे, उसे या तो लाल रग के वस्त्र पहनने चाहिएँ या केशरी। आग की लपटो, दीपक की ज्योति के ये ही रग है। आग के आलोक मे क्या-क्या भस्म हो जाता है, दीपक की ज्योति पर कितने पतगे अपने प्राण विसर्जन करते है! और यह सोचते-सोचते अब उसे अपने हृदय मे न जाने क्यो एक ऐसा सूनापन अनुभव हुआ, जैसे सूनेपन का अनुभव उसने अपने जीवन मे इसके पहले कभी न किया था।

इस समय उसके कमरे की स्तब्धता उसके मानसिक सूनेपन को और अधिक बढाने लगी। एकाएक इस स्तब्धता को भग करने के लिए उसने अपनी चाबियो के गुच्छे को बजाया। उसे ऐसा जान पडा जैसे नगारे या भेरी का शब्द हुआ हो और एकाएक उसके मन मे उठा—ससार की समस्त समस्याएँ एक प्रकार के ताले ही तो है, उनके खोलने के लिए कोई न कोई कुजी भी रहती ही है। पर शायद उसके पिता का उपदेश ऐसी कुजी है, जिससे सारे ताले खुल जाते है और यह सोचते-सोचते वह उसी उपदेश को रटने लगी, पर उसने देखा कि जिस सूनेपन का उसने अनुभव किया था, वह फिर उसे दबोच रहा है।

: ७ :

इन्दुमती त्रिलोकीनाथ से खिची-खिची-सी रहने लगी। दूसरे जिन लड़को ने उससे राखी नही बँधवायी थी, उनमे भी उसने कुछ खिचे रहने का प्रयत्न किया। इन लडको ने तो उसका खिचाव देख, उसकी और खुशामद शुरू की, परन्तु त्रिलोकीनाथ ने नही। जब कभी वह त्रिलोकीनाथ से मिलती, जो अब बहुत कम होने लगा था, त्रिलोकीनाथ उससे उसी प्रकार मिलता, जैसे पहले मिलता था, पर वह अब कम मिलती है, इसकी त्रिलोकीनाथ ने कभी शिकायत नही की। त्रिलोकीनाथ के व्यवहार मे और भी कोई फर्क इन्दुमती को न दीखा। तब उसके मन में उठा कि क्या त्रिलोकी-नाथ को फिर भी वह न समझ सकी? क्या उस दिन राखी बँधवाने के वक्त

हाथ खीचते हुए त्रिलोकीनाथ ने जो यह कहा था, 'यह बडी भारी जिम्मेदारी है', वही ठीक था ? क्या सचमुच वह उसे अपनी बहन बनाने की भी जिम्मेदारी नही लेना चाहता था ? क्या त्रिलोकीनाथ के उसके प्रति वैसे भाव नही है, जैसे उसने उसके राखी न बँधवाने की वजह से समझ लिये थे ? एक के बाद एक इस तरह की बाते हृदय मे उठने से वह और बेचैन हो गयी। जब-जब इस तरह की बाते उसके मन मे उठती, उसका मन बेतरह उलझ जाता और जितना प्रयत्न वह मन को उस उलझन से निकालने का करती, उतना ही मन और उलझता जाता। छै हफ्ते की लगातार इस उधेडबुन से इन्दुमती तलमला उठी। न पढाई हो रही थी, न चैन ही मिल रहा था, उसके स्वास्थ्य तक पर इसका असर पड़ने लगा। बार-बार अपने आप पर खीझकर वह कहती —'आखिर मुझे हो क्या गया है !'

एक इतवार को वह दोपहर के वक्त मोटर पर घूमने निकली। जब से उसने कॉलेज जाना आरम्भ किया था अवधबिहारीलाल ने उसके लिए एक मोटर खरीद दी थी। कॉलेज वह मोटर पर ही जाती थी, पर इन दिनो छुट्टी के दिन वह घर पर ही रहती थी। आज घूमने कहाँ जायगी, इसका निश्चय कर वह नही चली थी। कही भी लम्बी दूर घूमकर लौट आऊँगी, यह सोचकर रवाना हुई थी। बडे सादे वस्त्र और थोडे से सोने के आभूषण वह पहने हुई थी। ड्राइवर से उसने कहा न था कि वह कहाँ जायगी, पर पहले कई बार छुट्टी के दिन भी वह कॉलेज जाती थी, इसलिए ड्राइवर मोटर को कॉलेज की ओर ही ले चला। जहाँ से सड़क कॉलेज की तरफ मुडती थी, वहाँ इन्दुमती कुछ चौकी भी, उसकी इच्छा ड्राइवर को दूसरी ओर ले चलने के लिए कहने की भी हुई, पर फिर न जाने क्यो वह चुप रह गयी और देखते-देखते कॉलेज के निकट पहुँच गयी।

ड्राइवर ने पूछा—'किधर चलिएगा—कॉलेज या बोर्डिंग ?'

बिना सोचे-समझे उसके मुँह से निकल गया—'बोर्डिंग।'

मोटर बोर्डिंग-हाऊस के सामने आकर खडी हो गयी। जब मोटर खड़ी हुई तब इन्दुमती को मानो होश-सा आया। वह सोचने लगी—मै तो कही भी लम्बी दूर घूमकर घर लौटनेवाली थी, यहाँ क्यो आ गयी ? उसकी कुछ समझ मे न आया कि यह क्यो हुआ। वह मोटर से उतरी नही। कुछ

देर रुककर जब वह ड्राइवर से कहने ही वाली थी कि मोटर घुमा ले, उसी समय उसे त्रिलोकीनाथ बोर्डिंग से बाहर निकलता हुआ दिखायी दिया। त्रिलोकीनाथ के हाथ मे एक कैनवास का बैग था और दूसरे हाथ मे हैण्डिल लगी हुई एक बॉस की टोकनी। उसके वस्त्रो से जान पडता था कि वह कही जाने के लिए तैयार होकर निकला है।

इन्दुमती की इच्छा हुई कि वह ड्राइवर से मोटर घुमाकर चलने के लिए कहे, पर कहना तो दूर रहा, वह स्वय मोटर मे उतर पड़ी। मस्तिष्क लौटने के लिए कहता था और हृदय त्रिलोकीनाथ की ओर बढने के लिए! जीत हृदय की हो गयी। त्रिलोकीनाथ का अभिवादन करते हुए इन्दुमती ने पूछा—'कही जा रहे है ?'

त्रिलोकीनाथ ने भी इन्दुमती के साथ ही साथ उसका अभिवादन किया था। विनम्र स्वर मे त्रिलोकीनाथ ने उत्तर दिया—'जी हॉ, यो ही एक गॉव।'

मानो इन्दुमती को कोई भूली हुई बात याद आ गयी हो—'अच्छा, अच्छा, भूल गयी थी। छुट्टी के दिन तो आप अक्सर गॉवो को जाया करते है और तभी मिलना हो सकता है, जब पहले से समय नियुक्त कर लिया जाय।'

'नही, नही, ऐसी कोई बात नही,' जल्दी से त्रिलोकीनाथ ने कहा, 'आज्ञा दीजिए, कोई ऐसा जरूरी काम नही है, नही जाऊँगा।'

कुछ रुककर विचारते हुए इन्दुमती बोली—'जिस गॉव जा रहे है, वह बहुत दूर है ?'

'दस-ग्यारह मील।'

'सडक पर ?'

'जी हॉ, बिलकुल लबे-सड़क।'

'तो कोई पोशीदा काम न हो तो चलिए मेरी मोटर पर ही।'

'पोशीदा काम तो जरा भी नही है, पर आपको कष्ट तो न होगा ?'

'जरा भी नही। मै तो आज घूमने ही निकली थी, घूम आऊँगी और जीवन मे पहले-पहल एक गॉव भी देख आऊँगी।'

त्रिलोकीनाथ ने कोई आपत्ति नही की। अपना बैग और टोकना ड्राइवर के पास की बैठक पर रख, वह अन्दर बैठ गया। इन्दुमती भी बैठी। त्रिलोकीनाथ ने ड्राइवर से कहा—'कानपुर की सड़क पर ले चलो।'

मोटर रवाना हुई। ज्योही मोटर चली त्योही एकाएक इन्दुमती के मन मे उठा—क्या वह भी मोटर के सदृश एक मशीन है। कैसे तो कॉलेज आ गयी, फिर कैसे आयी बोर्डिंग-हाऊस और कैसे कहा त्रिलोकीनाथ को मोटर पर गाँव चलने के लिए! क्या इसी तरह की लम्बी दूरी पर घूमने के लिए वह घर से निकली थी?

वर्षा बीत चुकी थी। शरद का नया राज्य फैला था। आकाश निर्मल था और पृथ्वी भी पक-रहित हो गई थी। इस साल काफी पानी बरसा था, फिर भी कुँआर का महीना जो था। यथेष्ट गरमी थी। जेठ और कुँआर की गरमी मे यही अन्तर होता है कि जेठ की लू कुँआर मे नही चलती, पर धूप वैसी की वैसी तेज होती है। कुछ लोगो का मत है कि धूप की तेजी कुँआर मे बढ जाती है और इसी धूप मे हिरन काले होते है। जो कुछ हो, मोटर पर टप चढा हुआ था, अत धूप तो लगती न थी और मोटर की चाल के कारण हवा लग रही थी। अत रास्ते मे इन यात्रियो को गरमी न मालूम हुई। लखनऊ शहर की बस्ती समाप्त होते ही खेती की जमीन लग गयी थी। जहाँ ऊख बोयी गयी थी उसे, तथा जहाँ धान बोया गया था उसे छोडकर शेष जमीन बोयी जा रही थी। ऊख हरी थी और धान पीली पड रही थी। इन्दुमती ने ईख और धान के पौधे कभी न देखे हो, यह नही, परन्तु वह उन्हे पहचानती न थी और आज जब गाँव देखने निकली थी तब खेती के सम्बन्ध मे जितनी बाते जान ले, उतना ही अच्छा है, यह सोच, उसने पहले ऊख की ओर सकेत कर त्रिलोकीनाथ से पूछा—'ये काहे के दरख्त है?'

त्रिलोकीनाथ को इस एकाएक पूछे गये प्रश्न पर आश्चर्य हुआ, जो कुछ देर को उसके मुख पर दीखा भी, पर उस आश्चर्य को तत्काल दबाकर उसने उत्तर दिया—'ऊख के, श्रीमतीजी।'

त्रिलोकीनाथ का आश्चर्य इन्दुमती की नजर से बच गया था, अन्यथा वह अगला प्रश्न कदाचित् न करती। 'और वे?'—उसने हाथ से धान के पौधो की ओर सकेत कर पूछा।

अब त्रिलोकीनाथ इस प्रकार के प्रश्नो के लिए तैयार था। उसने सहज-भाव से उत्तर दिया—'धान के।'

धोती को घुटने के ऊपर चढाये, ऊपर के शरीर पर कुछ न पहने हुए

किसान खेत बो रहे थे। बैलो की घण्टियो के शब्द के सिवा कभी-कभी देहाती गाने की एकाध तान भी सुनायी पड़ जाती थी। इन किसानो की ओर सकेत-कर इन्दुमती ने पूछा—'और ये लोग क्या कर रहे है ?'

'रबी की फसल की बोनी। ऊख एक बार बोकर तीन साल तक काटी जाती है। धान बोयी जाती है असाढ मे और अगहन मे कटती है। गेहूँ, जव, सरसो इत्यादि कुँआर-कातिक मे बोये जाते है और चैत मे कटते है। धान की फसल को खरीफ कहते है और गेहूँ, जव इत्यादि की फसल को रबी। आजकल रबी का बीज बोया जा रहा है।'

यद्यपि त्रिलोकीनाथ से इतने बडे उत्तर की इन्दुमती आशा नही करती थी, पर इस उत्तर से उसे हर्ष हुआ। उसने समझा खेती के सम्बन्ध मे जितनी जानने योग्य बाते है, उसे सब मालूम हो गयी। ऊख, धान, गेहूँ, जव, सरसो सभी प्रधान-प्रधान वस्तुएँ तो आ गयी ! ईख एक बार बोयी जाकर तीन बार कटती है। धान असाढ मे बोयी जाकर अगहन मे, और गेहूँ, जव, सरसो इत्यादि—हाँ, 'इत्यादि' मे बाकी रहे हुए सभी आ गये होगे—कुँआर-कातिक मे बोये जाकर चैत में कट जाते है। सचमुच अब जानने को बाकी क्या रह गया ? और फिर जो-जो दीखा, सबके विषय मे उसने पूछ भी तो लिया और कुछ होता तो दीखता नही ? चाहे वह एकाएक ही गाँव क्यो न आयी हो, पर उसे इस छोटी-सी यात्रा से सतोष हुआ। दुनियाँ की एक बहुत बडी चीज जो उसके लिए नयी थी, उसने पूरी-पूरी समझ ली।

अब जिस गाँव त्रिलोकीनाथ आना चाहता था, उस गाँव पहुँचने तक दोनो की कोई बात-चीत न हुई। इसका कारण था। इन्दुमती मन ही मन रटकर याद कर रही थी—ऊख एक बार बोकर तीन बार काटी जाती है। धान की फसल को खरीफ कहते है। वह असाढ मे बोयी जाती है और अगहन मे कटती है। गेहूँ, जव, सरसो इत्यादि की फसल को रबी कहते है इत्यादि शब्द को उसने बडी मजबूती से पकडा था। यह कुँआर-कातिक मे बोयी जाकर चैत मे कटती है।

एक छोटे से गाँव में मोटर पहुँचते ही त्रिलोकीनाथ ने ड्राइवर से खडे होने को कहा। गाँव की बस्ती सड़क से कुछ हटकर, सड़क के दोनो तरफ बसी हुई थी। मोटर रुक गयी। सड़क पर कई लडके और एक ओर कुछ वयस्क

देहाती बैठे हुए थे। मोटर के रुकते ही त्रिलोकीनाथ मोटर से उतर इस समुदाय की ओर बढा। त्रिलोकीनाथ को देखते ही यह समुदाय उसकी ओर चल पडा, लड़के दौडते, उछलते, कूदते।

त्रिलोकीनाथ देहातियो को शहरातियो से श्रेष्ठ मानता था, उन्हे अन्नदाता कहता था। देहाती चाहे अन्नदाता हो, जो सबके जीवन की प्रथम आवश्यकता अन्न है, उसके उत्पादक, पर वे शहरातियो को अपने से श्रेष्ठ ही मानते है। जब देहाती शहर मे आते है और शहराती देहात मे, तब उनके परस्पर व्यवहार से यह स्पष्ट हो जाता है। त्रिलोकीनाथ चाहे देहातियो को श्रेष्ठ मानता हो, पर देहाती उसके साथ ऐसा व्यवहार करते कि त्रिलोकीनाथ तो अपने मन मे उनकी श्रेष्ठता मानता रहता, पर प्रत्यक्ष मे त्रिलोकीनाथ ही श्रेष्ठ सिद्ध होता।

एक बूढे ने कहा—'अच्छा, आज डॉक्टर साहब मोटर पर आये है!'

त्रिलोकीनाथ डॉक्टर नही था, पर उसने एकाध बार देहातियो से कह दिया था कि वह डॉक्टरी पढनेवाला है। फिर वह देहात मे दवाये बहुत बॉटता था, इसलिए देहाती उसे 'डॉक्टर साहब' कहते थे।

'हॉ भाई, आज मोटर पर आया हूँ,' त्रिलोकीनाथ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

एक बालक कूदते हुए बोला—'और हमारी मिठाई नही लाये?'

दूसरे बालक ने नाचते हुए कहा—'और मेरे केले?'

'सब लाया हूँ, सब लाया हूँ,' कहते हुए त्रिलोकीनाथ मोटर की ओर लौटा।

लडके और वयस्क भी उसके पीछे-पीछे हो लिये, पर मोटर पर एक अजनबी स्त्री को देख सब लोग कुछ दूर ही रुक गये। लडको की तो सारी उछल-कूद बन्द हो गयी।

त्रिलोकीनाथ ने हैण्डिलवाली टोकनी निकालते हुए इन्दुमती से कहा—'आप उतरेगी नही, बैठी ही रहना चाहती है?'

'नही, नही, जरूर उतरूँगी,' यह कहते हुए इन्दुमती भी मोटर से उतर पड़ी।

दोनो समुदाय की ओर बढे। निकट पहुँचने पर त्रिलोकीनाथ ने कहा—

'आज हमारे कॉलेज मे पढनेवाली एक देवीजी भी आपका गॉव देखने आयी है।'

देहातियो को स्वरूप से इन्दुमती सचमुच ही देवी-तुल्य दिखायी दी। वयस्को ने दोनो हाथो से इन्दुमती का अभिवादन किया, जिसका इन्दुमती ने उसी प्रकार उत्तर दिया। बालको ने इन्दुमती को देखा तो, पर उनकी दृष्टि लगी हुई थी टोकने पर। इन्दुमती उनके लिए बाधक सिद्ध हुई, अन्यथा वे कब के अपनी मिठाई और केले त्रिलोकीनाथ से झूम-झूमकर ले लेते। बालको का यह असमजस त्रिलोकीनाथ से छिपा न रहा। उसने मुस्कराते हुए कहा—'आज तुम लोगो की मिठाई और केले तुम्हे देवीजी देगी।'

इन्दुमती के सिर पर मानो वज्र-सा गिरा। उसका मुख तमतमा उठा। मन ही मन उसने कहा—इन गन्दे बच्चो को मै मिठाई और केले कैसे बॉटूँगी ? कही इनसे छू गयी तो ?' पर वह इकार न कर सकी। किसी प्रकार टोकनी त्रिलोकीनाथ के हाथ से लेकर उसने मिठाई और केले बालको को बॉट दिये, पर कैसे बच-बच कर बॉटे, यह बॉटने के ढँग से छिपा न रहा। बच्चो ने मिठाई ले ली, फल ले लिये, पर सकुचते-सकुचते-से। इन्दुमती का इस प्रकार बॉटने का ढँग और बच्चो का सकोच दोनो ही त्रिलोकीनाथ से छिप न सके। उसे मन ही मन इस बात पर पछतावा भी हुआ कि उसके मुख से क्यो निकल गया कि 'आज तुम्हारी मिठाई और केले तुम्हे देवीजी देगी।' पर फिर उसने सोचा कि इन्दुमती के साथ आने के कारण अन्य उपाय भी न था।

जब यह वितरण का कार्य समाप्त हो रहा था तब त्रिलोकीनाथ ने उसी वृद्ध से पूछा, जिसने उसे 'डॉक्टर साहब' कहा था—'हॉ, रामदीनजी की तबियत कैसी है ?'

'गये हफ्ते जब से आपने दवाई दी धीरे-धीरे तबियत सुधरती जाती है, पर शायद कल या परसो तक की औषध और बची है।'

'मै और दवा लाया हूँ,' यह कहकर त्रिलोकीनाथ फिर मोटर की ओर लौटे और कैनवास का बग लेकर समुदाय के पास आकर बोला—'चलो, पहले उन्ही को देखूँ।'

एक अधेड देहाती ने आगे बढकर कहा—'आपने मेरा जो तालुकेदार से

फैसला करवा दिया था, उसने नही माना और बेदखली की कार्रवाई कर दी है।'

त्रिलोकीनाथ जो गॉव के एक छोटे-से मकान की तरफ बढ रहा था ठहर गया और उस देहाती की ओर घूमकर पूछने लगा—'मुक़दमे की पेशी कब है ?'

'उसमे तो अभी देर है।'

गम्भीरता से कुछ विचारते हुए त्रिलोकीनाथ ने कहा—'अच्छा, एक दिन जाकर फिर तालुकेदार से मिलूँगा और तुम्हे भी बुला लूँगा।' त्रिलोकीनाथ फिर आगे बढा, पर जैसे फिर कोई बात याद आ गयी हो, रुककर एक देहाती से बोला—'अयोध्यासिह, तुम्हारा और साहूकार का तो ठीक चल रहा है न ?'

'हॉ, डॉक्टर साहब, अभी तो आप जैसा तय करा गये थे उसी माफिक चला जाता है।'

फिर किसी मे कोई बात नही हुई। आगे-आगे त्रिलोकीनाथ, उसके कुछ पीछे इन्दुमनी और इन दोनो के पीछे गाँव के वयस्क लोग हो गये। लड़के मिठाइयॉ और केले खाते हुए फिर उछलने-कूदने लगे।

त्रिलोकीनाथ को उस गाँव मे बहुत देर लग गयी। इन्दुमती के कारण उसने वहॉ के काम को निबटाने मे जल्दी तो बहुत की, जिसका पता उसकी चाल, बातो के ढँग और सारी चेष्टाओ से लग भी गया, लेकिन जल्दी वह निबट न सका। इन्दुमती कुछ देर तक तो उसके साथ रही, परन्तु गाँव की गलियॉ और मकान तथा जहॉ-जहॉ त्रिलोकीनाथ गया, वे सारे स्थान उसे इतने गन्दे जान पडे कि वह आधे घटे के अन्दर ही ऊबकर मोटर मे आ बैठी। फिर एक कारण उसके लौटने का और हुआ। ऊँची एडी के जूतो की वजह से गॉव की असमान भूमि मे कई बार वह गिरते-गिरते बची। उसे मोटर मे वापस पहुँचाने त्रिलोकीनाथ आया था। देहातियो ने उससे कहा भी था कि आप लौट जाइए, और वह भी लौटने को तैयार था, परन्तु इन्दु-मती नही मानी। इन्दुमती बिना त्रिलोकीनाथ का काम पूरा हुए उसे लौटा कर ले जाने के लिए तैयार नही थी। त्रिलोकीनाथ ने यह भी कहा कि वह वापस चली जावे और त्रिलोकीनाथ नजदीक के स्टेशन से, जो गॉव से सिर्फ दो मील है, ट्रेन मे आ जायगा, जैसा वह सदा करता है, पर यह भी इन्दुमती

ने नही सुना । इन्दुमती के मुँह से एक बार जो निकल गया सो निकल गया । उसने कहा था, 'मै मोटर मे बैठती हूँ, आप अपना काम पूरा करके आइए, पूरा, समझे न, अधूरा नही । तब हम लोग साथ-साथ चलेगे ।' इस घोषणा के विरुद्ध कौन उसे कुछ भी कर सकने को बाध्य कर सकता था ?

त्रिलोकीनाथ ने रामदीन को देखा, उसे दस दिन की दवा अपने बैग से निकालकर दी । इसके बाद तीन बीमारो को, जिनमे एक स्त्री थी, और देखा । फिर गॉव के दो झगडे निबटाये । स्कूल के लिए गॉव मे चन्दा होकर जो एक छोटा सा मकान बन रहा था उसका निरीक्षण किया । किसी दूसरे गॉव के एक लडके के लिए लडकी पसद की और बस्ती के कुछ गन्दे स्थानो को देख उन्हे साफ करने के लिए सख्त हिदायते दी । जब त्रिलोकीनाथ ने बीमारो को देखा तब इन्दुमती भी उसके साथ थी । इन्दुमती को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि गॉववाले त्रिलोकीनाथ सदृश अधूरे डॉक्टर से इलाज कराते है । एक कुछ अधिक बीमार का हाल सुन उसने बातो ही बातो मे कह दिया कि डॉक्टर, पाखाना, पेशाब और खून की जॉच के विशेषज्ञो को बुलाकर उसे दिखाना चाहिए । सम्पन्न व्यक्ति गरीबो को प्राय इस प्रकार की सलाह दे दिया करते है । उन्हे कभी यह खयाल नही रहता कि कार्यरूप मे परिणत होने मे, असम्भव रहने के कारण, उनकी ये सम्मतियॉ गरीबो के कष्ट-निवारण करना तो दूर रहा, उल्टा उनके कष्टो को बढा देती है ।

अब मोटर में बैठे-बैठे इन्दुमती सोच रही थी—गाँव कैसे गन्दे होते है, कैसी इनकी सडके और कैसे इनके मकान ! ग्रामनिवासी कितने मैले-कुचैले रहते है ! उसे बार-बार वे देहाती लड़के याद आते थे, जिन्हे उसने मिठाई बॉटी थी और बार-बार वह इधर-उधर से अपनी साडी देखती थी कि किसी लडके या देहाती से वह छू तो नही गयी है और उसमे कही कोई धब्बा तो नही लग गया है । इस गन्दे गॉव मे उसे त्रिलोकीनाथ का स्वभाव ही कुछ दूसरी प्रकार का दीखा । यहॉ उसने उसे जितना हँसते-बोलते देखा, उतना इसके पहले कभी न देखा था । उसके इधर-उधर घूमने और बात-चीत करने के ढँग से ऐसा जान पड़ता था, जैसे वह गॉव उसका घर हो और वे असभ्य मैले देहाती उसके कुटुम्बी । इन्दुमती को याद आया कि त्रिलोकीनाथ

अनाथालय मे पला हुआ है। अब उसे त्रिलोकीनाथ मे भी गन्दगी नजर आने लगी। इस गन्दगी के साथ त्रिलोकीनाथ उसे बडा कुरूप भी जान पड़ा। एकाएक उसे हिन्दी का एक दोहा स्मरण हो आया—

जैसे को तैसा मिलै, मिलै नीच को नीच।
पानी मे पानी मिलै, मिलै कीच मे कीच।।

कहाँ लखनऊ, वहाँ का सारा जीवन निर्मल नीर के समान, और कहाँ यह गाँव, जहाँ सब कुछ कीचड़वत्! इसीलिए तो त्रिलोकीनाथ वहाँ के सारे जीवन से कटा-फटा-सा रहता है। अब उसे आश्चर्य हुआ स्वय अपने पर, अपने त्रिलोकीनाथ के प्रति उत्पन्न हुए आकर्षण पर। आज उसे त्रिलोकी-नाथ जितना घृणास्पद मालूम होता था, उतना कभी न जान पडा था। कई बार उसने मन मे यह भी सोचा कि वह चल दे, त्रिलोकीनाथ ने कहा ही है कि वह ट्रेन से आजायगा, परन्तु उसने उसे असभ्यता माना। इन्दुमती के सदृश सभ्य और सुसस्कृत नारी से ऐसा असभ्यतापूर्ण व्यवहार कैसे हो सकता था!

सन्ध्या हो रही थी। प्रात-उषा और साय-उषा दोनो का प्रकाश एक-सा ही रहता है, परन्तु एक देती है स्फूर्ति और दूसरी उदासी। कारण स्पष्ट है—एक प्रकाश को सग लेकर आती है, दूसरी अधकार को। एक का आग-मन रात्रि के विश्राम के बाद होता है, दूसरी का दिनभर के परिश्रम के पश्चात्। फिर आज जो कुछ हुआ था, उसने इन्दुमती को उदास तो बना ही दिया था। इस सन्ध्या ने उस उदासी मे वृद्धि कर दी।

जब त्रिलोकीनाथ लौटा, तब प्राय सारा गाँव उसके साथ था। बहुत से लड़के भी थे, जो उससे झूम रहे थे। त्रिलोकीनाथ के कपडो में कई जगह कीचड लग गया था और जूते तो कीचड़ से भर ही गये थे। इन्दुमती को उसे इस हालत मे देखकर और ग्लानि आयी। त्रिलोकीनाथ मोटर पर सवार हुआ। त्रिलोकीनाथ के मोटर पर बैठते समय हठात् इन्दुमती कुछ हटी-सी, कही गन्दे त्रिलोकीनाथ से उसका स्पर्श न हो जाय! वह कोई प्रयत्न करके हटी हो, ऐसा नही जान पडा, पर ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी बडी गन्दी वस्तु के सामीप्य से कोई स्वभावतः हट जाता है। जब त्रिलोकीनाथ मोटर पर बैठ रहा था तब एक देहाती ने पूछा—'अगले इतवार को रेल से या

मोटर से ?'

'अगले इतवार को दूसरे गाँव जाना है, इसलिए मगल को आऊँगा, क्योकि मगल को भी छुट्टी है ।'—त्रिलोकीनाथ ने उत्तर दिया ।

त्रिलोकीनाथ के मोटर मे बैठने पर देहातियो ने त्रिलोकीनाथ और इन्दुमती दोनो का अभिवादन किया । अभिवादन के समुचित उत्तर होते-होते मोटर का एँजिन स्टार्ट हुआ । मोटर चली ही थी कि पीछे से एक देहाती की आवाज सुनायी दी । वह किसी से कह रहा था—'या तो डॉक्टर साहब आज किसी को भगाकर लाये है, या फिर शायद इससे सादी-वादी करें ।'

इन्दुमती और त्रिलोकीनाथ, केवल दोनो ने ही नही, ड्राइवर ने भी यह बात सुनी । इन्दुमती की भृकुटी एकदम वक्र हो गयी । त्रिलोकीनाथ की दृष्टि एक बार इन्दुमती की ओर घूमी, पर ज्यो ही उसने देखा कि इन्दुमती उसी की ओर देख रही है, त्योंही वह मोटर के बाहर देखने लगा । ड्राइवर को हँसी आ गयी, पर उसने अपने ओठो को दॉतो से चबाकर इस हँसी को रोका । कुछ देर कोई कुछ न बोला । कुछ देर बाद इन्दुमती ने पूछा—'आपने मेरे कारण जल्दी तो नही की ?'

'जरा भी नही ।'

कुछ देर फिर चुप्पी । एकाएक इन्दुमती ने घृणा भरे स्वर से कहा—'कितना गन्दा था गाँव !'

'आपको देखकर बड़ी निराशा हुई न ?'

'निराशा ही नही, बड़ी भारी घृणा ।' घृणा शब्द मुँह से निकलते ही उसका मुख भी मानो घृणा से भर गया । 'कैसे रहते है मनुष्य इस गन्दगी मे ?'

एक लम्बी सॉस लेकर त्रिलोकीनाथ ने कहा—'पर इस गन्दगी को ठीक करने की क्या हम और आप पर जिम्मेदारी नही है ?'

'इस देश के सौ मे से अस्सी आदमियो के रहने के कितने स्थानो को हम और आप ठीक कर सकते है ?'

'सख्या की तरफ मेरा ध्यान ही नही जाता ।'

'पर कितनो को आप ठीक कर सके ?'—इन्दुमती ने तमककर पूछा ।

'यह भी मै नही सोचता । केवल प्रयत्न करता हूँ ।'

इन्दुमती कुछ नही बोली, पर उसके मन में उठा कि ससार की समस्त वस्तुएँ जब अपने आनन्द के लिए है, तब यह सब प्रयत्न किस लिए ? पर उसी समय उसे देहाती लडको को मिठाई बाँटते समय, रामदीन को दवा देते समय तथा उन देहातियो के साथ के हर प्रसग के समय की त्रिलोकीनाथ की मुद्रा का स्मरण आया। उसने सोचा कि त्रिलोकीनाथ को इसी मे शायद आनन्द आता हो और तत्काल ही उसे—'पानी में पानी मिलै, मिलै कीच मे कीच' भी याद आ गया। उसने अपने मन में कहा—'मुझे उस गन्दे वायुमण्डल के किसी काम मे क्षणमात्र के लिए भी आनन्द नही आ सकता।' मोटर मे फिर कोई बात न हुई।

इन्दुमती घर पहुँचने के लिए बडी व्यग्र थी। त्रिलोकीनाथ को बोर्डिंग-हाऊस पर उतार वह सीधी घर गयी और घर मे पैर रखते ही अपने नहाने के कमरे मे जा, वह अपने शरीर को मल-मल कर न जाने कितनी देर तक नहाती रही। उसका हृदय अत्यधिक ग्लानि से भरा था और मोटर की आज की इस घुमाई पर उसे अत्यन्त क्रोध आ रहा था। मोटर चलते समय जो उसने एक देहाती की बात सुनी थी वह भी उसे बार-बार याद आती थी और वह फिर-फिर कर स्वय अपने ही से कह बैठती थी—'त्रिलोकीनाथ से मेरा विवाह! छि! छि.!'

: ८ :

नवम्बर में कालेज का सोशल-गैदरिग था। कुछ विषयो पर व्याख्यान, कुछ पर 'डिबेट', 'स्पोर्ट्स', कवि-सम्मेलन और नुमाइश, सभी कुछ रखे गये थे। एक छोटी-सी प्रदर्शनी और एक नाटक खेलने का भी आयोजन था।

सोशल-गैदरिग के कार्यक्रमो मे नगर के प्रतिष्ठित लोग भी आये। सबसे अधिक भीड़ हुई 'स्पोर्ट्स' के दिन, जब तीन पैरोवाली दौड दौडी गयी और 'सुई पिरोने' का कार्यक्रम आया। तीन पैरो की दौड़ मे इन्दुमती और वजीरअली जीत गये। कितनी तालियाँ पिटी, कितने 'हुर्रे' बोले गये इस

जीत पर ! सुई पिरोने के कार्यक्रम में बडा शोरगुल, बडी हँसी हुई। जब तक सब सुइयाँ न पिरो दी जायँ तब तक यह कार्यक्रम चलेगा, यह निश्चय हुआ था। लडको का बार-बार सुइयाँ लेकर दौडते हुए लडकियो के पास जाना, उनका जल्दी-जल्दी डोरा पिरोने का प्रयत्न, जल्दी के कारण और देर लगना, अनेक बार लडके का यह समझकर कि डोरा पिरो दिया गया है, वापस अपने स्थान पर पहुँचना और यह देखना कि सुई मे डोरे का पता ही नही और लज्जित हो जाना। भिन्न-भिन्न अवसरो पर दर्शको के भिन्न भिन्न प्रकार के शोरगुल, हँसी और तालियाँ। इस कार्यक्रम मे इन्दुमती का नम्बर अन्तिम आया। वह डोरा पिरोनेवाली थी और त्रिलोकीनाथ सुईवाला। उसे विश्वास हो गया कि वह त्रिलोकीनाथ के कारण ही हारी, क्योकि दो बार अपने स्थान पर पहुँचने पर त्रिलोकीनाथ ने देखा था कि उसकी सुई में डोरा नही है और इन्दुमती को दोनो बार यकीन था कि वह डोरा पिरो चुकी है।

कितनी बधाइयाँ मिली इन्दुमती को, प्रोफेसरो तथा अन्य अनेक सज्जनो एव कालेज के लड़को से इन दोनो कार्यक्रमो पर ! अनेक ने बार-बार कहा कि लडके और लडकियो का सयुक्त शिक्षण तभी सफल हो सकता है जब इस तरह के कार्यक्रमो मे भी वे साथ-साथ भाग ले। ऐसे कार्यक्रमो में भाग लेने से वे भिन्न वर्ग के है, यह विचार कम से कम सयुक्त शिक्षण के समय उनके हृदयो मे न रहेगा।

प्रदर्शनी मे इन्दुमती के चित्र भी बहुत पसन्द किये गये। कालेज के साथ शहर मे भी इस सोशल-गैदरिग की कई दिनो तक चर्चा रही, पर जब तीन टाँगोवाली दौड का वृत्त सुलक्षणा ने सुना तब उन्हे बडी ठेस लगी। माँ की अप्रसन्नता इन्दुमती से छिप न सकी, पर उसी समय उसे वजीरअली को राखी बाँधने की बात याद आ गयी। उसने सोचा माँ को इस बात के सुनने से शायद कुछ सतोष होगा। अत उसने सुलक्षणा से कहा—'पर, माँ, तुम्हे एक बात मालूम हो जायगी तो तुम नाराज न रहोगी। वजीरअली मेरा धर्म-भाई है। इस राखी-पूनम को मैने उसे राखी बाँधी थी।'

'वजीरअली मुसलमान, तू हिन्दू, और वजीरअली तेरा धर्म-भाई है !'—सुलक्षणा ने आश्चर्य से कहा।

'क्यो, क्या बहन हिन्दू और भाई मुसलमान नही हो सकते ? मेवाड की एक क्षत्राणी ने हुमायूँ को राखी भेज उसे भाई नही बनाया था ?'—दृढ स्वर मे इन्दुमती ने उत्तर दिया।

× × ×

सोशल-गैदरिंग के समाप्त होते ही द्वितीय और चतुर्थ वर्ष के लडके पढाई मे लगे। परीक्षाएँ निकट आ रही थी, पर इन्दुमती प्रथम वर्ष मे थी। उसे परीक्षा की कोई खास तैयारी नही करनी थी। द्वितीय वर्ष मे उसे कोई कठिनाई नही हुई।

किन्तु द्वितीय वर्ष इन्दुमती के लिए सुखकर होकर नही आया। अक्टूबर के अन्त मे इन्दुमती बिस्तर पर पड़ी हुई थी, और इन्दुमती ही क्या शायद भारतवर्ष का कोई नगर और कोई गाँव ऐसा न होगा जिसके हर मकान और हर झोपडे मे मर्द, औरत या बच्चा, कोई न कोई, शैय्या पर न पड़ा हो, किसी-किसी घर मे तो पूरा का पूरा घर। 'इन्फ्लुएन्जा' नामक एक नयी बीमारी के प्रकोप से हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और अरब समुद्र से बगाल की खाडी तक सारे देश मे एक भीषण कँपकँपी पैदा कर देनेवाला तहलका मच गया था। इसके पहले भी हिन्दुस्तान ने अनेक महामारियाँ देखी थी—शीतला, हैजा, प्लेग, लेकिन सब स्थानो मे एक साथ और एक ही समय ये बीमारियाँ नही फैलती थी, इसलिए एक जगह के लोग दूसरी जगह भाग सकते थे। पर इन्फ्लुएन्जा फैला एक साथ हर स्थान पर, एक झोपडे का गाँव तक न बचा, जहाँ यह बीमारी न पहुँची हो। जैसा भीषण रोग था वैसी ही मृत्यु-सख्या भी। शीतला और हैजा भारतवर्ष की पुरानी महामारियाँ है। फिर शीतला बच्चो को ही होती है। प्लेग यहाँ सन् १८९८ मे आया। प्लेग मे २० वर्षों में जितनी मृत्युएँ हुई, उनसे इन्फ्लुएन्जा के डेढ-दो महीनो के काल मे कही अधिक। योरप की चार वर्षो की लडाई मे जितने आदमी मरे, उससे भी इन्फ्लुएन्जा से भारत मे डेढ-दो महीने मे कही ज्यादा। जिन दिनो भारतवर्ष मे इन्फ्लुएन्जा फैला उन दिनो योरप मे भी फैला था, परन्तु चार वर्ष की लडाई से जर्जर योरप मे भी इस बीमारी द्वारा आबादी के अनुपात से न इतने मनुष्य बीमार हुए और न इतनी मौते ही हुई।

इन्दुमती को इन्फ्लुएन्जा के बाद निमोनिया हो गया था, डबल निमो-

निया। शायद जीवन मे वह इतनी सख्त बीमार कभी न पडी थी। तापमान १०४° और १०५° के बीच मे रहता था। सिर जलता रहता था। खाँसी के मारे क्षण भर को भी चैन नही मिलता था। बहुत बेचैनी थी, अत्यधिक घबड़ाहट और छटपटाहट। जो इन्दुमती अपने सामने किसी को कोई चीज न समझती थी, सक्रामक वस्तु तक का सामने करना को उद्यत रहती थी, उसी की आज कैसी दीन-सी दशा थी! इस हालत मे भी वह अपनी अकड़ को याद रखने का प्रयत्न न करती हो यह नही, और फिर जब अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा उसे घबडाते देख उसके स्वाभाविक साहस तथा धीरज का उसे स्मरण दिला देते तब तो उसे अपनी अकड और याद आ जाती। यह रोग इतना बढ गया था कि इस स्मरण के क्षण होते थे और घबड़ाहट के घण्टे। कभी-कभी जब वह बहुत बेचैन होती और उसके पास बैठा हुआ कोई भी उसे उसके साहस की याद दिला देता तब तो वह किटकिटाकर अपने ही ओठ काटने लगती और एकाएक उसके मन मे आता कि इस प्रकार के उसके प्रदर्शन से उसे मौत ही आ जाती तो अच्छा था। अपनी इस हालत में भी उसे अपनी किसी भी तरह की कमजोरी की याद रोग से कम कष्टदायक न थी। कैसे अद्भुत अभिमान से भरा हुआ था उसका हृदय! वह मौत को स्मरण तो करती, पर मौत कैसी होगी, अनेक बार यह उसके मन मे उठता और तब उसका सिर चक्कर-सा खा जाता। तो क्या वह भी मौत से डरती थी? किसी भी चीज से न डरनेवाली को मौत का भय! पर उसी वक्त उसके मन मे आता, वह डरती नही है, जिन्हे जानती है उन चीजो मे से। मृत्यु को वह नही जानती, इस बीमारी के पहले मौत उसे शायद कभी याद भी न आयी थी, मुरदा तो उसने निश्चयपूर्वक कभी देखा ही न था, अत वह सोचने लगती कि जिस चीज को वह नही जानती उससे उसका भय शायद स्वाभाविक है। तब उसके मन में उठता—'तो क्या मनुष्य ज्यादातर अनजान वस्तुओ से ही भयभीत रहता है?' पर इस हालत मे तो जानी हुई चीजो की अपेक्षा जो वस्तुएँ ज्ञात नही, उनकी सख्या बहुत अधिक है। अधिक तर्क करने की उसमे शक्ति न थी। इसी तरह की बाते सोचते-सोचते या तो कभी सब कुछ एकाएक भूल उसे फिर घबड़ाहट होने लगती, या तद्रा-सी आ जाती और या खाँसी का दौरा हो जाता। अनेक बार उसकी माँ उसे आरोग्यता के लिए भगवान्

से प्रार्थना करने के लिए कहती। अधिक कष्ट मे वह प्रार्थना की बात सोचती भी, पर तकलीफ कुछ कम होते ही उसे अपने पर ही ग्लानि आती। ईश्वर और उसकी अनुनय-विनय पर उसे विश्वास ही न था। वह विचारने लगती, क्या कमजोरी मनुष्य को जो चीजे है ही नही उन तक पर यकीन करा देती है ?

जिन अवधबिहारीलाल की फिलॉसफी थी—'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है'—उनकी लडकी की इस बीमारी मे यह कैसी हालत ! वे अर्द्ध विक्षिप्त-से हो गये थे। एक बात करते-करते बिना किसी सिलसिले के दूसरी बात शुरू कर देते। अकेले मे फुक्का फाड़-फाड कर रो पडते। बार-बार घुमा-घुमा कर एक ही तरह के प्रश्न डॉक्टर से पूछते। हर क्षण उन्हे अपनी बेटी जाती हुई दीखती थी। उनकी फिलॉसफी न जाने इस वक्त कहाँ चली गयी थी। उनकी हालत यदि किसी के सम्मुख ठीक रहती तो इन्दुमती के। इस अर्द्ध विक्षिप्त-सी दशा मे भी वे जाने कैसे इन्दुमती के सम्मुख सर्वदा स्वस्थ रहते।

सुलक्षणा के हृदय का हाल उनके स्वय के सिवा और किसी को नही मालूम था। बेटी से अधिक ससार में उन्हे भी कुछ न था। उनके हृदय में भी चौबीसो घण्टे ज्वार-भाटा चलता रहता और इस ज्वार-भाटे के साथ ही निरन्तर भगवत् प्रार्थना अपनी बेटी की दीर्घायु के लिए। यही कारण था कि उनके नेत्रो में वही विलक्षण शान्ति थी।

लखनऊ सदृश शहर मे भी इस समय डाक्टरो की कमी थी, नर्सें तो मिलती ही न थी, अत बेटी की बीमारी मे नर्स का सारा काम सुलक्षणा कर रही थी। किस साहस से यह काम हो रहा था ! परिश्रम तो उस साहस का परिणाम था।

अवधबिहारीलाल के घर के तीन-चौथाई नौकर खुद बीमार थे, जो अच्छे थे उनकी अक्ल अच्छी न थी। अवधबिहारीलाल खुद भी अपनी मानसिक दशा के कारण कुछ करने-धरने लायक न रह गये थे। सुलक्षणा का कोई भी यदि सहायक था तो वजीरअली। जिस दिन से इन्दुमती बीमार हुई थी वह इन्दुमती के कालेज के अन्य मित्रो के साथ इन्दुमती का स्वास्थ्य पूछने आता तो रोज ही था, पर जिस वक्त से इन्दुमती के निमो-

निया का हाल उसने सुना उस वक्त से तो चौबीसो घण्टे अवधबिहारीलाल के घर मे ही रहने लगा। इन्दुमती के अन्य मित्रो मे से कुछ तो स्वय बीमार पड गये और कुछ ने इस डर मे आना छोड दिया कि कही उन्हे भी उडकर बीमारी न लग जाय। वजीरअली सुलक्षणा के मना करते रहने पर भी उनकी सहायता करता रहता। सुलक्षणा ने आश्चर्य मे देखा कि सचमुच मुसलमान-हिन्दू धर्म भाई-बहन हो सकते है और कुछ समय पश्चात् तो सुलक्षणा ने वजीरअली को अपनी सहायता करने से रोकना छोड दिया। इतना ही नही, स्वय उससे मदद माँगने लगी।

एक दिन इन्दुमती की बीमारी बहुत बढ गयी। अब उसे होश न रहा। सारी घबराहट और बेचैनी शान्त थी। दाँतो को काट मौत का आह्वान जिस अभिमान के कारण होता था, उस अभिमान का भी पता न था। महाकवि गालिब का यह कथन कि रोग का बढ जाना ही दवा हो जाना होता है, कितना सत्य है! जब शरीर और मन बर्दाश्त नही कर सकते तब बेहोशी आ जाती है। डॉक्टर आया और कह गया कि अब कोई आशा नही है। सुलक्षणा का सारा बाँध आज टूट गया और वह वजीरअली के कन्धे पर सिर रख ठीक उसी तरह रोने लगी, जैसे कोई माता महान् विपत्ति के समय अपने पुत्र के स्कन्ध का सहारा ले। वजीरअली की आँखो से भी आँसू बह रहे थे, पर अवधबिहारीलाल का आज विचित्र हाल हुआ। न जाने कहाँ से उनमे अदम्य साहस की उत्पत्ति हुई? सुलक्षणा को डाँट, वजीरअली को घुडक, वे बैठ गये इन्दुमती के सिरहाने और अब उन्होने इन्दुमती की टहल शुरू की। कभी-कभी इस तरह के विलक्षण परिवर्तन हो जाते है। पूरे चौबीस घण्टे बाद इन्दुमती कुछ होश मे आयी, पर होश मे आते ही फिर वही घबडाहट, फिर वही छटपटाहट। अब उसे कभी होश आ जाता, कभी फिर बेहोशी। डॉक्टर ने देखकर कुछ प्रसन्नता से कहा, एक फेफडा कुछ साफ हो रहा है पर अभी भी हालत खतरे से बाहर नही, पर डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। नयी आशा का उदय हुआ। एक प्रकार की प्रसन्नता सबके मुखो पर दौड गयी और चौबीस घण्टे के बाद सचमुच ही इन्दुमती की बीमारी ने पलटा खाया। कई बार ऐसा देखने मे आता है कि अच्छी तरफ लौटने के पहले एक बार रोग भयानक से भयानक स्थिति को पहुँच जाता है।

: ६ :

दिसम्बर की छुट्टियो के बाद जब कालेज खुला तव इन्दुमती ने फिर से कालेज जाना आरम्भ किया। अवधबिहारीलाल की तो राय थी कि वह इस वर्ष इम्तहान मे बैठे ही नही, पर उसने एक वर्ष खोना मजूर नही किया। कुछ दिनो के और बीतने पर उसकी तबियत मे सुधार की रफ्तार भी तेज हो गयी थी। उसकी उम्र और उसके शरीर को खीचकर ले जानेवाला मन तो इसके कारण थे ही, पर जाडे की मौसम भी इसकी एक वजह थी। जब उसने जनवरी मे कालेज जाना शुरू किया तब उसकी तबियत प्राय ठीक हो गयी थी।

मार्च मे परीक्षा समाप्त होने के बाद एक दिन एकाएक इन्दुमती को त्रिलोकीनाथ के साथ जब वह गाँव गयी थी उसका स्मरण हो आया। किस प्रकार उस गाँव मे रबी की फसल बोयी जा रही थी और बोनेवाले हलो को चलाते हुए कभी-कभी गा देते थे। किस तरह उस गाँव के बच्चे उसकी मोटर के पास आ गये थे और उसे देखकर सहम से गये थे। किस भाँति उनके स्पर्श से अपने को बचाकर उसने उन्हे मिठाई बाँटी थी। किस ढँग से त्रिलोकीनाथ उस गाँव मे घूमा था और वहाँ की छोटी-छोटी समस्याओ को हल करने की उसने कोशिश की थी। एक-एक बात उसे याद आयी। इस समय के जीवन से ऊबी हुई इन्दुमती की इच्छा फिर से उस गाँव जाने की हुई। कोई अभिलाषा हृदय मे उठने के बाद उसको रोकना तो इन्दुमती जानती ही न थी। तीसरे पहर मोटर मँगाकर वह गाँव को रवाना हुई। त्रिलोकीनाथ के साथ जब वह गाँव गयी थी तब आश्विन का महीना था। अब था चैत्र। आश्विन और चैत्र दोनो ही ऋतुओ की सन्धि के महीने है और दो सबसे बडी ऋतुओ की सन्धि के—जाडे और गर्मी के। यद्यपि वर्षा इन दोनो ऋतुओ से सर्वथा अलग मौसम है तथापि सयुक्तप्रान्त मे तो वर्षा यथार्थ मे गर्मी मे ही होती है। सभी जगह जब वर्षा रुकती है तब गर्मी पडने लगती है, पर सयुक्तप्रान्त में तो बहुत अधिक। जब कुँआर समाप्ति पर आता है तब गर्मी के साथ-

साथ जाडे के दर्शन होने लगते है और जब चैत्र खत्म होने लगता है तब भी जाडे के साथ गर्मी । त्रिलोकीनाथ के साथ गाँव गये उसे काफी समय बीत गया था, पर उस दिन गॉव जाते समय जैसा मौसम था, उसे जान पडा आज भी वैसा ही है । वातावरण मे धूप और हवा दोनो की ही प्रधानता रहती है। उस दिन और आज की इन दोनो चीजो मे इन्दुमती को कोई खास फर्क न जान पडा ।

गॉव के नजदीक पहुँचने पर इन्दुमती ने देखा कि इतना समय बीत जाने पर भी गॉव मे कोई अन्तर नही पडा है । वैसे ही मकान है, वैसी ही छोटी-छोटी गलियॉ, वैसा ही गन्दापन । परन्तु उस समय और आज के वहाँ के कृत्यो मे इन्दुमती को बहुत फर्क जान पड़ा । उस वक्त रबी की फसल बोयी जा रही थी और आज काटी, गाही और उड़ायी । जो बैल उस समय हलो मे जुते बीज बो रहे थे, वे ही आज अपने पैरो से अनाज के पके पौधो को रौद-रौद कर उनमे से बीज निकाल रहे थे । बोते समय उन्हे उस बीज का अश खाने को न मिलता था, पर आज गाहनी करते-करते वे अनेक बार अपने मुँह झुका बीज और भूसे से उन्हे भर लेते थे । बीज उन्ही के परिश्रम से बोया गया था और आज जब वह कई गुना होकर लौटा था तब उसमे उनका यह हक स्वाभाविक ही था । उस समय भी किसान काम मे लगे हुए थे और आज भी, न उस वक्त उन्हे फुरसत थी और न आज, अन्तर इतना ही था कि उस वक्त उनके मुखो पर आशा की झलक थी, बोनेवाले बीज की उत्पत्ति की आशा, और आज थी सतोष की आभा, आयी हुई फसल का सतोष । लेकिन उस आशा तथा इस सतोष दोनो ही के साथ चिन्ता के भाव मौजूद थे—उस समय चिन्ता का कारग था—फसल के आने की अनिश्चितता; महावट होगी या नही, कही ज्यादा पानी तो न बरस जायगा, तुषार तो न पड जायगा, इल्ली तो न लग जायगी, ओले तो न बरस पडेगे, गेरुआ तथा टिड्डी तो न आ जायँगी, इत्यादि । आज चिन्ता थी जमीदार की जबरदस्तियो की, साहूकार की असहनीय कार्रवाइयो की । जमीदार को उन्हे लगान ही देना पडता तो गनीमत थी, पर लगान से कही अधिक परिमाण में नजराने देने पड़ते थे, और जमीदारो को ही नही, उनके कारिन्दो, सिपाहियो तक को । साहूकारो का मूल ऋण ही वापस न करना पड़ता था, उस पर ब्याज, और

ब्याज-पर-ब्याज तथा उस पर भी ब्याज , फिर कही नालिश हो गयी तो उसका न जाने कितना खर्च ? ये सब आपत्तियाँ, तुपार, गेरुए, इल्ली, ओलो, टिड्डी आदि से कम न थी। खेतो में कटायी हो रही थी, बोझ बाँध-बाँध कर खलिहान मे लाये जा रहे थे। उनकी गजियाँ लगायी जा रही थी। गजियाँ तोड़-तोड़ कर गाहनी के लिए पैर डाले जा रहे थे। गाहे हुए गल्ले की उदेही लगायी जा रही थी और हवा चलने पर उन उदेहियो को तोड-तोड कर गल्ला उडाया जा रहा था। भूसा अलग इकट्ठा किया जा रहा था और अनाज अलग। बोझ लाने तथा उडावनी करनेवाली स्त्रियो के मुँह से कभी एकाध मीठी-सी तान भी निकल जाती थी। हर जगह कितनी कार्यशीलता दृष्टिगोचर होती थी!

पर कार्यशीलता के इस वायुमण्डल का जिन पर कोई असर न पडा था ऐसे छोटे-छोटे बालक और बालिकाएँ अपनी अलग ही धुन मे मस्त थे। कोई बेल के वृक्षो पर चढ बेल और कोई कैथे के झाड़ो पर चढ कैथे तोड रहे थे। कोई नीचे खडे-खडे ही इन फलो को पत्थर मार-मार कर गिरा रहे थे, कोई तालाब के किनारे बैठे हुए इस तरह झुककर तालाब मे पत्थर फेक रहे थे कि उनके फेके हुए पत्थर पानी को कई बार स्पर्श कर और कई बार उछलने के बाद डूबते। कोई तालाब मे नहा तथा तैर रहे थे। इस स्नान और तैरने मे एक दूसरे पर पानी भी उछाला जा रहा था।

इन्दुमती जब गाँव से लौटी तब अँधेरा हो गया था। मोटर में कुछ दूर आगे बढने पर जब उसने गर्दन पीछे घुमाकर गाँव की ओर देखा तब उसे गाँव के झोपडे अथवा अन्य वस्तुएँ पृथक्-पृथक् न दीख सकी, वृक्षो से घिरा हुआ वह गाँव एक धुँधले पुंज-सा जान पडा। इस पुंज मे झोपडो के जलते हुए दीपक अवश्य टिमटिमा रहे थे। वह गाँव इन्दुमती को इस समय वैसा ही दीखा जैसा अँधेरा होने पर आकाश मे एक बादल का बडा-सा टुकडा दीखता है, जिसके बीच की सन्धियो मे यत्र-तत्र तारे भी चमक रहे हो। जब इन्दुमती त्रिलोकीनाथ के साथ इस गाँव मे आयी थी तब उसे यह गाँव कितना गन्दा, कितना घृणित जान पडा था, पर आज वह उसे सुन्दर प्रतीत हो रहा था। जब तक वह दृश्य आँखो की ओट न हो गया तब तक इन्दुमती उसी प्रकार गर्दन टेढी किये उसे निरखती रही।

इस वर्ष की २० अप्रैल को अवधबिहारीलाल पचासवाँ वर्ष पूरा कर इक्यावनवें मे प्रवेश कर रहे थे। हर वर्ष उनके और इन्दुमती के जन्म-दिवस पर एक छोटी-सी दावत हुआ करती थी, इसीलिए इन्दुमती को यह मालूम था। गॉव से लौटने के कुछ दिनो बाद एकाएक इन्दुमती के मन मे आया कि पिता की 'स्वर्ण जयन्ती' क्यो न मनायी जाय। विचार हृदय में उठते ही इन्दुमती तत्काल मॉ के पास पहुँची और जब उसने अपनी माँ से अपना यह विचार कहा तब सुलक्षणा के नेत्रो मे जल भर आया। नेत्रो की पुतली और इस जल के बीच मे सुलक्षणा अचानक अपने पच्चीस वर्षो के जीवन के भिन्न-भिन्न दृश्य देख रही थी। उनकी शादी, पति के सग उनका आरम्भिक जीवन, अवधबिहारीलाल की बढती हुई प्रैक्टिस, धन के बाहुल्य के कारण उनके नित नये पार्थिव सुख, इन्दुमती का गर्भ मे आना, उसका जन्म, उसका बाल्यकाल और अन्त मे अवधबिहारीलाल के वसीयत लिखने के दिन का उनका सम्भाषण, एक के बाद एक दृश्य सुलक्षणा के नेत्रो के सामने घूम-से गये। उन्होने मन-ही-मन भगवान् को कितने धन्यवाद दिये अपने इस सुखी जीवन पर, तथा इस बात पर कि उनकी जो पुत्री आज इस जुबिली मनवाने का प्रस्ताव कर रही है उसे उस जगदाधार ने कुछ महीने पहले ही नया जन्म दिया है। आह ! यदि उस बीमारी मे इन्दुमती को कुछ हो गया होता तो कैसा हो जाता उनका शेष जीवन, कौन इस उत्सव का प्रस्ताव करता ? यह सोचते-सोचते ही सुलक्षणा ने उस करुणानिधान से प्रार्थना भी कर डाली—'मेरी बेटी का जीवन भी मेरे समान ही सुखी रहे !'

कितनी जल्दी-जल्दी ये सब विचार आये और कितनी शीघ्र समाप्त हो गयी यह प्रार्थना भी। इन्दुमती मॉ को चुपचाप देख सोच रही थी कि मॉ विचार कर रही है मेरे प्रस्ताव पर। कुछ देर बाद वह बोली—'क्यो मॉ, तुम्हे मेरा विचार पसन्द नही आया ?'

सुलक्षणा चौंक-सी पडी, उन्होने स्वस्थ होते हुए कहा—'पसन्द ! बहुत पसन्द आया, बेटी।'

मॉ की स्वीकृति प्राप्त होने के अनन्तर पिता की स्वीकृति भी मिल गयी। इन्दुमती के नाम से निमन्त्रण-पत्र भेजे जाने का भी निश्चय हो गया।

: १० :

रायबहादुर सेठ रामस्वरूप मारवाडी अग्रवाल थे, कानपुर के एक करोड़-पति। जब वे शेखावटी के फतहपुर से कानपुर आये तब उनके पास हाथ में एक लोटा-डोर के सिवा कुछ भी न था, परन्तु इस बात को पैतालीस वर्ष बीत चुके थे। सेठ रामस्वरूप ने पहले आटे-दाल की दूकान की, फिर कुछ लोगो की शराकत मे छोटे-मोटे व्यापार और अन्त मे बडे-बडे रोजगार हाजिर माल के तथा सट्टे फाटके भी। आरम्भ से ही सेठजी का ऐसा पाँसा पडता गया कि कानपुर आने के बीस वर्ष के अन्दर-अन्दर वे लखपती ही नही, करोडपति हो गये। आरम्भ मे धनोपार्जन मे उन्हे परिश्रम करना पडा और वह भी काफी, परन्तु कुछ लाख एकत्रित होने पर ये लाख बिना किसी खास मेहनत के करोडो मे परिणत होने लगे। जिस काम में भी उन्होने पूँजी लगायी पूँजी ब्याज ही लेकर न लौटी, वरन् स्वय दूनी-तिगुनी होकर। कौन रोजगार-धन्धा किस समय किया जाय, इस सम्बन्ध मे बिना किसी विशेषज्ञ की सलाह के रामस्वरूप स्वय निर्णय कर डालते और चूँकि उन्हे सफलता भी मिल जाती इसलिए साधारण व्यापारी उन्हे ही विशेषज्ञ मानने लगे थे। जिन रोजगारियो ने आरम्भ मे उन्हे प्रतिद्वन्द्वी माना था वे भी उनके सामने अब अपना मस्तक झुकाने लगे थे। अग्रेजी मे जिन्हे 'सेल्फ मेड मैन' कहते है वे थे रामस्वरूप। ऐसे मनुष्यो मे दो प्रकार की वृत्ति देखी गयी है—या तो ऐसे व्यक्ति महा-मक्खीचूस होते है और या फिर बडे ही फइयाज। हाथ के कमाये धन को सेत-सेत कर रखने और उस पर सर्प बनकर बैठने का लोभ उत्पन्न होता है, या जिसे स्वय पैदा किया है उसे और पैदा करते क्या देर लगती है, इस पुरुषार्थ की मनोवृत्ति के कारण खर्च करने की दातारी आती है। सेठजी की वृत्ति दूसरे प्रकार की थी। अब एक ही रामस्वरूप मे यथार्थ मे दो स्वरूपो का निवास हो गया था—एक स्वरूप था पैसा पैदा करनेवाला और दूसरा पैसा खर्च करनेवाला। अब भी पैसा पैदा करनेवाला रूप एक-एक पाई को जोडता था और इस सग्रह मे कानी कौडी भी इधर-उधर न हो इसका नितान्त

सतर्कता से ध्यान रखता था। खर्च करनेवाला रूप सोने को पीतल मान अत्यधिक उदारता से खर्च करता था और चूँकि दोनो रूप एक ही शरीर के भीतर निवास करते थे अत उनमे कोई सघर्ष भी न होता था। जैसे-जैसे उनका धन बढा था वैसे-वैसे खर्च भी।

कानपुर के मकान और उद्यान के समान ही पहले सेठजी ने सवारी के लिए एक छोटा सा टट्टू और इक्का रखा, पर धीरे-धीरे पचासो घोडे उनके अस्तबल मे बँध गये। सन् १८-१९ मे मोटरो का प्रचार होने पर भी घोडो से लोगो का प्रेम था। सम्पन्न व्यक्तियो के यहाँ बग्घी और जीन सवारी दोनो के लिए अच्छे-अच्छे घोडे रहते थे। गाडी के घोडे आस्ट्रेलियन वेलर या इगलिश और सवारी के घोडे मारवाड या काठियावाड खेन के। सेठ राम-स्वरूप के यहाँ मोटरे भी थी—रोल्स रॉयस भी, पर घोडे भी अच्छे-से-अच्छे थ। बग्घी के घोडो मे इगलिश छकड़ी तो ऐसी थी जिसका हर घोडा मोर के समान गर्दन टेढी कर और घुटनो को ओठ से चूमता हुआ चलता था। इसी तरह जीन सवारी के घोडो मे लगूरी चाल से चलने और नाचनेवाले न जाने कितने घोडे थे। राजपूताने के चाबुक सवार इन्हे फेरते थे। जब कानपुर की सडको पर से सेठ रामस्वरूप की छकडी, चौकड़ी या जोडी निकलती अथवा ये कोतल घोडे, तब उन्हे देखने के लिए भीड़-सी लग जाती। वहाँ के हर ब्याह, शादी आदि अवसरो पर सेठजी की सवारियाँ, घोडे और भिन्न-भिन्न प्रकार के सामान लोग माँगकर ले जाते।

रामस्वरूप के यहाँ जल्से, महफिले, दावते, गार्डन-पार्टियो आदि का भी सदा ठाठ रहता। कानपुर और कानपुर ही क्या, दूर-दूर तक उनकी दान-शीलता प्रसिद्ध थी। कानपुर की तो कोई सार्वजनिक ऐसी सस्था ही न थी जिसे उनके घर से बडे से बडे दान न दिये गये हो। और रामस्वरूप से हर प्रकार का फायदा उठाने पर भी चाहे सार्वजनिक सभाओ तथा पत्रो मे उनकी अकीर्ति न होती हो, पर एक व्यक्ति जब दूसरे से उनके सम्बन्ध मे बात करता तब वह किसी तरह की प्रशसा न कर निदा ही करता। दूसरो से उनके पास अधिक धन होना ही इसका प्रधान कारण था। दूसरे न इससे फायदा उठाने मे ही पीछे रहते और न उस ईर्षा से ही अपना पिड छुडा सकते, जो उनके मन में रामस्वरूप के लिए थी। यह ईर्षा तो प्रच्छन्न रहती, लेकिन प्रकट होती

निन्दा का रूप धारण कर। कई बार तो इस अकीर्ति के वाद्य बजानेवालो को भी अपने मनो मे स्थित ईर्षा के मूक वाद्य-यत्र का पता न रहता।

रामस्वरूप को जीवन मे केवल एक ही दुख भोगना पडा था ; वह था उनकी पत्नी की मृत्यु। वे अपनी स्त्री से अत्यधिक प्रेम करते थे। जब तक उनकी भार्या जीवित रही तब तक उन्होने किसा दूसरी स्त्री का मुख तक न देखा था। पत्नी का देहान्त उनके लिए वज्रपात से कम न था और भार्या की मृत्यु के पश्चात् पत्नी-प्रेम तथा नवजात शिशु की सुरक्षा की दृष्टि से उन्होने दूसरा विवाह भी न किया था, लेकिन भार्या की मृत्यु का दुख वे वेश्या-सग के सिवा अन्य किसी उपाय से कम भी न कर सके। पत्नी से रहित होने पर पत्नी का प्रणय तो वे किसी अन्य स्त्री को न दे सके, पर उन्हे किसी-न-किसी रमणी का सहवास अनिवार्य जान पडा। एक बात और हुई। चूँकि भार्या का प्रेम वे किसी अन्य महिला को देने मे असमर्थ रहे इसलिए इस वेश्या-सग के आरम्भ होने पर एक ही वेश्या उन्हे सन्तोष न दे सकी। इनकी सख्या दो से कम कभी न रही और उन दो मे भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा। रामस्वरूप पुराने विचारो के थे, अत इस वेश्या-गमन को वे पाप मानते। अनेक बार उन्हे अपनी पत्नी के प्रेम का स्मरण हो आता। इस वेश्या-सग के कारण कई मर्तबा उन्हे अपने ऊपर ही क्रोध आता, पर वे जीना चाहते थे, जीवन मे सुख भोगना चाहते थे। जब इस वेश्या-सग पर उन्हे क्रोध आता तब उन्हे अपनी पत्नी की मृत्यु और वेश्या-सहवास के बीच का समय भी याद आ जाता। उस समय को उन्होने किस कठिनाई से बिताया था यह भी स्मरण आ जाता। उनके इस मानसिक सघर्ष ने उनसे सीताराम के मन्दिर की स्थापना करवायी। वेश्या-गमन के इस पाप को निरन्तर धोते रहने के लिए उन्होने मन्दिर मे सेवा-पूजा आरम्भ की। एक ओर वेश्या-गमन बढ चला और दूसरी ओर पूजा-पाठ।

सफल रामस्वरूप के मुख, शरीर, मुद्रा, स्वर, हर जगह, हर बात मे सफलता लिख-सी गयी थी। उनकी अवस्था ६२-६३ वर्ष की थी, पर वृद्धावस्था का कोई प्रभाव उन पर न पड़ा था। उनका रग गेहुआँ था और रग में खासकर दोनो कपोलो पर खून का बाहुल्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। बिना हिले-डुले बत्तीसो दाँत मुँह मे मौजूद थे। आँखो की ज्योति मे कोई अन्तर न पडा

था। चश्मे की कोई आवश्यकता न थी। सिर पर सँवारने योग्य बाल थे। बाल सफद हो गये थे पर वे खिजाब मे काले कर लिये जाते। कद साधारण और शरीर कुछ मोटा था। चमडी मे झुरियो का नामोनिशान न था। रामस्वरूप की आवाज इतनी भारी और बुलन्द थी कि जब वे बोलते तब जान पडता मानो कई लोग मिलकर बोल रहे है। जब कभी नाराज होकर वे किसी पर चीखते तब तो ऐसा भास होता कि पहाड के किसी ऊँचे शिखर पर से कोई बडा भारी शिला-खड खिसककर नीचे गिर रहा हो।

जब कोई रामस्वरूप से मिलने आता, वे तत्काल मिलने का प्रयोजन पूछते; यह कभी स्पष्ट शब्दो मे पूछा जाता और कभी परोक्ष रीति से, साधारण श्रेणी के व्यक्तियो से साफ-साफ पूछ लिया जाता और जिन्हे वे उच्च श्रेणी का मानते उनसे घूम-घुमाकर। बिना काम के रामस्वरूप खुद किसी के यहाँ न जाते और बिना प्रयोजन केवल मुलाकात, गप-शप, आदि के लिए ही कोई उनसे मिलने आया है, यह वे सोच ही न सकते।

धर्माचार्य, राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक कोई भी शायद इतना उपदेश नही देते जितना रामस्वरूप देते। हाँ, ये उपदेशक जिस तरह बडी-बडी सार्वजनिक सभाओ में व्याख्यान देते है उस प्रकार रामस्वरूप का व्याख्यान न होता। रामस्वरूप के उपदेश होते उनके आस-पास रहनेवालो को, उनमे मिलने के लिए आनेवालो को। प्राचीन बातो की तारीफ के सिवा जिन बातो पर उपदेश होते उनमे से कुछ ये है—आधुनिक ढँग के कटे हुए बाल, मुडी मूँछे, खुले कालर का छोटा कोट, निक्कर, स्कूलो और कालेजो की पढाई, अस्पतालो की दवाई, रेलो और होटलो के भोजन, सामुदायिक भोजनो मे जाति-भेद की अवहेलना, इत्यादि, इत्यादि।

अप्रैल का मध्य था। गर्मी शुरू हो गयी थी। रामस्वरूप अपने बैठक खाने की मोटी गद्दी पर बैठे हुए दिसावरो से आयी हुई चिट्ठियो को खोल-खोलकर पढ रहे थे। चिट्ठियाँ हाथ से नही खोली जा रही थी। लिफाफे काटने के लिए पास ही कैंची रखी हुई थी। गर्मी के कारण बिजली का पखा चल रहा था। उनके ऊपर के शरीर पर जाली की एक बनयान और नीचे के शरीर पर पतली-सी रेशमी किनार की ढाके की धोती धारण थी। पास ही कालीन पर मुनीम बैठा हुआ था। मुनीम की उम्र भी ६५ वर्ष से कम न

होगा। रग साँवला, शरीर मोटा। सिर पर चोचदार पगड़ी, शरीर पर अँगरखा और धोती, गले मे दुपट्टी। बडी-बडी मूँछे और ऊपर चढी हुई दाढी। ललाट पर केशरी आडी टिकली। मुनीम ओसवाल जैन था। चिट्ठियाँ खोलते-खोलते सेठजी ने एक फूलदार रगीन बडा-सा लिफाफा खोला। अन्दर से निकला एक निमन्त्रण-पत्र और चिट्ठी। पहले उन्होने निमन्त्रण-पत्र को उलट-पुलट कर देखा, फिर उसे पढा। उसके बाद पढी चिट्ठी और जोर से हँस पडे। हँसते-हँसते वे मुनीम से बोले—'अरे मुनीमजी, अपने लखनऊ के वकील की जुबिली हो रही है, जुबिली!'

'अवधबिहारीलाल की?' कुछ आश्चर्य से मुनीम ने कहा।

'हो, अवधबिहारीलाल की! मल्का विक्टोरिया की तो जुबिली सुणी ही के, देखी ही, हजारो को चन्दो ही दियो हो। राजा महाराजाओ की जुबिलियाँ भी सुणी है, पण ई जमाणे मे जो हो जाय सो ही थोड़ो। अब वकीलो की भी जुबिलियाँ!' सेठजी फिर हँस पडे।

'हो, सेठ साहब, ई जमाणा मे जो हो जाय सो ही थोडो।' हाँ मे हाँ मिलाते हुए मुनीम ने कहा।

निमन्त्रण-पत्र को फिर देखते-देखते सेठजी बोले—'और, मुनीमजी, कारड भेजा है वकील की लडकी ने। लडकियाँ कारड भेजने लगी। के पूछो हो!' फिर कुछ रुकते हुए उन्होने कुछ आश्चर्य से कहा—'और जुबिली के साथ नाटक होगा। नाटक मे पार्ट लेगी यह लडकी इन्दुमती! कारड के पीछे ता० २०, २१, २२ अप्रैल की तीन दिन की जुबिली का प्रोग्राम छपा है। और जहाँ नाटक की बात छपी है वहाँ ही नोट दिया है। उस नोट मे लिखा है—(पढते हुए) "नाटक मे इन्दुमती भी पार्ट लेगी।" (कार्ड मुनीम के पास फेकते हुए) पढो न?'

मुनीम ने कार्ड उठा लिया और वह उसे पढने लगा। कुछ देर निस्तब्धता रही। इस बाच रामस्वरूप फिर से निमन्त्रण-पत्र के साथ आयी हुई चिट्ठी पढ रहे थे। चिट्ठी पढते-पढते वे फिर बोले—'बडी अर्जीजी से मुझे बुलाया है। मै तो नही जाऊँगा, पर ललित को तो भेजना ही पडेगा। बी० ए० को इम्तहान दे ही चुक्यो है, तमासो देख आसी।'

सेठ रामस्वरूप के पुत्र का नाम ललितमोहन था। इसमे सन्देह नही कि

जैसा नाम था वैसा ही उसका रूप था। गोरा रग, गुलाबी झाँई लिये हुए। कद ऊँचा, मुख तथा शरीर भरा हुआ, पर कुछ दुबलेपन की ओर झुका हुआ। सिर के बाल गहरे काले और बहुत ही पतले, बालो में घुँघरू नही, पर सँवारने मे लहरे पडी हुई। ललाट न बहुत चौडा और न सकरा। भवे कुछ चौडी और बीच मे मिली हुई। नेत्र एक महाकवि के निम्नलिखित दोहे की प्रथम पक्ति के अनुसार—

'अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।'

नाक लम्बी तथा पतली। ओठ पतले और ऊपर का ओठ नीचे की ओर कुछ झुका हुआ, ऊपर के ओठ पर काली रेख। चौडी छाती, लम्बे हाथ, अँगुलियाँ न बहुत पतली न मोटी। कमर छाती से दबी हुई, जाँघो से पैर तक टाँगे चढा-उतार, छोटे पैर और हाथो की उँगलियो के समान ही पैरो की उंगलियाँ भी न बहुत बड़ी न छोटी।

फिर यदि नाम के अनुरूप उसका स्वरूप था तो रूप के अनुसार ही बुद्धि थी। मैट्रिक मे वह अपने हाईस्कूल मे पहले नम्बर आया था, इण्टर मे सारी यूनीवर्सिटी में आर्टस् के विद्यार्थियो मे दूसरा नम्बर और अभी बी० ए० की परीक्षा दी थी। हिन्दी, सस्कृत और अग्रेजी—तीनो ही साहित्यो का उसने अध्ययन किया था। वह था पूर्णतया सभ्य और सुसस्कृत। उसकी बुद्धि के प्रेरक थे आत्माभिमान और विवेक, मन की सबसे निकृष्ट वस्तु भय का उसमे लवलेश न था। उसमे विचार और कृति का अद्भुत सामजस्य था। जीवन की पूर्णता, विचार और कृति के इस सामजस्य पर ही निर्भर है। अकेला विचार मनुष्य को निष्क्रिय बना सकता है, और अकेली क्रिया मूर्खता की ओर ले जा सकती है। कृति मे साहस, कर्मण्यता, आत्म-सयम और व्यव-हार-कुशलता, जिन चार गुणो की सबसे अधिक आवश्यकता है, वे चारो उस मे थे। सौन्दर्य का वह उपासक था—हर वस्तु के सौन्दर्य का। अग्रेजी के महा-कवि कीट्स के इस कथन को सुन्दर अक्षरो मे लिखवा तथा चित्र के सदृश मढवाकर उसने पुस्तकालय मे टाँग दिया था—'सुन्दर वस्तु सतत आनन्द की जननी है।'

वह मधुर तथा मितभाषी था। मुस्कराहट सदा उसके मुख पर रहती और उसके ओठ ही नही, आँखे भी मुस्कराती। इस मुस्कराहट मे भव्यता

और आकर्षण दोनो का मिश्रण था। पिता का जितना तेज स्वभाव था, उतना ही उसका सौम्य, लेकिन स्वभाव के सौम्य होने पर भी हृदय में दृढता की कमी न थी। यो वह व्यर्थ के बहस-मुबाहसो मे न पडता, पिता की आज्ञा बिना किसी तर्क-वितर्क के मानता, पर जिन बातो को वह उसूल की बाते समझता उन पर कभी न झुकता। छोटी-छोटी बातो को बिना उज्र मानना और बड़ी-बडी बातो पर अपने सिद्धान्तो के अनुसार अटल रहना, उसने बिना किसी के सिखाये ही सीख लिया था। इसीलिए मैट्रिक पास करने के बाद जब रामस्वरूप ने उससे पढना छोड घर का काम देखने के लिए कहा, तब आज्ञाकारी पुत्र होने पर भी उसने उनका कहना न माना। इसी तरह विवाह करने के सम्बन्ध मे भी उसने पिता की आज्ञा का उल्लघन किया था। उन दिनो मारवाड़ियो मे और खासकर धनवान मारवाडियो मे कम उम्र में विवाह होने की पद्धति थी। रामस्वरूप के घर मे चाहे वेश्याएँ हो, पर कोई गृहस्थ स्त्री न थी। उनकी शरीर-सम्पत्ति अच्छी रहते हुए भी उन्हे अपनी बढती हुई अवस्था का ज्ञान था। ललितमोहन उनकी काफी उम्र मे हुआ था। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे पुत्र का शीघ्र विवाह कर पौत्र का मुख देख सके, पर अगणित बार आग्रह होने और जोर पड़ने पर भी बी० ए० पास करने के पहले ललितमोहन ने विवाह करना स्वीकार न किया। बी० ए० पास होने तक वह ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता था और ईमानदारी के साथ। सौम्यता तथा दृढता का ललितमोहन के स्वभाव मे यह मिश्रण अनेक बार सेठजी के अत्यधिक क्रोध और नातेदारो के आश्चर्य का कारण हो जाता। पर पिता के क्रोध के अवसरो पर ललितमोहन एकदम शान्त रहता। पिता चाहे कुछ भी क्यो न कह दे, प्रत्युत्तर करना वह न जानता था। जिस बात पर अडता उसमे टस से मस न होता, पर कभी भी बहस न करता। ऐसे मौको पर मौन उसका प्रधान अवलम्ब था। नातेदार जब समझाते तो वह बीच-बीच मे मुस्करा देता, उनसे भी तर्क-वितर्क न करता, पर जब वे पूछते कि 'आखिर तुमने निर्णय क्या किया ?' तो हँसकर उत्तर देता—'जो निर्णय कर चुका था उसी पर कायम हूँ।' अब तक विवाह के सम्बन्ध में ही अनेक बार इस तरह के प्रसंग आये थे।

वह आस्तिक हिन्दू था। घर के सस्कारो ने उसकी आस्तिकता को और

अधिक बढा दिया था। वह नित्य प्रात काल सन्ध्या पूजा करता। उसे अर-विन्द घोष की निम्नलिखित प्रार्थना बडी प्रिय थी--'हृदय और मन मे असुर की शक्ति दे, असुर का उद्यम दे। हृदय और बुद्धि मे देवता का चरित्र दे, देवता का ज्ञान दे। विनाश कर क्षुद्रता, स्वार्थ और भय का।' गीता और गगा दोनो पर उसकी बडी भक्ति थी और वह प्राय स्वामी विवेकानन्द के इस कथन को दोहराया करता था—'गगा और गीता हिन्दुओ की हिन्दुआनी है।'

साहित्य ललितमोहन का प्रिय विषय था, पर राजनीति मे भी उसे कम दिलचस्पी न थी।

ढाके की अत्यन्त पतली मलमल का कुरता, जिसके भीतर से उसका सुन्दर शरीर दीख रहा था और ऐसी ही एक धोती पहने हुए वह अपने कमरे मे एक गद्दी पर बैठा हुआ था। कई मित्र भी उपस्थित थे। बिजली के पखे की झनझनाहट थी और चर्चा हो रही थी हाल ही मे हुए पजाब के जलियाँवाले बाग के घोर हत्याकाण्ड पर।

थोडी देर मे, जब यह चर्चा समाप्त हो चुकी थी, वहाँ सेठ रामस्वरूप आये और निमन्त्रण-पत्र ललितमोहन को देते हुए बोले—'तुमको लखनऊ जाना है।' और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा के उन्होने कमरा छोड दिया।

रामस्वरूप के जाने के पश्चात् ललितमोहन ने खडे-खडे ही उस निमन्त्रण-पत्र को पढा और फिर लम्बी साँस लेकर बैठते हुए बोला—'दुनिया दुरगी मक्कार सराय। कही खैर खूबी, कही हाय हाय!'

उसके मित्र भी बैठ गये। एक युवक ने पूछा, 'क्यो किसी शादी का निमन्त्रण है?'

'नही, हमारे लखनऊ के वकील साहब की जुबिली मनायी जा रही है!' ललितमोहन ने कहा।

'वकील साहब की जुबिली!' एक दूसरे युवक ने आश्चर्य से पूछा।

उसे कार्ड देते हुए ललितमोहन ने कहा—'जी, हाँ, वे पचास वर्ष के हो गये है, इसलिए उनकी स्वर्ण जयन्ती का जलसा हो रहा है।'

बारी-बारी से उस निमन्त्रण-पत्र को सभी युवको ने पढा। तब तक ललितमोहन गम्भीरता से कुछ सोच रहा था। कुछ देर बाद एकाएक वह

बोल उठा—'देश की ऐसी हालत मे इस तरह के उत्सव ! जाने को जी तो नही चाहता, किन्तु काकाजी की आज्ञा है ।'

ललितमोहन के लिए लखनऊ न जाना कोई सैद्धान्तिक बात नही थी, अत कुछ देर सोचकर उसने पिता की आज्ञा मानना तय कर लिया था ।

: ११ :

अवधबिहारीलाल की इस जुबिली का उत्सव तीन दिन तक चलनेवाला था । पहले दिन शाम को सभा थी, जो आधी रात के उपरान्त तक चलने वाली थी । सभा मे समाज-सुधार पर भाषण होनेवाले थे । दूसरे दिन शाम को दावत थी । हिन्दुस्तानी ढँग का भोजन एव छप्पन प्रकार की तैयारियाँ तथा गवैयो का गाना । और तीसरे दिन रात को नाटक । बाहर से आनेवालो मे से अधिकाश की सूचना तीसरे दिन ही पहुँचने की आयी थी । इन्दुमती समझ गयी कि आखिर इस प्रोग्राम मे भी उसी की समझ ने इतने बाहरी लोगो को आकर्षित किया । निमन्त्रण-पत्र मे यदि कार्यक्रम के साथ नोट मे यह न छपवाया जाता कि 'नाटक मे इन्दुमती भी पार्ट लेगी' तो कदाचित् बाहर से इतने मेहमान न आते । सन् १९१९ मे ही नही, उसके पूरे दो युगो के बाद आज भी किसी नाटक मे किसी भारतीय सद्गृहस्थ की कन्या का पार्ट लेना बडे आकर्षण की बात होगी, फिर सन् १९१९ मे इस घटना का इतने लोगो को आकर्षित करना तो स्वाभाविक ही था ।

जिन रायबहादुर सेठ रामस्वरूप तथा उनके लडके के आने के सम्बन्ध मे अवधबिहारीलाल इतने इच्छुक थे, वहाँ से भी तार मिला था कि ललित-मोहन तीसरे दिन ही पहुँच सकेगा । ललितमोहन के ठहरने का प्रबन्ध अवध-बिहारीलाल के खुद के कमरे के निकट के कमरे मे किया गया था ।

स्वर्ण जयन्ती के दो दिनो का कार्यक्रम सफलतापूर्वक हो गया था । तीसरे दिन भी जो मेहमान आनेवाले थे प्रात काल की ट्रेनो से आ चुके थे । रात

को नाटक तक आज और कोई काम न था। ललितमोहन तीसरे पहर की गाडी से आ रहा था, अत ललितमोहन को लेने के लिए खुद अवधबिहारीलाल इन्दुमती के साथ स्टेशन पहुँचे।

ठीक वक्त गाडी आयी और फर्स्ट क्लास से ललितमोहन उतरा। वह टसर का पश्चिमी ढँग का सूट पहने हुए था। सिर पर काश्मीरी कसीदे की टोपी थी। यद्यपि उसे कई वर्षो से वकील साहब ने न देखा था और उम्र के इन वर्षो में काफी परिवर्तन भी होता है, फिर भी वे उसे पहचान गये। दोनो ने हाथ मिलाया। ललितमोहन के साथ वरदी पहने हुए चार नौकर थे—दो खिद-मतगार, एक अर्दली और एक चपरासी। इधर ललितमोहन का सामान उतारा जा रहा था, उधर अवधबिहारीलाल ने इन्दुमती से ललितमोहन का परिचय कराया। यह क्या हुआ ? ललितमोहन से हाथ मिलाते समय इन्दुमती पूरे होश मे थी या नही ! उसने अजीब ढँग से तो ललितमोहन से हाथ मिलाया और एक विचित्र प्रकार की दृष्टि से ललितमोहन की ओर देखा भी। उसकी आँखे उस समय ऐसी दीखी, जैसे किसी उतार पर लुढकती हुई दो छोटी-छोटी गेदे।

यह सब कुछ सेकिड भर में ही खत्म हो गया। यदि इन्दुमती पूरे होश मे नहीं भी थी तो भी वह हालत कुछ सेकिड ही रही थी। ललितमोहन भी उतनी देर तक अपनी स्वाभाविक मुद्रा मे नही था, पर इन्दुमती के समान शायद उसने अपना होश नही खोया था। कई बार मनुष्य की खून फेकनेवाली धमनियाँ, खून वापस ले जानेवाली शिराये और नाड़ियाँ, सबकी सब निष्क्रिय-सी जान पडने लगती है। उस समय अपने अगो के छोर—जैसे आँखो की पलको के, नासिका के, ओठो के, हाथो तथा पैरो की उँगलियो के अग्र-भाग कभी बर्फ के समान ठडे और कभी आग के सदृश गरम जान पड़ते है। कुछ सेकिडो तक इन्दुमती और ललितमोहन दोनो को इसी प्रकार का अनुभव हुआ, पर इस दशा मे शीघ्र ही परिवर्तन हो गया, और अब ललितमोहन ने जल्दी-जल्दी अपना सामान निकलवाना शुरू किया। वह कदाचित् इसीलिए उसमें व्यग्र हो गया कि उसकी अस्वाभाविक मुद्रा विलीन होकर स्वाभाविक मुद्रा लौट आवे। इन्दुमती ने कुली को पुकारा सामान उठाने के लिए—कुली को पुकारने मे इन्दुमती का भी शायद वही प्रयोजन था, जो जल्दी-जल्दी सामान

उठवाने मे ललितमोहन का। दोनो के मिलन की यह विधि कदाचित् कोई न देख सका था, इन्दुमती समझती थी, ललितमोहन भी नही और ललितमोहन समझता था, इन्दुमती भी नही।

ललितमोहन उसके निश्चित स्थान पर ठहराया गया। उसकी सारी खातिर-तसल्ली का भार वकील साहब ने स्वय इन्दुमती पर रखा था। पर यह क्या ? इन्दुमती को इस आतिथ्य-सत्कार मे एक विशेष प्रकार का सकोच-सा क्यो होने लगा ? इस तरह का सकोच उसके जीवन मे एक नयी चीज था। नारी को यह सकोच जब वह बाल्यावस्था से युवावस्था मे पदार्पण करती है तब अनुभव होना आरम्भ होता है। अवधबिहारीलाल ने इन्दुमती के हृदय को जिस प्रकार घड़ने का प्रयत्न किया था उसमें इस सकोच का कोई स्थान न था और यथार्थ मे बाल्यावस्था से युवावस्था मे प्रवेश करने के पहले ही उस सकोच के बीज उसके हृदय से खोदकर फेक दिये गये थे। स्कूल मे ही नही, कालेज मे भी उन शरीर लडको की सोहबत, उनके भद्दे मजाक तक पर उसने कभी इस तरह के सकोच का अनुभव न किया था। त्रिलोकीनाथ के प्रति वह आकर्षित हुई थी ; और उस समय उसे जान पडता था कि वह बैजनाथ, अलोपीप्रसाद, मदनमोहन, न जाने किन-किन लडको के प्रति आकर्षित हुई है, पर किसी के भी प्रति किसी भी तरह व्यवहार मे इस प्रकार का सकोच उसके मन मे फटक तक न सका था। जब वह वजीरअली के पैर से अपना पैर बाँधकर दौडी थी, उस वक्त भी नही। इस स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बाहर के इतने मेहमान आये, किसी की आवभगत मे नही। यह उसका एक नवीन अनुभव था, एकदम नवीन।

अपने उद्यान मे लडको को रक्षा-बन्धन के दिन दी गयी पार्टी से लौटकर रात को उसे जैसे एक नये सूनेपन का अनुभव हुआ था और जो सूनापन अब कभी भी, किसी क्षण भी, उसे दबोच-सा लेता था, वैसा ही यह सकोच भी उसके लिए एक नयी वस्तु था। उसने ललितमोहन की खातिर-तसल्ली शुरू तो की, पर सकुचते-सकुचते।

हाथ-मुँह धोने के बाद ललितमोहन के लिए वह चाय और नाश्ते का सामान लिवा ले गयी—कुछ मिठाइयाँ, कुछ नमकीन, आम अभी आये नही थे, खरबूजे आ गये थे, अतः खरबूजे, पतली-पतली ककड़ियाँ, वगैरह। ललितमोहन

को चाय पीने की आदत नही थी, पर उसने कुछ खाना आरम्भ किया। अनेक बार मन की स्पष्ट प्रेरणा बिना भी, बरबस-सी आँखे किसी चीज को देखती रहती है, बरबस से कान किसी बात को सुनने के इच्छुक रहते है। इन्दुमता और ललितमोहन दोनो की ही इन दोनो ज्ञानेन्द्रियो की यही अवस्था थी।

खाते-खाते ललितमोहन ने पूछा—'आप आज के नाटक मे कौनसा पार्ट ले रही है ?'

इन्दुमती के सिर पर मानो बिजली गिरी। निमन्त्रण-पत्र मे उसी ने छपवाया था—'नाटक मे इन्दुमती भी पार्ट लेगी।' अब तक आये हुए जिन मेहमानो ने पूछा था कि वह कौनसा पार्ट ले रही है उन्हे उसने बिना किसी झिझक के स्वाभाविक रीति से अपना पार्ट बता दिया था, पर वैसा ही उत्तर वह ललितमोहन को क्यो न दे सकी ? उसके मन मे एकाएक उठा—'ये मेरे पार्ट लेने को न जाने अच्छा समझते है, या बुरा' पर ललितमोहन के अच्छे-बुरे समझने से उसे क्या प्रयोजन ? वह जिसे अच्छा समझती है वही अच्छा है, दुनियाँ चाहे उसे कैसा भी क्यो न समझे, यह आज उसके मन मे न आया। अब तक की उसकी यह मनोवृत्ति आज अचानक न जाने कहाँ चली गयी ? वह सोच न सकी कि क्या उत्तर दे और वह चुप रह गयी। इन्दुमती ने जीवन मे शायद आज पहली बार उत्तर खाया था।

जवाब की उम्मीद मे ललितमोहन ने कुछ सेकिड उसकी ओर देखा, पर उसे कुछ उत्तर न देते देख, उसने अपनी दृष्टि दूसरी ओर करली। उसका चेहरा कुछ उतर-सा गया। वह अपने से ही पूछने लगा—'मैने यह प्रश्न पूछ कर इन्हे अप्रसन्न तो नही कर दिया ?' न जाने इन्दुमती की प्रसन्नता-अप्रसन्नता से उसका क्या सरोकार था ? फिर उसके मन मे अचानक एक दूसरी ही बात उठी—'स्त्रियो से बात किस ढँग मे की जाती है, यह शायद मै जानता ही नही।' उसका खाना एकाएक रुक गया। फिर वह अपना साहस इकट्ठा-सा करते हुए बोला—'मैने तो जब निमन्त्रण-पत्र मे पढा कि आप नाटक मे पार्ट करने वाली है, मुझे असीम हर्ष हुआ। इस देश की स्त्रियाँ भी जब तक हर क्षेत्र मे आगे न आवेगी, तब तक इस देश की उन्नति एक असम्भव कल्पना है।'

इन्दुमती के हृदय पर रखी हुई सिल चूर-चूर हो गयी। कितना हर्ष हुआ उसे ललितमोहन के इस सभापण से। चाहे अब सारा ससार उसके नाटक मे पार्ट लेने के विरुद्ध हो, इन्दुमती को इसकी परवाह नही। पर वह उसे पहले भी कब थी ? उसने पार्ट लेना उचित समझा था और वह पार्ट ले रही थी। अभी कुछ क्षण पहले ही ललितमोहन के यह पूछने पर कि 'आप आज के नाटक मे कौनसा पार्ट ले रही है ?' उसके मन मे ललितमोहन उसे अच्छा समझते है, या बुरा, यह प्रश्न उठा था, जिससे बाकी के ससार से कोई सम्बन्ध न था। अब एकाएक सारे समार का सवाल क्यो उठ गया ? तो क्या कुछ ही घडियो मे ललितमोहन ही उसका सारा ससार हो गया है ? इस बार उसने उत्तर दिया, 'मेरे इस पार्ट लेने के कई विरोधी थे, माँ तक खिलाफ थी, पर जिस दृष्टि से इस प्रश्न को आप देखते है उसी नजर से मैने देख यह पार्ट लेना तय किया। पिताजी भी इसी पक्ष मे थे।'

सभाषण के आगे का मार्ग खुल-सा गया। दोनो दुनियाँ की चीजो को एक ही दृष्टि से देखते है, यह विश्वास दोनो के हृदयो मे हो गया था।

'आप चाय नही पियेगे ?'—इन्दुमती ने पूछा।

'मै चाय नही पीता।'

'तो शर्बत वगैरह मँगाऊँ ?'

'नही, नही, इतना तो बहुत काफी है।'

'वाह ! खाने के साथ पीने को भी तो कुछ चाहिए ही।' यह कहते हुए इन्दुमती जल्दी स किसी ठडे पेय का प्रबन्ध करने चल दी।

इधर ललितमोहन ने प्याले में चाय बनाना शुरू किया, दूध कुछ अधिक डाल दिया और शक्कर भी।

इन्दुमती ने लौटकर देखा कि चाय बनी हुई रखी है, उसने कुछ आश्चर्य से पूछा—'और चाय तो आपने बना ली ?'

'जी हाँ, आपके लिए, आप तो चाय पीती है न ?'

सकोच तो इन्दुमती मे आ ही गया था, सकुचाते हुए उसने कहा—'अनेक धन्यवाद !' और वह फिर बैठ गयी।

'आप कुछ खाएँगी नही !' ललितमोहन ने पूछा।

'मुझे पार्ट करना है, इसलिए मै कुछ हल्की रहना चाहती हूँ।'

'तो चाय तो पीजिए।'

'हाँ, हाँ, चाय जरूर पियूँगी,' यह कहकर उसने चाय पीना शुरू किया। एक घूँट पीकर ही वह हँस पडी और हँसते-हँसते बोली—'कितना दूध और कितनी शक्कर आपने इसमे डाल दी है!'

ललितमोहन लज्जित-सा हो गया और सकुचाते-सकुचाते बोला—'मुझे न चाय पीने की आदत है और न बनाने की ही।'

ललितमोहन के स्वर मे कुछ गम्भीरता थी। इन्दुमती को एक ठेस-सी लगी। जो इन्दुमती हर एक का बडे से बड़ा मजाक बिना कभी भी यह सोचे उडाया करती थी कि जिनका वह मजाक उड़ा रही है उन्हे कैसा मालूम होता होगा, वही इन्दुमती आज जरा-सी बात कहकर यह सोच रही थी कि 'कही मैने इनका दिल तो नही दुखा दिया।' वह जल्दी से बोली—'पर इस तरह की अधिक दूध और शक्कर की चाय मे भी एक खास तरह की लज्जत होती है। माताजी तो यदि कभी चाय पीती है तो पानी मे बनाकर नही, दूध मे ही चाय की पत्ती डाल देती है।'

'हाँ, पिताजी भी इसी तरह की दूध की चाय बनवाते है' ललितमोहन कुछ सतोष से बोला।

उसी समय बरफ डाला हुआ नीबू का शर्बत आ गया और नौकर के हाथ से गिलास लेकर स्वय इन्दुमती ने ललितमोहन को दिया। जब इन्दुमती उसे गिलास दे रही थी तब इन्दुमती की उँगलियाँ उसके हाथ से छू गयी। ललितमोहन के सारे शरीर में बिजली-सी दौड गयी। उसका हाथ भी काँप गया और गिलास गिरते-गिरते बचा। ललितमोहन ने शर्बत पीना शुरू किया।

ललितमोहन को और प्रसन्न करने की इच्छा से इन्दुमती ने कहा—'लीजिए, मै भी कुछ खा लेती हूँ, नही तो आप कहेगे कि आपने कहा और मैने माना नही।' एक ही दिन और एक ही दिन क्या, कुछ घण्टो की मुलाकात होने पर इन्दुमती को ललितमोहन का कहना मानने की कितनी उत्सुकता थी तथा कितनी इच्छा थी उसे प्रसन्न करने की! इन्दुमती ने किसी का कहना मानने एव किसी को प्रसन्न करने की बात अब तक जीवन मे शायद कभी भी न सोची थी।

नाश्ते का यह सारा सभाषण अत्यन्त साधारण था, पर इस वार्तालाप का

हर शब्द दोनो के अन्त स्थल की किस गहराई से निकल रहा था ! साथ ही दोनो को एक और अनुभव हो रहा था कि इस प्रकार के वार्तालापो की ठीक व्यवस्था के लिए वार्तालाप के समय भोजन, नाश्ता या किसी-न-किसी पेय की कितनी जरूरत रहती है, क्योंकि सभाषरण चलते हुए भी अनेक ऐसे मौके आते है जब आगे क्या कहा जाय, यह किसी को नही सूझता, ऐसे क्षणो मे खाना-पीना चलता रहता है और यह खाना-पीना सभाषरण को आगे बढाने मे स्निग्धता का काम देता है ।

रात्रि को ९।। बजे 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक आरम्भ हुआ ।

नट या नटी को बिना दर्शको की ओर ध्यान दिये अपना अभिनय करना चाहिए, इन्दुमती इसे न जानती हो, यह नही, पर बार-बार उसकी दृष्टि ललितमोहन की ओर घूम जाती थी । हर बार उसे अपनी भूल याद आती, पर यह याद भी याद न रहती और इसे भी वह हर बार विस्मृत कर जाती । कई मर्तबा वह अपने मन में ललितमोहन के कहे हुए ये वाक्य भी दोहराती, 'मैने तो जब निमन्त्रण-पत्र मे पढा कि आप नाटक मे पार्ट करनेवाली है, मुझे असीम हर्ष हुआ । इस देश की स्त्रियाँ जब तक हर क्षेत्र मे आगे न आयेंगी तब तक इस देश की तरक्की एक असम्भव कल्पना है ।' ये वाक्य उसे कण्ठस्थ हो गये थे । और बार-बार मन मे जप करने से, उसे इस अभिनय मे एक तरह की शक्ति मिलती थी । ललितमोहन को यह नाटक अब तक के अपने देखे हुए सब नाटको से श्रेष्ठ जान पडा । अन्य दृश्यो के समय तो वह आस-पास बैठे हुए व्यक्तियो से थोडी-बहुत बात भी कर लेता, पर जिस दृश्य मे इन्दुमती का पार्ट आता, वह बिना एक शब्द भी बोले निर्निमेष दृष्टि से उस दृश्य को देखता । उसके गाने पर यदि 'वस-मोर' बोला जाता तो उसमे वह ऊँचे-से-ऊँचे स्वर से साथ देता । कभी-कभी उसे अपने इस ऊँचे स्वर निकलने पर स्वय ही आश्चर्य भी होता, पर स्वर निकलने के बाद और दूसरी बार जब फिर स्वर निकलता तब पहली मर्तबा उसे इस पर ताज्जुब हुआ था, यह भी उसे याद न रहता । ललितमोहन का निश्चित मत था कि इन्दुमती के अभिनय से अच्छा अभिनय उसने आज तक कभी नही देखा।

नाटक समाप्त होने पर घर लौटते हुए मोटर मे कितने उत्साह से ललित-मोहन ने इन्दुमती को बधाई दी ! कितनी सचाई थी उसके स्वर मे और

कितना मुग्ध कर दिया था इस बधाई ने इन्दुमती को।

स्वर्ण जयन्ती उत्सव समाप्त हो गया। सारा कार्यक्रम लखनऊ के लिए एक नया प्रोग्राम था। बहुत दिनो तक इसकी चर्चा रही।

बाहर से आये हुए मेहमानो ने वकील साहब से रुख्सत ली। ललितमोहन ने भी जाने की आज्ञा चाही। शेष सज्जन तो चले गये, पर ललितमोहन को अवधबिहारीलाल ने यह कहकर रोक लिया—'भाई, आखिर मे तो आये हो, दो-चार दिन रुककर जाना। ललितमोहन ने बिना ज्यादा हुज्जत के ठहरना स्वीकार कर लिया।

× × ×

लखनऊ मे ललितमोहन को रहते हुए एक हफ्ता बीत रहा था। इस एक सप्ताह मे अवधबिहारीलाल के यहाँ उसकी कितनी खातिर-तसल्ली हुई! वह कई जगह मेहमान रह चुका था। कई स्थानो के आतिथ्य-सत्कार का उसे अनुभव था, पर जैसी मेहमानी उसकी यहाँ हुई, वैसी कही हुई है, ऐसा उसे याद न पड़ता था। उसे इन्दुमती के व्यवहार मे एक विचित्रता दृष्टिगोचर होती, किन्तु ललितमोहन को देखते ही इन्दुमती के हृदय मे जैसा उद्वेग उठा था, वैसा ही ललितमोहन के हृदय मे इन्दुमती को देखकर। इन्दुमती त्रिलोकीनाथ ही क्या, न जाने कितने लडको के प्रति आकृष्ट हो चुकी थी, यद्यपि ललितमोहन के प्रति उसका जो आकर्षण हुआ था उससे उसके पहले आकर्षणो का कोई मिलान नही किया जा सकता। पर ललितमोहन तो मनसा-वाचा-कर्मणा ब्रह्मचारी था, उसका तो वैसा आकर्षण भी इसके पहले किसी के प्रति न हुआ था। और चूँकि अनजान मे अकस्मात् ललितमोहन अपना हृदय खो चुका था, इसलिए उसे इन्दुमती के इस विचित्र व्यवहार में और अधिक विचित्रता जान पड़ती थी। इन्दुमती के हर शब्द, हर सकेत पर वह पुन पुन विचार करता, मशीन के समान बिना सोचे, बाल की खाल निकालने का प्रयत्न करता, और जितनी अधिक उसकी इस दिशा मे कोशिश होती, उतना ही ज्यादा वह उलझता जाता। न इन्दुमती का व्यवहार उसकी समझ में आता, और न इन्दुमती ही। वह हो गयी थी उसके लिए एक न सुलझनेवाली पहेली।

ललितमोहन की बिदा का समय आ पहुँचा। ललितमोहन को स्टेशन

पहुँचाने अवधबिहारीलाल, सुलक्षणा और इन्दुमती तीनो गये ।

स्टेशन पर जब आखिरी घण्टी वजी तो ललितमोहन ने पहले सुलक्षणा और फिर अवधबिहारीलाल के पैर छुए। अब वह मुडा इन्दुमती को ओर। उसने हठात् इन्दुमती का एक नही, दोनो हाथ अपने हाथ मे ले लिये। इन्दुमती के मुख से एक शब्द भी न निकला। उसने अपना मुख इतनी जोर से बन्द किया कि जान पडता था कि उसके ओठ ही नही है, पर जो बलात्कार वह अपने ओठो पर कर सकी वह आँखो पर नही। उसकी आँखो मे आँसू छलछला आये। इन्दुमती और ललितमोहन दोनो उस समय शायद अपनी सुध-बुध भूल गये। किनके बीच मे खडे हुए हैं, यह भी उन्हे ज्ञात न रहा, पर सौभाग्य से उसी वक्त गार्ड की सीटी बजी। ललितमोहन मशीन के सदृश अपने डब्बे मे जा बैठा। अवधबिहारीलाल कुछ कह रहे थे, सुलक्षणा भी कुछ कह रही थी, पर वह कुछ न सुन सका। एँजिन ने सीटी दी और गाडी चल पडी। इन्दुमती मूर्ति के सदृश खडी-खडी एक डब्बे के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे का जाना देख रही थी, और देख रही थी उनकी खिडकियो से उनके यात्रियो को, जो सिनेमा के चित्रो के सदृश विलीन होते जाते थे एक दूसरे पर। इतने मे ही उसके कन्धे पर एक भारी-सा हाथ पडा और उसके कानो मे रुँधी-सी आवाज सुनायी दी—'चलो बेटा!' इन्दुमती अचानक चौक पडी।

: १२ :

जब इन्दुमती घर लौटकर आयी और अपने कमरे मे पहुँची तब उसकी समझ मे ही न आया कि अब वह क्या करे? पिता की जुबिली मनाने के निश्चय के दिन से आज तक उसे कुछ न कुछ करने के सिवा कोई नयी बात सोचने का समय ही न मिला था और अब करने को कुछ न था विचारने के अतिरिक्त। फिर ललितमोहन के आने के पहले विचार के उपरान्त कार्य होता था और उसके

आने के पश्चात् कुछ हो चुकने के पश्चात् उस पर मीमासा, पर अब दोनो ही एकाएक बन्द हो गये। तेजी से चलती हुई ट्रेन किसी स्टेशन के पास पहुँचते-पहुँचते जैसे सिगल गिरा न देखकर हठात् रुक जाती है, वही हाल इन्दुमती के मन का हुआ। उस ट्रेन के यात्री जिस तरह खिडकियो से मुख निकाल-निकाल बिना किसी स्टेशन के खडी हुई ट्रेन का कारण ढूंटने के लिए इधर-उधर देखते है, उसी तरह इन्दुमती ने अपने अन्दर सब ओर देखना शुरू किया। उन यात्रियो को कारण जानने से संतोष हो जाता है। उसकी इस अवस्था का कारण ललितमोहन ही है, यह इन्दुमती भी जान गयी, पर वजह जानकर सतोष के स्थान मे उसे और अधिक उद्विग्नता हो गयी। एकाएक उसे पिता का उपदेश याद आया—'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है,' पर उसने झुँझलाकर अपने आप से कहा, 'गलत उपदेश है, एकदम गलत, यदि विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ होता तो ललितमोहन के देखते ही मेरे मन में ऐसा उद्वेग क्यो उठता ? उसकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता, उसकी पसदगी-नापसदगी का मुझे इतना ध्यान क्यो रहता ? उसके जाने पर हठात् आँसू क्यो आ जाते ?' और अपने आप से यह कहते-कहते उसने अपने दोनो हाथ अपने हृदय पर इस तरह दाबे, मानो उसका हृदय उसके शरीर से निकलकर भाग रहा हो। उसी समय शीशे पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसे अपना प्रतिबिम्ब दीखते ही ललितमोहन का शरीर याद आ गया। उसके मन मे उठा कि सौन्दर्य मे वह ललितमोहन के सामने तुच्छ है, तुच्छातितुच्छ। फिर उसने अपने एक-एक अवयवो से ललितमोहन का मिलान आरम्भ किया। अपने बाल अपने हाथ मे लेकर देखे। ललितमोहन के बालो को याद कर खुद अपने आप से बोली, 'कहाँ है इनमे वह श्यामता, वह पतलापन, वे लहरे, जो वहाँ है ?' अपने ललाट, नेत्र, नासिका, ओठ, सभी उसे ललितमोहन के इन अवयवो के सामने हीन जान पडे। फिर उसने अपने से पूछा, 'और बुद्धि ?' उत्तर मिला, 'बुद्धि के सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। शायद-शायद ··इस सम्बन्ध मे भी शका ?' और फिर वह जोर से बोल उठी—'और सभ्यता तो उसमे मुझसे अधिक · कही अधिक है। कितने—हाँ, कितने सरल है वे ! तो ··सरलता ही सच्ची सभ्यता की जननी है।' आज तक इन्दुमती ने किसी को किसी भी बात मे अपने से श्रेष्ठ न माना था। आज एकाएक

उसे जान पडा कि त्रिलोकीनाथ तथा अन्य जिन लडको के प्रति वह आकृष्ट हुई थी, उन्हे अपने से श्रेष्ठ मानकर नही, और आकर्षण के बाद उसे सबसे ग्लानि भी पैदा हुई थी , पर आज एकाएक उसके हृदय ने उससे कह दिया कि उसमे श्रेष्ठ भी कोई व्यक्ति है। और यह महसूस करने के बाद भी उसके मन मे किसी प्रकार की ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित न हुई, किसी तरह के क्रोध का ज्वार न उठा, किसी भाँति के दु ख की वायु न चली । इस दिशा मे उसका मन शीतल था, शान्त था, सुखी था । ललितमोहन को अपने से श्रेष्ठ मान उसके मन को एक अपूर्व आनन्द हुआ । 'क्या फिर कभी मुझे वे दर्शन हो सकेगे ? क्या फिर कभी उस मधुर सभाषण को सुन सकूँगी ?' सुन्दर मुख, सुन्दर शरीर, सुन्दर स्वर, सुन्दर शब्द, सुन्दर विचार, सुन्दर भाव, सुन्दर व्यवहार—सब कुछ सुन्दर के उस चेतन-प्रतीक को कब · अब कब ··?' एक ओर उनका रूप, दूसरी तरफ उनकी अच्छाई, तीसरी ओर उनकी महानता, चौथी तरफ उनकी उदारता—ओह · कब कब···?' अन्य आकर्षणो के बाद उसे उन सारे आकर्षणो से ग्लानि भी पैदा हुई थी, जिसका यहाँ लवलेश भी न था । बार-बार उसने आप से न जाने कितने पूरे और कितने अधूरे प्रश्नो को पूछना आरम्भ किया । कुछ देर के बाद वह अपने आप से कह उठी, 'अभी-अभी तो ललितमोहन गये है और उनके पीठ फेरते ही ये कैसे प्रश्न ? फिर यदि भेट भी हुई तो जल्दी होने की तो कोई सम्भावना नही है, और अगर शीघ्र हो भी गयी तो पुन. इसी प्रकार का वियोग हो जायगा ।' कुछ ठहरकर उसने फिर प्रश्न किया—'ललितमोहन से मेरा कभी वियोग न हो, क्या ऐसा नही हो सकता ?' और अब उसके हृदय मे उत्तर-प्रत्युत्तर चल पडे ।

'क्यो नही ?'

'कैसे ?'

'यदि उससे विवाह हो जावे तो ?' और ज्योही उसके मन मे विवाह की बात उठी त्योही उसे जान पड़ा जैसे जीवन-श्रोतस्विनी का सच्चा श्रोत स्त्री और पुरुष दो कगारो के बीच से बहता है । तत्काल ही उसे विवाह न करने का अपना निर्णय याद आया और उसने अपने आप से कहा—'विवाह ! पर मुझे तो विवाह-सस्था पर ही विश्वास नही ।'

'तब ऐसे सम्बन्धो का परिणाम क्या ?'

'यदि मै विवाह करना भी स्वीकार करलूँ तो क्या यह विवाह सम्भव है ?' ललितमोहन ने अपने को अपने पिता का आज्ञाकारी पुत्र बताया था। पिता सनातनी है, यह भी कहा था। कोई सनातनी मारवाडी अग्रवाल किसी कायस्थ की पुत्री से अपने पुत्र का विवाह कभी कर सकता है ?' और यह प्रश्नोत्तर करते-करते, इन्दुमती क्षण-क्षण बैठने, खडे होने और घूमने लगी—कभी वह बैठती, कभी खडी हो जाती, कभी घूमने लगती। वह कितनी विकल थी, इसका पता उसके बार-बार इस प्रकार उठने-बैठने और घूमने से लग जाना कठिन न था।

कमरा बहुत बडा न था। कमरे के इन चक्करो मे अनेक बार वह तस्वीरो के सामने खडी हो जाती, उन चित्रो को देखने भी लगती। तब ऐसा जान पडता मानो वह उन निर्जीव तस्वीरो से मूक भाषा मे कोई प्रश्न पूछ रही हो और इन तस्वीरो के देखने से भी जब उसे सतोष न हुआ तब वह इस प्रकार घूमने लगी, मानो अपने आप के लिए ही वह कोई आश्चर्यजनक वस्तु हो।

उसे अधकार, सर्वत्र घोर अधकार दिखायी दिया। सारे विश्व में उसे शून्यता, नितान्त शून्यता दृष्टिगोचर हुई। 'कहाँ है निज का व्यक्तित्व ?' उसने बार-बार अपने आप से पूछना आरम्भ किया। वह तो विलीन हो चुका था किसी अन्य व्यक्तित्व मे। इन्दुमती को पहले भी सूनेपन का अनुभव होता था, पर उस सूनेपन और इस सूनेपन मे अन्तर था। इस सूनेपन की दसो दिशाएँ भरी हुई थी ललितमोहन से।

कितना · कितना परिवर्तन हो गया इन्दुमती के जीवन मे! जीवन मे क्रान्ति कर देनेवाले परिवर्तन प्राय बिना विचारे और सोचे-समझे ही हो जाते है। इस समय इन्दुमती कुछ न कुछ करने के लिए व्यग्र थी, पर वह करे क्या, यह उसकी समझ मे न आता था। अन्त मे और कुछ कहने के पहले अपनी जेब से चाकू निकाल अपने नाखून तराशना ही आरम्भ किया। नाखून तराशते-तराशते उसे ऐसा जान पड़ा मानो वह पुरानी और निकम्मी चीजो से अपना पिड छुडाने का प्रयत्न कर रही है।

ललितमोहन को कानपुर पहुँचना कठिन हो गया। इन्दुमती के सामने

उसे आँसू न आये थे, पर अब बार-बार उसके आँसुओ को याद कर-कर उसकी आँखे भरने लगी। तो जम्हाई के समान आँसुओ मे भी छूत है और जम्हाई तो सामने की जम्हाई देखकर आती है। आँसू क्या कभी देखे हुए आँसुओ का स्मरण करके भी आते है? उसे इस सप्ताह की एक-एक घटना, छोटी से छोटी घटना विशाल रूप धारण कर याद आने लगी, और याद आने लगी, इतना ही नही, प्रत्यक्ष रूप धारण कर उसके सामने घूमने लगी। ये घटनाएँ उसे पहले सिनेमा मे छोटे-छोटे धुँधले-धुँधले दीखनेवाले चित्रो के समान दीखती और फिर नजदीक आते-आते 'क्लोज-अप्' के चित्रो के समान हो जाती। बाह्य घटनाएँ और मन पर पडनेवाले उनके प्रभाव सदा एक-से नही होते। कभी-कभी छोटी से छोटी घटनाओ का मन पर बडे से बड़ा प्रभाव पडता है और कभी-कभी बडी से बड़ी घटनाएँ बिना कोई खास असर डाले यो ही निकल जाती है। फिर अनेक घटनाएँ ऐसी भी होती हैं जिनकी स्मृति मुख पर मुस्कराहट और आँखो मे आँसू साथ-साथ लाती है।

सर्वप्रथम ललितमोहन को स्टेशन पर दीखनेवाला इन्दुमती का स्वरूप दीखा, फिर शर्बत का गिलास देते हुए उसकी उँगलियाँ। ललितमोहन ने एकाएक अपना हाथ देखा। उसे भास हुआ मानो अभी भी वे उँगलियाँ उसके हाथ का स्पर्श कर रही है। उसके सारे शरीर मे वैसी ही बिजली फिर दौड गयी और उसकी आँखे बन्द हो गयी। वह चौक-सा पडा। आँखे खोल फिर वह अपना हाथ देखने लगा। कहाँ थी वे उँगलियाँ? बिना इन्दुमती के वे उँगलियाँ कहाँ से आ सकती थी? फिर उसे नाटक मे पार्ट करती हुई इन्दुमती दीखी। उसने नेत्र पुन बन्द कर लिये। कब तक उसके नेत्र बन्द रहे, यह उसे न मालूम हो सका, पर जब उसने आँखे खोली तब अपनी ही आवाज से चौककर वह जोर से कह रहा था—'वस मोर!' गनीमत यही थी कि फर्स्ट क्लास के उस डब्बे मे कोई यात्री न था, अन्यथा वह उसे पागल समझता! उसके बाद की घटनाएँ तो जल्दी-जल्दी उसके सामने घूमने लगी। इन्दुमती का उसे आसफुद्दौला का इमामबाड़ा दिखाना, वहाँ के भूल-भुलैया मे भूल जाना और उस भूल मे कहकहे, फिर छोटा इमामबाडा दिखाना, फिर दूर से ही छतरमजिल और फिर न जाने क्या-क्या? इन्दुमती का उसे अपने चित्र दिखाना और उसकी उन चित्रो की प्रशसा; पर क्या वे चित्र इतनी

प्रशसा के योग्य थे ? बेशक इसमे सदेह की कोई गु जाइश ही नही । और सारे फिल्म के अन्त मे उसे फिर दीखे इन्दुमती के वे आँसू । उसने अपने आप से कहा, 'तो···तो, उसके व्यवहार के सम्बन्ध मे मुझे जो उलझाव जान पड़ता था वह मेरी गलतफहमी थी । वह · वह मुझसे प्रेम करती है, अवश्य करती है, इसमे सदेह का कोई स्थान नही, अन्यथा अन्यथा उसकी आँखो में भला वे आँसू···वे आँसू क्यो आते ?' और इस विश्वास के मन मे उठते ही उसका मुख कितनी प्रसन्नता से खिल-सा गया । पर, है ? एकाएक मुख पर यह कालिमा क्यो ? अब वह सोच रहा था ठीक वही बात जो इन्दुमती के मन मे आयी थी । 'कोई सनातनी मारवाडी किसी कायस्थ की पुत्री से अपने पुत्र का विवाह कभी कर सकता है ?' और अपने पिता की याद आते ही उसे अवधबिहारी-लाल तथा सुलक्षणा भी स्मरण आ गये । वे भी भला अपनी लडकी को जाति के बाहर क्यो देने लगे ? जीवन मे उसने आज तक इस प्रकार की प्रेम-दृष्टि से किसी को न देखा था । पिता तथा नातेदारो के अगणित बार आग्रह करने पर भी उसने अब तक विवाह करना स्वीकार न किया था । वह बी० ए० पास करने के बाद ही विवाह करना चाहता था । वह बी० ए० का इम्तहान दे चुका था । तो क्या इसी सम्बन्ध के लिए उसका विवाह दैववशात् रुका था ? और फिर उसके मन मे उठा कि 'क्या यह भी वैसी ही सिद्धान्त की बात नही है, जिस पर अटल रहने के लिए मै ससार मे किसी की भी अवहेलना कर सकता हूँ ?' ललितमोहन की इस समय की मुद्रा मे ट्रेन की चाल, उस चाल की ध्वनि, नेपथ्य मे बजनेवाली बाद्य-ध्वनि (बैक ग्राउड म्यूजिक) के समान उसके इस समय के विचारो की गति को एक विशिष्टालय मे रखने के लिए मदद पहुँचा रही थी। कठिनाई तब होती थी जब कोई स्टेशन आ जाता था और ट्रेन खडी हो जाती थी । कानपुर आ गया । स्टेशन पर गुमाश्ता मौजूद था । मोटर पर ललित-मोहन घर पहुँचा । पिता कही बाहर गये थे, अत वह सीधा अपने कमरे मे चला गया । सब कुछ वैसा का वैसा रहने पर भी उसे वह कमरा कैसा बदला हुआ-सा दीखा और जब वह सोफा पर बैठा तब उसे ऐसा जान पडा मानो कोई वस्तु वह लखनऊ में ही छोड आया है । वह कौन वस्तु थी, यह बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे याद न आ सका । वह भी इस समय कुछ करना चाहता था , पर क्या करे, यह बहुत देर तक उसकी समझ मे न आया।

अन्त मे उसने कागज-पेन्सिल उठायी और पेन्सिल से कागज पर लिखना आरम्भ किया। कुछ देर बाद उसने देखा कि बिना उसके कुछ सोचे ही उसके हाथो ने कागज पर कुछ शक्ले बना दी है और वे सब की सब औरत की है। किस औरत की, यह पहचानना कठिन था ; लेकिन, सोचने पर उसे जान पड़ा कि स्वरूप मे भिन्न-भिन्न होने पर भी, इन्दुमती की मुखाकृति से न मिलने पर भी, उसके हाथो ने इन्दुमती की ही शक्ले बनायी है। और जब वह यह सोच रहा था तब एकाएक उसके मन मे उठा कि राम और कृष्ण की मूर्तियो तथा चित्रो मे उनके स्वरूपो के भिन्न-भिन्न प्रकार से निर्मित और चित्रित होने पर भी वे मूर्तियाँ और चित्र किस प्रकार राम और कृष्ण के ही रहते है।

× × ×

प्रेमियो के हृदय क्षेत्र का प्रेम रूपी तरु सदा हरा-भरा रहता है। कुछ वृक्ष जिस प्रकार सभी ऋतुओ मे हरे रहते है, वह ऋतु चाहे गर्मी की हो, या जाडे की, उसी तरह यह तरु भी वियोग और सयोग सभी अवस्थाओ में हरा रहता है। हाँ, अन्य वृक्षो मे और इसमे कुछ अन्तर अवश्य है। जैसे अन्य तरुओ के जमने, बडे होने, फूलने और फलने में समय लगता है, वैसा इसमें नही, यह तरु उगते ही जम जाता है और तत्काल फलने-फूलने लगता है। फिर दूसरे दरख्तो मे एक ही तरह के पत्ते, फूल और फल निकलते है, लेकिन प्रणय-पलाशी के पत्र, पुष्प और फल एक ही प्रकार के नही होते, रग और रूप दोनो मे भी पृथक्-पृथक् गुण, वह भी अलग-अलग। ये पत्ते, प्रसून भिन्न-भिन्न रग और रूपो के इसलिए होते है कि पल-पल मे उठनेवाली उनकी अगणित प्रकार की भावनाओ के रस से पोषित होते है। ऐसे ही प्रेम-पादप इन्दुमती और ललितमोहन दोनो के हृदय मे उग गये थे।

मन को चचल कहा गया है और यह कथन जितना सत्य है उतने सत्य विरले ही कथन होगे। मन की चचलता के सम्मुख पानी की लहरो, बादलो के टुकडो, वायु के झोको की चचलता भी तुच्छ है, किन्तु जब कभी यह किसी दूसरे मन के साथ प्रेम-बधन में बँधकर बैठता है तब वह अपनी सारी चचलता छोड़ अचलवत् अचल हो जाता है और जितनी स्थिरता उसे इस स्थिति मे प्राप्त होती है, उतनी शायद किसी दूसरी स्थति मे नही। इन्दुमती और ललित-

मोहन दोनो के मनो की यही अवस्था हो गयी थी ; परन्तु ललितमोहन उन व्यक्तियो मे था जो तब तक ही डगमग नही होते जब तक उन्हे यह विश्वास रहता है कि वे सत पथ पर है, फिर चाहे वह कितना ही कठिन क्यो न हो ? इन्दुमती के आकर्षण ने ललितमोहन को एक ऐसे ढँग से क्षुब्ध भी कर दिया जैसी क्षुब्धता इसके पहले उसे कभी न हुई थी। न चाहने पर भी उसके मन में बार-बार उठने लगा कि इन्दुमती के प्रति उसका यह प्रेम कहाँ तक शुद्ध और उचित है। अग्रेजी मे एक कहावत है 'आउट आव साइट, आउट आव माइन्ड'—अर्थात् 'ज्योही दृष्टि के बाहर, त्योही हृदय के बाहर।' त्रिलोकी-नाथ के सम्बन्ध मे शनै शनै इन्दुमती के हृदय मे यही हुआ था, परन्तु ललित मोहन के लिए इसमे ठीक उल्टी बात हुई। ज्यो-ज्यो वियोग को अधिक समय बीतता जाता, मिलन की तडप बढती जाती, और इस विषय मे इन्दुमती तथा ललितमोहन की मानसिक दशा मे कोई अन्तर न था। ललितमोहन के जीवन मे तो यह सब एकदम नवीन अनुभव था। कानपुर और लखनऊ बहुत दूर न थे, पर मथुरा और गोकुल-बरसाना तो इससे भी कही समीप थे। फिर कृष्ण तो अनेक महत्त्वशाली कार्यो के कारण मथुरा से गोकुल न जा सके थे। मथुरा जाने मे राधा के लिए कौटुम्बिक एव सामाजिक मर्यादाएँ बाधक थी, किन्तु ललितमोहन को कोई काम न था, तथा इन्दुमती न कौटुम्बिक न सामाजिक मर्यादाओ को ही किसी प्रकार का बन्धन मानती थी। फिर न जाने कौनसी अज्ञात वस्तु ललितमोहन तथा इन्दुमती दोनो को ही रोके हुई थी।

अकस्मात् ललितमोहन के मन मे इन्दुमती को पत्र लिखने का विचार उठा। यह विचार उठते ही उसे अपने आप पर आश्चर्य हुआ कि करीब एक हफ्ते तक उसने इन्दुमती को पत्र क्यो नही लिखा, खासकर शिष्टता के नाते उसकी लखनऊ की खातिर-तसल्ली पर उसे धन्यवाद का पत्र तो कानपुर लौटते ही लिखना चाहिए था। यह सोच कि 'बेटर लेट दैन नेवर' अर्थात् 'नही की वनिस्बत देर ही अच्छी,' वह पत्र लिखने बैठा; पर उसने देखा कि पत्र लिखना कोई सहज काम न था। उसे विश्वास हो गया था कि इन्दुमती उससे प्रेम करती है। फिर से मिलने के समय वह इन्दुमती से क्या-क्या कहेगा, कैसा व्यवहार करेगा, इसके लिए भी उसने अपने मन में एक लम्बी-

चौडी योजना बनायी थी । पर यह क्या, पत्र लिखने को बैठते ही सारे विचार हवा हो गये ! उसने सुना था कि परीक्षाएँ देने के लिए जब लडके परीक्षा-भवन मे जाते है तब कुछ लडको को ऐसा हुआ करता है । जो पढा-लिखा होता है वह सब प्रश्नो के उत्तर लिखने को बैठते ही कपूर हो जाता है । उसे आज तक की किसी परीक्षा मे ऐसा न हुआ था । तो क्या यह बात अब एक पत्र लिखने के समय हो रही है ? जो कुछ हो, वह पत्र न लिख सका और तब उसने अपनी पढी हुई साहित्यिक पुस्तको मे से प्रेमियो के पत्र ढूँढना प्रारम्भ किया । दुष्यन्त के नाम शकुन्तला के पत्र के कई मसौदे पढे । माइकिल मधुसूदन दत्त द्वारा लिखे हुए अनेक नायिकाओ के नायको के नाम के पत्र देखे । डॉक्टर जान्सन्, बर्न्स, वाल्टर स्कॉट, हैजलिट, ब्राउनिग, कीट्स, शैली, बायरन, विक्टर ह्यूगो, बलजाक, मोपासा, नेपोलियन, गेटे, शिलर आदि अनेक पश्चिमी लेखको और कवियो द्वारा लिखी हुई प्रेम-पत्रिकाएँ पढी । इस चर्वित-चर्वण से उसे सहायता मिली । पत्र मे वह किन-किन भावो को प्रकट करे, इसका कुछ सिलसिला-सा उसके दिमाग मे बैठा, पर ज्योही उसने कलम उठा ली, त्योही 'प्रथमे ग्रासे मक्षिकापात' हुआ । पत्र मे सम्बोधन क्या हो, इस पर गाड़ी अटक गयी । बहुत सोचने, बहुत विचारने, दिमाग के एक-एक तन्तुओ और हृदय के एक-एक कोने को खोजने पर भी सम्बोधन के लिए कोई उपयुक्त शब्द न मिले । आखिर उसने तय किया कि पहले पत्र लिखकर वह सम्बोधन की बात सोचेगा । घण्टो के प्रयत्न के बाद पत्र तैयार हुआ । पत्र इस प्रकार था :

मै नही जानता कि थोडे से परिचय के बाद आपको पत्र लिखना कहाँ तक उचित है, लेकिन यह लिखे बिना नही रह सकता कि न जाने क्यो आपको पत्र लिखने के लिए हृदय उद्वेलित हो रहा है । एक विचित्र शक्ति मुझे प्रेरित कर रही है कि मै आपके सम्मुख अपना हृदय उँडेल दूँ । क्या लिखूँ, इसकी स्पष्ट कल्पना न होते हुए भी पत्र लिखूँ, यह विचार तेजी से दिमाग मे चक्कर लगा रहा है ।

मै पागल नही हूँ, लेकिन जो कुछ लिख रहा हूँ, किसी अन्त प्रेरणा के सहारे ही । मै चाहता हूँ कि बहुत कुछ लिखूँ, परन्तु इतनी सामर्थ्य इस क्षण मुझ मे नही कि मै जो कुछ चाहता हूँ सब लिख डालूँ । हृदय जो चाहता है

मस्तिष्क उसे ठीक प्रकार न समझने के कारण शब्दो मे व्यक्त नही कर पा रहा है।

मेरी एक ही लालसा है कि किसी तरह मै अपनी आत्मा का स्पष्ट चित्र इस पत्र मे खीचकर आपको भेज सकूँ। यह पत्र मेरे हृदय का प्रतिबिम्ब आपके पास पहुँचा दे और आप स्पष्ट रूप से देख सके कि मेरे अन्त करण में क्या हो रहा है। मुझे आश्चर्य है कि इतने थोडे से सहवास से एकाएक महान् परिवर्तन मेरे जीवन में कैसे हो गया ? मै समझ नही पा रहा हूँ कि हृदय आपको सब कुछ बता देने के लिए इतना व्याकुल क्यो है ? रह-रहकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप मेरी कोई चिर-परिचिता है। इस अल्प परिचय के अन्धकार के बीच एक ज्योति निरन्तर प्रकाशित हो, यह दर्शा रही है कि ससार मे प्रकाश केवल इस ज्योति का है, बाकी तो सब अन्धकार ही है। और मै चाहता हूँ, इसी प्रकाश को हृदय मे बन्द कर अपनी सम्पूर्ण सत्ता आलोकित कर दूँ।

इस क्षण जब मै अपने आज तक के जीवन का सिहावलोकन करता हूँ तो आपके साहचर्य का समय मुझे सबसे अधिक आनन्द और स्फूर्ति प्रदान करने वाले क्षणो मे अग्रगण्य प्रतीत होता है। मै स्मरण करता हूँ कि ऐसा अनुभव तो आज तक जीवन में हुआ ही नही। आपके साहचर्य का प्रत्येक क्षण अपनी अद्वितीय छटा लिये मेरे मानसिक नेत्रो के आगे नाच रहा है। चाहता हूँ प्रत्येक क्षण शतायु होकर फिर आवे और मै सदैव इसी अनुपम आनन्द का पान करता रहूँ।

आपका अल्प सहवास मेरे हृदय-पटल पर अमिट रूप से अकित हो गया है। सम्भव है यह अनुभव कल्पना के स्तर को छू रहा हो। हो सकता है बुद्धि और तर्क के प्रकाश मे यह अनुभव सार-हीन दिखायी दे। सम्भव है तूफान के बाद इन्द्रधनुष की तरह यह अनुभव विलीन हो जाय, लेकिन मै इतना जानता हूँ कि मेरा यह अनुभव अत्यधिक सुन्दर है। आपके साहचर्य-क्षण मै सुन्दर पुष्पो की तरह हार मे गूँथ रहा हूँ और हृदय उन क्षणो को वापस बुलाने के लिए अधीर हो रहा है। कितने मधुर है मेरे जीवन के वे क्षण जिनमें हृदय-तत्री से जीवन में प्रथम बार इस प्रकार के आनन्द-स्वर बोल रहे है।

आनन्द के साथ ही इतनी असीम पवित्रता का योग जीवन मे पहले कभी भी मैने नही पाया। इस आनन्द की तुलना मै पिछले किसी अनुभव से नही कर पा रहा हूँ। एक अग्रेज कवि की तरह मै सोच रहा हूँ कि 'यदि इतने पवित्र आनन्द का उन्मेष जीवन का सबसे बडा सद्गुण नही तो उस सद्गुण के बहुत करीब की वस्तु अवश्य है।' आपके सम्पर्क से मै समस्त चराचर मे प्रेम और दया का साम्राज्य देख रहा हूँ। घृणा और ईर्ष्या का लोप अनुभव कर रहा हूँ। समस्त सृष्टि को आनन्द-विभोर देख रहा हूँ। साथ ही दुखी प्राणियो के लिए असीम सहानुभूति मेरे हृदय मे जागृत हो गयी है!

एक अवर्णनीय कोमलता का अनुभव भी मै आपके दर्शन के बाद से कर रहा हूँ। कभी-कभी तो यह कोमलता इतनी कोमल हो उठती है मानो अब विचार का भार सहन न कर सकेगी।

जब मै यह सोचता हूँ कि ससार मे इतना प्रेम, इतनी पवित्रता, इतनी कोमलता, इतनी दया और इतना आनन्द क्यो है, तो मुझे एक विद्वान् का कथन याद आता है कि 'नारी की आत्मा प्रेम-पुज है, जिससे असीम प्रणय-किरणे अपने चारो ओर ही नही, पूर्ण सृष्टि मे प्रेम-प्रकाश फैला देती है। इस उज्ज्वल प्रकाश के प्रभाव मे ही सृष्टि मे समस्त सद्गुणो की उत्पत्ति होती है और मनुष्य अपने जीवन में इसी प्रकाश के सहारे उच्च और महान् होता है, लोक-कल्याण की ओर अग्रसर होता है, और विधाता की इस सृष्टि मे जगह-जगह आनन्द-गेह का निर्माण करता है।'

चाहता हूँ और कुछ लिखूँ, बहुत कुछ लिखूँ, पर हृदय की उद्वेलित दशा बढती ही जा रही है। एक फरासीसी ग्रन्थकार के इस कथन से पत्र समाप्त करता हूँ—'मेरा हृदय-सागर परिप्लावित हो रहा है। जो कुछ अधिकृत कर सका उसे ही पत्राकित कर दिया।'

आपका,
ललित

इस पत्र को पूरा करते-करते ललितमोहन ने न जाने कितनी कलमें बदली और जब-जब कलम बदली, हर बार कहा, 'आह, यह कलमें!' सारा पत्र पूर्ण होने पर एक भावना-वृक्ष का चित्र-सा दीखता था। प्रेम रूपी तना जिसमें भिन्न-भिन्न पक्तियाँ उसकी शाखाएँ और अक्षर उन शाखाओ के पत्ते

जान पडते थे। कोई-कोई शब्द लाल स्याही से लिखे गये थे। ये शब्द दीखते थे उन पल्लवो मे यत्र-तत्र खिले हुए पुष्प।

ललितमोहन ने देखा कि इतनी देर के बाद भी वह कोई मौलिक चीज न लिख सका था। जो कुछ उसने पढा था उसी मे से कही की ईट और कही का रोडा उस पत्र रूपी कुनबे मे जोडा गया था। पर चाहे मौलिक न हो, पत्र उसे पसन्द आया। उसने सोचा ऐसे अवसरो पर मौलिक बनने से शायद चीज उल्टी खराब हो जाती है। जब दिमाग ही न चल रहा था, तब मौलिकता किस स्थान से निकलती ? और दिमाग की ऐसी हालत मे ई ट और रोड़ा जोडना भी छोटी बात न थी। गनीमत यही हुई कि पत्र किसी तरह लिख गया। अब फिर सम्बोधन की तलाश शुरू हुई। सम्बोधनो की एक लम्बी सूची तैयार की गयी पर जब कोई सम्बोधन ठीक न जँचा तब उसने बिना सम्बोधन के ही चिट्ठी भेज दी।

अब ललितमोहन ने कोई पुस्तक पढनी चाही। अमरीका के प्रसिद्ध नाटककार, नील, के नाटको का एक सग्रह उठा उसने उसके पन्ने उलटना शुरू किया। जिस पन्ने पर उसकी दृष्टि अडी, उसमे एक वाक्य था 'नूतन प्रेम के स्वप्न मे जो मधुर आनन्द है उसका आधा भी जीवन की किसी वस्तु मे नही।' इस कथन को पढने के बाद कितने जाग्रत स्वप्न उसे दीखने लगे !

× × ×

जब इन्दुमती को यह पत्र मिला तब वह दोपहर का खाना खाकर अपने कमरे मे आयी ही थी। सबसे पहले लिफाफा खोलकर उसने पत्र लिखने वाले के नाम को देखा और ज्योही उसने 'ललित' पढा, त्योही उसका हृदय जोर-जोर से धडकने लगा। अब उसने पत्र को इतनी शीघ्रता से पढना आरम्भ किया, जितनी शीघ्रता से जीवन मे शायद उसने कभी कोई काम नही किया था। कितना हर्ष हुआ उसे पत्र को पूरा पढ लेने पर, और ज्योही उसने पत्र पूरा किया त्योही उसके मुख से एक विचित्र ढँग से निकला 'हाँ !' मानो जो कुछ पत्र मे लिखा है, वह यथार्थ रूप मे उसकी समझ मे आ गया, परन्तु कुछ ही क्षणो बाद उसने फिर से पत्र पढना शुरू किया। इस बार पत्र पूरा होने पर उसके मुँह से निकला—'आहा !' यह आहा था सन्तोष का द्योतक, लेकिन कुछ ही देर के पश्चात् उसने पत्र की तीसरी आवृत्ति आरम्भ की।

जब यह पूरी हुई तब आहा बदल गया 'ओहो !' मे, यह था द्योतक इस बात का कि पहले पत्र का जो अर्थ समझा गया था, उससे पत्र का यथार्थ अर्थ शायद भिन्न है और अब यथार्थ जानने के लिए पत्र का चौथी बार पढना आरम्भ हुआ। इस आवृत्ति के बाद इन्दुमती के मुख से निकला 'ऐहै !' याने अब पूरा अर्थ समझ मे आया। ये चारो शब्द 'हाँ', 'आहा', 'ओहो' और 'ऐहै' निकलती हुई साँसो के साथ शनै शनै बाहर आये थे। साँस का अश स्वर मे मिले रहने के कारण चारो शब्दो में एक खास तरह की सुरसुराहट रही थी। यह सुरसुराहट इस बात की द्योतक थी कि ये शब्द हृदय की निम्नतम् गहराई मे से निकले थे।

चौथी आवृत्ति के बाद इन्दुमती ने पत्र को अनेक बार चूमा, आँखो से लगाया, छाती से चिपकाया और जब वह यह कर रही थी तब उसके मन में एकाएक उठा, 'अगर विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है' तो अन्य व्यक्ति के पत्र मिलने से ऐसा हर्ष क्यो ? उसने बार-बार यह दोहराया— 'गलत उपदेश था, एकदम गलत।' अब उसने पत्र फिर से पढना आरम्भ किया। पढते-पढते उसकी आँखो में बार-बार आँसू आने लगे। और आँखो के हिलते हुए आँसुओ के कारण पत्र के अक्षर नाचने लगे। इस नृत्य को ताल देने लगे हृदय से उठनेवाले भावो के ठेके। जब आँसू घने हो जाते, तब पढना बीच मे रुक जाता। आँसू पोछने के कारण पढने का सिलसिला टूट जाता। अत फिर फिर से आरम्भ से पत्र पढा जाता। इस बार शुरू से आखिर तक पत्र पढने मे काफी समय लग गया। छोटे-मोटे ग्रन्थ को पूरा करने मे शायद इतना समय न लगता। और इस बार जब पत्र पूरा हुआ तब न जाने कितनी देर उसका लिफाफा और सिरनामा निरखा गया।

अब वह बैठी इस पत्र का उत्तर लिखने को। इन्दुमती की कलम चलने लगी, परन्तु ललितमोहन की चिट्ठी का जवाब नही लिखा जा रहा था। कलम लिख रही थी बार-बार ललितमोहन का नाम। कुछ देर बाद इन्दुमती को स्वय अपने ऊपर ही आश्चर्य हुआ। चिट्ठी के उत्तर की जगह उसने कितने बार ललितमोहन का नाम लिख डाला था। उसने उस कागज को फाड़ डाला और किसी तरह पत्र का मसौदा बनाना शुरू किया। एक के बाद दूसरा मसौदा बनने और कागज फटने लगे। कठिनाई से एक मसौदा लिखा

जाता, पर उसे पढते ही फटने मे कोई कठिनाई नही होती। जितनी देर उसके लिखने मे लगती, उतनी ही शीघ्रता से वह फाड़ डाला जाता। इन मसौदो के कागजो को फाड़ते समय इन्दुमती प्राय इनकी ओर देखती भी नही। उसके हाथ इन्हे फाड रहे है, यह भी उसे ज्ञात न होता। हाँ, उसके फाडे जाने का शब्द उसे सुनायी दे जाता और तब वह चौकती-सी उन फटे हुए कागजो को फेक नये मसौदे के लिए नया कागज उठाती। धीरे-धीरे बिजली के पखे की हवा से सारे कमरे मे फटे हुए कागज उडना शुरू हुआ, क्योकि रद्दी की टोकरी एक तो किसी हद्द तक ही कागज रख सकती थी और फिर उसमे पहले से कागज मौजूद थे। दोपहर को बारह बजे से शाम के छ बजे तक भी जब मसौदा न लिखा जा सका तब दाहना हाथ बॉये से दाबते हुए वह उठ खडी हुई। आखिर लिखते-लिखते कहॉ तक न थकती ? और फिर दाबा भी उसने उस हाथ को इतनी जोर से कि आराम मिलने की जगह उल्टा हाथ कल्ला उठा।

विवश हो दूसरे दिन के लिए पत्र-लेखन का कार्य स्थगित कर वह फिर से ललितमोहन का पत्र पढने लगी। न जाने कितने बार वह इस पत्र को पढ चुकी थी, पर उसे जितनी बार पढती, उसे एक नवीन आनन्द आता। चार बजे नौकर चाय लेकर आया था। उसने 'नही' कह चाय वापस कर दी थी। छे बजे शोफर आया पूछने के लिए कि वह बाहर जायगी या नही, उसे भी उसने 'नही' कह लौटा दिया। पत्र पढते-पढते ही उसे नीद आ गयी, पर इस समय उसकी पलके आँखो पर बन्द न होकर आँसुओ पर बन्द हुई। पत्र छाती पर रखा हुआ था। उसे दबाए हुए एक हाथ भी वक्षस्थल पर था। उसे सपने दिखना शुरू हुआ। पत्र के हर अक्षर के साथ उसने ललित-मोहन का किसी न किसी तरह का स्वरूप और कृति देखी। उसने कभी ॐकार के अन्दर चित्र मे बनी हुई कृष्ण की छवि देखी थी। कब देखी हुई बात कौनसे समय स्वप्न में किस रूप से दिखने लगती है! जब सध्या के भोजन के वक्त तक वह न उठी और जब अवधबिहारीलाल को सूचना मिली कि वह सो रही है तब यह सोचकर कि कही उसका स्वास्थ्य तो खराब नही है, वकील साहब उसके कमरे मे पहुँचे, देखा कि वह एक सोफा पर कोई कागज छाती से चिपकाए हुए निद्रामग्न है और फटे हुए कागजो के टुकडे बिजली का पंखा सारे कमरे मे उडा रहा है। कुछ आश्चर्य से उन्होने पुकारा—

'बेटी इन्दु !'

इन्दुमती हडबडाकर उठ खडी हुई।

'कैसी··कैसी तबियत है बेटा ?' वकील साहब ने कुछ चिन्तित स्वर मे पूछा।

तबियत तो उसकी बिलकुल ठीक थी, पर निद्रा और स्वप्न के कारण वह अभी भी पूरी तौर पर इस दुनियाँ के सम्पर्क मे न आ पायी थी, अत वह इधर-उधर देखने भर लगी। वकील साहब ने फिर से अपना प्रश्न दोहराया—'कैसी तबियत है, बेटा ?'

अब वह प्रायः होश मे आ गयी थी।

'ओ, बाबूजी ? ······ ····मुझे शायद नीद आ गयी थी, क्यो ?'

'तबियत कैसी है तेरी ?'

'तबियत ? तबियत तो बिलकुल ठीक है, बाबूजी !' उसने कुछ हक्के-बक्केपन से उत्तर दिया।

उसका अस्वाभाविक स्वर अवधबिहारीलाल से छिपा न रह सका। वे उसके निकट आकर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले, 'आजकल तू कैसी रहती है, बेटी ?'

सचमुच आजकल वह सदा जैसी रहती थी, उस तरह नही रह रही थी। ललितमोहन की चिटठी जल्दी से अपने शलूके के अन्दर छिपाती हुई वह बोली—'ठीक···ठीक, बिलकुल ठीक तो रहती हूँ, बाबूजी ··शायद भोजन का वक्त हो गया, क्यो ?' उसने घडी देखी, आठ के ऊपर दस मिनट हो चुके थे। वकील साहब ठीक आठ बजे खाना खाने बैठ जाते थे और प्रायः सुलक्षणा तथा इन्दुमती भी उन्ही के साथ खाती थी। इन्दुमती जल्दी से यह कह 'अभी मुँह धोकर चलती हूँ' गुसलखाने मे चली। उसकी चाल से ऐसा जान पडा मानो वह जेठ की धूप मे तपी हुई बालू पर से जा रही हो !

अवधबिहारीलाल कुछ देर तो चुपचाप खडे-खडे सोचते रहे ; फिर उन्होने उन फटे हुए कागज के टुकडो को उठाकर देखना शुरू किया। उन्होने बारी-बारी से कई टुकडे उठाये ; देखा, सब पर इन्दुमती के अक्षर है। उन्हे आश्चर्य हुआ इतने कागज देखकर और सब पर इन्दुमती के अक्षरो को पाकर, पर इसका रहस्य उनकी समझ में न आया। जब इन्दुमती लौटी, तब उसने

पिता को उन कागजो को देखते हुए देखा। उसके मुँह से एकाएक निकल गया, 'ओ ! मै एक लेख लिख रही थी, बाबूजी, पर ठीक तरह से लिखा नही गया, इसीलिए फाडकर फेक दिया !'

'लेख ?' अवधविहारीलाल ने और भी अधिक आश्चर्य से पूछा, क्योकि इन्दुमती को कभी लेख लिखते न उन्होने देखा था, न सुना।

'हाँ, बाबूजी, जब से कानपुर से वे साहित्य-प्रेमी ललितमोहनजी आये थे, तब से मैने भी लेख लिखना शुरू किया है।'

'ओ ! तो अब तू लेखिका भी बननेवाली है !' हँसते हुए वकील साहब बोले और दोनो चल दिये भोजनालय की ओर।

भोजन के समय कोई विशेष बात इन्दुमती न कर सकी, क्योकि उसके वक्षस्थल से स्पर्श करता हुआ जो पत्र उसके शलूके के अन्दर रखा था वह कानो के जरिये उससे बाते न कर सीधे उसके हृदय से बाते कर रहा था।

उस दिन रात को इन्दुमती को जरा भी नीद न आयी। कभी पलँग और सोफा पर पडे-पडे, कभी आरामकुरसी और सादी कुरसी पर बैठे-बैठे, कभी कमरे और बरामदे मे घूमते-घूमते, उसने सारी रात बिता दी।

दूसरे दिन फिर पत्र-लेखन आरम्भ हुआ, पर आज उसने अग्रेजी मे लिखना शुरू किया। उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है—

प्रिय ललितमोहन,

आपने मुझे याद रखा, इसलिए अनेक धन्यवाद ! कितने उत्साह से मैने आपका पत्र पढा है, और वह भी काफी समय तक। इस पत्र में एक शब्द भी ऐसा नही जिसे पढकर रोमाच न हो। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मैने अपना सम्पूर्ण हृदय पा लिया। इस पत्र मे ऐसी भावनाओ का समावेश है जो स्वयं जीवन की तरह मूल्यवान है,

स्पष्ट रूप से अनुभव किया है, साथ ही उसकी खूब प्रशसा भी। आपने मुझे स्मरण किया, इससे बढकर मेरे लिए ससार मे और कोई बात नही। आपके साहचर्य के वे अमूल्य, मधुर क्षण स्मृति-पटल मे अकित हो गये है।

आपसे मिलने के बाद एक व्यापक परिवर्तन मेरे जीवन मे पैठ गया है। उस क्षण से कौन-कौनसी भावनाओ ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है—यह शब्दो मे व्यक्त करना सम्भव नही। एक अत्यन्त शक्तिशाली लहर मेरी सम्पूर्ण सत्ता को एक अज्ञात आनन्द-गेह की ओर लिये जा रही है। और इस नये अनुभव में मुझे उस अवर्णनीय पवित्रता, कोमलता और अनुपम आनन्द का योग लक्षित होता है, जिसका वर्णन आपने अपने पत्र मे किया है।

प्रति क्षण मुझे इसका आभास होता है कि मै कुछ चाहती हूँ और मैं स्वय यह नही समझ पा रही कि मै चाहती क्या हूँ ? तो भी हृदय उसे पाने को लालायित है! जितना ही मै इस लालसा को दबाने का प्रयास करती हूँ, उतनी ही उसे सन्तुष्ट करने की प्रेरणा तीव्र हो जाती है।

इस लालसा मे चिन्ता और कष्ट लेश-मात्र भी नही। मुझे स्वय आश्चर्य है कि आपके दर्शन के बाद मै अधिक सम्पत्तिशालिनी का-सा अनुभव क्यो कर रही हूँ! मै समझ नही सकती कि अनन्त और तीव्र जीवन की लालसा मुझे क्यो हो गयी है ? प्रयत्न करके भी मै अपने पिछले जीवन में किसी ऐसे समय का स्मरण नही कर पा रही हूँ, जब अनन्त काल तक जीने की उत्कट अभिलाषा रही हो!

मेरा मस्तिष्क का प्रथम विचार आपका ही स्मरण करता है, मेरी प्रथम अभिलाषा आपके दर्शन फिर पाने की है। फिर आओगे न ?

आपकी,

इन्दु

पत्र रवाना करने के बाद इन्दुमती घर मे न रह सकी। वह बाहर घूमने निकली। आज की इस घुमाई मे उसने एक नया और आश्चर्यजनक अनुभव किया, जो युवक भी उसे नजर पडा, उसमे प्रिय ललितमोहन की कोई न कोई समानता दीखी; किसी के केश, किसी की भवे, किसी की आँखे, किसी की नाक, किसी के ओठ, किसी के दाँत, किसी की ग्रीवा—मतलब यह कि किसी का कोई और किसी का कोई अवयव उसे ललितमोहन के समान जान

पडा , किन्तु जब वह घर लौटी, अपने आपसे कहने लगी—'धत्...धत्—कितना भ्रम, महान् भ्रम मुझे हुआ ! कहाँ वे और कहाँ ये सब ?'

: १३ :

इन्दुमती के पत्र का ललितमोहन पर अत्यधिक असर पडा और उसके उपजाऊ मस्तिष्क ने उसके एक नही, अनेक गहरे-गहरे मतलब निकाले । उसे वह पत्र नही, पर इन्दुमती के हृदय को भीतर से देखने का 'एक्स-रे' जान पडा । लखनऊ के एक सप्ताह के सहवास से ललितमोहन को मालूम हो गया था कि इन्दुमती एकदम आधुनिक युवती है । धर्म जैसी किसी चीज पर उसका यकीन नही। सामाजिक नैतिक बन्धनो को वह समय-समय पर परिवर्तन होनेवाली वस्तु मानती है ! विवाह पर उसका कोई विश्वास नही, और विवाह को वह एक तरह की वेश्यावृत्ति समझती है। और ज्योही ललितमोहन को यह सब याद आया, त्योही उसे अपने पिता द्वारा रखी हुई वेश्याएँ स्मरण आ गयी। इस समय उसका मन एक के बाद दूसरे और दूसरे के पश्चात् तीसरे विचार को लेकर उस एँजिन के समान दौड रहा था, जिसके पीछे एक के बाद दूसरा और दूसरे के पश्चात् तीसरा डब्बा लगा रहता है, और जिसका शराब के नशे मे चूर ड्राइवर सिग्नल गिरा है या उठा, यह तक नही देखता । ऐसे समय मे जिस तरह गार्ड ब्रेक का उपयोग करता है, उसी तरह एकाएक ललितमोहन की बुद्धि ने ब्रेक का काम किया, किन्तु बहुत तेज गाडी को एकदम रोकने पर कभी-कभी वह उलट जाती है । उसकी विचारधारा का भी वही हाल हुआ और वह अवाक्-सा हो इस बडे भारी ऐक्सीडेण्ट को देख स्तब्ध-सा रह गया । उन वेश्याओ से इन्दुमती का मिलान ! इन्दुमती को धर्म पर यकीन न होगा, सामाजिक बन्धनो को वह परिवर्तनशील मानती होगी, विवाह पर उसका विश्वास न होगा और विवाह को वह वेश्यावृत्ति समझती होगी, पर इसका क्या यह अर्थ होता है

कि वह उसके पिता के पास रहनेवाली वेश्याओ के सदृश उसके पास रहना स्वीकार करेगी ?

और ज्योही उसने यह सोचा, त्योही इन्दुमती की तेजस्विता का स्मरण कर वह अपनी इस विचारधारा पर स्वय ही कॉप उठा। उसके पिता सनातनी है। वे उसका विवाह किसी कायस्थ की लडकी से करना मजूर न करेगे, शायद अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा भी न करे, इसलिए अपनी ऐहिक कामनाओ को पूरा करने के लिए वह ऐसी नीच बात सोचने लगा था। फिर इन्दुमती को धर्म, सामाजिक बन्धनो और विवाह पर विश्वास न होगा, उसे तो है। वह तो इस जमाने में कालेज का आधुनिक विद्यार्थी होते हुए भी गुरुकुल के विद्यार्थियो के समान सन्ध्या-बन्दन करता है, वह तो नित्य अपने कौटुम्बिक सीताराम के मन्दिर को जाता है, उसने तो अब तक ईमानदारी के साथ ब्रह्मचर्य का पालन किया है। अचानक एक सुन्दर युवती को देखते ही सारा ब्रह्मचर्य इस तरह भ्रष्ट हो गया कि वह उसे वेश्या के सदृश रखने की बात सोचने लगा! अनेक बार उसे पिता की धर्म-निष्ठा और वेश्यागमन दोनो साथ-साथ कैसे चलते है, इस पर आश्चर्य हुआ था। पिता को अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखने पर भी, उनकी इस सकर मनोवृत्ति पर उसे अगणित बार ग्लानि भी आयी थी, और आज वह खुद इसी तरह की बात विचारने लगा! उसने अपने को न जाने कितने बार धिक्कारा!

जिस तरह लौटी हुई ट्रेन के डब्बो को 'क्रेन' उठा-उठाकर दूसरी गाडियो के लिए रास्ता साफ कर देती है, उसी तरह उसकी बुद्धि ने पथ-भ्रष्ट विचारो को रास्ते से अलग किया और अब उसने सीधी पटरी पकड़ी। उसने देखा कि लखनऊ से कानपुर लौटने के दिन उसने जो सोचा था कि इन्दुमती का उसका सम्बन्ध भी एक सिद्धान्त की बात है, जिस पर अटल रहने के लिए वह ससार मे किसी की भी अवहेलना कर सकता है, वही ठीक विचार है। उसे साहित्य मे पढे हुए न जाने कितने प्रेम याद आये। सच्चा प्रेम जीवन मे एक बार ही होता है, एक व्यक्ति से ही होता है और न जाने किस जन्म से आरम्भ होकर किस जन्म तक चलता रहता है! उसे पुनर्जन्म पर विश्वास था, इस प्रकार के प्रेम पर यकीन था। उसके हृदय मे अब तक किसी के

लिए इस तरह का प्रणय उत्पन्न न हुआ था। फिर इन्दुमती के मन मे भी उसके लिए इसी प्रकार का प्रेम था, इसमे अब उसे किसी प्रकार का सन्देह न रह गया था । अत: उसने तय किया कि वह इन्दुमती से ही विवाह कर सकता है, अन्य किमी से नही। इस विवाह मे जो अडचने थी वे भी क्रमश. उसके अनुमान मे आने लगी।

उसके ध्यान मे आया कि पहली बाधा स्वय इन्दुमती की तरफ से आ सकती थी । वह उससे प्रेम करती है तो क्या हुआ, विवाह पर जब उसे विश्वास नही, तब शायद वही विवाह मजूर न करे, पर समाज के वर्तमान सघटन मे प्रेम करनेवाले के साथ विवाह करने के सिवा अन्य किस रीति से सम्मान के साथ रहा जा सकता है, यह उसकी समझ मे न आया। इन्दुमती बे समझ नही, वरन् उसे तो वह समझ का अवतार दीखती थी। इतनी बड़ी बात को वह न समझे, यह हो नही सकता, अत उसने सोचा कि यदि इन्दुमती सचमुच ही उससे प्रेम करती है तो उसकी ओर से कोई अडचन न आयेगी।

दूसरी आपत्ति उसे अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा की दीखी, पर उसे उसने कोई महत्त्व न दिया। लखनऊ मे बातो ही बातो में अवधबिहारीलाल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कितनी बड़ी चीज समझते है, यह इन्दुमती से उसे मालूम हो गया था। इन्दुमती को जिस तरह की स्वतन्त्रता उन्होने दे रखी थी वह तो उसने स्वय ही देखी थी । सुलक्षणा आँखे बन्द कर पति का अनुसरण करती है, यह भी उससे छिपा न था। फिर दोनो ललितमोहन से कितना स्नेह करने लगे थे, यह वह भली भाँति जान गया था । अतएव इस दिशा में कोई विशेष झगडा उठने की उसे सम्भावना न दीखी।

घूम-फिरकर 'म्याऊँ का ठौर' उसे अपने पिताजी ही मालूमप डे। उनके सनातनी विचार, उनका क्रोधी स्वभाव, उनका हठ, सब एक-एक कर उसे याद आये । ललितमोहन भी अपने को सनातन धर्मावलम्बी कहता था , पर वह इस तरह के सकीर्ण जात-पॉत के बन्धनो को न मानता था, और सेठ रामस्वरूप थे सकीर्ण सनातनी । उनकी सकीर्णता के कारण कैसी-कैसी आफते आयेगी, इसकी उसने कल्पना की। फिर उनके क्रोध का मुकाबला तो वह चुप रहकर कर लेगा, पर क्रोधी रामस्वरूप मे पुत्र का स्नेह भी कितनी

दूर तक भरा था, यह भी तो ललितमोहन जानता था। रामस्वरूप के लिए उसके सिवा और था कौन? अनेक बार सेठजी कहा करते, 'मने तो एक आँख सूँ सारो ससार सूझे है।' रामस्वरूप ने उसके लिए क्या नही किया? पिता पुत्र के लिए जो कुछ कर सकता है, सब कुछ। उसे किस प्रकार पाला, पोसा, बडा किया, और उसकी पत्नी के स्वरूप मे किस-किस करोडपति की लडकी लाने का विचार वे कर चुके थे! किस धूमधाम, किस उत्साह से वह विवाह करेगे, इसके प्रोग्राम बना चुके थे। कई बार वे कहते —'यह कारज म्हारी जिन्दगी को आखरी कारज होसी।' पर जो कुछ हो, विवाह उसका होने की बात थी, उसके पिता का नही। और फिर सिद्धान्त का मामला था—'जीवन-सगिनी उसी को बनाया जा सकता है, जिसके लिए हृदय में प्रेम हो, ऐसा प्रेम जैसा अब तक उसके मन मे किसी के लिए न हुआ था।' ललितमोहन ने तय कर लिया कि उसका विवाह होगा तो इन्दुमती से, अन्यथा वह जन्म-भर कुँआरा ही रहेगा। जीवन की भावी दिशा ललितमोहन को अब स्पष्ट दिखायी देने लगी, और जब वह उसे बाह्यचक्षुओ से देखते हुए भी अन्तश्चक्षुओ से देख रहा था तब उसे एकाएक याद आ गया बेल्जियम के एक साहित्यिक मैटरलिक का यह कथन—'प्रेमशून्य भावना से देखना मानो अपने नेत्रो को अन्धकार मे देखने के लिए व्यर्थ पीडा देना है।' इस कथन के बाद ही उसे स्मरण आया इगलैड के प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रन्ड रसल का यह कथन—'सब प्रकार की सतर्कताओ मे प्रणय-क्षेत्र की सतर्कता वास्तविक आनन्द के लिए शायद सबसे अधिक घातक होती है।'

ललितमोहन ने इस प्रेम पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने का निर्णय कर लिया।

अब उसने पहले सेठ रामस्वरूप के पास इस मामले को पहुँचाना आवश्यक समझा। वह मुकाबले में तो उनसे वह यह सब कह न सकेगा, यह वह जानता था। चाहे उसने पिता का कभी-कभी कहना न माना हो, पर उसकी जबान उनके सामने न खुलती थी। किसी से कहलाना उसे उचित न मालूम हुआ; न जाने कहनेवाला उन्हे किस तरह कहे; जो वह कहलाना चाहता है, उसका न जाने कौनसा भाग छोड़ दे, अपनी ओर से न जाने कैसी नमक-मिर्ची मिला दे, इसलिए उसने सेठजी को पत्र लिखने का निर्णय

किया। राजी-खुशी के पत्रो के सिवा उसने पिता को किसी गम्भीर विषय पर कभी कोई चिट्ठी न लिखी थी, पर अन्य कोई मार्ग उसे न सूझा। उसने सोचा, 'पिताजी तो अगणित बार मेरे विवाह के सम्बन्ध मे मुझसे कह चुके है, न जाने किस-किस से कहला चुके है, अब मै ही लिखूँ। मैने उन्हे सदा यही उत्तर भेजा है कि बी० ए० के बाद मै विवाह करूँगा। मौका भी आ गया है।' इस पत्र के लिखने मे उसे कोई दिक्कत न हुई। मस्तिष्क ने निर्णय कर दिया था। निश्चय की हुई बात पर अमल करना ललितमोहन जानता था।

जो चिट्ठी उसने पूरी कर सेठ रामस्वरूप को भेजी, वह इस प्रकार थी—

पूज्य काकाजी,

आपको स्मरण होगा कि कई वर्षो से आप मुझसे विवाह करने के लिए कहते आ रहे है। मैने भी कहा था कि मै बी० ए० पास करने पर ही शादी करूँगा। ईश्वर की दया और आपके आशीर्वाद से मै बी० ए० का इम्तहान दे चुका अत मैने निश्चय किया है कि मै शादी भी कर लूँगा।

जिससे शादी करना चाहता हूँ उसे आप पसन्द करेगे या नही, कह नही सकता, पर यदि आपने भी पसन्द कर लिया तो मुझे असीम हर्ष होगा।

मुझ पर आपका असीम स्नेह है, यह मै जानता हूँ। स्नेह और वर्तमान जमाने को देखते हुए, जिसमे हर पिता अपने पुत्र को अपने मानिन्द बनाना चाहता है, यदि आप मेरे प्रत्येक कार्य पर अपनी छाप चाहते है तो यह कोई बुरी बात मै नही मानता। ईश्वर साक्षी है कि मैने सदा इस बात का पूरा प्रयत्न किया है कि सभी बातो मे आपको सन्तोष रहे। सिद्धान्त की बातो को छोड व्यर्थ ही आपको दु ख पहुँचाने का दुस्साहस आज तक मैने नही किया। आपकी प्रत्येक इच्छा और आज्ञा को निभाया है, किन्तु आज मै एक ऐसी बात लिख रहा हूँ, जो चाहे आपको अरुचिकर हो, लेकिन मै उसे सिद्धान्त की बात मानता हूँ। आज एक ऐसे निर्णय को आपके सामने रख रहा हूँ जो आपके विचारो को शायद ठेस पहुँचाये, आपकी भावनाओ को शायद कुंठित कर दे और आपकी मेरे प्रति असीम ममता को भी शायद विलीन कर दे। लेकिन इस निर्णय के लिए मै बाध्य हूँ। क्यो बाध्य हूँ, यह मेरे अधीन नही, न इसे समझाने की मुझ मे क्षमता है।

तर्क और विचारो तक मेरा और प्रत्येक व्यक्ति का जोर रहता है, किन्तु हृदय तो एक विचित्र वस्तु है ! बुद्धि जितनी ही सजग और सतर्क रहती है, हृदय उतना ही अनियन्त्रित। मनुष्य की बुद्धि पर कौन अधिकार करे और कौन न करे, यह बहुत दूर तक मनुष्य के अधीन है, परन्तु मानव-हृदय पर कब किसका अधिकार क्यो हो जाता है, यह एक ऐसी समस्या है जिसको मानव आज तक सुलझाने मे असमर्थ रहा है। शायद विधि का विधान है कि जीवन की अन्यान्य समस्याये सुलझने के बाद भी यह समस्या न सुलझे—शायद जीवन का रहस्य इसी मे छिपा है। साराश यह कि जिस निर्णय पर मै पहुँचा हूँ, वह हृदय से सम्बन्ध रखता है, मस्तिष्क से नही।

आपकी पुत्र-वधू के लिए मैने लखनऊ के प्रसिद्ध वकील श्री अवध-बिहारीलाल की कन्या, इन्दुमती, को चुना है। यदि आपसे भी इस विवाह की आज्ञा पा जाऊँ तो अपने को धन्य समझूँ !

आपका आज्ञाकारी पुत्र
ललितमोहन

पत्र भेजने के बाद ललितमोहन अपने कमरे में टहलने लगा। यह टह-लना उसने आरम्भ किया अपने पैरो की उँगलियो पर, अपना सारा वजन रख, इस तरह धीरे-धीरे, मानो उसके कमरे मे कोई सो रहा हो और वह कही उसके पैरो की आहट से जाग न जाय !

× × ×

जब ललितमोहन का पत्र सेठ रामस्वरूप ने पढा तब उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। पुत्र के जिस विवाह को करने के लिए सेठजी वर्षों से आतुर थे, जिस विवाह के फलस्वरूप वे पौत्र-मुख अवलोकन के लिए न जाने कितने उत्कंठित थे, जिस विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के कारण अनेक बार वे कैसी-कैसी कटु बाते ललितमोहन को कह चुके थे, उसी विवाह का प्रस्ताव आज ललितमोहन ने उनके सामने रखा था। 'प्राप्ते षोडषेवर्षे पुत्र-मित्रवदाचरेत्' यह सेठजी शुद्ध-अशुद्ध किसी तरह भी कई बार कहा अवश्य करते थे, पर उनका पुत्र बीस वर्ष की आयु मे, बी० ए० की परीक्षा देने के बाद भी इस तरह का आचरण कर सकता है, यह उनकी कल्पना के भी परे की बात थी। क्रोध विवेक का यो ही नाश कर देता है, फिर यदि क्रोध किसी

आश्चर्यजनक बात पर उत्पन्न हो, तब तो कहना ही क्या ? सेठ रामस्वरूप का हृदय और मस्तिष्क ही थर्रा उठा, यही नहीं, शरीर भी आपाद मस्तक थरथराने लगा। भ्रकुटी वक्र हो गयी, आँखे लाल, और ओठ काँपते हुए आपसे आप दाँतो के नीचे चले गये, जो इस उम्र मे भी बत्तीस के बत्तीस मौजूद थे। वे पत्र को पढने के बाद बैठे न रह सके। खडे हुए। जल्दी-जल्दी पहुँचे ललितमोहन के कमरे मे।

सेठ रामस्वरूप ने पहले ललितमोहन को ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक देखा, एक बार नही, कई बार, और फिर एकाएक विस्फोट-सा हुआ और वाक्य तथा शब्द ही नही, एक-एक अक्षर और उनकी एक-एक मात्रा विस्फोटक पदार्थ के समान रामस्वरूप के मुख से निकलने लगी—

'तूने · तूने मने या चिट्ठी भेजी है, तूने ··तूने !···या चिट्ठी मने !··· सरम नई आयी। तूने मने इसी चिट्ठी लिखवा में ··अरे बेसरम, थोडो··· थोडो तो लिहाज राखतो ! फूट गया म्हारा करम !·· धूल पड़ गयी सारी सपेती मे ! (पर दुर्भाग्य से सेठजी के सफेद बाल न होकर खिजाब के कारण काले थे !) · ई वास्ते तो मै इन्टरन्स के पीछे पढातो ही नई थो, पर वे म्हारा दोस्त·· म्हारे म्हारे घर को भला चाने वाला ! अरे दोस्त नही, दुश्मन दुश्मन बेटो सीख जासी · पढ जासी···करम फूट्या ! आओ ·· देखो यो सीख्यो बेटो ! यो पढ्यो ! आजकल का ये कालज···लाये लगे सब मे ! · पहले ही ब्याव कर देतो · नही मानतो, तो आज इसी चिट्ठी मने क्यूँ मिलती ? · पण सुनले तू···कान खोल के सुन ले ! दोनो कान · सुन्यो, दोनो कान ! · म्हारो घर मे यो अधरम को काम नही होसी कदेही नही ! · बाणियारी बेटी घर आसी, बाणियारी···धरम-करमवाली · कायथ की बेटी म्हारे घर आवे ! नाटक करवा वाली ··नाटक···नाटक · नाटक··· !'

जैसे जाडे के मौसम मे नहाने के बाद विष्णु सहस्रनाम का पाठ करते-करते सेठजी गुसलखाने से पूजा घर में काँपते-काँपते जाते थे, उसी तरह इस मई की गरमी मे 'नाटक' शब्द का पाठ करते-करते काँपते हुए वे ललितमोहन के कमरे से अपने कमरे मे आ गये, और वही टहलने लगे। पत्र मिले काफी देर हो चुकी थी। हृदय का तूफान अनेक मार्गो से बह चुका था, शब्दो से, आँखो से, नाक से, लम्बी डगो से चलने के कारण शरीर को कुछ हवा

भी लग चुकी थी, अत, थर्मामीटर का पारा कुछ नीचे उतरना स्वाभाविक ही था। कुछ देर पश्चात् उन्होने जोर से पुकारा—'कोई है ?'

दौड़ते हुए एक नौकर ने प्रवेश किया। नौकर को देखकर सेठजी बोले—'मोतीलाल' को भेज दे, और फिर उसी तरह टहलने लगे। नौकर चला गया और कुछ ही देर में एक अधेड अवस्था का ठिगना और दुबला-सा आदमी एक फैल्ट कैप लगाये तथा कोट धोती पहने हाजिर हुआ। उसे देख सेठजी गद्दी पर बैठ गये और बैठते-बैठते बोले—'एक चिट्ठी लखनऊ के वकील को लिखना है; लिखो, मै बोलता हूँ।' वाक्य का अन्तिम अश कहते-कहते उनके दाहिने हाथ की मुट्ठी बँध गयी, वह उठा भी, जान पडा जोर से तकिए को मुक्का लगनेवाला है, पर तकिये का सौभाग्य था, जब हाथ नीचे आया मुट्ठी खुल गयी थी, फैली हुई हथेली धीरे से तकिये पर रख दी गयी।

एक डेस्क में से दफ्ती, दवात, कलम, कागज, निकालकर मोतीलाल गद्दे के नीचे के कालीन पर बैठ गया। उसने लिखना शुरू किया और सठजी ने बोलना। हैंडिल घुमाने पर, अथवा पैर से 'सेल्फ स्टार्टर' चलाने पर जिस तरह मोटर का एँजिन चलकर आवाज देने लगता है, उसी प्रकार रामस्वरूप के मुख से वाक्यो का निकलना आरम्भ हुआ और इसमे सहायता पहुँचाना आरम्भ किया लड्डूगोपाल की पत्थर की एक मूर्त्ति ने। यह मूर्त्ति सदा रामस्वरूप के गद्दे के निकट रखी रहती थी, इससे प्राय कागज दबाने का काम लिया जाता था, पर ऐसे गम्भीर अवसरो पर रामस्वरूप इस अपने दोनो हाथों में उठा लेते। इसके हाथ में आते ही उन्हे न जाने क्यो कुछ सहारा-सा मिल जाता। मालूम नही, रामस्वरूप को यह सहारा इस मूर्त्ति के लड्डूगोपाल की मूर्त्ति होने के कारण मिलता था, या किसी वजनदार चीज के हाथ मे आ जाने की वजह से ही!

कानपुर,
८ मई, १९१९

भाई अवधबिहारीलालजी,

जयगोपाल।

इस चिट्ठी के साथ मैं आपको चिरजीव ललितमोहन की चिट्ठी की नकल भेज रहा हूँ। इस चिट्ठी की नकल से आपको सारी हालत मालूम हो जावेगी।

मैने ललितमोहन से कह दिया है कि यह विवाह होना तो दूर रहा, सोचा तक नही जा सकता। आपके प्रैक्टिस मे मैने जो थोडी-बहुत मदद देने की कोशिश की थी, उसका ऐसा फल आपकी तरफ से मिलेगा, इसकी मै सपने में भी उम्मीद नही करता था। अब मुझे मालूम हुआ कि जुबिली का यह सारा स्वाँग क्यो रचा गया था! इसीलिए मेरे या ललितमोहन के आने के लिए आपने इतना आग्रह किया था। आप जानते थे कि मै तो आने से रहा, आयेगा तो ललितमोहन ही और बच्चा होने के कारण उसे सहज मे ही फँसा लिया जा सकेगा! मै सनातनधर्मी मारवाडी अग्रवाल हूँ, आजकल के धरम-करम न माननेवालो मे नही। आपको चाहे अपनी लड़की दूसरी जात मे ब्याहने में उजर न हो, और जो लडकी नाटक करती है, वह तो खुद अपना वर भी चुनेगी, तथा ऐसी लड़की को किसी को भी देने मे उसके माँ-बाप को भी क्या इतराज हो सकता है? पर मै कायस्थ की लड़की अपने घर मे लाने की बात भी नहीं सोच सकता और फिर ऐसी लडकी जो नाटक मे पार्ट लेती हो! आपने चाहे अपनी लड़की को वर चुनने की आजादी दे दी हो, पर मै अपने जीते-जी ललितमोहन को इस तरह की स्वतन्त्रता नही दे सकता। हमारे घर में न आज तक इस तरह के अधर्म हुए है और न कभी हो सकते है। आप हमारे वकील रहे है। आप यह भी जानते है कि सारी जायदाद मेरी निज की कमायी हुई है। अगर ललितमोहन ने मेरा कहना न माना तो इस जायदाद मे से फूटी कौडी भी उसे नहीं मिलेगी, सारी जायदाद मै पुण्य खाते में लगा दूँगा। वकील लोग तो बहुत दूर की सोचते है, इसलिए अगर आपने यह सोचा हो कि आपकी लडकी मेरे लडके से ब्याह कर इतनी बडी जायदाद की मालकिन हो जावेगी तो इस भरोसे भी न रहिएगा। ललितमोहन दर-दर का भिखारी होकर ही यह शादी कर सकता है।

आपका शुभचिन्तक,

चिट्ठी पर सेठजी ने दस्तखत कर दिये—रामस्वरूप' और फिर कुरते की जेब से ललितमोहन के आये हुए पत्र को निकाल मोतीलाल के निकट फेकते हुए रोब भरे स्वर मे बोले—'यह है ललित की चिट्ठी जिसकी नकल इस चिट्ठी में जाना है। नकल कर चिट्ठी लाकर मुझे दो। अवधबिहारी को चिट्ठी जबाबी रजिस्टरी जायगी—फौरन्! और खबरदार बात बाहर

गयी तो ’

‘नही, सरकार, बात बाहर कैसे जा सकती है ?’ मोतीलाल ने सारी चिट्ठी अपने मुँह को एक अजीब तरह से बन्द करके लिखी थी। जब तक उसका मुँह बन्द रहा, वह किसी खिची हुई डोरी से बन्द बटुआ की तरह दीखता रहा। उसके स्वर में कुछ अजीब-सी खनखनाहट थी, अत मुँह खोल-कर ज्योही उसने उपर्युक्त वाक्य कहा, त्योही जान पडा कि बटुए के खुल जाने से उसमे रखे हुए रुपये खनखनाकर गिर पडे हो ! यह वाक्य कहते-कहते उसने ललितमोहन की चिट्ठी उठा ली।

जब मोतीलाल डेस्क मे दफ्ती, कागज, कलम, दवात रख रहा था तब डाँटते हुए रामस्वरूप ने कहा—

‘तुम खुद स्टेशन जाकर रजिस्ट्री लगाओ, इसी डाक से चिट्ठी निकल जानी चाहिए , सुना, इसी डाक से !’

‘जो हुक्म’ कहकर मोतीलाल झटपट रवाना हुआ। वह जीने से इस तेजी से उतरा, मानो ऊपर की मजिल मे आग लग गयी हो !

जब तक वह चला न गया तब तक रामस्वरूप उसकी ओर देखते रहे। फिर मुक्के से कई बार एक गाव तकिये को ठोका और उठ खडे हुए। अब फिर से टहलना शुरू हुआ, पर अब टहलने मे उतनी तेजी न थी।

: १४ :

इन्दुमती ने जब से ललितमोहन को पत्र भेजा था तब से वह सदा ही चिट्ठीरसा की बाट जोहा करती थी। जब डाकिया आता, तभी उसे यह मालूम होता कि वह उसी के नाम का पत्र लाया है और वह ललितमोहन का है।

जुडिशल कचहरी गरमी के कारण बन्द होनेवाली थी, पर अवधबिहारी-लाल के समान बडे-बडे वकीलो के मुकदमे कुछ पहले ही निपट चुके थे, इस-लिए अवधबिहारीलाल आजकल प्रायः घर ही रहते थे। सेठ रामस्वरूप की

रजिस्ट्री चिट्ठी जब करीब १२ बजे दिन को अवधबिहारीलाल को चिट्ठीरसा ने लाकर दी, तब इन्दुमती उन्ही के पास बैठी थी। उसने भेजनेवाले का नाम पढ लिया। पत्र किसी मुकदमे के मामले के सम्बन्ध मे हो सकता था, पर उसके सम्बन्ध मे रामस्वरूप वकील साहब को क्या लिख सकते है, यह उसकी समझ मे न आने पर भी वह वहाँ बैठी न रह सकी और जल्दी से उठकर चल दी। इन्दुमती के सदृश बात की परवाह न करनेवाली, किसी बात से न डरनेवाली युवती मे कैसा विलक्षण परिवर्तन हो रहा था!

डाकिये के जाने पर अवधबिहारीलाल ने उस लिफाफे को खोला तब उसमे दो चिट्ठियाँ निकली, एक उनके नाम सेठ रामस्वरूप की और दूसरी रामस्वरूप को दी हुई ललितमोहन की चिट्ठी की नकल। दोनो पत्रो को उन्होने पढा और उनके पढने पर उनकी वही हालत हुई जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है 'काटो तो खून नही।' वकील साहब बडे गम्भीर मनुष्य थे, भयानक से भयानक मुकदमे लड़ चुके थे, पर इन चिट्ठयो को पढ उन्हे चक्कर-सा आ गया। पत्रो को टेबिल पर पटक उन्होने अपना सिर अपने दोनो हाथो पर रख लिया। कुछ देर वे इसी अवस्था मे बैठे रहे। कुछ क्षण पश्चात् जब पहले धक्के का असर कम पडा, तब उन्होने सिगरेट उठाया। सिगरेट उन्होने दोनो ओठो के बीच मे दबा लिया, पर बिना उसे जलाए ही उन्होने फिर से इन चिट्ठियो को पढना आरम्भ किया। उनका मन था यथार्थ मे चिट्ठियो मे। सिगरेट को हाथो ने नित्य के अभ्यास के कारण ओठो तक पहुँचा दिया था, और ओठो ने भी उसी अभ्यास की वजह से उसे धारण भी कर लिया था, परन्तु उसे जलाने के लिए मन के जिस योग की जरूरत थी, वह इस समय मन न दे सका। पत्रो की तीसरी आवृत्ति के समय सिगरेट जला और जब चौथी बार उन्होने रामस्वरूप की चिट्ठी को पढना शुरू किया, तब रह-रहकर कुछ शब्द आपसे आप उनके मुँह से निकलने लगे—'प्रैक्टिस में मदद देने का फल', 'जुबिली का स्वाँग', 'बच्चा होने के कारण फँसाव', 'जो लड़की नाटक करती है', 'वकील लोग तो बड़ी दूर की सोचते है', 'इतनी बड़ी जायदाद की मालकिन', 'दर-दर का भिखारी'। उन्होने फिर से चिट्ठियो को टेबिल पर रख दिया और सामने इस तरह देखने लगे मानो शून्य मे कोई बहुत दूर की वस्तु को देख रहे हो। कुछ देर बाद उनकी दृष्टि फिर से चिट्ठियो पर पड़ी। उन्होने रामस्वरूप

की चिट्ठी को उठा लिया और उसे देखने लगे। यद्यपि उस चिट्ठी को वे चार बार पढ चुके थे, फिर भी अब वे उसे इस प्रकार देख रहे थे कि वे उसे पढ रहे है, या देख रहे, यह शायद उन्हे भी नही मालूम था। इसी मुद्रा मे उनके दोनो ओठो के बीच दबा हुआ सिगरेट बुझ गया। उन्हे उस समय उसका बुझना भी ज्ञात नही हुआ, पर कुछ देर बाद एकाएक वे चौक-से पडे। बुझे हुए सिगरेट को 'ऐश ट्रे' मे डाला, चिट्ठियो को हाथ मे उठाया और जल्दी से सुलक्षणा के कमरे मे पहुँचे। सुलक्षणा बैठी हुई कुछ सी रही थी। वकील साहब को सामने देख वे उठ खडी हुई, पर ज्योही उन्होने अवधबिहारीलाल की ओर देखा त्योही चौक-सी पड़ी। वे अवधबिहारीलाल की हर मुद्रा तथा उसका अर्थ अच्छी तरह जानती थी। जीवन मे उन्होने वकील साहब को इस प्रकार की मुद्रा मे इन्दुमती की बीमारी के सिवा और कभी न देखा था। वे कुछ घबड़ाकर बोली—

'क्यो, क्या हुआ, कैसी तबियत है ?'

अवधबिहारीलाल ने बिना एक शब्द भी कहे उन पत्रो को सुलक्षणा के हाथ में रख दिया। काँपते हाथो से सुलक्षणा ने चिट्ठियाँ लेकर उन्हे पढना आरम्भ किया। वे उन्हे कितनी शीघ्र पढ रही थीं, यह उनकी आँखो की पुतलियो के एक सिरे से दूसरी ओर, और एक पक्ति से दूसरी पर दौड़ने से ज्ञात हो जाता था। दोनो पत्रो के पूरे होते न होते शान्त सुलक्षणा के मुख से भी निकल गया—'ओह ! बेटी !' और वे चिट्ठियाँ उनके हाथ से फर्श पर गिर पडी।

इन्दुमती का कमरा सुलक्षणा के कमरे से लगा हुआ ही था। हवा के झोके ने सुलक्षणा की आवाज वहाँ पहुँचा दी और हवा के झोके के समान ही तेजी से इन्दुमती ने उस कमरे मे प्रवेश किया। उसके मुख पर भी आज हवाइयाँ ही उड रही थी। उसने देखा कि उसके माता-पिता एक विचित्र मुद्रा मे आमने-सामने खडे हुए है और दोनो के बीच मे पडे हुए है दो पत्र। अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा ने उसे देखकर कुछ न कहा। उसने दोनो की ओर देखा, वह भी कुछ न बोली और उसने लपककर उन दोनो चिट्ठियो को उठा, पढना शुरू किया। अवधबिहारीलाल तथा सुलक्षणा किसी ने उसे न उन पत्रो को उठाने से रोका और न पढने से ही। दोनो कभी एक दूसरे की

ओर और कभी इन्दुमती की ओर देख रहे थे।

जब इन्दुमती दोनो चिट्ठियाँ पूरी पढ चुकी तब सुलक्षणा के मुख से एकाएक निकल गया—'यह है सब आपके उपदेशो का फल !' उस समय सुलक्षणा अवधविहारीलाल की तरफ देख रही थी।

इस वाक्य ने इन्दुमती की सारी मुद्रा एक सेकिण्ड मे परिवर्तित कर दी। सारी हवाइयाँ एकाएक गायब हो गयी। वही पुरानी दृढता, वही पुरानी अकड फिर से एक बार लौट आयी। वह मुँह कुछ बिचकाकर बोली—

'बाबूजी का उपदेश ! बाबूजी के उपदेश और इस घटना से क्या सम्बन्ध है, माँ ? तुम जब देखो तब, बाबूजी के उपदेश को क्यो दोष दिया करती हो ? और बाबूजी का उपदेश तो बिलकुल ठीक है। इस मनुष्य समाज मे पुरुष ने स्त्री को जिस गड्ढे मे ढकेल दिया है, बाबूजी चाहते है, वह उसमे न पडी रहे। कम से कम मै उस गड्ढे मे सडनेवाली नही हूँ। मेरा तो विवाह न करने का निश्चय है। ललितमोहन से मेरी मित्रता जरूर हो गयी है, पत्र-व्यवहार भी शुरू हुआ है। क्या हम लोगो को किसी से मैत्री और पत्र-व्यवहार करने का भी अधिकार नही है ? ललितमोहन ने शायद मेरे पत्र का ठीक अर्थ नही समझा। यह सारी की सारी गलतफहमी है। फिर अवध-बिहारीलाल की ओर घूमकर वे दोनो पत्र उन्हे देते हुए उसने कहा, 'बाबूजी, आप लिख दे सेठ रामस्वरूप को कि उन्हे आपका तथा मेरा इस तरह का अपमान करने का कोई हक न था। न विवाह का कोई सवाल उठता और न ललितमोहन के दर-दर के भिखारी होने का। और ऐसी चिट्ठी लिखने पर अगर सेठजी पर मान-हानि का कोई मुकदमा चलाया जा सकता हो तो भी आप चला सकते है।'

इन्दुमती का भाषण काफी लम्बा होने पर भी उसमे इतना बल था, अनेक शब्दो पर ऐसा जोर था, सारे भाषण में ऐसी दृढता थी कि वह लम्बा वक्तव्य भी छोटा-सा जान पडा। जिस हवा के झोके के समान इन्दुमती उस कमरे मे आयी थी, उसी हवा के झोके के समान बाहर हो गयी, लेकिन अपने कमरे में पहुँचते ही उसने उसका दरवाजा बन्द कर लिया। वह खड़ी न रह सकी और एक सोफे पर गिर-सी पडी। उसकी दशा उस सैनिक के समान हुई जो आहत होने पर भी शत्रु को पीठ न दिखाने को, उत्कट इच्छा के कारण,

विजय तक लडता रहता है, जिसके शरीर को उसकी इच्छा-शक्ति खीचती हुई ले जाती है, पर ज्योही विजय प्राप्त होती है, त्योही अपने घावो के कारण वह धराशायी हुए बिना नही रहता।

उधर अवधबिहारीलाल प्रसन्नता से सुलक्षणा से कह रहे थे—'मैने तुम से कई बार कहा और फिर कहता हूँ, तुम इन्दुमती को समझ ही नही सकी हो, बिलकुल नही, जरा भी नही!'

× × ×

बहुत देर तक इन्दुमती सोफा पर निश्चल पडी रही। बीच बीच मे उसकी नाक और मुँह से एक लम्बी साँस निकल जाती थी। इसकी आवाज के अतिरिक्त कमरे मे और कोई शब्द न था। गरमी काफी थी, पर इन्दुमती को बिजली का पखा चलाने की भी सुध न थी। जिस तरह अनेक बार हवा चलते-चलते पानी ले आती है, उसी प्रकार इन साँसो ने धीरे-धीरे उसकी आँखो से आँसू बहाना आरम्भ किया और कुछ ही देर मे तो इन आँसुओ की झडी-सी लग गयी। शायद जीवन मे उसने इसके पहले कभी इतने अश्रु न बहाये थे। आँसुओ से इन्दुमती के हृदय-रूपी शीशे की कलई धुल रही थी। जिस शीशे मे इन्दुमती को सदा अपना ही प्रतिबिम्ब दीखा करता था, वह अब पारदर्शी हो रहा था। वह आँसुओ को रूमाल से पोछ रही थी। धीरे-धीरे गरम आँसुओ ने रूमाल को तर कर दिया, पर उनकी गरमी रूमाल में आने पर ठडी होती जाती थी, अत रूमाल एकदम ठडा हो गया। इन्दुमती को आज एक नया अनुभव हुआ। उसके गरम हाथो मे गरम आँसुओ से भीगा हुआ ठडा रूमाल एक अजीब तरह की ठडक-सी पहुँचा रहा था और यह ठडक उसके हृदय तक पहुँच रही थी। हृदय की गरमी आँसू निकालती है और आँसुओ की सीड हृदय को ठडा कर देती है। गरमी और ठडेपन का यह कैसा सम्बन्ध है?

कुछ देर बाद इन्दुमती उठकर बैठ गयी और उसके मुँह से कुछ शब्द वाक्य बन-बन कर निकलना प्रारम्भ हुए—'तो तो बाबूजी को मेरे उस भाषण से हर्ष हुआ होना भी चाहिए था। पत्र मे लिखा था न? 'आपको प्रैक्टिस में मैने जो मदद दी उसका यह फल है!' तो··तो बाबूजी को सेठ रामस्वरूप की प्रैक्टिस मे दी हुई मदद का जितना···जितना खयाल

है ··उतना ··उतना लडकी का भी नही ! कैसे···कैसे···उदास,···कसे कैसे ···उद्विग्न खडे हुए थे वे ··जब मै उस कमरे मे गयी, और··और · कैसे प्रसन्न हो गये वे, ज्योही·· ज्योही उन्होंने मेरा वह भाषण सुना।·· तो · तो व्यक्ति-गत स्वतन्त्रता का उनका सिद्धान्त · डीग, ·· केवल डीग है।··वेशक। ···इसमे अब भी कोई सदेह रह सकता है ? · अरे यो भी वे अपने हरेक समीपवर्ती का टाइम टेबिल बनाते और · और बनाते, इतना ही नही, देखते रहते है कि उनके बनाये हुए कार्यक्रम का अनुकरण हो रहा है या नही··· । जो ··जो मनुष्य अपने समीपवर्तियो के एक-एक क्षण को अपनी इच्छा के अनुसार चलवाना चाहता है, वह · वह ऐसी बडी-बड़ी बातो मे भला उन्हे स्वतन्त्रता कैसे दे सकता है ?' इन्दुमती एकाएक चुप हो गयी। उसका सिर झुक गया और जान पडा कि अचानक गम्भीरता से वह कुछ सोच रही है। कुछ देर बाद वह हठात् खड़ी हो गयी और इधर-उधर घूमते हुए फिर कहने लगी—'कैसी · कैसी बाते कर रही हूँ आज मै ? कितना·· कितना अन्याय कर रही हूँ बाबूजी के साथ ? · जैसा पत्र उन्हे मिला था, वैसी चिट्ठी पाकर उद्विग्न कौन न होगा ?···मेरी मेरी स्वतन्त्रता में बाधक होकर उन्होने कौनसी बात की ?·· उन्होने·· उन्होने तो एक शब्द भी नही कहा। उन्हे मालूम ही कहाँ है कि मै ललितमोहन को इतना · इतना चाहने लगी हूँ ! मुझ पर ही शूरता चढी थी ··। मैने मैने ही कहा कि मेरा तो विवाह न करने का निश्चय है···बाबूजी लिख दे ऐसा·· ऐसा सेठ रामस्वरूप को।' इन्दुमती एकाएक घूमना बन्द कर खडी हो गयी। कुछ देर उसने चुपचाप सामने की तरफ देखा और फिर एक कुर्सी पर बैठते हुए उसके मुख से निकल गया—'आह ! क्यो मैने अपने ही पैरो पर यह कुल्हाडी मारी ?' फिर से उसका सिर झुक गया। कुछ देर वह चुपचाप बैठी रही। एकाएक उसके मुख पर आश्चर्य के चिन्ह झलकने लगे और फिर उसके मुँह से निकला—'तो क्या मैने बिना जाने ही अपने विवाह न करने का निश्चय बदल दिया है ?' उसका सिर फिर से झुक गया और अब उसके मुख से निकलनेवाले शब्द तो बन्द हो गये, लेकिन उसके हृदय मे अगणित बाते उठना शुरू हुई। यदि वह ललितमोहन से प्रेम करती है, उसके बिना यदि उसका जीवन असम्भव है, उसके वियोग का एक-एक क्षण उसे एक-एक युग-सा जान पडता है, तो ललितमोहन के साथ विवाह के

अलावा और वह रह ही कैसे सकती है ? उसकी जैसी भावनाएँ त्रिलोकीनाथ के लिए थी, कालेज के अन्य लड़को के लिए थी, वजीरअली के लिए है, वैसी ललितमोहन के लिए नही ; पर जब विवाह-सस्था ही नही थी तब ऐसी भावनाएँ जिनके बीच मे होती थी, वे किस प्रकार रहते थे और यदि आगे चलकर विवाह-सस्था नही रहनी है, तो ऐसी भावनाओवाले किस तरह रहेगे, वह दूसरी बात है। मनुष्य सामाजिक जीव है, समाज एक सघटन है, हर सघटन के कुछ नियम होते है, बिना नियमो के कोई सघटन एक क्षण भी नही चल सकता। समाज मे जब विवाह नही था, जब नही रहेगा, तब इस तरह की भावनावाले रह सकते है , पर जब तक विवाह है, तब तक नही, कम से कम इज्जत-आबरू के साथ नही। तब तो बुरे नियमो का ही बोलबाला रहेगा। वे कैसे बदले जा सकते है ? जो बुरे नियमो मे परिवर्तन करना चाहते है, उनके कहने मात्र से तो रद्दोबदल नही होगा, हो नही सकता। जो मनुष्य जिन सामाजिक नियमो को बुरा मानते है, उनका उन्हे पालन करना तो कमजोरी है। पात्र हिम्मती, यदि उनमें साहस है तो उन नियमो के प्रति उन्हे विद्रोह करना ही चाहिए, खुला विद्रोह। इन्दुमती ने इस सारी समस्या पर विचार न किया हो, यह नही। पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही वह विवाह न करने के निश्चय पर पहुँची थी , लेकिन जिस समय उसने यह निश्चय किया था, उस वक्त ललितमोहन के समान उसका कोई प्रिय पात्र न था। यदि भविष्य मे ऐसा कोई प्रसग उपस्थित हुआ तो वह क्या करेगी, यह उसने उस समय न सोचा था। अपने पूर्व निर्णय के अनुसार आज भी यह तो वीरतापूर्वक कह दिया, 'मेरा तो विवाह न करने का निश्चय है,' पर ललित-मोहन के प्रति उसके जैसे भाव थे, उनके कारण यह भी उसे दीख रहा था कि वह ललितमोहन के बिना रह ही नही सकती। बिना विवाह के भी वह ललितमोहन के साथ रह सकती थी, उसे स्वय इसमे कोई आपत्ति न जान पडी। जब ललितमोहन लखनऊ मे था तब उसने उसका पूजा-पाठ, सध्या-जप देखा था। समाज के-नैतिक बन्धनो और विशेषकर विवाह के सम्बन्ध में बातो ही बातो से उसका मत जान लिया था। उसके इस धर्म, कर्म और मतो पर उसने कटाक्ष भी किये थे, पर इससे क्या ? त्रिलोकानाथ, कालेज के लड़को और दूसरो का वह सदा मजाक उड़ा सकती थी, लेकिन जिसके

साथ सदा रहने की बात हो, उसके मतो पर हमेशा तो व्यग नही कसा जा सकता ? उसके सिद्धान्तो का आदर भी जरूरी बात हो जाती है। फिर बिना विवाह के ललितमोहन के साथ रहने का अर्थ क्या वेश्या के समान रहना न होगा ? जब समाज मे विवाह नही था तब वेश्याएँ भी न होगी, व्यभिचार जैसी कोई वस्तु भी न होगी, जब विवाह-सस्था का नाश होगा, तब वेश्या-वृत्ति और व्यभिचार का भी मूलोच्छेदन। पर जब तक विवाह है, जब तक वेश्याएँ है, व्यभिचार है, तब तक समाज के इस नियम के विद्रोही भी। आत्म-सम्मान के साथ दो ही तरह से रह सकते है, या तो अविवाहित और या विवाह करके। ...और ललितमोहन के प्रति इस प्रकार की भावनाएँ होने के पश्चात् उसका अब अविवाहित रहना।

इन्दुमती के मुख से जोर से निकल गया—'तब.. तब करूँ क्या ?' और इस छोटे से वाक्य के बाद वह इस प्रकार साँस लेने लगी, मानो वह अपनी साँसो से ही सघर्ष कर रही है। सेठ रामस्वरूप के इस पत्र के बाद उसके पिता के इस प्रकार अपमान के पश्चात् उसके पिता तथा माता के सामने अपने निर्णय की इस घोषणा के उपरान्त, अब उसके लिए रास्ता ही कौनसा था ? उसके मन में एकाएक उठा, अभी पिताजी ने रामस्वरूप को पत्र थोडे ही लिखा होगा, जाकर रोक दूँ, उनके सामने अपना हृदय खोल-कर रख दूँ, शायद वे कोई तरकीब निकाल सके, कम से कम फिलहाल रास्ता तो बन्द न हो। पर इन्दुमती थूक चाटे ? यह...यह उसके लिए असम्भव था। उसे बिना वर्षा के ही सब ओर घिरी हुई घटाएँ दीख पड़ी, ऐसी जिनमे कोई चमकती हुई किनार भी न थी। उसने अपना मुख अपने दोनो हाथो पर रख लिया और फिर उसके नेत्रो से आँसू बह चले। धीरे-धीरे उसे जान पड़ने लगा जैसे आँसुओ के निर्झर ने एक कुण्ड बना दिया है और वह उसमे डूब जायगी। इन्दुमती को अपने बचाव के लिए किसी सहारे की आवश्यकता जान पड़ी। हठात् उसकी इच्छा सितार उठाने की हुई। और उसने देखा कि जिस प्रकार डूबते के लिए तिनके का सहारा बहुत बडी चीज होती है, उसी तरह सितार के तार इस समय उसके लिए सिद्ध हो रहे है।

: १५ :

अवधबिहारीलाल को सेठ रामस्वरूप के पत्र ने ऐसी ठेस पहुँचाई थी कि उन्हे एक-एक क्षण भारी था। उन्होने दफ्तर मे पहुँच रामस्वरूप को पत्र का निम्नलिखित उत्तर लिखा—

श्रीमान् सेठ साहब,

जयगोपालजी की।

आपका तारीख ५ मई का रजिस्टर्ड कृपा-पत्र मिला। श्री ललितमोहनजी ने आपको जो चिट्ठी लिखी थी उसकी नकल भी मिली। आपने ललितमोहनजी से जो कहा, वही मै दोहराना चाहता हूँ—'यह विवाह होना तो दूर रहा सोचा तक नही जा सकता।' जो चिट्ठी ललितमोहनजी ने आपको लिखी थी, उससे यह जान पडता है कि जब वे यहाँ आये थे, उस वक्त इन्दु ने जो आधुनिक सभ्य लड़कियो के समान उनसे व्यवहार किया, उसके कारण उनके मन मे कुछ गलतफहमी हो गयी है। आप से घनिष्ठ सम्बन्ध होने की वजह से मेरी पत्नी, इन्दु और मैने ललितमोहनजी को यहाँ घर के लडके की तरह रखा था। फिर मेरी लड़की पुराने दकियानूसी खयालात की नही है। उसे सिर्फ स्कूली शिक्षा ही नही दी गयी है, लेकिन स्त्रियो को समाज में किस तरह रहना चाहिए, यह भी सिखाया गया है। नाटक मे उसका पार्ट लेना इसी शिक्षा का अग है और उसके लिए यह कोई शर्म की बात न होकर गौरव की चीज है। अभी हम लोग, और खासकर आपका असभ्य मारवाड़ी समाज (माफ कीजिएगा 'असभ्य' शब्द के लिए, क्योकि रुपये से ही कोई व्यक्ति या कोई फिरका सभ्य नही हो सकता।) औरतो के स्त्रियोचित सद्-व्यवहार को समझने की शक्ति ही नही रखता। जहाँ महिलाएँ खोली या गिलाफ में सींकर रखी जाती हैं (परदा या घूँघट को मै खोली और गिलाफ ही कहता हूँ।), वहाँ आजाद स्त्रियो के बर्ताव को समझने की बुद्धि ही नही होती।

ललितमोहनजी हम सब पर बडा अच्छा असर छोड़ कर गये थे, पैर इस

मामले में उन सरीखा सुसस्कृत युवक भी गलती कर बैठा। वर्तमान सामाजिक विवाह परिपाटी के विद्रोह मे इन्दु का तो विवाह करने का ही इरादा नही है और फिर वह ऐसे घर मे जाने की तो कल्पना भी नही कर सकती जिस घर मे उसी के स्त्री-वर्ग की शारीरिक दूकान रखनेवालियो का सतत निवास रहता है।

आपने मेरी प्रैक्टिस में 'थोड़ी-बहुत' नही, काफी मदद दी है और उसके लिए मै आपका जिन्दगी भर एहसानमन्द रहूँगा; परन्तु उस सहायता के एवज में आपका बहुत सा काम मै भी बिना किसी फीस के, मुफ्त में, करता रहा हूँ। आशा है, इसे आप बिलकुल ही न भूल जायेंगे। मेरी जुबिली का जलसा 'स्वाँग' था, या मेरे घर के लोगो के सच्चे स्नेह का परिणाम, इसे आप नही समझ सकते। आपसे और ललितमोहनजी से आने का आग्रह इसलिए किया गया था कि आपके घर से मेरा निकट का सम्बन्ध है। यह मै मानता था, किन्तु जिनका काम छोटे-छोटे लोगो को अपने कर्ज मे फँसाकर, उनकी जायदाद हड़प करना रहा है, वे हरेक को फाँसनेवाला ही समझते है। प्रत्येक आदमी वह जैसा स्वय होता है, उसी नजर से सारे ससार को देखता है।

हाँ, मुझे अपनी लडकी को अपनी छोटी-सी कायस्थ जाति मे देने का कोई आग्रह नही है। मै तो सारे भारतवर्ष को अपना देश और अपने को भारतीय मानता हूँ। इसी को सच्चा धर्म समझता हूँ। फिर मै अपनी लडकी को देने वाला कौन हूँ ? कन्या कोई निर्जीव चीज है, जिसका दान उसके माता-पिता करे ? जैसा मैने ऊपर लिखा है, मेरी लड़की का तो इरादा ही विवाह करने का नही है, लेकिन यदि उसकी शादी करने की इच्छा हो त वह अपने वर को चुनने के लिए जरूर आजाद है। आप ललितमोहनजी को जिस तरह बाँध कर रखना चाहते है, मै इन्दु को नही।

आपने यदि काफी कमाया है, तो भगवान् की यहाँ भी दया है। फिर मुझे तो इस बात का भी घमण्ड है कि मेरी सारी कमायी सच्चे और उचित रास्तो से हुई है। मैने जिन्दगी में जान-बूझकर न कोई झूठा मुकदमा लिया और न अदालत के सामने कभी एक शब्द झूठ बोला। न जाने किस फितूर नें आपके मन मे यह बात उठायी कि वकील लोगो के दूर की सोचने की शक्ति का अर्थ दूसरो की जायदाद को हड़प करना होता है ? इन्दु मेरी इक-

लौती बेटी है, मैने सब कुछ उसी के लिए कमाया है और कमा रहा हूँ। इस गरीब देश मे अधिक से अधिक शान से रहने के लिए जितने धन और सम्पत्ति की जरूरत है, उससे भी इन्दु के लिए ज्यादा है, कम नही, मुझे और उसे आपकी जायदाद की मुफ्त मे भी जरूरत नही है। भगवान् ललितमोहनजी को दर-दर का भिखारी न बना, उन्हे भी सदा सुखी रखे।

एक अर्ज के साथ मै इस पत्र को समाप्त करता हूँ। आइन्दे, मै आपके मुकदमे न कर सकूँगा। अपने मुख्त्यार-आम को भेजने की कृपा कीजिएगा, जिससे वह आपके मुकदमो के तमाम कागजात मेरे मुशी से लेकर किसी दूसरे वकील को दे दे।

चिट्ठी मे यदि कोई सख्त बात लिखी गयी हो तो उसके लिए मै आपसे क्षमा माँगता हूँ।

आपका शुभचिन्तक,
अवधबिहारीलाल

इस पत्र को पूरा कर अवधबिहारीलाल ने उसे बार-बार पढा। उन्हे अपना यह मसौदा जितना पसन्द आया, उतना शायद अदालत मे आज तक दिया हुआ कोई बयान भी न आया था। जो चिट्ठी रामस्वरूप की उनके पास आयी थी, उसे उन्होने फिर पढा और देखा कि उसकी एक-एक बात का जवाब इस पत्र में आगया है। उन्हे सेठजी की चिट्ठी से जो ठेस लगी थी, उसका पूरा परिमार्जन हो गया था। अब उनका चित्त शात था। जानेवाले पत्र की उन्होने नकल कर अपनी फाइल मे लगायी और पत्र चपरासी के हाथ स्टेशन भेजा। मेल के जाने में थोडी ही देर थी, अत उन्होने चपरासी से कहा कि साइकिल पर जाकर लेट-फीस की टिकटे लगाकर चिट्ठी वह खुद ट्रेन मे डाल दे। रजिस्टर्ड पत्र एक दिन देर से मिलता। कानपुर लखनऊ के इतने नजदीक था, अत वकील साहब को उसे रजिस्टर्ड भेजने की कोई आवश्यकता महसूस न हुई। फिर वे तो यह चाहते थे कि उनका पत्र जल्दी-से जल्दी रामस्वरूप के पास पहुँच जाय। अदालत मे बहस और जिरह आदि मे तात्कालिक, शाब्दिक, घात-प्रतिघात की आदत के कारण ही अवधबिहारी लाल को इस चिट्ठी को रामस्वरूप के पास पहुँचाने की इतनी जल्दी थी। पत्र को रवाना कर जिस फाइल मे उन्होने पत्र की नकल रखी थी, उसे ले, वे

सुलक्षरणा के कमरे में पहुँचे। सुलक्षरणा अभी भी सो रही थी। निकम्मे बैठने का उन्हे अभ्यास न था। वकील साहब ने कमरे मे पहुँचकर पुकारा—'इन्दु!'

इन्दुमती का रोना यद्यपि बन्द हो गया था, क्योकि रोना सदा थोडे ही चल सकता है, तथापि वह पूर्णरूप से स्वस्थ न हुई थी, पर उसने स्वस्थता का प्रयत्न करते हुए दरवाजा खोल कमरे मे प्रवेश किया। वह इस तरह चल रही थी, मानो नींद या तन्द्रा में हो। सुलक्षरणा ने ध्यान से उसकी ओर देखा पर वकील साहब अपने पत्र के मसौदे मे इतने मग्न और उसके कारण उत्साहित थे कि उनका उधर ध्यान ही न गया। इन्दुमती को आते देख वे शीघ्रता से बाले—'सुनो, सुनो, मैने कितना अच्छा जवाब सेठ रामस्वरूप को भेजा है।'

बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा के वे उस पत्र को पढ चले। कैसी शान थी उनके इस पढने मे! बहुत कम अदालती बयान या भाषण उन्होने इस प्रकार दिये होगे।

जब पढना पूरा होगया, तब कुछ लडखडाते-से स्वर मे इन्दुमती ने पूछा—'आपने···आपने भेज भेज दी···वह···वह चिट्ठी, बाबूजी?'

उसी शान मे उन्होने उत्तर दिया—'हाँ, अभी भेजकर तो आ ही रहा हूँ।'

गला साफ करते हुए इन्दुमती ने कहा—'लेकिन ···· लेकिन, बाबूजी, एक··· · ···एक बात ···' कहते-कहते वह बीच ही मे रुक गयी। उसकी मुद्रा से जान पडा कि उसे अपने ही कथन पर आश्चर्य हो रहा है और वह सोच रही है कि वह क्या कहनेवाली थी।

अब अवधबिहारीलाल को इन्दुमती के सारे स्वर और भाषरण के ढंग में कुछ विचित्रता मालूम हुई। उन्होने ध्यान से उसकी ओर देखा, पर इतनी ही देर में इन्दुमती के भावो मे परिवर्तन हो गया था। वह जल्दी से बोली—'ठीक · ठीक किया, बाबूजी, सुन्दर, बडा सुन्दर जवाब है! भेज दिया न? ठीक · बिलकुल ठीक किया आपने!' उसका स्वर इस समय ऐसा जान पडा, मानो कही प्रतिध्वनि हो रही हो। और कहने को तो वह उपर्युक्त वाक्य कह सकी, पर यह छोटा-सा वाक्य कहते-कहते ही उसे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे उसकी आँखे नाक, ओठ और कान, मुख पर सारी ज्ञानेन्द्रियाँ पहले जल उठी और कुछ ही

सेकिंडो में यह जलन उसके सारे चेहरे तथा तमाम शरीर पर फैल गयी।

इन्दुमती जल्दी से अपने कमरे में चली गयी और फिर उसने दरवाजा बन्द कर लिया।

कुछ आश्चर्य से वकील साहब सुलक्षणा से बोले—'आजकल क्या हो गया है इन्दु को ? कैसी रहती है ? अभी किस तरह बोल रही थी ? और एकदम चली कैसे गयी ?'

सुलक्षणा ने एक लम्बी साँस छोडते हुए उत्तर दिया—'आप ही उसे समझ सकते है। आपने आज ही मुझे कहा नही था कि मै इन्दु को समझ ही नही सकी हूँ, बिलकुल नही, जरा भी नही !'

अवधबिहारीलाल एक गहरी चिन्ता मे निमग्न हो गये।

× × ×

इन्दुमती अपने कमरे में कुछ देर ही बैठी होगी कि इतने ही में दरवाजे पर कुछ थपकियो की आवाज सुनायी दी। उसने घडी की ओर देखा। चार बज रहे थे। उसने सोचा चाय आयी होगी, अत. उसने अन्दर से ही जोर से कहा—'मै आज चाय नही पियूँगी।' लेकिन बाहर से चाय लानेवाले का नहीं, वजीरअली का स्वर सुनायी दिया। उसने कहा—'मै हूँ बहन, चायवाला नही !' इन्दुमती को इस वक्त वजीरअली के आने से हठात् बडा हर्ष हुआ।

मुस्कराते हुए इन्दुमती बोली—'चायवाले न हो, पर चाहवाले आगये ! न जाने क्यो तुम्हारे इस समय आने से मुझे बेहद खुशी हुई !'

दोनो दो कुर्सियो पर बैठ गये। बैठते-बैठते, वजीरअली ने कहा—'मेरे आने से तो तुम्हे हमेशा खुशी होता थी, बहन, लेकिन आजकल पूरी बात कहने के पहले ही वजीरअली चुप हो गया।

उत्कठा से इन्दुमती ने उसकी ओर देखते हुए कहा—'लेकिन आजकल पर ही क्यो रुक गये, वजीर ?'

'जानती तो हो क्या कहनेवाला था, पर फायदा क्या ? कितनी मर्तबा कह चुका हूँ।'

वजीरअली इन्दुमती की आजकल की उदासी देख रहा था। कई बार उसने कारण भी पूछा था, परन्तु इन्दुमती सदा 'कहाँ उदास हूँ', 'कहाँ सुस्त

हूँ', 'तुम खुद उदास होगे, इसलिए अपनी उदासी दूसरो के चेहरे पर देखते होगे', 'मै और सुस्त' इत्यादि वाक्य कहकर वजीरअली की बात ही टाल देती थी। हृदय मे भाव भरे रहने पर भी, इन्दुमती लिफाफे मे रखी हुई किसी भावुक चिट्ठी के समान चुप ही रही थी।

अब जोर से हँसते हुए इन्दुमती बोली—'ओह ! वही मेरे उदास रहने की बात ! आज उसी का रहस्य बताना चाहती हूँ।' एकाएक इन्दुमती के मुख से ऐसी बात निकल गयी जो उसने सोची तक न थी। कई बार जब हमारा हृदय मुँह तक भर जाता है, तब मस्तिष्क की आज्ञा लिये बिना ही बहने लगता है।

वजीरअली ने उत्साहपूर्वक कहा—'शुक्रिया ! शुक्रिया ! मुझे तो ताज्जुब था कि हमेशा खुश रहनेवाली तुम क्यूँकर इस तरह गमगीन रहती हो। जब भी वजह पूछता, न बताती, टाल देती; पर आखिर मेरा अन्दाज ठीक निकला न ? सुस्त रहती हो न ? खुशी की बात है—आज सबब जान लूँगा और जानते ही इस गम की दवा करूँगा।'

इन्दुमती ने उठते एव चाय की टेबिल के निकट जाते हुए कहा—'अच्छा आओ, पहले चाय पिओ, तब बताती हूँ।' वह इस समय सबसे अधिक वक्त चाहती थी।

पर वजीरअली इस भुलावे मे आनेवाला न था। उसने समझ लिया कि इन्दुमती फिर से भागने पर उतारू है। उसे कई बार टाला जा चुका था और अचानक इतनी दूर पहुँचने के पश्चात् अब वह फिर से न रोका जा सकता था। उसने अपनी कुर्सी पर और आराम से बैठते हुए कहा—'बहन, अब तुम मुझे नही बहला सकती।'

मुस्कराते हुए खडे-खडे ही इन्दुमती बोली—'बहला कहाँ रही हूँ, पर पहले चाय तो पीलो, नही वह ठडी हो जायगी।' इन्दुमती ने यह बात कही तो मुस्कराकर ही, पर उसकी मुस्कराहट में एक विचित्र प्रकार की अस्वाभाविकता थी। कई बार हम अनेक बातो को छिपाने या टालने के लिए मुस्कराहट से बलात्कार करते है, परन्तु हर तरह का बलात्कार अपने साथ अस्वाभाविकता लाता है।

वजीरअली ने कहा—'चाय ठडी होना तो इस मौसम मे अच्छी बात

होगी। गरमी मे गर्म चाय ठडक देती है, मै इसे माननेवालो मे नही हूँ।'

'नही, नही, मै सच कहती हूँ, सब बता दूँगी, पर पहले चाय पीलो।'

कुर्सी पर जोर से टिकते हुए वजीरअली बोला—'मै न यहाँ से हटूँगा, न चाय पियूँगा, जब तक पूरा हाल न सुन लूँगा।' कुछ रुककर वह फिर बोला—'बहन, उस दिन तुम से राखी बँधवा, भाई बन, मैने कुछ जिम्मेदारी ली है। तुम चाहे अपने भाई को निकम्मा मानो, पर मै अपने को इतना नालायक नही समझता।'

इन्दुमती के मुख से एक लम्बी साँस निकली और वह फिर से आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। अब उस पर गम्भीरता का राज्य था। कुछ ठहरकर उसने कहा—'मै तुम्हे निकम्मा नही समझती, भाई, लेकिन क्या कहूँ, कहाँ से कहूँ, यह स्वय न सोच सकने के कारण अपने को ही निकम्मा महसूस कर रही हूँ।'

'इन्दुमती के मुँह से ऐसे लफ्ज किसी को भी सुनने को मिलेगे, यह इन्दुमती को जाननेवाले ख्वाब में भी नही सोच सकते। फिर उसका भाई भी उसके दिल का हाल न जान सके—यह तो दुनियाँ का "आठवाँ वन्डर" है।'

इन्दुमती को 'आठवे वन्डर' की बात सुनकर हँसी आ गयी, पर वह वैसी ही क्षणिक थी, जैसे किसी काली घटा में एकाएक बिजली चमक जाय। फिर 'बादल गहर गभीर' की सी गम्भीरता लौट आयी और कुछ सोचते हुए उसने अपना मुख नीचा कर लिया। वजीरअली उसकी तरफ देख रहा था। जब वह कुछ देर न बोली, तब वजीरअली ने अपने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, मानो वह अपने मस्तिष्क को जीभ द्वारा स्पष्ट कहने की प्रेरणा दे रहा हो—'तुम्हारा काम आसान करने के लिए एक बात पूछूँ ?'

इन्दुमती कुछ बोली नही, पर सिर उठा, प्रश्न सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

'यह तुम्हारी सारी गमगीनी उसी वक्त से है न, जब से मिस्टर ललितमोहन ने लखनऊ छोडा ?'

इन्दुमती फिर भी कुछ न कह सकी, पर उसके चेहरे पर जो भाव थे, उनके कारण वजीरअली को आगे बढने का साहस हुआ; वह बोला—'बहन, मिस्टर ललितमोहन से मिलने और उन्हे कुछ दूर तक देखने के बाद, मै एक

नतीजे पर पहुँचा हूँ, जानती हो ?'

वही प्रश्नसूचक, मौन दृष्टि ।

'जिस नतीजे पर मै पहुँचा हूँ, वह है कि अगर मेरे बहनोई होने के लायक मेरे अब तक देखे हुए नौजवानो मे—और मैने सैकड़ो नही, हजारो ही देखे है—अगर कोई हो सकता है तो मिस्टर ललितमोहन ।'

'किन्तु यह बात तो असम्भव-सी है, वजीर ।' इन्दुमती ने हडबडाकर कहा। और उसे जान पडा मानो उसकी कनपटियो की नसो का खून नसो को फाड कर निकलना चाहता है ।

'अगर यह असम्भव इसलिए है कि तुम शादी के ही खिलाफ हो तो मै यह कहना चाहता हूँ कि मेहरबानी करके अपने इस उसूल को तब तक ताक पर रख दो, जब तक सोसाइटी मे शादी मौजूद है ।'

'लेकिन शादी जीवन का सबसे बडा बन्धन है, इसमे तो इकार नही किया जा सकता ।' विवाह के सम्बन्ध मे यद्यपि वह अनेक तर्क-वितर्क कर विवाह के पक्ष मे ही हो गयी थी, पर अपने पुराने निर्णय के कारण जिस प्रकार विवाह न करने की बात आज पिताजी के सम्मुख उसके मुख से निकली थी, उसी प्रकार इस समय भी विवाह के विरोध मे उसके ये शब्द निकले ।

'जिसे तुम बन्धन कहती हो वह बन्धन जजीरो का नही, फूलो के हारो का है,' वजीरअली ने कहा ।

'परन्तु ··' एक ही शब्द कहकर इन्दुमती रुक गयी, विवाह न करने का उसका पूर्व निर्णय बदल जो गया था ! पर कुछ देर बाद फिर पुरानी भावनाएँ उमड़ी। वह बोली—'लेकिन वजीर, चाहे वह बन्धन फूलो के हारो का ही क्यो न हो, हृदय की कितनी कुसुम कलियो रूपी भावनाओ को छेद-छेद कर वे हार बनाये जाते है। स्वतन्त्रता का कितनी दूर तक बलिदान करना पडता है ।'

वजीरअली ने सोचते हुए कहा—'लेकिन, बहन, अगर यह कुर्बानी दोनो तरफ से हो, ये हार दोनो हृदयो की भावनाओ रूपी कुसुम कलियो को छेद कर गूँथे जायँ ?'

इन्दुमती ने सिर झुका लिया। वजीरअली चुपचाप उसकी तरफ देखने लगा। कुछ देर पश्चात्, सिर उठाते हुए कुछ मुस्कराकर इन्दुमती बोली—

'परन्तु···परन्तु, भाई, यह कभी हो भी सकेगा ?'

ललितमोहन की तरफ से तो कोई उज्र हो ही नही सकता, मैं उनकी आँखो से पहचान गया था। उनकी आँखे देखते ही मुझे एक हिन्दी शायर की शायरी याद आगयी थी—"ये न छिपाये छिपे, सजनी, इक नेह के नैन और सुगध की चोरी!"

इन्दुमती ने कोई उत्तर न दिया, पर अपनी खुली हुई बायी बाँह निकट की टेबिल पर रखदी, मानो वह बता रही थी कि उस बाँह से सम्बद्ध, उसके हृदय मे अब कोई ऐसी बात नही, जिसे वह वजीरअली से छिपाना चाहती हो!

वजीरअली कुछ ठहरकर फिर बोला—'और तुम्हारे वालिद और वाल्दा का और मिस्टर ललितमोहन के वालिद का खिलाफ होना इस शादी को गैर-मुमकिन नही कर सकता।'

'क्यो ?' एक शब्द फिर इन्दुमती के मुख से निकला।

'इसलिए कि शादी होनी है तुम्हारी और मिस्टर ललितमोहन की, तुम्हारे वालिद, वाल्दा और उनके वालिद की नही। इस शादी का सारा इन्तजाम करेगा तुम्हारा भाई!' शादी के इन्तजाम की बात कहते-कहते वजीरअली अपने कोट के बटन को बार-बार खोलने और लगाने लगा। वह इस इन्तजाम के लिए कितना उतावला था, यह उसके हाथ बता रहे थे!

इन्दुमती ने यद्यपि कोई जवाब नही दिया, लेकिन उसका सिर आप से आप इस ढग से हिल गया, जिससे वजीरअली को अपने प्रस्ताव की स्वीकृति मिल गयी। कुछ देर चुप रहने के बाद एकाएक चाय की टेबिल की ओर देखते हुए उसने कहा—'अच्छा, अब तो चाय पियोगे न ?'

'जरूर, जरूर!'

दोनो खडे हुए। चाय की टेबिल के दोनो ओर की दो कुर्सियो पर बैठे और चाय पीते हुए कुछ देर बाद दोनो मे ऐसी घुल-घुलकर बाते शुरू हुई, जिनमे न शर्म की कोई जगह थी और न सकोच की। इन्दुमती की पुरानी सकोच-रहित बाते लौट आयी थी। चाय पी चुकने के बाद उसने ललितमोहन का आया हुआ पहला पत्र और उसने जो उत्तर भेजा था उसकी नकल वजीर-अली को दिखायी। इसके बाद इन्दुमती के पत्र पर जो चिट्ठी ललितमोहन ने

अपने पिता को लिखी थी, उस पर सेठ रामस्वरूप ने जो पत्र अवधबिहारीलाल को भेजा था और वकील साहब ने जो जवाब सेठजी को दिया था, उसका सारा हाल कहा। वजीरअली ने ललितमोहन के आये हुए पत्र तथा इन्दुमती के पत्र की नकल को अच्छी तरह पढा और सारा वृत्तान्त भी ध्यानपूर्वक सुना। वजीरअली ने इन्दुमती को बताया कि यह शादी पोशीदा तरीके से ही हो सकती है। यद्यपि उस समय तक इस देश मे ऐसे गुप्त विवाह बहुत कम हुए थे, फिर भी वजीरअली ने न जाने कहाँ-कहाँ की ऐसी शादियो के दृष्टान्त दिये, और इस प्रकार की शादियो के दृष्टान्त देते-देते उसने अनेक बार अपने दोनो हाथो को पतलून मे डाला और निकाला, मानो उन जेबो मे से वह इन दृष्टान्तो को ढूँढ-ढूँढ कर निकाल रहा हो!

आखिर उसने विवाह की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर इन्दुमती से कहा कि शादी हिन्दू तरीके से ही होगी। वह सारा इन्तजाम करेगा और मुसलमान होते हुए भी, भाई के नाते बहन का कन्यादान भी देगा!

अब तो इन्दुमती को जोर की हँसी आये बिना न रही और हँसते-हँसते उसने कहा—'कोई हिन्दू पण्डित तुम्हारे हाथ से मेरा कन्यादान करना मजूर करनेवाला नही है!'

'आह! इन पण्डितो और मौलवियो के मारे ही तो आफत है! इन्हे हमेशा ही हिन्दू और मुसलमान दीखा करते है। हिन्दू धर्म और इस्लाम! इन्सान भी कोई चीज है, यह कभी इनके कीचड़ भरे दिमागो मे आता ही नही। खैर, इनका भी इन्तजाम किसी दूसरे तरीके से किया जायेगा।' यह कथन पूरा करते वजीरअली ने अपनी ठुड्ढी को जरा ऊंचा किया और दाहने हाथ मे लिये हुए रूमाल से ठुड्ढी पर का पसीना पोछा मानो वह भावी कार्य के लिए थकावट दूर करते हुए तैयार हो रहा हो।

बहुत देर तक बाते होने के पश्चात् शादी का प्रोग्राम बना और यह तय पाया कि बिना किसी के भी कानो-कान खबर के वजीरअली पहले कानपुर जायेगा। कानपुर में सारा मामला ललितमोहन से तय करेगा और एक सप्ताह के भीतर-भीतर विवाह हो जायगा।

: १६ :

एक सप्ताह मे सचमुच ही इन्दुमती और ललितमोहन का विवाह हो गया। विवाह हुआ वैशाख शुक्ल ३, ता० १८ मई, शनिवार को लखनऊ मे। विवाह का सारा इन्तजाम वजीरअली ने किया। इन्दुमती ने आश्चर्य से दाँतो तले उँगली दबाते हुए देखा धर्म-भाई की विचक्षण बुद्धि और विलक्षण कार्य-कुशलता को। वजीरअली ने पहले ललितमोहन से मिलकर सारा मामला तय किया। फिर अयोध्या से एक हिन्दू पण्डित को उसके एक शिष्य के साथ लाकर अपने दूर के रिश्तेवाले एक ताल्लुकेदार के बाग में हिन्दू शास्त्रोक्त पद्धति से विवाह करा दिया। विवाह मे उपस्थित थे केवल पाँच व्यक्ति दो ब्राह्मण, वर, बधू और वजीरअली। भाँवर पडने के क्षण तक सारा मामला इतना गुप्त रहा कि इन पाँच व्यक्तियो के अतिरिक्त किसी को कानो-कान इसकी खबर न पडी। जिस समय ललितमोहन ने इन्दुमती का पाणिग्रहण किया, उस समय इन्दुमती को ऐसा जान पडा मानो उसके हाथ की पाँचो उँगलियाँ छोटे-छोटे द्वार हो, जिनके द्वारा वह अपना हृदय निकाल कर ललित के हाथ में सौप रही हो।

जब भाँवर पडना शुरू हुआ उस समय दो पत्र इस विवाह के सम्बन्ध मे पढे जा रहे थे। एक पढ रहे थे सेठ रामस्वरूप और दूसरा अवधबिहारीलाल। ये चिट्ठियाँ इस प्रकार डाकखाने मे डाली गयी थी, जिससे जिस समय भाँवर पड रही हो, उसी समय पानेवालो के हाथ मे पहुँचे। रामस्वरूप को लिखा था ललितमोहन ने और अवधबिहारीलाल को इन्दुमती ने। रामस्वरूप का पत्र इस प्रकार था—

पूज्य काकाजी, पाँव धोक।

जिस समय आपके हाथ में यह पत्र होगा, उस समय लखनऊ के किसी बाग में श्री अवधबिहारीलालजी की कन्या से मेरा विवाह हो रहा होगा। आप मेरी शादी के लिए वर्षो से जितने आतुर थे, उतने ही इस विवाह के खिलाफ; लेकिन आप तो आस्तिक वैष्णव है, अत यह मानते ही है कि

मनुष्य के जीवन में कम से कम तीन बातें उसके पूर्व-जन्म के सस्कारो के अनुसार होती है—जन्म, विवाह और मरण। मै भी आस्तिक वैष्णव हूँ और इस बात को मानता हूँ। आपकी सेवा मे मैने कई बार निवेदन करवाया था कि बी० ए० की परीक्षा के बाद मै विवाह करूँगा। किससे मेरा विवाह होगा, यह मैने निर्णय नही किया था, पर जिसके साथ विवाह का सस्कार था, उसे मैने बी० ए० के इम्तहान के बाद देखा।

इस शादी के लिए मैने आपसे आज्ञा चाही और आपने मुझे एक तरह से इजाजत दे भी दी। श्री अवधबिहारीलालजी को जो चिट्ठी आपने भेजी थी उसके अन्त मे आपने निम्नलिखित वाक्य लिखा था—'ललितमोहन दर-दर का भिखारी होकर ही यह शादी कर सकता है।'

जिस शर्त पर आपने मुझे इस विवाह की आज्ञा दी है, वह मै अक्षरश पालन करने को तैयार हूँ। सारी जायदाद आपने खुद कमायी है, इस शादी के बाद उस जायदाद मे से फूटी कौडी पाने का भी मैं हकदार नही। आप सारी सम्पत्ति को किसी पुण्य-खाते मे लगा दे। इस गरीब देश में इससे अच्छा उपयोग ऐसी जायदादो का सम्भव भी नही है।

मै जिस प्रकार अपनी जीवन-सगिनी के चुनाव के लिए अपने को स्वतन्त्र मानता हूँ, उसी तरह उस महान् सम्पत्ति को किस कार्य मे खर्च किया जाय, इसके लिए आपको आजाद।

विवाह के पश्चात् 'पाँव धोक' के लिए हम दोनो आपकी सेवा में उपस्थित होगे और चूँकि मै परदे को इस देश के लिए बडे से बडे कलक की वस्तु समझता हूँ, इसलिए आप अपनी पुत्रवधू को भी बिना परदे या घूँघट के देख सकेगे।

लखनऊ, आपका आज्ञाकारी

ता० १७ मई, १९१९ प्रिय पुत्र,

ललितमोहन

पुनश्च—

हाँ, एक बात की खबर आपको और दे देना आवश्यक है। जिस तरह आपको इस विवाह का वृत्तान्त भाँवर होते समय मालूम होगा, उसी प्रकार अवधबिहारीलालजी को भी। वकील साहब का इस शादी मे कोई हाथ

नही है। इसका सारा इन्तजाम हम दोनो ने ही किया है।

— ललितमोहन

और इस तरह था अवधबिहारीलाल का पत्र—

पूज्य बाबूजी, प्रणाम।

जिस क्षण आपको यह पत्र पहुँचेगा उसी क्षण लखनऊ मे ही किसी जगह मेरा विवाह रायबहादुर सेठ रामस्वरूपजी के पुत्र से हो रहा होगा।

जब से मैने होश सँभाला है तभी से आपने व्यक्तिगत सुख और स्वातन्त्र्य के भाव मेरे हृदय में कूट-कूट कर भरे है। मै विवाह न करने का निश्चय-सा कर चुकी थी, लेकिन मैने देखा कि मेरा व्यक्तिगत सुख, विवाह न करने से दुख मे परिणत हो रहा है, और जिनसे मै विवाह कर रही हूँ उनसे मेरे व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य मे कोई भी बाधा पहुँचने की सभावना नही, बल्कि माताजी का जीवन जिस तरह आपके कारण सुखी रहा, उसी प्रकार आपके इन दामाद की वजह मेरी जिन्दगी भी सुखी रहेगी।

मेरे सुख और स्वातन्त्र्य से बडी आपके लिए कोई चीज नही, यह मै अच्छी तरह जानती हूँ। इस विवाह की आपने मुझे एक तरह से आज्ञा भी दे दी है। रायबहादुर साहब को जो चिट्टी आपने भेजी थी उसके नीचे लिखी पक्तियो को याद कीजिए 'मेरी लडकी का तो इरादा ही विवाह करने का नही है, लेकिन यदि उसकी शादी करने की इच्छा हो तो वह अपने वर के चुनने के लिए जरूर आजाद है।'

मुझे यह भी मालूम है कि अगर मैने आपसे इस विवाह करने की इजाजत चाही होती और यह चाहा होता कि आप ही अपने हाथो मेरी यह शादी कर दे तो आप कभी पीछे न हटते, परन्तु रायबहादुर साहब से आपका जो सम्बन्ध है, उसे देखते हुए मैने इस मामले से आपको दूर ही रखना चाहा।

माँ को तो मेरे विवाह से महान् हर्ष होगा। मेरे शादी न करने के निश्चय से वे कितनी दुखी रहती थी, यह मै जानती हूँ। सदा मुझे समझाया करती थी कि स्त्री का पूर्ण विकास पत्नीत्व मे है। फिर ऐसे दामाद मिलने से भी उन्हे कम खुशी न होनी चाहिए। जब वे एक सप्ताह जुबिली के वक्त लखनऊ रहे, तब माँ ने तो उन पर पुत्रवत् स्नेह किया।

शादी के पश्चात् हम दोनो आप दोनो के चरण-स्पर्श के लिए सेवा मे उपस्थित होगे।

लखनऊ, आपकी आज्ञाकारिणी
ता० १८ मई, १९१९ प्रिय पुत्री,
इन्दुमती

सेठ रामस्वरूप को जब यह पत्र मिला, तब उनकी दशा उस तैराक के समान हो गयी, जिसे हाथ-पैर बाँधकर अथाह पानी मे छोड़ दिया गया हो। कुछ न कर सकने के कारण डूबनेवाला वह तैराक जिस प्रकार अपनी अबद्ध जिह्वा से केवल गालियाँ दे सकता है, उसी तरह उन्होने जी भरकर अपनी जीभ चलायी।

और अवधबिहारीलाल की समझ मे न आया कि उन्हे उस पत्र से हर्ष हुआ है या खेद। वे इस पत्र को लिये हुए सुलक्षणा के पास इस तरह भागे, जैसे कोई पाँच वर्ष का बच्चा, कोई सुन्दर खिलौना पाकर, अपनी दादी के पास दौडकर जाता है। सुलक्षणा के पास पहुँचते-पहुँचते दो जगह वे गिरते-गिरते बचे। बचपन के बाद शायद ही कभी वे इस प्रकार दौडे हो। सुलक्षणा पत्र पढते ही पहले सन्न-सी रह गयी, लेकिन कुछ सेकिड मे ही उनका मुख हर्ष से चमकने लगा। उन्होने वकील साहब से जल्दी से जल्दी लखनऊ का सबसे अच्छा बाजा मँगाने को कहा। स्वय शीघ्र से सारी अडोस-पड़ोस की स्त्रियो को इकट्ठा करने गयी और फिर लौटकर खुद अपने हाथ से अपने घर के फाटक पर चौक पूरने बैठी। सुलक्षणा चाहती यही थी कि इन्दुमती की शादी उन्ही के कायस्थ समाज के किसी लडके से हो, वे उसका वर चुनकर स्वय उसका विवाह करे, पर अब वह प्रश्न नही था। अब तो ललितमोहन उनका दामाद था और पुत्री का अखण्ड सौभाग्य उनकी सबसे बड़ी कामना। अतः दामाद और पुत्री के स्वागत की यह मगलमय तैयारी उन्होने एकदम आरम्भ की। वकील साहब ने अपनी पत्नी के इस महान् उत्साह मे अपने को विलीन कर, बालको की-सी चपलता के साथ, इस सारी तैयारी मे उनका साथ दिया।

विवाह के बाद जब इन्दुमती और ललितमोहन ने विवाह-स्थल छोड़ा और इन्दुमती ने ललितमोहन की ओर दृष्टि उठायी, तब उसे अपने आप

पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे जान पडा कि उस समय ललितमोहन को नजर भर देख सकने की उसमे शक्ति ही नही है। पर उसकी यह मानसिक स्थिति थोडी ही देर रही और उसकी समझ मे न आया कि इसका कारण क्या था।

पहले ललितमोहन अपनी नव वधू और उसके भ्राता वजीरअली को साथ ले कानपुर गया, लेकिन मकान के फाटक पर ही उसे उसका मुनीम मिला, जो उसी का रास्ता देख रहा था। मुनीम के हाथ मे एक बन्द चिट्ठी थी। मुनीम ने वह चिट्ठी ललितमोहन को दी। चिट्ठी उसके पिता के हाथ की लिखी हुई थी।

ललितमोहन,

आज सूँ तू म्हारो बेटो नही और मै थारो बाप नही। सौगन्द है तूने और बी नाटक करवावाली छोरी ने इण घर मे पॉव धरवानी। जहाँ तुम्हारी खुशी हो वहाँ जाकर रहो और जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो। मै आज सूँ समझ ले स्यूँ कि तू जनमो ही नही थो।

—रामस्वरूप

ललितमोहन अपने दोनो साथियो के सग उल्टे-पैर स्टेशन आया। इस समय बार-बार उसके मन मे उठ रहा था—'आखिर मैंने कौनसी अनुचित बात कर डाली? प्रचलित प्रथा के विरुद्ध विवाह से दम्पति यदि सुखी हो तो क्या यह सर्वथा उचित बात नही है? अनुचित तो है वह विवाह, जो बिना वर-वधू के सुख का ओर ध्यान रखे, रूढि के अनुसार कर दिया जाता है। इस समाज मे न जाने कितनी हानि-प्रद बाते इसलिए की जाती है कि वे न जाने कब से की जा रही है और अनेक लाभजनक कृतियाँ इसलिए नही की जाती कि वे भूत मे नही की जा रही थी।

कानपुर और लखनऊ के बीच थोडी-थोडी देर मे गाडियाँ आती-जाती है। जब ये लोग वापस लखनऊ पहुँचे तब रात आधी से अधिक बीत चुकी थी, पर जब अवधबिहारीलाल के घर से इनकी गाडी कुछ दूर थी तभी इन्हे बाजे का शब्द सुनायी दिया, बाजा भी साधारण नही था, लखनऊ के अच्छे से अच्छे बाजो मे एक। जब ये लोग अवधबिहारीलाल के मकान के सामने पहुँचे, तब इनने देखा, मकान मे दिन का-सा प्रकाश है। आँगन

भरा है पुरुषो की भीड से और जनाने मे स्त्रियो के मगल-गीत की ध्वनि आ रही है। कितनी आतुरता से प्रतीक्षा हो रही थी वकील साहब के घर मे इन दोनो की !

वहाँ के इस महान् प्रेममय स्वागत ने ललितमोहन को गद्‌गद् कर दिया। इन्दुमती कैसी-कैसी शकाओ को करती-करती यहाँ आयी थी, विशेषकर अपनी माता के कारण, पर यह क्या, सुलक्षरणा को तो उसने इससे अधिक आनन्दित जीवन मे शायद ही कभी देखा हो ! यह सब देख इन्दुमती के मुख पर मुस्कराहट दौड़ गयी और आँखो मे आँसू भर आये। मुख पर मुस्कराहट और आँखो मे आँसू ! क्या मुख मुस्कराहट के द्वारा और आँखे आँसुओ के जरिए बोल रही थी ? जो कुछ हो, भावनाओ का जनक-हृदय एक होते हुए भी मुख और आँखो की वाणी पृथक्-पृथक् थी।

× × ×

इन्दुमती ने ललितमोहन के साथ अवधबिहारीलाल के बाग मे रहना आरम्भ किया। वही बाग था, बाग के वही दृश्य। जब ललितमोहन अवध-बिहारीलाल की जुबिली के समय लखनऊ आया था तब इन्दुमती और ललित-मोहन दोनो ने साथ-साथ भी इन दृश्यो को देखा था, लेकिन दम्पति को अब जान पडा कि सभी दृश्य, सारी वस्तुएँ बदल गयी है। उन्हे यह समझ मे न आया कि चीजे और नजारे न बदलकर यथार्थ मे उनकी दृष्टि मे परिवर्तन हुआ है। बाग था इन्दुमती का। ललितमोहन ने इसके पहले चाहे उसे इने-गिने बार देखा हो, पर इन्दुमती ने तो अगणित बार। वहाँ पर वही सामान भी था, जिसका इन्दुमती न जाने कितने बार उपयोग कर चुकी थी, पर ललित-मोहन के वहाँ आकर रहते ही इन्दुमती के लिए भी उस उद्यान तथा वहाँ के सामान ने एक नया रूप धारण कर लिया ! और ललितमोहन जब किसी चीज की तारीफ कर देता तो उसकी नवीनता और सौन्दर्य दोनो ही न जानें कितने गुने बढ जाते ! इन्दुमती भी ललितमोहन की इस प्रशसा मे अपनी प्रशसा मिला देती और उस समय वह यह भी भूल जाती कि अपनी ही वस्तुओ की इस प्रकार की प्रशसा उसे नही करनी चाहिए।

ललितमोहन तो सौम्यता का अवतार ही था, पर इन्दुमती की प्रखरता भी एकदम चली गयी। उसकी दृष्टि, उसकी मुस्कराहट, उसकी भावभगी,

उसके अगविक्षेप, उसकी मुद्रा, गति, बोली, सब परिवर्तित हो गयी। उसकी दृष्टि में मिठास, उसकी मुस्कराहट मे मिठास, उसकी बोली मे मिठास, सर्वत्र मिठास ही मिठास भर गयी। उसकी सारी प्रखरता का स्थान मिठास ने ले लिया। इन्दुमती और ललितमोहन दोनो इस समय जिस सुख का अनुभव कर रहे थे, वह दोनो के जीवन मे अभूतपूर्व था।

मौसम गरमी का था, पर कैसी सुखद गरमी थी! ऐसी गरमी क्या ससार मे पहले कभी नही आयी, दोनो ही सोचा करते। गुलाब फूल रहा था, चपा फूल रहा था, बेला फूल रहा था। कैसे रग थे सब के! गुलाब मे कितना गुलाबीपन था! चपा मे कैसी पीली · नही, नही, सुनहरी झाई और बेले मे कितनी शुभ्र सफेदी! दोनो सोचते, क्या सदा इनके ऐसे ही रग रहते हैं? और फिर तीनो की भिन्न-भिन्न प्रकार की सुवास! पहले भी इन सुमनो को इन्होने न सूँघा हो, यह नही, पर कभी भी ऐसी सुगन्धि तो नहीं आयी! इन पुष्पो पर उडती हुई रग-बिरगी तितलियाँ और गूँजते हुए भ्रमर कितने भले जान पडते! कोयल की कूक तथा श्यामा चन्डूल और अगन के गान में भी नवीनता आगयी थी।

इन्दुमती को लखनऊ के दशहरी तथा सफेदा आम और खरबूजे बहुत पसद थे। हर गरमी मे वह इन्हे बडे चाव से खाती, पर इस बार ललित-मोहन के सग खाने से, इनमे कितनी मिठास बढ गयी थी! उसे याद ही न पडता था कि इसके पहले उसने ऐसे आम और खरबूजे खाये थे।

दिन मे खस की टट्टियो, उन पर निरन्तर पड़ते हुए पानी, और बिजली के चलते हुए पखो ने इस ऋतु को कितना सुखमय बना दिया था! रात का निर्मल, नीला आकाश और उसमे चमकते हुए तारे! क्या आकाश की नीलिमा भी अधिक गहरी हो गयी थी और तारो की द्युति ज्यादा चमकीली? फिर, जब चॉद निकलता तब तो पूछना ही क्या था! उस चाँदनी मे उद्यान के बडे कुण्ड का जल-बिहार। अनेक बार इन्दुमती के मधुर गायन और कभी-कभी कलात्मक नृत्य भी। यद्यपि इस गान और नृत्य मे वाद्य-यन्त्र न होते, तबले का ठेका तक नही, फिर भी बिना वाद्य-यन्त्रो के ये कितने स्वाभाविक जान पडते! पानी से तर दूब के मैदानो मे दूब-सी सफेद शैया पर बिखरी हुई कोमल-कोमल गुलाब की गुलाबी पखुडियो पर शयन। शयन करते-करते ही जब

टिटहरी बोल पडती, या चमकती हुई जुगनूँ निकट आजाती, तब कैसे चौक पड़ते दोनो, मानो इसके पहले न टिटहरी का शब्द सुना था और न जुगनूँ की चमक देखी थी।

कौन कहता है कि ग्रीष्म ऋतु कष्ट-दायक है? यदि यह मौसम दुख-प्रद होता तो महाकवि कालिदास कभी अपने 'ऋतु-सहार' काव्य मे न ग्रीष्म ऋतु के वर्णन को प्रथम स्थान देते और न इसका निम्नलिखित वर्णन करते—

'निशा शशाकक्षमनीलराजय
क्वचिद्विचित्र जलयन्त्रमन्दिरम्।
मरिण· प्रकाश सरस च चन्दनम्
शुचिप्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम्॥...
'कमलवनचिताम्बुः पाटलामोदरम्यः
सुखसलिलनिषेकः सेव्यचन्द्राशुहार।
व्रजतु तव निदाघ कामिनीभि समेतो
निशि सुललितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन॥'

प्रात काल से रात्रि तक तथा रात्रि से प्रात काल तक इन्दुमती को ललित-मोहन एव ललितमोहन को इन्दुमती के अतिरिक्त इस सारे विश्व में और किसी की आवश्यकता न थी। दोनो एक दूसरे के सग मे प्रपूर्ण थे। बीच-बीच में अवधबिहारीलाल, सुलक्षरगा, वजीरअली और इन्दुमती के कुछ अन्य मित्र भी आते-जाते रहते, लेकिन इनके आगमन से इस युगुल के कार्यक्रम में बाधा ही पहुँचती और कितनी इच्छा रहती दोनो की कि ये लोग टले वहाँ से! दोनो कितनी प्रशसा किया करते एक दूसरे की सुन्दरता की, बुद्धि की, हर बात की! एक दूसरे के सामने, अपने को हर प्रकार से तुच्छ कहता, और कहता, इतना ही नही, समझता भी। न कभी दोनो एक दूसरे को निरखते-निरखते अघाते और न कभी दोनो की बातें ही समाप्त होती, वे सदा अधूरी ही रहती। जान पडता इन बातो का अन्त होना सम्भव नही और इस सम्भाषरग में दोनो उन्ही प्रेममय वाक्यो को दोहराते, परन्तु ये पुनरुक्तियाँ उन्हे पुनरुक्तियाँ न भासित होती। बार-बार वे ही बाते, वे ही वाक्य, वे ही शब्द दोहराने पर भी उन्हे नवीन, एकदम नवीन जान पडते!

दो सच्चे प्रेम पात्रो के प्रेम-सम्भाषरग के समान खुले हृदय का वार्तालाप

कोई भी दो व्यक्ति किसी भी विषय पर नही कर सकते। इन प्रेमियो को अपनी इस प्रणय-वार्ता में इसलिए और अधिक आनन्द मिलता कि एक दूसरे से बाते करते-करते यथार्थ मे ये अपने आपसे भी बाते करते रहते। एक दूसरे में अपने को विलीन किये बिना कोई सच्चे प्रेम-पात्र हो ही नही सकते, और ऐसे स्नेहियो का सम्भाषण जहाँ एक दूसरे के लिए चलता है वहाँ अपने आप के लिए भी। न यह कभी पूरा होता है और न दोनो मे से कोई इससे ऊबता ही है। अपनेपन मे यही तो विशेषता तथा विचित्रता है। एक बात और। प्रेमियो का यह सम्भाषण एक दूसरे के लिए त्रिविध समीर के समान होता है। वह सदा मन्द स्वर में चलता है, उससे शीतलता मिलती है और उसमे प्रेम की सुगन्ध रहती है। इन्दुमती और ललितमोहन के हृदय-कपाट सदा इसी समीर का आनन्द उठाने के लिए खुले रहते। फिर वे दोनो अक्षरो, शब्दो और वाक्यो के सिवा एक मूक भाषा में भी प्रायः बाते किया करते थे। वे बाते होती, जो वाणी द्वारा तो न कही जाती, पर हृदय मे उठती और वाणी द्वारा न कही जाने पर भी वे एक दूसरे की समझ मे आ जाती। ऐसे मूक सम्भाषणो मे अनेक बार दोनो की आँखे अधखुली रहती, ओठ भी अधखुले रहते और अधखुले ओठो पर एक विचित्र प्रकार की मुस्कराहट रहती। कभी-कभी वे इस प्रकार अधखुली आँखो से एक दूसरे को देखने और अधखुले ओठों से मुस्कराते हुए विद्यार्थी जिस प्रकार झूमते हुए पढते है, उस तरह झूमने लगते, परन्तु झूमकर पढनेवाले विद्यार्थी प्रायः जोर से पढते है। ये दोनो चुप रहते।

दोनो जब एक दूसरे की प्रशसा करते, तब जिसकी तारीफ होती, वह यह अवश्य कहता—'चलो, चलो, आज तक किसी ने भी तो नही कहा कि मुझ में यह भी है!' प्रशसा करनेवाला उत्तर देता—'इस तरह निकट से और सावधानी से किसी दूसरे ने तुम्हे देखा ही नही।' दोनो ने न जाने कितनी बार ये बाते कही थी, पर कहने के बाद दोनो इन्हे इस तरह भूल जाते कि फिर से कहते समय दोनो को ही इनमें कोई पुरानापन न दीखता।

प्रेम-मार्ग एक ऐसा मार्ग है जिसके पथिक अपने उसी पथ पर उसे सदा नया समझते हुए चल सकते हैं। एक ही बात को बिना उसकी नवीनता नष्ट किये बार-बार कह सकते हैं, एक ही कृति को बिना ऊबे निरन्तर कर सकते है।

इस प्रकार दोनो एक दूसरे की आँखो को एक दूसरे के रूप के दर्शन के लिए तथा एक दूसरे के कानो को एक दूसरे की वाणी के श्रवण करने के लिए और सारे शरीर को एक दूसरे के समीप से समीप लाने के लिए सदा दावत खिलाया करते। अन्य हर तरह की दावतो मे तो कही न कही जाकर भूख बुझ जाती है, लेकिन ये भोज ऐसे थे जिनमे दोनो मे से एक भी कभी न अघाता। फिर एक दूसरे को प्रत्यक्ष देखने, एक दूसरे की वाणी श्रवण करने और एक दूसरे के समीप से समीप आने मे ही दोनो को आनन्द न मिलता, पर अपने मिले हुए प्रतिबिम्बो के दर्शन से भी उन्हे एक नया आनन्द प्राप्त होता। कभी दोनो एक दूसरे से सटकर किसी बडे शीशे के सामने खडे हो जाते, कभी कुण्ड के नीर के सम्मुख युगुल रूप मे अपने ही प्रतिबिम्ब को देख कितना आनन्द होता इस युगुल को !

दोनो अपने प्रेम को, अपने सुख को, इस दुनियाँ के वर्तमान युगुलो से ही नही, लेकिन भूत के सारे दम्पत्तियो से भी श्रेष्ठ मानते और फिर इसी दुनियाँ के नही, पर स्वर्ग के, त्रिलोकी के, तथा चौदहो लोको के युग्मो से बढकर। हमारे इस समय के स्वार्थी ससार के प्रेमियो मे इन्हे अपने से अधिक प्रेममय कोई न दीखता हो, यही नही, प्राचीन पौराणिक, और ऐतिहासिक प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यिक युगुलो मे भी नही। केवल इस देश के नही, पर सारे ससार के प्रेमी युगुलो का प्रेम इन्हे अपने प्रेम के सामने तुच्छ दीखता। सावित्री और सत्यवान्, ऊर्वशी और पुरूरवा, सीता और राम, नल और दमयन्ती, राधा और कृष्ण, सुभद्रा और अर्जुन, शकुन्तला और दुष्यन्त, शीरी और फरहाद, लैला और मजनू, वामिक और अजरा, सोहनी और महीवाल, हीर और राँझा, ससी और पुन्नू, ट्रॉयलस और क्रेसिडा, डाण्टे और बीट्रिस, हीरो और लियाण्डर, रोमिओ और जूलियट, फर्डिनेण्ड और मिरैण्डा, इत्यादि, इत्यादि—हरेक के प्रणय में इन्हे कोई न कोई दोष दीखता।

इन्दुमती और ललितमोहन के आपसी प्रेम ने एक दूसरे के प्रति कितना विश्वास उत्पन्न कर दिया था और इस विश्वास ने प्रेम को कितना बढा दिया था ! प्रेम से विश्वास की अधिकता और विश्वास से पुनः प्रेम की। दोनो का कैसा अन्योन्य सम्बन्ध था ! फिर इन्दुमती और ललितमोहन का प्रेम दिन दूना और रात चौगुना बढ रहा था और वह जितना बढता जाता था, उतना

ही गहरा होता जाता था। उसका हाल उस पौधे के समान था, जो जमीन के ऊपर जितनी अपनी शाखाएँ बढ़ाता है, उतनी ही जमीन के भीतर अपनी जड़े।

इस प्रेम की उत्पत्ति दोनो के मनो मे एक दूसरे को देखने से हुई थी। दोनो ने सर्वप्रथम देखा था एक दूसरे का रूप। हृदय का एकीकरण इस खिचाव के बाद की सीढी थी। विवाह के पश्चात् दोनो का एक दूसरे के शरीर पर भी अधिकार हो गया ; उसी शरीर का, जो दोनो के एक दूसरे के प्रति आकर्षण का प्रथम कारण था, परन्तु विवाह होने के बाद दोनो को जान पड़ा कि शरीर हृदय को समीप लाने का एक साधन मात्र था। सुहाग रात के शारीरिक सम्मिलन ने दोनो के इस विचार को और पुष्ट कर दिया कि शारीरिक सम्मिलन एक दूसरे को निकट लाने का एक जरिया भर है। प्रेम और वासना का सबसे प्रधान अन्तर कदाचित् यही है। शरीरधारियो के लिए शरीर को पृथक् रख प्रेम की उत्पत्ति और उत्पत्ति के पश्चात् उसका पोषण तथा तुष्टि दोनो ही शायद सम्भव नही, किन्तु जहाँ प्रेम मे शरीर साधन मात्र रहता है, वहाँ वासना में वही साधन और साध्य दोनो हो जाता है।

फिर उन्हे यह भी अनुभव हुआ कि प्रेम मानवो मे ही हो सकता है, पशुओ मे नही। पशुओ का जीवन उनकी अन्तर्प्रवृत्ति के अनुसार चलता है, मानवो का उनकी मेधा के अनुसार। प्रेम मस्तिष्क की चीज न हो, हृदय की चीज होने पर भी केवल अन्तर्प्रवृत्ति नही, उससे परे की वस्तु है। वह यथार्थ मे पवित्र है। काम-चेतना तो उसके साथ बहुधा इसलिए आ जाती है कि मनुष्यो के भी शरीर तो है ही।

इन्दुमती और ललितमोहन दोनो इस समय वर्तमान मे रह रहे थे। लड़कपन बीत चुका था ; अतः भविष्य की ओर ध्यान न था और बुढापा अभी दूर था, जो भूत का ही निरीक्षण करता रहता है। दोनो के सगम की यह प्रेमधारा लहराती, छलछलाती, उछलती और अठखेलियाँ करती हुई बह रही थी।

ललितमोहन को इन्दुमती जान पड़ती थी इस आधुनिक सभ्य समाज रूपी वृक्ष की एकाकिनी कली, जिसमे रूप था, गन्ध थी। और इन्दुमती को ललितमोहन ज्ञात होता था इस समाज रूपी तरु का एक मात्र फल, जिसमें स्वाद था, तृप्ति थी। दोनो एक दूसरे को सदा सुस्वप्न से भी अधिक मनोहर

जान पडते थे।

ललितमोहन उन व्यक्तियो में था जो अकेले किसी आनन्द को उठाने मे असमर्थ-से रहते है। देखे हुए सुन्दर दृश्यो, यहाँ तक कि नाटक और सिनेमा आदि को भी मित्रो के साथ देखने मे उसे नया सुख मिलता। अनेक बार खाये हुए व्यजनो को भी दोस्तो के साथ बैठकर पुन खाने में उसे नवीन स्वाद आता। सुने हुए सगीत को भी मित्रो के साथ दुबारा सुनने मे उसे नयी स्फूर्ति होती। अत इन्दुमती के साथ सभी सुखो को भोगने मे उसे नया आनन्द मिलने लगा, ऐसा जैसा उसे अभी तक किसी के सग में न मिला था। इसका यथार्थ कारण यह था कि इन्दुमती के प्रति उसका ऐसा प्रेम था, जैसा इसके पहले किसी पर न हुआ था। ललितमोहन की वृत्ति के कारण इन्दुमती के सहवास में उसे यह आनन्द मिलना स्वाभाविक था, परन्तु आश्चर्य तो यह हुआ कि विश्व मे निज के व्यक्तित्व को सब कुछ माननेवाली इन्दुमती का ललित-मोहन-सा ही हाल था। शायद मनुष्य अपनी यथार्थ वृत्ति को स्वय भी नही समझता।

इन्दुमती और ललितमोहन का सुख इस समय किसी एक चीज तक ही परिमित नही था। उन्हे हर बात मे सुख मिलता था। इस सुख का दायरा इतना विशाल हो गया था कि सारा विश्व उसके भीतर आ जाता था, यहाँ तक कि उसकी एक दूसरे के विरुद्ध दीखनेवाली बाते भी। यदि उस सम्भाषण मे आनन्द मिलता था तो चुप रहने मे भी, यदि उन्हे एक दूसरे को देखते रहने मे सुख की प्राप्ति होती थी तो एक दूसरे पर से दृष्टि को हटा, शून्य मे देखते रहने पर भी, क्योकि जब वे चुप रहते, तब एक दूसरे को निरखते और जब शून्य मे देखते तब वहाँ भी उन्हे एक दूसरा ही दिखायी देता। इस समय उन्हे उनका नन्हे मे नन्हाँ विचार, उनकी छोटी से छोटी कृति भी उन्हे सुख पहुँचाती थी। इन्दुमती और ललितमोहन दोनो को ऐसा जान पड़ता था कि उन्होने एक दूसरे को पाने मे अपने को खो दिया है, परन्तु इस खोने की अवस्था में भी दोनो को कैसा असीम सुख था!

वे दोनो इस समय जीवन रूपी शैल के उस उच्च और आलोकमय शिखर पर पहुँच गये थे, जहाँ किसी भी तरह के मलीन मेघो की पहुँच नही रहती। इस समय उन्हे सभी कुछ स्वच्छ, शुभ्र और सुखमय प्रतीत होता था। वे दो

थे, परन्तु दोनो मे एक अद्भुत प्रकार की एकता का अनुभव होता था। किसी तरह की द्वन्द्वता के दुख से उनका कोई सरोकार न रह गया था। जहाँ प्रेम ही प्रेम हो और कुछ नही, वहाँ यही होना स्वाभाविक है। हाँ, कभी-कभी एक बात अवश्य होती। कभी ललितमोहन इन्दुमती को इस प्रकार की पैनी दृष्टि से देखने लगता, मानो देखनेवाला देखे जानेवाले के भीतर किसी चीज को खोज रहा हो। उस समय देखे जानेवाले की दृष्टि से स्पष्ट हो जाता कि वह घबड़ाकर यह सोच रहा है कि मुझ मे कोई वस्तु ढूँढी जा रही है और कही वह न मिली तो ? यह घबडाकर देखनेवाले से न छिपती और बहुधा इसका अन्त दोनो के अट्टहास मे होता।

कोई खास हँसी की बात न होने पर भी किसी साधारण-सी बात पर कभी-कभी इन्दुमती और ललितमोहन हँसने लगते और खूब हँसते। अनेक बार यह हँसी एक दूसरे को गुदगुदाने से और बढ जाती। उस समय हँसने के कारण दोनो के शरीर एक विशेष ढँग से हँसने लगते, मानो उनके पूरे के पूरे शरीर हँस रहे हो। ऐसे अवसरो पर दोनो युवावस्था से बाल्यावस्था मे पहुँच जाते। कितनी उम्र घट जाती दोनो की ! और इस घटी हुई उम्र को प्रमाणित करने, दोनो के उस गुदगुदी के कारण फैल जाते काले बाल, बच्चो के से बाल ! ये फैले हुए बाल उनकी घटी हुई अवस्था का प्रमाण तो देते, पर उनके सौन्दर्य को किंचित् भी न घटाते, वरन् सौन्दर्य तो उनका इन फैले हुए बालो से चारो ओर उल्टा फैल जाता। आलिगन के समय इन्दुमती और ललितमोहन के हृदय की धडकन भी इस प्रकार मिल जाती कि दोनो को इसका ही बोध न रहता कि कौन किसके हृदय की धडकन है। दोनो एक दूसरे की छाया तक का चुम्बन करते।

इन्दुमती और ललितमोहन में सैद्धान्तिक विचारो की एकता न थी, परन्तु जहाँ प्रेम है वहाँ विचारो की विभिन्नता आपसी सम्बन्ध की दृढता में कोई बाधा नही पहुँचाती और जहाँ प्रेम नही है वहाँ विचारो की एकता भी उस सम्बन्ध को स्थिर रखने मे कोई सहायता प्रदान नही करती।

इन्दुमती का ललितमोहन पर इतना अधिक प्रेम था कि यदि उसकी कोई भी बात ललितमोहन को थोडा भी खिन्न करती तो वह एकदम चौंक पडती। उसकी कृति उसे ऐसा धक्का पहुँचाती कि उसका सारा अन्तरग हिल उठता।

बाहर भी तत्काल उसका असर दीख पडता, उसकी मुद्रा बदल जाती, अनेक बार आँसू छलछला आते और कभी-कभी तो बह भी पड़ते । ललितमोहन से भला यह सब क्योकर छिपता ? उसे इसका कारण भी मालूम हो जाता। तत्काल ललितमोहन की खिन्नता चली जाती । इन्दुमती की जिस बात से इस खिन्नता की उत्पत्ति हुई थी, वह बात ही उसे स्मरण न रहती और वह प्राणपण से पुन इन्दुमती को प्रसन्न करने मे जुट जाता। और उस समय इन्दुमती बार-बार मुस्कराते हुए कहती—'समझ गये ?' 'जान गये ?' 'पहचान गये ?' ललितमोहन हँसता और केवल हँसता इन प्रश्नो पर।

इस अपूर्व सुख मे इन्दुमती तथा ललितमोहन को दिन किस तरह बीतते जा रहे है इसका भान ही न था।

× × ×

समय पर ललितमोहन की बी० ए० की परीक्षा का नतीजा निकला। उसने बी० ए० प्रथम श्रेणी मे पास किया था। इन्दुमती और ललितमोहन मे से बुद्धि मे कौन प्रखर है, इन्दुमती को इस सम्बन्ध मे अभी भी कई बार सन्देह हो जाता था, पर अपने तथा ललितमोहन की परीक्षाओ के नतीजे के बाद अब इसमे भी कोई सन्देह न रहा। तो विश्व मे एक व्यक्ति हर दृष्टि से उससे महान् था, इसका उसे अन्तिम सुबूत भी मिल गया, पर इससे इन्दुमती को दु ख न होकर उल्टा हर्ष हुआ। वह अपने को ललितमोहन मे विलीन कर चुकी थी। 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है' पिता के इस उपदेश को आज तो उसने विस्मृत-सा कर दिया था। कभी-कभी अभी भी यह उपदेश उसे याद अवश्य आ जाता, पर जब यह उसे याद आता, तब पुनर्जन्म न मानते हुए भी वह अपने मन से कहती, 'यह तो मेरे लिए अब किसी पूर्वजन्म की घटना के समान हो गया है।' अब तो उसे सुलक्षणा का उपदेश ही उचित जान पडता—'स्त्री का पूर्ण विकास तो पत्नीत्व में ही है।'

ललितमोहन की परीक्षा के फल का तार पहले-पहल इन्दुमती ने ही पढा था। वह महान् हर्ष से उछलती-सी ललितमोहन के पास पहुँची और तार बता उमग स्वर मे बोली—'अब तो मानोगे न कि मै हर बात मे तुम्हारे सामने तुच्छ हूँ ?'

ललितमोहन ने उसकी ओर देखते-देखते मुस्कराते हुए कहा—'इम्तहान का नतीजा तो एक आकस्मिक घटना है। नही तो कहाँ तुम और कहाँ मै ?' और इन्दुमती को अपने बाहुपाश मे ले उसका मुख चूम लिया। इन्दुमती को ललितमोहन के प्रथम श्रेणी मे आने, उसे स्वय यह सूचना लाकर देने, ललित-मोहन के इस प्रकार उस सूचना को ग्रहण करने से जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह क्या उसे स्वय प्रथम श्रेणी मे आने से हो सकता था ? कभी नही। उसने हठात् फिर अपने मन मे कहा—'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही······नही, नही, निज का व्यक्तित्व कुछ नही, कुछ भी नही है।'

: १७ :

ललितमोहन ने पिता की सम्पत्ति मे मे एक फूटी कौडी भी न लेने का निश्चय कर लिया था। परन्तु, 'श्वसुरगृहनिवासे स्वर्गवासो धरायाम्' को भी वह चरितार्थ न करना चाहता था। उसने मैट्रिक, इण्टर और बी० ए० तीनो ही प्रथम श्रेणी मे पास किये थे। अब वह एम० ए० करना चाहता था। उसे आशा थी एम० ए० मे भी प्रथम श्रेणी पाने की और इसके पश्चात् कही भी प्रोफेसरी मिल जाने की। पर सवाल था एम० ए० पास करने तक का। ये दो वर्ष भी वह लखनऊ रहकर नही पढना चाहता था। उसकी इच्छा थी कानपुर मे एक किराये का मकान लेकर इन्दुमती के साथ वहाँ रहने की और एक का आर्ट्स तथा दूसरे का साइन्स लेकर पढने की। इन दो वर्षों का खर्च वह लडको को पढा-पढा कर चला लेगा, यह भी उसे उम्मीद थी। जब उसने यह प्रस्ताव इन्दुमती से किया, तब वह एकदम बिगड पडी।

अवधबिहारीलाल के एक ही सन्तान होने तथा वकील साहब के वसीयत-नामे का कुछ उडता हुआ वृत्त मालूम हो जाने से इन्दुमती यह जानती थी कि पिता की सारी सम्पत्ति उसे ही मिलनेवाली है। इन्दुमती को अपने मे और ललितमोहन मे कोई भेद न मालूम होता था। फिर ललितमोहन को

लखनऊ रहकर ही पढने मे क्या आपत्ति हो सकती है, यह उसकी समझ में नही आया। इन्दुमती और ललितमोहन का यह पहला झगडा था। इस समय इन्दुमती की दृष्टि में विरोध, क्रोध और अनुरोध तीनो का मिश्रण था। झगडे का सूत्रपात होते ही उसकी पुरानी प्रकृति लौट आयी—वही स्वेच्छाचारिता, वही उग्रता, वही उद्दडता, वही अकड। ललितमोहन ने नयी इन्दुमती के दर्शन किये ; पर ऐसे अवसरो पर चुप रहकर अपनी बात पर डटे रहना ललितमोहन का स्वभाव था। ललितमोहन को अपने आत्म-सयम की रक्षा मे दूसरो का आत्म-संयम खोना उल्टी सहायता पहुँचाता। आत्म-संयम खोने के कारण दूसरो का जो दयनीय चित्र उसे दीखता वह उसके आत्म-सयम की रक्षा मे उसे और भी बलवान बना देता। बहुधा हमे दूसरो का क्रोध और अधिक क्रुद्ध होने के लिए उत्तेजित करता है, लेकिन ललितमोहन की उल्टी बात थी। उसने इन्दुमती से कोई बहस नही की। 'तो तुम अपने मे और मुझ में इतना भेद समझते हो, ओह !' बार-बार इन्दुमती के इस कथन का उसने कोई उत्तर नही दिया। 'तो बस तुम मेरी इतनी ही परवाह करते हो, क्यो ? बस !' अनेक बार इन्दुमती के यह कहने पर भी वह कुछ न बोला और जब इन्दुमती ने क्रोध के आवेश मे यह कहा कि 'जो मेरी परवाह नही करता, उसकी मै भी, जरा-सी, रत्ती भर भी परवाह न करूँगी।' तब भी वह चुपचाप बैठा रहा। ललितमोहन के कानपुर जाने के प्रस्ताव पर इन्दुमती के मस्तिष्क मे जो अग्नि भड़की थी, वही उसके मुख से ज्वालाओ के सदृश ये वाक्य निकलवा रही थी और कितना निश्चल रहा था इस अग्नि-परीक्षा मे ललितमोहन ! प्रलय के वर्णनो मे जिस प्रकार पहले अग्नि का वर्णन मिलता है और फिर जल-वृष्टि का, उसी तरह इस क्रोधानल के बाद वृष्टि आरम्भ हुई। इन्दुमती रो पडी। उसने विवाह के पहले ललितमोहन के वियोग मे आँसू अवश्य बहाये थे, पर किसी से झगडा कर आँसू बहाना, उसका पहला अनुभव था। ललितमोहन बोला तो फिर भी कुछ नही, लेकिन इन्दुमती के आँसूओ ने उसके नेत्रो मे भी अश्रु-पात आरम्भ करा दिया। वह बिना कुछ कहे इन्दुमती की पीठ पर हाथ फेरने लगा। ललितमोहन के आँसूओ ने इन्दुमती को छार-छार कर दिया। आज तक किसी के आँसू उसे इस तरह ध्वस न कर सके थे। हिचकियाँ लेते हुए वह बोली। उसकी आँखो से अभी भी

आँसू निकल रहे थे और मुख से जो शब्द निकलने लगे वे ऐसे भारी जान पड़े मानो आँसुओ से भीग-भीगकर निकल रहे हो—'आह ! मै क्या-क्या कह गयी ! मै तुम्हारी परवाह न करूँगी, तब·· तब तो मै जीवित नही रह सकती, क्षण मात्र नही।' वाक्य पूरा करते-करते उसने ललितमोहन के पैर पकड़ लिये। ललितमोहन ने उसे खींचकर गले लगा लिया और दोनो न जाने कितनी देर उस स्थिति में रहे। कुछ शान्त होने पर इन्दुमती ने कहा—'तो तुमने मुझे माफ किया या नही, पहले मुझे यह कहो, जल्दी···जल्दी कहो, जान पडता है मेरा हृदय कोई ऐंठ रहा है, मस्तिष्क को कोई पागल बना रहा है।' इन्दुमती ने जीवन मे शायद पहली बार किसी के पैर पकडे थे, उससे माफी माँगी थी। शान्तिपूर्वक ललितमोहन ने उत्तर दिया, 'आपस में माफी कैसी, इन्दु ? मै जानता हूँ कि तुमने क्रोध के आवेश में यह बात कह दी थी। हम दोनो चाहे भी तो एक दूसरे की परवाह बिना किये जी नही सकते।' कुछ रुककर ललितमोहन ने फिर कहा—'और देखो, दो प्रेमियो मे से अगर कोई अपराध कर, अपने अपराध की दूसरे से माफी माँगता है, तो दूसरे के माफ कर देने पर भी, उसे तब तक शान्ति नही मिल सकती, जब तक वह अपने आपको भी माफ न कर दे।'

'ऐसा ?' इन्दुमती ने पूछा।

'हाँ', क्योकि एकान्त में प्रत्येक व्यक्ति अपने कृत्यो की स्वय आलोचना करता ही है। उस वक्त, उस अपराध की वजह से उसके हृदय मे पश्चात्ताप की उत्पत्ति होती है। पश्चात्ताप से ज्यादा पवित्र, पर साथ ही दुख देनेवाली शायद कोई दूसरी चीज नही। इसलिए मै चाहता हूँ कि तुम खुद अपने आप को माफ करदो।'

'कितने ···· कितने उदार हो तुम !' गद्गद् स्वर से इन्दुमती बोली। उसकी साँस में इस समय तेजी आगयी थी, जिसके कारण हर साँस पर उसके वक्षस्थल का विस्तार और सकोच होता, अत ऐसा जान पड़ता था, मानों उसकी हर साँस, उसके हृदय में उठ-उठ कर विलीन होनेवाली भावनाओ की द्योतक हो।

कुछ ठहरकर ललितमोहन ने कहा—'और जानती हो, अपने आपको क्षमा कौन कर सकता है ?'

'कौन ?'

'जिसका हृदय बलवान होता है। जिसमे अतीत को सच्चा अतीत बना देने की शक्ति होती है। जो छुईमुई-सा नही होता। तुममें वह ताकत है।'

इन्दुमती कोई उत्तर न देकर ललितमोहन की ओर देख रही थी।

कुछ ठहरकर ललितमोहन फिर बोला—'तुम्हारे अपने आपको क्षमा कर देने से शायद एक बात और होगी।'

'कौनसी ?' कुछ उत्सुकता से इन्दुमती ने पूछा।

'ऐसी घटना फिर कदाचित् कभी न घटित हो।'

गम्भीरता से विचारते हुए इन्दुमती बोली—'हाँ, यह हो सकता है।' कुछ रुककर इन्दुमती ने करुण स्वर में कहा—'परन्तु, तुमने तुमने तो मुझे सच्चे हृदय से क्षमा कर दिया न ?'

ललितमोहन ने इसका कुछ उत्तर न दे इन्दुमती को और अधिक गाढालिगन मे ले लिया, मानो वह इन्दुमती के हृदय को अपने हृदय से मिला, अपने हृदय की सच्ची स्थिति का इन्दुमती के हृदय को सीधा ज्ञान करा देना चाहता हो।

झगड़ा समाप्त हो गया। आखिर 'मर्द औरत की लड़ाई' कितनी देर चलती और फिर ऐसे प्रेमी युग्म की !

कुछ देर बाद इन्दुमती ने पूछा—'और अब पढोगे कहाँ ?'

बिना किसी हिचकिचाहट के सहज स्वभाव से ललितमोहन ने उत्तर दिया—'वही जो निश्चय कर चुका हूँ—कानपुर मे !'

इन्दुमती ने आश्चर्य से ललितमोहन की ओर देखा। ललितमोहन वैसा ही था, उतना ही सुन्दर, उतना ही मधुर, उतना ही कोमल, पर ललितमोहन की कोमलता कमजोरी से रहित थी। इन्दुमती को जान पडा कि वह एक नये ललितमोहन को देख रही है। इन्दुमती अब फिर वैसा कोई दृश्य नही चाहती थी। दूसरे ही दिन उसने असबाब बाँधकर कानपुर जाने की तैयारी शुरू करदी।

अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा किसी की यह इच्छा नही थी कि ललितमोहन और इन्दुमती कानपुर मे पढे, पर ललितमोहन को कोई भी न रोक सका। सुलक्षणा की तो बात ही अलग थी, लेकिन 'विश्व मे निज का

व्यक्तित्व ही सब कुछ है,' इसे माननेवाले अवधबिहारीलाल भी बेटी को बिदा करते हुए कैसे आठ-आठ आँसू रोये।

ललितमोहन और इन्दुमती ने कानपुर मे एक छोटे से किराये के मकान मे रहना आरम्भ किया। मकान साफ-सुथरा था, पर कहाँ रायबहादुर सेठ रामस्वरूप का महल तथा अवधबिहारीलाल का भवन, और कहाँ यह किराये का मकान! जैसा मकान था वैसा ही सामान, वैसा ही जीवन। दो नौकर, एक खाना बनानेवाला और एक खिदमत करनेवाला। कोई सवारी भी नही। दोनो को इस तरह के जीवन का कोई अनुभव न था, पर एक दूसरे के सग के कारण उस सादे जीवन मे भी दोनो एक नये प्रकार के आनन्द का अनुभव करने लगे। अपने मन मे यह मान कि 'मैं ऋण ले रहा हूँ,' ललितमोहन ने नितान्त आवश्यक वस्तुओ और पढाई इत्यादि मिलने तक खर्च चलाने के लिए कुछ रुपया अवधबिहारीलाल से ले लिया था। ललितमोहन ने अपनी नयी गृहस्थी जमाने के लिए, जितना कम रुपया वकील साहब से माँगा, उस पर उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ, पर ज्यादा लेना ललितमोहन ने किसी भी तरह स्वीकार न किया। हाँ, उसने यह अवधबिहारीलाल से अवश्य कह दिया कि 'जब तक मै कमाने नही लगता हूँ तब तक जो जरूरत पडेगी आप से ही तो लूँगा। अब आपके सिवा ले ही किससे सकता हूँ?'

ललितमोहन के नये मकान मे बहुत थोडे कमरे थे और बहुत थोडा-सा सामान—कुछ दरियाँ, कुछ कुर्सियाँ और टेबिले, कुछ गद्दी-तकिये, दो पलँग, रसोई बनाने तथा खाने के बर्तन और दो साइकिले—एक मर्दानी और एक जनानी।

ललितमोहन 'फिलासफी' एम० ए० मे भर्ती हुआ और कुछ ही दिनो मे साइकिल पर चढना सीखकर कालेज साइकिल पर जाने लगा। इन्दुमती ने भी 'कालेज' मे नाम लिखा लिया, लेकिन न उसने अभी कालेज जाना शुरू किया और न साइकिल पर बैठना ही सीखा। वह रोज अपने मन मे कहती—

'कल से जाना शुरू करूँगी और साइकिल सीखना भी।' पर कल आज मे परिणत होते ही दूसरा कल फिर आ जाता। ललितमोहन भी उसे कालेज

जाने, या साइकिल पर बैठना सीखने के लिए कोई जोर न देता ।

सेठ रामस्वरूप का कानपुर के और अवधबिहारीलाल का लखनऊ के सभ्य कहलानेवाले समाज मे जो स्थान था, उसके कारण ललितमोहन तथा इन्दुमती के इस विवाह का हाल काफी बहस का विषय बन चुका था और अब कानपुर में ललितमोहन के इस प्रकार रहने के कारण इस चर्चा का बाजार और गर्म हुआ । सेठ रामस्वरूप को भी पुत्र की इस प्रकार की रहन-सहन का वृत्त न मालूम हुआ हो, यह नही, लेकिन वे तो ललितमोहन को लिख ही चुके थे—'आज सूँ तू म्हारो बेटो नही, और मै थारो बाप नही ।' ललितमोहन पिता की इस आज्ञा के कारण—'सौगन्द है तूने और बी नाटक करवावाली छोरी ने इणे घर में पाँव धरवानी' उस घर क्या, उस मार्ग पर ही पैर न रखता था । वह इस मसल को मानता था—'जिस गाँव नही जाना, उसका रास्ता नही पूछना ।' कई बार ललितमोहन के मित्र उसके घर अवश्य आते और प्रेम के लिए उसके इस त्यागमय जीवन तथा उसकी आदर्श पत्नी की प्रशसा के पुल बाँध देते । अनेक बार वजीरअली और इन्दुमती के कई दोस्त लखनऊ से भी कानपुर आते और वे भी इनके इस नये जीवन की कम तारीफ न करते । अवधबिहारीलाल तथा सुलक्षणा भी कभी-कभी आते-जाते और कभी-कभी इतवार इत्यादि की छुट्टी मे ललितमोहन भी इन्दुमती को लेकर लखनऊ जाता ।

कालेज खुलने पर अपनी एकाकी दुनियाँ से बाहर पैर रखते ही दुनियाँ मे होनेवाली घटनाओ पर फिर से ललितमोहन का ध्यान गया । इन्दुमती भी पुन. इस ओर आकर्षित हुई । दोनो के प्रेम मे जरा भी कमी न हुई थी । दोनो के हृदयो मे एक दूसरे के लिए वही अनुराग था, वही चाह थी । कितनी उत्कठा से इन्दुमती ललितमोहन के कालज से लौटने का रास्ता देखती ! कितने उत्साह से इन्दुमती से फिर मिलने के लिए ललितमोहन कालेज से लौटता, इस अस्थायी वियोग ने तो उनके प्रेम की लगन को और तीव्र कर दिया था, परन्तु प्रथम प्रणय की आत्म-विस्मृति आत्म-स्मृति मे अवश्य परिणत हो गयी थी और इस स्मृति ने चारो ओर के ससार को भी स्मृति-पटल पर ला दिया था ।

आरम्भ मे, ललितमोहन ने इन्दुमती को विदेशी समाचार समझाये ।

३ फरवरी को पेरिस मे जो 'सुलह-परिषद्' शुरू हुई थी उसके परिणामस्वरूप २८ जून को वर्सलीज मे मित्रराष्ट्रो और जर्मनी मे सुलहनामा हो गया था। उसने इस सुलह की शर्ते इन्दुमती को बतलायी और यह कहा कि जर्मनी को इस बुरी तरह जलील किया गया है, तथा उससे इस प्रकार के हर्जाने माँगे गये है कि दूसरी लडाई निश्चित है। फिर प्रेसीडेण्ट विलसन के '१४ प्रसिद्ध मुद्दो' का वृत्त कह 'राष्ट्र-सघ' की स्थापना होनेवाली है, यह कहा। पर साथ ही उसने अपनी यह राय बतायी कि जर्मनी से जैसा व्यवहार किया गया है, उसे देखते हुए यह 'राष्ट्र-सघ' कहाँ तक सफल होगा, यह एक सदिग्ध बात है। इसके बाद तुर्की मे ब्रिटिश सरकार के व्यवहार का हाल बताया और वहाँ के खलीफा को स्थानच्युत करने के कारण सारे ससार के मुसलमान कितने क्षुब्ध हो गये है, तथा भारतवर्ष पर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है, यह कहा। फिर भारतीय राजनैतिक परिस्थिति पर चर्चा आरम्भ हुई। पहले हिन्दुस्तान के लड़ाई में मदद देने के फलस्वरूप उसे जो 'रौलट ऐक्ट' मिला था और उसके विरुद्ध महात्मा गान्धी के चलाये हुए सत्याग्रह के परिणामस्वरूप जो घटनाएँ पजाब में हुई थी, उन पर ब्यौरेवार बाते हुई, क्योकि सक्षेप मे तो उनका हाल इन्दुमती ही क्या, ऐसा कौन भारतीय था जो न जानता हो ? फिर पजाब की घटनाओ पर जो कलई पोतने का काम सरकारी जाँच कमेटी मिस्टर हटर की अध्यक्षता मे कर रही थी, तथा काग्रेस जाँच कमेटी पण्डित मालवीय और पण्डित मोतीलाल नेहरू के विशेष प्रयत्नो से—इन सारी घटनाओ के उदघाटन की कोशिश, उसका हाल कहा। ललितमोहन ने यह भी बताया कि भारतीय राजनैतिक जगत मे अब एक नयी विभूति का और उदय हो रहा है और वे है—पण्डित मोतीलाल नेहरू। फिर उसने मिस्टर मान्टेगू और लार्ड चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट पर हिन्दुस्तान को जो नये सुधार दिये जानेवाले है, उनका हाल बता यह कहा कि वह भारत के राजनैतिक विषयो का एक विद्यार्थी रहा है और उसे ऐसा जान पडता है कि हिन्दुस्तान की राजनीति मे नये-नये गुल बडी जल्दी खिलेगे।

इन्दुमती को लखनऊ काग्रेस से भारतीय राजनैतिक प्रश्नो से दिलचस्पी हो गयी थी और अपने प्रेमी पति को हिन्दुस्तान के राजनैतिक विषयो का ऐसा अच्छा विद्यार्थी पाकर उसके आनन्द की सीमा न रही। इन्दुमती ने अपने

मन में बार-बार कहा—'तो इनके और मेरे सार्वजनिक कार्यों की दिलचस्पी के भी एक ही क्षेत्र है। आह ! कैसा· ·कैसा महान् है यह सम्बन्ध !'

परन्तु जहाँ इस दृश्य जगत मे सम्बन्ध रखनेवाली बातो मे इन्दुमती और ललितमोहन का मतैक्य था, वहाँ इस दृश्य जगत के परे की वस्तुओ मे मतभेद, और इस मतभेद का सबसे प्रधान विषय था ईश्वर का अस्तित्व। ललितमोहन आस्तिक था और इन्दुमती नास्तिक। दोनो के रोजमर्रा के जीवन मे यद्यपि इस मतभेद का कोई असर न पड़ता था, तथापि इस विषय पर दोनो मे प्राय बहस हुआ करती। इस विवाद का जीवन पर कोई प्रभाव न पडता, कोई फल न निकलता, पर बहस होना न रुकता। कभी-कभी विवाद मे गरमी भी आ जाती और विवाद के अन्त मे दोनो तय करते कि इस विषय पर अब कभी बहस न करेगे। फिर भी कभी न कभी बहस छिड ही जाती। एक दिन बहस के अन्त मे ललितमोहन ने एक लम्बा वक्तव्य-सा दिया। वह इस प्रकार था—

'मुझे तो ईश्वर पर भी विश्वास है, और धर्म पर भी, बल्कि मै यह कहूँ तो और ठीक होगा कि ईश्वर के विश्वास के अन्तर्गत धर्म का विश्वास आ जाता है। धर्म की विशाल फैली हुई हदबन्दियाँ चाहे घट गयी हो, पर जिन हृदयो मे विश्वास का निवास है, वहाँ सच्चे धर्म का आधिपत्य न तो कम हुआ है और न कभी होगा। ईश्वर के विश्वास के बिना मृत्यु का सामना कितना कठिन होता होगा, यह मृत्युशैया पर ही मालूम हो सकता है। यह विश्वास था, तो जिस वायुमण्डल मे बच्चे का लालन-पालन होता है, उसके सस्कारों से उत्पन्न होता है, या फिर बडे होने पर अध्ययन आदि द्वारा सतत् प्रयत्न करने पर , किन्तु सस्कारो के कारण जिस विश्वास की उत्पत्ति होती है, उसका विनाश न कर, यदि उसका पोषण किया जाय तो वह अध्ययन आदि द्वारा उत्पन्न हुए विश्वास से कही अधिक श्रेयस्कर होता है। जो ईश्वर पर विश्वास करते रहे है या करते है, उनमे से किसको उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ है, यह मै नही जानता। जब मे मुझे होश है, तभी से मुझे ईश्वर मे अखण्ड विश्वास है, किन्तु मुझे उसके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण आज तक नही मिला। यदि प्रत्यक्ष प्रमाण ही उसके अस्तित्व का सुबूत है तो मै कहूँगा कि वह नही है। इसी तरह जब हम दुनियाँ के कष्टो को देखते हैं, ससार के मत्स्य न्याय और मार-काट पर ध्यान देते है, तब

भी हमे भासता है कि ईश्वर नही है, क्योकि ईश्वर के रहत ईश्वर द्वारा निर्मित इस जगत मे ये भयानक और अन्यायपूर्ण बाते क्यो ? तर्कों से भी उसका अस्तित्व सिद्ध होना कठिन है, परन्तु इस प्रकार यदि मै निरीश्वरवादी हो जाऊँ तो मै समझता हूँ कि हानि मेरी ही होगी। ईश्वर के भय के कारण मै कोई बुरा काम न करूँ, इसलिए मुझे ईश्वर की आवश्यकता नहीं है, न अपनी इच्छाओ की पूर्ति के लिए ही मै उससे कभी कोई वर माँगता। अपने बल और अपनी शान्ति के लिए मै कोई न कोई अवलम्ब चाहता हूँ, जो मुझे ईश्वर का विश्वास देता है। यदि मै निरीश्वरवादी हो जाऊँ तो जीवितावस्था मे मेरे पास कोई अवलम्ब न रह जायगा। विश्वास-लगर के भग्न होने पर जीवन-जहाज डगमगाने लगेगा। मै जीवित रहते हुए सच्चे धर्म का पालन न कर सकूँगा और मृत्यु का सामना करना तो अत्यधिक कठिन हो जायगा। मरना हरेक को पड़ता ही है, पर सवाल है, मरते समय शान्ति का। ईश्वर के भरोसे बिना शान्ति से मर सकना, यदि मै असम्भव नही, तो दुष्कर अवश्य मानता हूँ।'

: १८ :

पहली अगस्त, १९२० को महात्माजी ने असहयोग के सम्बन्ध मे पहली हड़ताल-घोषणा की थी। दैव भी इस देश का भावी नेतृत्व गान्धीजी के हाथ मे देना चाहता था। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है,' इस महामन्त्र को घर-घर और जन-जन तक पहुँचाकर लोकमान्य अपना कार्य समाप्त कर चुके थे। इस मन्त्र को क्रियात्मक रूप देना महात्माजी का कार्य था। अत ३१ जुलाई की रात को ही तिलक ने इस लोक से बिदा ली।

सितम्बर सन् '२० में गान्धीजी के असहयोग के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ते मे काँग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। पजाब-केसरी लाला लाजपतराय अनेक वर्षो के अमेरिका निर्वासन के पश्चात् उन्ही दिनो भारत

लौट सके थे। वे काग्रेस के इस अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए।

अब इन्दुमती और ललितमोहन से भी घर बैठे-बैठे काग्रेस के समाचार न सुने जा सके और ये दोनो भी कलकत्ते इस राष्ट्रीय महायज्ञ मे अपनी आहुतियाँ चढाने पहुँच गये।

बगाल के प्रधान नेता इस समय चितरजनदास थे। वकालत मे कलकत्ते मे शायद ही इतनी बडी प्रैक्टिस किसी की हुई हो! इसके कारण उनकी बुद्धि और विद्या का सिक्का तो था ही, फिर उनकी महान् दानशीलता ने उन्हे बगाल के हर घर की सम्पत्ति बना दिया था। जिस तरह दास ने धन कमाया था, उसी प्रकार खर्च भी किया था। कितने विद्यार्थियो को उनकी छात्र-वृत्तियो ने पढाया! कितनी कन्याओ के उनके धन के कारण पीले हाथ हो सके! कितने भूखे और अपाहिजो के उनके द्रव्य से पेट भरे! दास गान्धीजी के कार्यक्रम के विरुद्ध थे, लेकिन इतने पर भी गान्धीजी का कार्यक्रम काग्रेस ने स्वीकार कर लिया।

इन्दुमती और ललितमोहन ने भी अपना एक-एक हाथ ही नही, दोनो हाथ उठा-उठाकर महान् उत्साह से इस प्रस्ताव के पक्ष मे अपनी राये दी।

अमृतसर के काग्रेस के अधिवेशन मे ही नरम दलवाले काग्रेस से अलहदा होने लगे थे। फिर अब तो भला वे किस तरह काग्रेस के साथ रहते? क्रियात्मक कार्य के सग कही 'प्रार्थना, दरख्वास्त और विरोध' वालो की निभ सकती थी? कुर्सियो पर बैठे-बैठे बहस करनेवाले राजनीतिज्ञो का जीवन काग्रेस के इस अधिवेशन से समाप्त होगया।

नवम्बर मे धारा-सभाओ के चुनाव थे। काग्रेस ने धारा-सभाओ के मत-दाताओ से कहा था, मत न देने के लिए। काग्रेस के इस प्रस्ताव का देश की जनता पर कितना असर पडा, यह इसी से प्रकट है कि बहुत कम मतदाताओ ने इस चुनाव मे अपने मत दिये। हाँ, धारा-सभाओ की कुर्सियाँ सब की सब अवश्य भर गयी। शताब्दियो के गुलाम देश में यदि ऐसे लोग न हो, तो गुलामी एक क्षण भी कही कायम रह सकती है?

दिसम्बर की छुट्टियो मे नागपुर मे काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन था मद्रास के वयोवृद्ध काग्रेसवादी श्री विजय राघवाचार्य के सभापतित्व मे। स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे सेठ जमनालाल बजाज। यह काग्रेस का पहला

अधिवेशन था, जिसमे काग्रेस कुछ पढे-लिखे लोगो की सस्था न रहकर सच्ची जनता की सस्था हो गयी। कैसा उत्साह था, कैसी स्फूर्ति थी, इस अधिवेशन मे ! मच की दो वस्तुएँ हृदय को सबसे अधिक आकर्षित करती थी—मच के बीचोबीच लगा हुआ लोकमान्य तिलक का आदमकद तैल चित्र और मच की मुँडेर पर बना हुआ एक अन्य चित्र, जिसमे अकित था लोकमान्य का स्वर्गारोहण और मूर्छित होती हुई भारत माता को महात्मा गान्धी का सँभालना। पहले चित्र को कितनी देर तक देखा ललितमोहन ने और दूसरे चित्र को इन्दुमती ने ! इन्दुमती ने तो दूसरे चित्र की प्रतिलिपि तक करली। दृश्यो को छोड़ आकृति बनाने का काम पहले-पहल इन्दुमती ने यही किया। काग्रेस के मडप मे पच्चीस हजार कुर्सियो का प्रबन्ध था, बेंचे अलग, लेकिन जनसमूह तो लाखो की सख्या मे। नागपुर तक काग्रेस का ठीक विधान, निर्वाचन इत्यादि भी न था, इसलिए नागपुर काग्रेस के प्रतिनिधियो की सख्या साढे चौदह हजार के करीब पहुँच गयी थी। दर्शक भी बहुत थे। मडप मे निश्चित सख्या ही बैठ सकती थी, अतः टिकटे बन्द हो गयी और न जाने कितने मनुष्यो को बाहर से ही नेताओ के दर्शन कर सन्तोष करना पडा, वाणी तो दर्शक सुन न सकते थे, क्योकि उस समय 'लाउड स्पीकर' ईजाद न हुआ था। इस काग्रेस मे विलायत से कर्नल बैजवुड, श्री हालफोर्ड नाइट और श्री बैनस्पूर भी शामिल हुए थे, जिन्हे विषय निर्वाचिनी समिति आदि की बैठकों में बोलने की इजाजत करदी गयी थी।

चितरजनदास अपने सैकडो ही अनुयायियो के साथ नागपुर असहयोग के प्रस्ताव का विरोध करने आये थे। लेकिन भारत का भाग्य पलट चुका था। दास ने भी पलटा खाया और जो गान्धीजी के सबसे बडे विरोधी थे, उन्ही ने सबको आश्चर्य से स्तम्भित कर असहयोग का प्रस्ताव काग्रेस की स्वीकृति के लिए काग्रेस के सामने पेश किया। इस अधिवेशन मे काग्रेस का पुराना ध्येय भी बदला। अब वह ध्येय इस प्रकार हो गया—'शान्तिमय उचित उपायो से स्वराज्य प्राप्त करना।' इस ध्येय में ब्रिटिश सम्बन्ध व वैध आन्दोलन का, जिनमे काग्रेस अब तक विश्वास करती चली आ रही थी, कोई जिक्र न रहा। यही काग्रेस का नया विधान भी बना, जिसमे भाषा के अनुसार प्रान्तों का विभाजन तथा प्रतिनिधियो के चुनाव इत्यादि की व्यवस्था थी-। पन्द्रह सदस्यो

की कार्यकारिणी का निर्माण भी इसी अधिवेशन से आरम्भ हुआ, जिसने काग्रेस के रोजमर्रा के कार्य मे एक क्रान्ति ही कर दी ।

साराश मे सन् '२० मे हर दृष्टि से काग्रेस की कायापलट हो गयी । यही से काग्रेस भारतीय जनता की सबसे बडी और सबसे अधिक प्रतिनिधि सस्था हुई।

काग्रेस के अधिवेशन के साथ ही नागपुर में मुस्लिम लीग और खिलाफत कान्फ्रेस के भी अधिवेशन हुए, पर इन सस्थाओ का भी इस समय वही रुख था जो काग्रेस का । इन सस्थाओ के नेता इस समय थे—मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, हकीम अजमल खाँ, डॉक्टर अन्सारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि, और ये सब थे गान्धीजी के अनुयायी ।

देश ने यहाँ से सच्चा साहस दिखाना आरम्भ किया, क्योकि सच्चा साहस आनेवाली घटनाओ का केवल सामना करना नही है, पर आगे बढकर सामना करने के लिए उन घटनाओ को निमन्त्रित करना है ।

इन्दुमती और ललितमोहन का भावी जीवन भी यहाँ से देश के लिए अर्पित हुआ । महान् कृतियो का निर्णय जिस समय के बीच होता है वह समय युग, वर्ष, महीने, पक्ष, सप्ताह, दिन, घण्टे, क्षण न होकर सेकिण्ड होते है । ललितमोहन और इन्दुमती को भी असहयोगी होने का निर्णय करने में सेकिण्ड ही लगे ।

जिस समय इन्दुमती और ललितमोहन ने असहयोग की दीक्षा ली, उस समय घडी के पेण्डुलम की तरह झूमते हुए ललितमोहन ने इन्दुमती के सामने फिर एक लम्बा-सा वक्तव्य दिया । वह बोला—'इस विदेशी सरकार ने हमारे जीवन-कुसुम की पखुड़ियाँ नोच-नोचकर उसे धूल मे मिला दिया है । पुरुषो के मस्तिष्क, स्त्रियो के हृदय, बालको के दृष्टिगत सारे अगो पर इसका बुरा प्रभाव स्पष्ट दीख रहा है । जहाँ कही कोई बहस-मुबाहसा या बातचीत होती है, सबसे प्रधान विषय रहता है—"कैसा खराब समय है !" किसी को भी यह अनुभव नही होता कि समय अच्छा है, निर्धनो को न हो, इतना ही नही, धनवानो को भी नही; असफल व्यक्तियो को न हो, यह नही, सफल व्यक्तियो को भी नही , और समय की बुराई के बाद इन सम्भाषणो में अगर किसी शब्द को महत्त्व रहता है तो वह "यदि" को । सारे विश्वासो, समस्त आशाओ

के खण्डहर पर "यदि" बीज से एक महान् तरु उग आया है और वह इतना फैल गया है कि उसकी छाया से रहित कोई स्थान ही बाकी नहीं रहा; किसी वडे वृक्ष के नीचे छोटे-छोटे पौधे जिस तरह नही पनप पाते, इसी प्रकार "यदि" वृक्ष के नीचे वर्णमाला के किन्ही भी अक्षरो से बने हुए शब्द रूपी पौधो की दशा होती है। मनुष्य की पशु से सबसे बडी विभिन्नता है भाषा। भाषा मनुष्य के सारे विचार और कृतियो के प्रदर्शन का साधन है। जिस समाज की भाषा हर स्थल पर "यदि" शब्द से प्लावित रहती है, वह समाज कैसा है, इसका पता सहज में लग जाता है। और इतने पर भी सरकार यह सारा दृश्य प्रेक्षक के रूप में देख रही है, मानो कोई नाटक हो रहा हो। हमारा आज से कार्य है "यदि" से पिड छुडा पूरे विश्वास के साथ असहयोग के कार्यक्रम को कार्यरूप मे परिणत कर इस सरकार को उखाड फेकना।'

: १६ :

कांग्रेस का अधिवेशन बडे दिन की छुट्टियो मे ही अहमदाबाद में होनेवाला था। स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे श्री वल्लभभाई पटेल और काग्रेस अधिवेशन के सभापति चुने गये थे देशबन्धुदास। यदि नागपुर में काग्रेस कुछ पढे-लिखे लोगो के हाथ से निकलकर जनता की सस्था हो गयी थी, तो अहमदाबाद मे जनता की इस सस्था का बाह्य रूप बदला। काग्रेस मण्डप बना था शुद्ध खद्दर का। कुर्सियो का पता न था। जमीन पर लोगो के बैठने की व्यवस्था की गयी थी। काग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रतिनिधियो की सख्या छै हजार नियुक्त थी, जिनका बाकायदा चुनाव हुआ था, पर दर्शको की सख्या लाखो तक पहुँचने की आशा थी और मण्डप मे प्रतिनिधियो के सिवा दर्शको के बैठने का भी इन्तजाम था। प्रतिनिधियो के ठहरने के लिए 'खादी नगर' का निर्माण हुआ था और सारे झोपडे शुद्ध खादी के बनाये गये थे। इस सब के लिए दो लाख रुपये की खादी खरीदी गयी थी। कैसा

सुन्दर दृश्य था इस सारे 'खादी नगर' और मण्डप का!

देशबन्धुदास की गिरफ्तारी के कारण हकीम अजमल खाँ ने काग्रेस के सभापति आसन को ग्रहण किया। छोटा-सा भाषण था स्वागताध्यक्ष का और छोटा ही भाषण था सभापति का भी। प्रस्ताव भी काग्रेस ने सिर्फ ६ पास किये। बातो का समय बीत चुका था, अब था समय काम करने का। काग्रेस का प्रधान राजनैतिक प्रस्ताव गान्धीजी ने पेश किया।

इस प्रस्ताव पर अधिवेशन मे उपस्थित सारे प्रतिनिधि और दर्शको ने गान्धीजी को एक-एक करके देखा, तथा साँस की भी आवाज न हो, इस तरह साँस लेते हुए उनके भाषण को सुना। एकाग्र मन की वैसी दृष्टि और वैसा श्रवण बिरले अवसरो पर ही देखने को मिलता है। उस समय किस-किस के हृदय मे देश के लिए कैसे-कैसे त्याग करने की भावनाएँ उठी थी! महात्मा गान्धी के प्रति कैसी श्रद्धा, कैसी भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ था! कितने व्यक्ति नजदीक से नजदीक आकर गान्धीजी के दर्शन, उनके चरण-स्पर्श, उनसे बातचीत करने के इच्छुक थे! ललितमोहन के हृदय मे भी देशभक्ति की उमग पर उमग उठ रही थी। वह भी गान्धीजी के निकटतम जाना चाहता था और कुछ न कुछ कह डालना भी, पर उसने देखा कि उस जन-समुदाय के बीच जो कुछ वह चाहता था, वह सम्भव न था। अत गान्धीजी के उस भाषण के बाद जब ऊँचे स्वर से 'महात्मा गान्धी की जय!' बोली गयी, तब उसे भी उस स्वर मे अपना स्वर मिला देने भर से सतोष करना पडा। हाँ, 'महात्मा गान्धी की जय!' के उच्चारण मे उसने अपनी पूरी-पूरी शक्ति अवश्य लगा दी थी।

इन्दुमती ललितमोहन के साथ काग्रेस की चुनी हुई प्रतिनिधि के रूप मे अहमदाबाद गयी थी। इस प्रस्ताव पर गान्धीजी का जो भाषण हुआ, उसकी वजह से इन्दुमती ने उनके सम्बन्ध मे लखनऊ काग्रेस के समय की अपनी राय बदल दी। वहाँ उसने तय किया था कि 'गान्धीजी को बोलना-वोलना कुछ नही आता। ये कर्म-वीर ही है।' पर यहाँ उसे गान्धीजी के शब्दो में भी कितनी वीरता जान पडी। मालूम नही यह शब्द-वीरता वीर-कर्मो के कारण आयी थी, या सन् '१६ मे किसी कुसुम कली के समान मुँदी हुई थी और अब धीरे-धीरे प्रस्फुटित हुई थी! जो कुछ हो, यह भाषण न जाने कितने समय तक

इन्दुमती के कानो मे गूँजता रहा और कई बार उसने इस भाषण की ललित-मोहन से चर्चा की ।

इस अधिवेशन की दृश्य वस्तुओ मे इन्दुमती और ललितमोहन का ध्यान जिस वस्तु ने सबसे अधिक आकर्षित किया, वह थी—खादी । प्रतिनिधियो के ठहरने के खादी के झोपडे, खादी का पण्डाल, स्वयसेवको और देश-सेविकाओ की खादी की वर्दी, इस वर्दी को देखकर तो दोनो के मन मे एक बात और उठी—वर्दी मनुष्यो को कितना बदल देती है । नीचे, ऊँचे, मोटे, दुबले, भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरवाले भी एक-सी वर्दी पहन लेने पर बहुत दूर तक एक-से दीखने लगते है । फिर उनमे एकता की भावना भी आ जाती है और अनु-शासन भी ।

जब इन्दुमती और ललितमोहन अहमदाबाद से कानपुर लौटे तब उन्होने अखबार मे पढा कि पहली जनवरी के उपाधि-वितरण मे सेठ रामस्वरूप 'नाइट' बना दिये गये है और उनके सम्मान मे कानपुर के राजभक्त लोग एक बडी भारी पार्टी का आयोजन कर रहे है ।

ललितमोहन ने इस सवाद को पढ इन्दुमती से कहा 'इस सरकार की भेद-नीति-पालिसी सिर्फ दो जातियो, दो समुदायो के लिए ही नही है, पर घरो में भी झगडे कराने और बढाने मे इसका उपयोग होता है । यद्यपि पिताजी का और मेरा इस वक्त कोई सम्बन्ध नही है, फिर भी मेरे असहयोगी होने के कारण ही वे 'सर रामस्वरूप' हुए है । सरकार नही चाहती कि अब हम बाप-बेटे कभी भी मिल सके ।'

× × ×

आधी रात के समय अपने कमरे के चारो ओर के सारे दरवाजे बन्द कर 'आतम सुख' नामक एक राजपूताने की विशेष प्रकार की रुई का ओवर कोट पहने सेठ रामस्वरूप अपनी गद्दी पर बैठे हुए थे । उनके सामने एक बडी-सी टिकटी पर श्री रामचन्द्रजी का मढा हुआ चित्र रखा था और उनके दाहने हाथ मे ललितमोहन की एक छोटी-सी रगीन तस्वीर थी । आँखो पर चश्मा लगा हुआ था और चश्मे के काँचो तथा आँखो की पुतलियो के बीच मे जल भरा हुआ था । उनके ओठ हिल रहे थे और ओठो से धीरे-धीरे यह शब्दावली निकल रही थी—'भाया ! मुझे तुझसे यह उम्मेद नही थी ।

अरे भाया, कितने देवी-देवता मनाकर, कितने पूजापाठ कराकर, कितने होम बिरत करके, कितने दान दच्छिना देकर तेरा मुँह देखा था । जिस बखत तू अपनी माँ के पेट मे आया, कैसा लगा मुझे और तेरी माँ को ! चौबीस बरसो के दो जुग बीत गये उस बात को, पर कल की-सी बात लगती है।···किस तरह बिताये वे दस महीने और जब सुआड के कोठे मे थाली बजी, कैसा हाथो उछला मेरा मन !·· कैसा हुआ तेरे होने का जलसा ! कानपुर मे तो उस तरह का कभी कोई जलसा हुआ नही। खाना-पीना। नाच-गाना। आतसबाजी। क्या नही हुआ ? तेरी माँ तो तुझे मुझको सौप जल्दी ही चल दी और मैने बजाया माँ तथा बाप दोनो का फरज। · ज्यो · ज्यो तू बढा, त्यो-त्यो किस तरह बढा मेरा मन ! जो तूने चाहा वही हुआ। जो चीज तूने चाही, फौरन से पहले आयी। · साहजादाँ सरीखा तू बडा हुआ। उसी तरह रहा और आज उसी कानपुर में तू इस तरह रह रहा है ! · के के मै सोचतो थारे ब्याव के खातर !·· पण यो· यो कियो तूने ! दो बरस आठ महीने होने को आये, भाया, रुघनाथजी जानै है जो मने मिन्ट भर भी कल पडी होय !··· तुझे लिखा जरूर था—'आज सूँ तू म्हारो बेटो नही और मै थारो बाप नही। मै समझ लेस्यूँ तू जनमो ही नही थो।' पर लिखने मे क्या रखा है। लिखने के माफक करने की भी कोसिस की ? तेरी तस्वीरे उतरवाकर गोदाम मे रखवा दी, पर चुपचाप चोरी से बिना किसी के देखे यह तस्वीर पास मे रखली है और दिन में भी यहाँ से आ वहाँ से आ, यह तस्वीर निरखता रहता हूँ। रात को तो न जाने कितनी देर तुझसे बाते किया करता हूँ ! और अब अब तो तूने सरकार·· सरकार के बिरुध भी काम सुरू किया है।··· पहले बाप के बिरुध, फिर माँ-बाप सरकार के बिरुध। कठे·· कठे जा रह्यो है, भाया ?· के·· के नतीजो निकससी इण सरकार के बिरुध काम को ? जब यह सोचता हूँ तब तो भाया, धूजने, हाँ, धूजने लगता हूँ। · अरे भाया, जिन्दगी का सारा रस चला गया। ये अट्ठाईस महीने नही, अट्ठाईस बरस बीते है।·· अट्ठाईस महीने मे मै अट्ठाईस बरस जितना बूढा हो गया।·· आँखो की जोत चली गयी, नही तो मुझे चस्मा ? अब तो चस्मे के बिना तेरी यह फोटो भी साफ नही दीखती। हाथ भी धूजते है, भाया ! · पर भाया, तू क्या जाने बाप का मन ?···बाप का मन, बाप हुए बिना, कौन जान सकता है ?

पर उपाय क्या ? ··उण नाटक करावावाली कायथनी ने घर मे लाऊँ ?··· किसबी की जगा तो तू कायथनी के, मुसल्माननी ने भी ला सकतो थो, पण बीदजी की जगा। · यह कभी हो सकता है, मेरे जीते जी हो सकता है ? ·· सरकार के बिरुध मै हो जाऊँ ··राजा परमेसुर का रूप होना है । · परमेसुर के बिरुध होकर उस अधरमी, भगी, चाम्हारो के हाथ से खानेवाले गान्धी के पीछे चलूँ ? · यह कभी हो सकता है ? ·मेरे जीते जी हो सकता है ? रुघनाथजी म्हाराज ! रुघनाथजी म्हाराज ! अव तो · अब तो मने बुला ही ल्यो ! पहले जब भी मै आप से ऐसी बिनती करता, उसके प्राहचित को एक कमरे से दूसरे कमरे मे चला जाता, पर म्हाराज, अब मैं कमरा नहीं, इस लोक को ही छोडना चाहता हूँ।···अब···अब तो म्हाराज ·· बरदास · बरदास के बाहर है।'

रामस्वरूप चुप होकर ललितमोहन की तस्वीर राम के चित्र के पास रख हाथो को मलने लगे। हथेलियो के एक दूसरे के घर्षण से एक मन्द शब्द निकलने लगा। वे चुप थे, पर अब उनकी भावनाएँ मन्द स्वर से वे हथेलियाँ कह रही थी।

× × ×

ता० ७ जनवरी, शनिवार को कानपुर के राजभक्त और प्रतिष्ठित कहे जानेवाले समुदाय ने सर रामस्वरूप के सम्मान मे पार्टी रखी थी। पार्टी में अंग्रेज और हिदुस्तानी सरकारी अफसर भी आनेवाले थे। पाटी बडी शान-शौकत से होनेवाली थी। खाने-पीने के सामान के साथ, भाँति-भाँति की शराब का भी प्रबन्ध किया गया था। असहयोग के कार्यक्रम और शराबबन्दी के आन्दोलन को चलते हुए एक वर्ष से ऊपर हो चुका था, पर इसका कोई असर इस प्रतिष्ठित समाज पर न था।

इधर जितनी धूम-धाम से पार्टी की तैयारी हो रही थी, उतने ही उत्साह से काग्रेसवादियो ने उसके बॉयकॉट के लिए पिकेटिग का प्रबन्ध प्रारम्भ किया। इस पिकेटिग का नेतृत्व ललितमोहन के जिम्मे था। पिता के सरकार द्वारा सम्मानित करने के उपलक्ष मे राजभक्तो द्वारा दी जानेवाली पार्टी का पिकेटिंग पुत्र देशभक्तो को सग लेकर करनेवाला है, यह खबर दावानल के सदृश सारे कानपुर नगर में ही नही, पर आस-पास भी बहुत दूर-दूर तक

फैल गयी । सर रामस्वरूप दुख और क्रोध मे तलमला उठे । पार्टी के प्रबन्ध करनेवालो मे से दो-चार मुख्य सज्जनो के पास रामस्वरूप ने पोशीदा तरीके से पार्टी बन्द कर देने के सदेशे भी भेजे, लेकिन जब वह कमजोरी की बात मानी गयी, तब सर रामस्वरूप चुप हो गये । उन्होने अपने जीवन मे कमजोरी का प्रदशन कभी न किया था और अब चौथेपन मे किसी तरह की निर्बलता का दिखावा, यह वे सोच भी न सकते थे ।

सर रामस्वरूप के सम्मान मे दी जानेवाली इस पार्टी के दिन ललित-मोहन के गिरफ्तार होने की अफवाह का बाजार बडा गर्म था । इन्दुमती को भी यह खबर मालूम हो गयी थी । दिन भर वह अपने हृदय के उद्वेग को थामे रखने का प्रयत्न करती रही , किन्तु जिस तरह लगातार होनेवाली वर्षा से भरते हुए जलाशय का कमजोर बाँध उस जलाशय के जल को एक सीमा तक ही रोके रख सकता है, वही हाल इन्दुमती का हुआ । सध्या को पिकेटिग के लिए रवाना होते समय इन्दुमती का प्रयत्न निष्फल हो गया, उसके हृदय का बाँध टूट गया और हृदय का उद्वेग रूपी जल नेत्रो से बह पडा । अत्यधिक सग्रह के कारण बहाव का जोर भी वैसा ही था । ललित-मोहन जानता था कि इस समय फिर से बाँध बनाना सम्भव नही है, इसलिए उसने इसे रोकने की कोई कोशिश न की, वरन् इन्दुमती की पीठ सहलाते हुए इन्दुमती को हल्का होने मे उलटी सहायता दी, हाँ, इस बात का उसने अवश्य खयाल रखा कि बहाव की इस तेजी मे कही वह खुद न बह जाय । ससार में सब बातो की सीमा होती है, बाँध के टूटने पर जलाशय के जल बहने की भी और हृदय के उद्वेग रूपी बाँध टूटने पर आँसू निकलने की भी, बिना एक शब्द भी मुँह से कहे, किन्तु इस उद्वेग को नेत्रो द्वारा बहा देने पर इन्दुमती का जी हलका हुआ । इन्दुमती का मुख तो फिर भी न खुला, किन्तु ललितमोहन ने अब बोलने का ठीक अवसर जान उसकी और उसके धैय की प्रशसा आरम्भ की । इस समय इन्दुमती की तुलना उसने कितनी ऐतिहासिक वीर रमणियो से की । और यह कहते-कहते जब ललितमोहन के भी आँसू न रुक सके तब इन्दुमती ने, जो अब हल्की हो चुकी थी, ललितमोहन को समझाना आरम्भ किया । हाँ, उसके इस समझाने के बीच-बीच में उसके आँसुओ का पुट अवश्य लगता जाता था । वही इन्दुमती जो कुछ देर पहले टूटे हुए बाँधवाले जलाशय के सहार-

कारी बहाव का रूप धारण किये हुए थी, अब उस रिमझिम वर्षा के समान हो गयी थी, जिससे उत्पादन होता है, सहार नही। कुछ देर बाद जब दोनो पिकेटिंग के लिए रवाना होने लगे तब दोनो ही मुस्करा रहे थे। दोनो की दशा इस समय उस पृथ्वी के समान थी, जिसका कीचड तेज बहाव से बह चुका हो, अथवा उस आकाश के सदृश जो वर्षा के पश्चात् स्वच्छ हो गया हो। बिना कुछ कहे दोनो के हृदयो का कितना मैल आज धुल गया था। चलते-चलते ललितमोहन ने इन्दुमती से इमरसन का एक कथन भर कहा—'सत्य और आराम के बीच ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को चुनाव की स्वतन्त्रता दे रखी है। इच्छानुसार वह जो चाहे, चुन ले, पर दोनो साथ नही मिल सकते।'

ललितमोहन मे विवेक और शान्ति के साथ जोश की मात्रा भी पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। किसी महान् जुलूस, सभा या अन्य इसी प्रकार के सार्वजनिक कार्य मे जब वह जाता, तब उसे जान पडता, मानो वह समुद्र के बीच ह्वेल मछली अथवा अरण्य के बीच सिह हो। आज पिकेटिग के लिए भी वह इसी भावना से रवाना हुआ।

पार्टी कानपुर के सरकारी बाग मे थी। निमन्त्रित सज्जनो के सिवा किसी को भीतर जाने का हुक्म न था। बाग के चारो ओर पुलिस का बड़ा कड़ा प्रबन्ध था। पिकेटिग करनेवाले स्वयसेवक, जो सड़के बाग को आती थी, उन पर खडे हुए थे और इन स्वयसेवको के अलावा यह सारा दृश्य देखने के लिए हजारो की सख्या मे जनता जमा हो गयी थी। निमन्त्रित सज्जनो को पिकेटिंग का हाल मालूम होने पर भी वे घर मे चुपचाप न रह सके। वह तो सरकार के विरुद्ध जाकर काग्रेस के साथ हो जाना नही, तो भी कम से कम काग्रेस से सहानुभूति प्रदर्शन करना समझा जाता। राजभक्त लोगो मे इतना करने की भी हिम्मत न थी।

ठीक समय के पहले ही मेहमानो का आना शुरू हो गया, क्योकि पिकेटिग के कारण पार्टी मे पहुँचने मे कुछ न कुछ देर अवश्य लगेगी, यह सब जानते थे और कमिश्नर साहब, कलेक्टर साहब आदि जो राजभक्त पार्टी में आये है, यह देख भर ले, इसके लिए सब अत्यन्त उत्कठित थे। ज्योही पाहुनों का आना शुरू हुआ, त्योही पिकेटिंग भी शुरू हो गयी। स्वयसेवक पूर्ण शान्ति से हाथ जोड-जोडकर लोगो को पार्टी मे जाने से रोकने लगे। ललितमोहन

सारा प्रबन्ध देखते हुए इधर-उधर घूम रहा था। उसके साथ इन्दुमती भी थी, अन्य कोई स्त्री के न होने पर भी इन्दुमती का आना कभी रुक सकता था ? जनता भी 'महात्मा गान्धी की जय!' 'वन्दे मातरम्!' इत्यादि नारो से स्वयसेवको का उत्साह बढा रही थी। 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' नारा तब तक आरम्भ नही हुआ था। देखते-देखते स्वयसेवको की गिरफ्तारी शुरू हो गयी। जनता का जोश बढा। नारो मे तेजी आयी। मेहमान बाग मे घुसने लगे, कोई सिर नीचा किये, कोई छड़ी को घुमाते, कोई दोनो हाथो को जोर-जोर से हिलाते हुए। सभी अतिथियो के चेहरो पर हवाइयाँ-सी उड रही थी। जब ललितमोहन हाथ जोड़-जोड़कर लोगो से शान्त रहने की प्रार्थना कर रहा था, तब वह भी गिरफ्तार कर लिया गया। उसे गिरफ्तार होते देख एक बार फिर नये जोश से इन्दुमती ने महात्मा गान्धी की जय बोली और किस जोश से जनता ने उसका साथ दिया! अब वह बडी आतुर दीख पडती थी स्वय भी गिरफ्तार होने के लिए, पर उसे गिरफ्तार नही किया गया।

पार्टी के मेहमान किस अजीजी से मिले कमिश्नर, कलेक्टर आदि से! पार्टी दी गयी थी सर रामस्वरूप के सम्मान मे। सर रामस्वरूप प्रधान पाहुने थे; पर कमिश्नर और कलेक्टर के सामने अन्य किसी की क्या हस्ती थी ? खाना-पीना भी खूब हुआ। बाते भी खूब चली। किसके हृदय मे क्या था, सो तो अन्तर्यामी ही जान सकता है, लेकिन ऊपर से तो बाग मे प्रवेश करते समय मेहमानो के चेहरो पर जो हवाइयाँ उड़ रही थी, वे भी चली गयी थी और सब यही दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे, मानो बाग के बाहर जो कुछ हुआ और हो रहा है, उससे किसी का न कोई सरोकार है और न उसका किसी पर कोई प्रभाव। इस प्रदर्शन के बिना तो राजभक्ति अधूरी रह जाती न और शायद कमिश्नर, कलेक्टर आदि भी पूरी तरह प्रसन्न न होते।

कुछ रात गये पार्टी समाप्त हुई और दूसरे दिन से पिकेटिग करनेवाले स्वयसेवको पर जेल मे ही मुकदमे चले। किसी को एक, किसी को तीन, किसी को छै महीने की सजा हुई, लेकिन ललितमोहन को पूरे दो साल की कडी कैद। उसके मुकदमे में इन्दुमती अपने माता-पिता के साथ मौजूद थी।

अवधबिहारीलाल और सुलक्षणा ललितमोहन की गिरफ्तारी का हाल सुनते ही कानपुर आ गये थे। वकील साहब बहुत चाहते थे मुकदमे की पैरवी

करना , पर असहयोग के सिद्धान्त के अनुसार ललितमोहन ने पैरवी कराना किसी तरह भी स्वीकार न किया। जब ललितमोहन को सजा सुनायी गयी तब इन्दुमती यद्यपि ओठो से हँस रही थी, फिर भी आँखो मे नही। वहाँ भरा हुआ था जल, और वह आनन्द का था, यद्यपि वह यही कहती हुई सुनी गयी, तथापि वह काहे का था, यह किसी से छिपा न रह सका। ललितमोहन ने हँसते हुए सबसे बिदा ली। इन्दुमती ने उस समय उससे क्या-क्या कहना चाहा—'देखो, स्वास्थ्य की तरफ पूरा ध्यान रखना', 'ठीक समय खाना और ठीक समय सोना', 'न धूप मे खडे रहना न पानी मे', 'जरा भी तबियत खराब जान पडे तो फौरन डाक्टर को बुलवाना', 'हर तरह की सावधानी रखना', इत्यादि। यद्यपि ये सब साधारण बाते थी, फिर भी कितनी आवश्यक जान पड़ी इस समय उसे ! और जब उसका गला रुँध जाने के कारण इनमे से कुछ भी न कह सकी, तब उसे कितना क्रोध आया अपने आप पर ! ललित-मोहन यद्यपि हँस रहा था फिर भी इस समय वह जल्दी ही चला जाना चाहता था। उसकी वह शीघ्रता उसके चेहरे से स्पष्ट झलक रही थी। चलते-चलते उसने इन्दुमती से एक ही वाक्य कहा—'हर तरह साहस रखना !' चार छोटे-छोटे शब्दो का यह छोटा-सा वाक्य भी उसने बडी जल्दी मे कहा। उसके स्वर से जान पडता था, मानो यह शीघ्रता उसके कठ, जबान और ओठो की न होकर किसी अन्दरूनी गहराई की थी।

जब सर रामस्वरूप को यह खबर मिली तब वे उठकर बडी जल्दी-जल्दी घूमने लगे और मुनीम से बडी शीघ्रता भरे स्वर मे बोले --'और 'और के होतो ?···के हो सकै थो ?···राजद्रोह ··राजद्रोह का तो इसा · इसा ही फल निकले है !· नास···सत्यानास हो बी गान्धी को !' फिर फौरन ही वे दूसरे कमरे मे चल दिये। कुछ ही क्षण बाद मुनीम को दूसरे कमरे में से आती हुई सेठजी की जोर-जोर से गला साफ करने और नाक छिनकने की आवाजे सुनायी दी।

: २० :

ललितमोहन की सजा के बाद अवधबिहारीलाल और सुलक्षरणा ने इन्दुमती को लखनऊ ले जाना चाहा, पर ललितमोहन के कार्यो को करते रहना उसका कर्त्तव्य है, यह कह इन लोगो के लाख कहने पर भी वह लखनऊ नही गयी। इन्दुमती कानपुर मे रहकर कांग्रेस का काम तो करने लगी, पर उसे अब अपना घर खाने को दौडता-सा जान पड़ता था। ललितमोहन के साथ के कारण वह अवधबिहारीलाल का भवन और उद्यान आदि भूल गयी थी और इस छोटे से मकान मे मानसिक सुख से रहती थी। उसे इस घर मे शारीरिक कष्ट न हुआ हो, यह बात नही। असहयोग की दीक्षा के बाद के परिवर्तित जीवन मे यह आधिभौतिक कष्ट और भी बढ गया था, लेकिन ललितमोहन के साथ के कारण और बाद मे यह सब देश के लिए किया जा रहा है, इस भावना के कारण, मन ने इन शारीरिक कष्टो को दबा दिया था। अब ललितमोहन के सामने न रहते ही इन्दुमती का मानसिक जगत भी एकदम परिवर्तित-सा हो गया। उसे दशो दिशाये शून्य-सी दिखायी पडने लगी। उसके जीवन मे ललितमोहन ने लगभग पौने तीन वर्षो से ही प्रवेश किया था। पहले भी ललितमोहन न था और अब वह फिर हट गया था, पर कितना अन्तर था ललितमोहन-विहीन पौने तीन वर्ष पहले के और इस समय के जीवन में! चेरापूँजी से लौट कानपुर मे रहना आरम्भ करने पर जब ललितमोहन तथा उसने फिर से देश और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर विचार करना आरम्भ किया, तथा जब ललितमोहन को हिन्दुस्तान के राजनैतिक विषयो का एक अच्छा विद्यार्थी पाकर उसे आनन्द हुआ तब उसने अपने मन मे बार-बार कहा था—तो इनके और मेरे सार्वजनिक कार्यो की दिलचस्पी के भी एक ही क्षेत्र है! आह! कैसा·· कैसा महान् है यह सम्बन्ध! उसके बाद तो यह क्षेत्र केवल दिलचस्पी का क्षेत्र ही न रह गया था, दोनो ने इस क्षेत्र मे काम करना आरम्भ कर दिया था। अभी भी देश मे आन्दोलन चल रहा था। ललितमोहन उसी कार्य के कारण जेल गया था। इन्दु-

मती कांग्रेस की एक कार्यकर्त्री थी, पर ललितमोहन के जाने के कुछ दिन बाद इन्दुमती को जान पड़ने लगा कि सामाचार जानते रहते और दर्शक के रूप मे कांग्रेस अधिवेशन तथा नेताओ आदि को देखने के सिवा देश के कार्य को स्वय करने की उसे कोई मानसिक प्रेरणा न थी, वह ललितमोहन के साथ खिंची हुई चली जा रही थी। और ज्योंही उसके मन मे यह बात उठी, त्योंही उसे अपने पिता के उपदेश का स्मरण आ गया। उसने अपने आप से कहना आरम्भ किया— ठीक, बाबूजी का कथन ही ठीक है। यथार्थ मे 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है'। जो अपने को ही केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, सचमुच उसी का जीवन सुखी होता है।' और फिर तो उसके मन मे नये-नये तर्क उठने लगे। वह अपने आप से फिर बोली—'मुझसे विवाह उन्होने अपने आनन्द के लिए किया, तभी तो मेरी आराम तकलीफ का खयाल न कर, ले आये मुझे यहाँ खीचकर। वे जब से रामस्वरूपजी के साथ अग्रेजो से मिलने जाते और अग्रेज उनका अपमान करते, तब उन्हे दुःख होता। पहले उन्होने अपने सुख के लिए अग्रेजो के समान रहन-सहन, पोशाक आदि आरम्भ की। अग्रेजी नाच सीखा, स्केटिंग सीखा। जब आँग्ल युवतियाँ उनके चारो तरफ घूमती, अपना व्यक्तित्व उन्हे अग्रेजो से भी बडा दीखता; तब उन्हे सुख होता। उन्ही अग्रेजो से असहयोग का प्रश्न उपस्थित हुआ। पहले का चोट खाया हुआ मन दौड पडा उस ओर , देश के लिए नही, अपने सुख के लिए वे असहयोगी हुए। वे जेल भी हँसते-हँसते गये है और वहाँ भी सुखी होगे। मूर्ख मै हूँ जो बाबूजी के कथनानुसार अब तक न अपना मन बना सकी और न उस कथन पर चल ही सकी।' पर वह व्यवहार में करे क्या, यह उसकी समझ मे न आया।

वह घर अब उसे ऐसा तुच्छ दीखता कि उसमे वह अब तक कैसे रही और रह रही है, इस पर स्वय उसे अपने आप पर आश्चर्य होता। कांग्रेस के किसी कार्य मे उसे कोई तथ्य न दीखता। उसके मन पर तो अग्रेजो ने कोई चोट पहुँचाई न थी कि उनसे किसी प्रकार का प्रतिकार लेने की दृष्टि से वह सारा कार्य करती। नाम की उसे इच्छा न थी, उसे चाहिए था सुख और ललितमोहन के जेल मे बन्द होते ही उसे इस कार्य मे कोई सुख न मिलता था।

ललितमोहन का जो दर्शन और उसकी वाणी का श्रवण इन्दुमती के हृदय को उछाल, रोम खडे कर लोचनो से प्रणय-रश्मियाँ प्रकट करता था, उसी की स्मृति हृदय को डुला, रोमावली और नेत्रो से स्वेद बहाती थी। देश के प्रति या किसी के प्रति कर्त्तव्य-पालन वह जानती न थी, परोपकार क्या है, वह समझती न थी। उसका निज का व्यक्तित्व ही उसके लिए सब कुछ रहा था, आज भी था, और यदि ललितमोहन के प्रति वह आकृष्ट हुई थी, उससे विवाह किया था, कानपुर आकर रहने लगी थी, उसके साथ देश का काम करती थी तो ललितमोहन के लिए नही, अपने लिए। वह सोचने लगी—तो क्या प्रेम के लिए एक दूसरे के हृदय को, एक दूसरे की वृत्ति को जान लेना आवश्यक नही? कार्यक्षेत्र का एक होना भी जरूरी नही? इन्दुमती ने देखा कि इतने वर्षो तक सतत साथ रहने पर भी, उसने शायद ललितमोहन को पूर्ण रीति से न जान पाया था, न यथार्थ में ललितमोहन की और उसकी विचार-धारा एक थी। कार्यक्षेत्र जो एक हो गया था वह भी शायद उसकी अनिच्छा से ही। उसे जान पड़ा कि जो कुछ हो रहा था वह सभी उसकी अनिच्छा से, पर इतने पर भी कितना··कितना चाहती थी वह ललितमोहन को! नित्य इसी प्रकार उधेडबुन करते-करते हठात् उसके मन मे उठा कि क्या वह ललित-मोहन के बिना सुखी नही रह सकती? अनेक बार प्रश्न करने पर भी उसके मन ने इस बात का स्पष्ट उत्तर न दिया। कभी मन एक बात कहता, कभी दूसरी, पर नित्य व्यवहार मे उसने देखा कि ललितमोहन के बिना उसे हर वस्तु रस-विहीन जान पड़ती है। दिमाग कहता था, बार-बार कहता था कि 'निज का व्यक्तित्व सब कुछ है,' लेकिन हृदय उसके अनुसार चलना तथा इसका क्या कारण था, यह इन्दुमती नित्य के निरन्तर प्रयत्न पर भी समझ न पाती थी।

ललितमोहन की मुलाकात के लिए वह अनेक बार छटपटाने-सी लगती, लेकिन उस जमाने मे कैदियो से तीन महीने मे मुलाकात का कायदा था। अभी तो ललितमोहन को सजा हुए दो महीने भी न हुए थे। इन छटपटाहट के अवसरो पर उसे अनेक बार काग्रेस पर क्रोध आता, जिसके कारण ललित-मोहन को जेल जाना पडा, तथा अनेक बार सरकार एव सरकार-परस्त लोगो पर, खासकर अपने ससुर पर। सरकार ने ललितमोहन को जेल भेजा था।

सरकार-परस्तो मे उसके ससुर थे, जिनके सम्मान मे दी हुई पार्टी ललितमोहन के जेल जाने की वजह हुई थी ।

ललितमोहन की सजा की लम्बी अवधि के कारण कई बार इन्दुमती घबडा भी उठती और इस घबडाहट मे वह सोचती कि इस युद्ध मे अगर सरकार की जीत होकर कांग्रेस हार जाय तो शायद वे जल्दी भी छूट जायें । रौलट ऐक्ट के विरुद्ध गान्धीजी का सत्याग्रह असफल होने के कारण ही तो पजाब के कैदी अपनी अवधि के पहले छूट गये थे । ऐसे समय इन्दुमती को सरकार की जीत होती है या कांग्रेस की, इसकी फिक्र रहती । कभी-कभी उसके मन मे यह भी उठता कि यदि वे माफी माँगकर चले आवे तो ? इन दोनो विचारो की अवधि बहुत लम्बी न रहती । वह ऐसे विचारो के मन मे उठने पर चौकती भी । पर मन तो मन ही ठहरा । यह चौकना तथा कोसना भी फिर से ऐसे विचारो को रोकने मे समर्थ न होता ।

कितने प्रकार के एक दूसरे के विरोधी विचारो और तर्कों आदि से इन्दुमती का मस्तिष्क और हृदय दोनो ही इस समय भरे हुए थे । और इन सब के ऊपर आशा…दो वर्ष के बाद भी पुनर्मिलन, पुनर्सहवास की आशा…' इन्दुमती आजकल कई बार एकाएक सोचने लगती—"जीवन में जग लग गया है—जग !"

× × ×

एक दिन इन्दुमती किंकर्त्तव्य-विमूढ-सी अपने मकान में बैठी हुई थी कि एक तारवाला तार लेकर पहुँचा । इन्दुमती ने दस्तखत कर तार लिया । तारवाला विदा हुआ और उसने तार खोला । तार खोलकर उसने जो कुछ पढा उसे पढकर वह बैठी न रह सकी, एक दम खडी हो गयी । उसका माँ का तार था । अवधबिहारीलाल की सख्त बीमारी की उसमे खबर थी । इन्दुमती एक अनजान आशका से भयभीत हो उठी । अपने निकट के सम्बन्धियो की बीमारी मे उनके लिए शुभ विचार मन मे न उठकर बुरे विचार ही उठते है । इन विचारो के उठने पर एक विचित्र प्रकार की शून्यता का आभास होता है और इस शून्यता में भय की उत्पत्ति हो जाती है । शून्य हृदय को भरने मे भय जितनी जल्दी सफल हो जाता है, अन्य कोई चीज नही । इन्दुमती ने नौकरो को बुलाकर थोड़ा-बहुत सामान बन्द किया और स्टेशन रवाना

हुई। पहली ट्रेन से वह लखनऊ पहुँची और जब तक अपने मकान पर न पहुँच गयी तब तक पूरे होश में थी या नही, यह सदिग्ध था। भड़भडाती हुई वह मकान मे घुसी। नौकरो से उसे मालूम हुआ कि वकील साहब को लकवा मार गया है। वे न हिल-डुल सकते है, न बोल। हाँ देख-सुन सकते है और बाये हाथ से इशारे इत्यादि भी कर सकते है। इन्दुमती फौरन अपने पिता के पास पहुँची। अवधबिहारीलाल पलँग पर पडे हुए थे। सिराहने सुलक्षणा बैठी थी। बेटी को देख वकील साहब के नेत्रो मे जल छा गया। सुलक्षणा के आँसू बह पडे और इन्दुमती भी रोये बिना न रह सकी। सुलक्षणा से इन्दुमती को अवधबिहारीलाल की बीमारी का ब्यौरेवार हाल मालूम हुआ। कल तक वे बिलकुल अच्छे थे। एक मुकदमे की बहस करने-करते एकाएक गिर पडे। घर लाये गये, और तब से यही हाल है। अनेक डॉक्टरो और हकीमो ने देखा है, सबका एक ही मत है उन्हे लकवा मार गया हैं। हिकमत पर उनका विश्वास न होने के कारण इलाज डॉक्टरी है।

इन्दुमती ने पिता को अनेक सान्त्वना भरे शब्द कहे, पर उसने देखा कि वकील साहब के मुख पर एक ऐसी निराशा के चिह्न है, जैसे उसने इसके पहले कभी न देखे थे।

कुछ देर बाद इशारा कर बडी कठिनाई से अवधबिहारीलाल ने अपना जरूरी कागजातवाला एक छोटा-सा सन्दूकचा मँगवाया और उसमे से बाये हाथ से एक बड़ा-सा लिफाफा निकाल इन्दुमती को दिया। लिफाफे पर लिखा हुआ था 'वसीयतनामा'।

इन्दुमती ने लिफाफा ले लिया और उसे शलूके की जेब मे रखते हुए बोली—'क्या वाहियात बाते सोच रहे है आप, बाबूजी? अरे! दो-चार दिन में आपकी तबियत ठीक होती है।' जब इन्दुमती यह वाक्य कह रही थी तब उसने देखा कि वकील साहब का मुख एकाएक लाल हो रहा हैं और उसका वाक्य पूरा होते-होते तो वकील साहब का शरीर जोर स काँपकर एकदम शात हो गया। सुलक्षणा चिल्ला उठी। वकील साहब ने यह लोक छोड दिया था। इन्दुमती 'डॉक्टर, डॉक्टर!' कहती दौडकर बाहर जाने लगी, पर माँ ने उसे यह कहकर रोक दिया कि 'अब डॉक्टर क्या करेगा?' और सुलक्षणा पति के शरीर से लिपटकर रो पड़ी।

इन्दुमती यद्यपि मृत्यु शब्द से परिचित थी, अनेक बार सुन भी चुकी थी कि अमुक-अमुक मर गया, फिर भी इसके पहले उसने कोई मृत्यु न देखी थी। जब सन् १९१८ मे उसे इन्फलुएन्जा हुआ था और इन्फ्लुएन्जा के साथ-साथ डबल निमोनियाँ, तब मृत्यु की कल्पना उसके मन मे भी अवश्य आयी थी, उस बीमारी मे कई बार उसने मृत्यु का आह्वान भी किया था, पर मृत्यु शब्द से परिचित रहना, अमुक-अमुक मर गया, यह सुनना, मृत्यु की कल्पना कर कष्ट के समय उसका आह्वान करना और प्रत्यक्ष मृत्यु और मुर्दा देखना, अलग-अलग बाते है। फिर जिसकी मृत्यु हुई थी, वह उसका पिता था, उससे वह उत्पन्न हुई थी। ललितमोहन के साथ कानपुर जाने के पहले वह सदा पिता के साथ रही थी। ललितमोहन के प्रेम के पहले शायद उसने पिता से अधिक किसी को न चाहा था, माता को भी नही। और वही पिता आज मृतक के रूप में उसके सामने था।

अवधबिहारीलाल का मरण कोई लम्बी बीमारी के बाद न हुआ था। स्थूल शरीर मे दो दिन की बीमारी कोई खास फर्क करती भी नही है। वे वैसे के वैसे लेटे हुए थे। जीवित पिता और मृतक पिता मे इन्दुमती को कोई बाह्य अन्तर दृष्टिगोचर न होता था और इतने पर भी कितना महान् अन्तर हो गया था। बाह्य अन्तर न रहते हुए भी इन्दुमती को जान पडा मानो जीवित और मृतक दो भिन्न-भिन्न वर्गो के हो जाते है। साथ ही उसे महसूस हुआ कि यह मृत्यु चाहे कितनी ही पुरानी क्यो न हो, उतनी ही पुरानी, जितनी यह सृष्टि है, पर इतने पर भी जब-जब, जहाँ-जहाँ इसका आगमन होता है, वह नयी, नितान्त नयी दिखायी पड़ती है।

सुलक्षरणा रो रही थी, पर इन्दुमती के आँसू भी न निकल रहे थे। वह एकदम अवाक् होकर पिता के मृत शरीर की ओर एकटक देख रही थी। क्या—क्या उसके मन मे एक के बाद एक तेजी से आने लगा? वह मन ही मन कहने लगी—'तो···तो···यही · यही मृत्यु है!—पर···पर किया क्या है इस मृत्यु ने?···आत्मा···आत्मा निकल गयी शरीर मे से! पर कैसी ·· कैसी आत्मा? कोई चीज भी तो न दीखी निकलती हुई!···आत्मा? कहाँ की आत्मा? ढकोसला है, बडे से बड़ा ढकोसला। ·· जिस तरह मशीन चलते-चलते रुक जाती है, उसी तरह यह शरीर की मशीन भी रुक जाती

है।·· दिल की धडकन बन्द हो गयी है, यदि किसी तरह दिल फिर से चलाया जा सकता ? ऑक्सीजन की जब कमी होती है तब तो डॉक्टर ऑक्सीजन देकर दिल चलते रखने का यत्न कर सकते है, पर अन्य परिस्थितियो मे क्यो नही ?·· यह · यह शरीर क्या है ? असख्यो 'कोषाओ' (सेल्स) का ही तो सग्रह है न ?···एक-एक कोषा मे असख्यो 'परमाणु' (ऐटम) होते है।

एक-एक परमाणु मे दो तरह के 'विद्युत् अणु' (इलेक्ट्रान), 'उदअणु' (पाजिटिव) और 'निअणु' (निगेटिव)। असख्य परमाणु एक शूच्यर्ग पर रखे जा सकते है। और प्रयोगशाला मे एक परमाणु भी 'खुर्दबीन' से देखा जा सकता है।· ·सारा ससार 'भौतिक पदार्थमय है और सब भौतिक पदार्थ असख्यो 'परमाणुओ' का सग्रह। हाँ, ये परमाणु नाम और गुण मे एक दूसरे से भिन्न अवश्य होते है, इसीलिए एक भौतिक पदार्थ दूसरे से इतना भिन्न दीखता है। चुम्बक और लोहे के समान उदअणु और निअणु एक दूसरे को खीचते है और उदअणु उदअणु से तथा निअणु निअणु से दूर रहते है। इसी खिचाव और हटाव के कारण निर्बाधित गति है। इसीलिए विज्ञान कहता है गति के बिना कोई वस्तु नही। गति गरमी उत्पन्न करती है। अत· गरमी ही जीवन, तथा ठडापन मृत्यु है।' और अन्तिम बात सोचते ही इन्दुमती का हाथ पिता के हाथ पर चला गया। मृतक का हाथ अब तक गरम था। इन्दुमती का मन फिर चल पडा—'गरम ··गरम हाथ है, बाबूजी का। कहाँ· कहाँ मृत्यु हुई है ? पर निश्चेष्ट शरीर तो है। होगा , लेकिन परमाणु और विद्युत् अणु तो वैसे के वैसे मौजूद है।···या तो उनकी गति मे अन्तर हुआ है, या वे जिस स्थिति मे एक दूसरे को खीचते अथवा एक दूसरे से हटते थे, उस स्थिति मे। अगर उनकी गति और स्थिति वैसी ही कर दी जाय तो यह निश्चेष्टता चली जायगी।···आश्चर्य ! महान् आश्चर्य कि इतने वैज्ञानिक इतना धन खर्च करने पर, इतने दीर्घ काल के पश्चात् इतनी· इतनी छोटी-सी बात भी अब तक नही कर सकते।'

जब अनेक ऐसी बाते मौजूद है जिनके सम्बन्ध मे सोचने और कुछ प्रयत्न करने से कुछ किया जा सकता है, तब ऐसी बाते क्यो विचारी जायँ, जिनके सम्बन्ध में कुछ नही किया जा सकता , पर देखा यह जाता है कि

बहुधा मनुष्य ऐसी बातो को ही सोचता है, और खासकर ऐसे अवसरो पर जैसा आज का था, जिनके सम्बन्ध मे कुछ कर सकना उसकी सामर्थ्य के बाहर रहता है। इन्दुमती की इस समय यही स्थिति थी।

सुलक्षणा का रुदन सुन नौकर-चाकर कमरे मे आकर सारी घटना देख गये थे। पडोसियो का आगमन आरम्भ हो गया था, पुरुष स्त्री सभी का, और रुदन का शब्द बढ रहा था। रुदन जन्म और मृत्यु दोनो पर सुन पडता है, परन्तु कितना अन्तर होता है इन दोनो रुदनो मे! फिर जन्म के समय रोता है जन्म लेनेवाला, और मृत्यु के समय रोते है पीछे रह जानेवाले। सुलक्षणा का विलाप हृदय-विदारक था और इन्दुमती अभी भी उसी तरह खडी-खड़ी निर्निमेष दृष्टि से पिता का शव देख रही थी।

शव के उठने का वक्त आया, और जब पडोसियो ने अवधबिहारीलाल के मृतक शरीर को उठाया तब इन्दुमती उनका रास्ता रोक जोर से बोली—'अरे! कहाँ-कहाँ लिये जा रहे हो, बाबूजी को? वे वे जिलाये जा सकते है· जरूर जरूर जिलाये जा सकते है!'

अब लोगो का ध्यान इन्दुमती की ओर गया। कुछ पड़ोसियो की स्त्रियो ने उसे पकड लिया। शव को लोग ले गये, और इन्दुमती रो पडी।

× × ×

अवधबिहारीलाल की मृत्यु ने सुलक्षणा तथा इन्दुमती दोनो के जीवन की नीव को झकझोर-सा दिया। जब घडी का चलना एकाएक रुक जाता है तब उसे हिला देने या छोटा-मोटा धक्का लगा देने से वह पूर्ववत् चलने लगती है, परन्तु यदि उसे जोर से झकझोरकर पटक दिया जाय तो नतीजा ठीक इसके विपरीत निकलता है। यही हाल अवधबिहारीलाल की मृत्यु के धक्के ने सुलक्षणा तथा इन्दुमती का किया। उनका सारा जीवन स्थिर हो गया, उसमें कही कोई प्रवाह दृष्टिगोचर न होता था। अडोस-पड़ोस की स्त्रियो के समीप रहने पर यह स्थिरता और अधिक रहती। जब कभी माँ-बेटी अकेली होती तब जरूर एक दूसरे से बोलती, किन्तु इस वार्तालाप मे भी कम से कम शब्दो का उपयोग होता और फिर एक बात और—इस बातचीत मे अवधबिहारीलाल या उनसे सम्बन्ध रखनेवाली कभी कोई चर्चा न होती, मानो स्वर्गवासी वकील साहब की किसी तरह की चर्चा का मृत्यु-लोक मे रह गयी इन महिलाओ

को कोई अधिकार न रह गया था। दोनो उन स्थानों को गौर से देखती, जहाँ वकील साहब रहते थे और भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करते थे। उनके सोने का कमरा, उनका बैठकखाना, उनका पुस्तकालय, उनका दफ्तर और जहाँ उनकी मृत्यु हुई थी, वह स्थान दोनो न जाने कितनी देर तक देखा करती, पर जबान से न वकील साहब का नाम लेती, न उनके सम्बन्ध में कोई चर्चा ही करती। किसी चोट मे खून बहता है, और कोई चोट मुँदी चोट रहती है। मुँदी चोट की पीडा खून बह जानेवाली चोट से अधिक रहती है। इसी तरह शोक भी दो प्रकार का होता है, एक जिस पर चर्चा होती रहती है और दूसरा जिसमे मौन रहता है। मुँदी चोट के समान ही मौन शोक अधिक पीडा का द्योतक है।

मृत्यु निष्क्रियता की सबसे बड़ी प्रतीक है। वह मृतक को तो निष्क्रिय बना ही देती है, किन्तु जिस गृह मे उसका आगमन होता है, वहाँ भी निष्क्रियता का राज्य हो जाता है। अवधबिहारीलाल के गृह की इस समय ऐसी ही दशा थी। परन्तु मृत्यु जैसी निष्क्रियता की प्रतीक है, वैसा ही जीवन सक्रियता का। अत सदा के लिए मृतक ही निष्क्रिय हो सकता है, जीवित नही, इसीलिए जो जीवित है, उनके कार्यो द्वारा मृत्यु के निष्क्रिय राज्य का अन्त होकर शीघ्र ही फिर से जीवन का सक्रिय राज्य स्थापित हो जाता है। हर जन्मे हुए को एक दिन मरना है, इसलिए इस लोक का नाम चाहे मृत्यु-लोक हुआ हो, किन्तु यथार्थ मे यह नाम गलत है। एक तो हर दिन मरने वालो से जन्म लेनेवालो की सख्या अधिक, दूसरे जितने मरते है, उनसे जीवित रहनेवाले कही ज्यादा। इसलिए इस लोक का नाम होना चाहिए जीवनलोक, मृत्युलोक नही। इस लोक मे यथार्थ मे निष्क्रियता को नही, सक्रियता को महत्त्व है।

जो मर चुका, सो मर चुका, जो जीवित है, वह जीवित। बिना मरे किसी जीवित व्यक्ति का जीवन सदा स्थिर नही रह सकता। फिर जीवन प्रेम की अपेक्षा भी बलवती वस्तु है। अन्य प्रेम सम्बन्धो को हम एक ओर भी रख दे और माता का अपनी सतान के प्रति प्रेम का उदाहरण ही ले ले तो भी हमे जान पडता है कि यद्यपि अधिकाश माताएँ अपनी सतान को एक ही दरजे की उत्कटता से स्नेह करती है तो भी सतान की मृत्यु पर, एक ही

सतान रहने पर भी बिरली ही आत्म-हत्याएँ करती है, और इतने पर भी यह नही कहा जा सकता कि वे अपनी सतान को अपने प्राणो से अधिक नही चाहती।

'मानसिक घाव भरने का सबसे बडा चिकित्सक समय है।' यह ससार के सबसे बडे और सबसे सत्य अनुभवो मे से एक अनुभव है। समय ने सुलक्षणा और इन्दुमती दोनो के हार्दिक घावो को भरना शुरू किया। बीच-बीच मे जब कोई व्यक्ति मातमपुरसी को आता तब वह घाव खुरच-सा अवश्य जाता। रुदन होता, आँसू निकलते, क्योकि शोक के समय रुदन को साथ मे लिये बिना एक दूसरे से भेट करना ही कठिन हो जाता है, पर जैसे-जैसे समय बीतता जाता, इस प्रकार की भेटे तथा घाव का खुरचा जाना भी कम होता जाता। फिर जब कभी ऐसी भेटो मे रुके हुए आँसू बहते, तब हृदय और हल्का हो जाता। ऐसा जान पडता, मानो घाव मे रुका हुआ मवाद बह गया हो। एक बात और होती—दोनो को यह अनुभव भी होता कि दुख मे किसी अन्य दुखी की ही सहानुभूति सान्त्वना देती है। यदि कोई सुखी व्यक्ति सहानुभूति प्रकट करता है तो वह तो ढकोसला ही मालूम पडता है और अनेक बार ऐसे व्यक्तियो की सान्त्वना में कहे हुए वाक्य दुख को उल्टा बढा देते है।

सुलक्षणा पहले भी पूजा-पाठ करती थी, पर इन्दुमती ने देखा कि शनैः शनैः उनकी पूजा बढ रही है और पूजा के साथ शरीर घट रहा है। कुछ दिन बाद तो यह कहना कठिन हो गया कि वे सुलक्षणा थी, या उनकी छाया। उनकी सारी वेषभूषा भी अब परिवर्तित हो गयी थी। माँग का सिन्दूर, ललाट की टिकली, अगो के आभूषण, सब चले गये थे। एक सफेद साडी ही उनकी पोशाक थी। ललाट पर उन्होने भस्म लगाना आरम्भ किया था। दोनो मानो यह कहते थे, यथार्थ मे एक ही रग मे सारे रग विलीन हो जाते है और उस रग का निर्माण होता है भस्म बनकर। इस वेष मे पूजा-पाठ मे लिप्त क्षीणतम् होने पर भी सुलक्षणा कैसी दिव्य दिखायी देती थी और उस दिव्यता को उनके शान्त नेत्र कितना बढा रहे थे!

इन्दुमती ने अच्छे अवसरो पर माँ के मुख से यह अनेक बार सुना था . 'यह सब भगवान् की कृपा है,' लेकिन इस बुरे वक्त उसने एक बार भी न सुना कि 'कैसा दुष्ट है भगवान्!' यदि अच्छी बाते भगवान् की कृपा से होती

है तो बुरी बाते उसकी दुष्टता से क्यो नही ? इन्दुमती को अपना तर्क सर्वथा निर्दोष जान पडा और उसकी समझ मे न आया कि भगवान् को दोष देने की जगह सुलक्षणा उन्ही की पूजा-पाठ मे अधिकाधिक लिप्त कैसे होती जा रही है ? परन्तु सुलक्षणा की इस भगवद्भक्ति, इस पूजा-पाठ के होते रहने पर भी, उनकी मुद्रा, उनकी बडी-बडी आँखो पर दृष्टि पडते ही यह ज्ञात हुए बिना न रहता था कि उनके आन्तरिक जीवन का प्रधान श्रोत शुष्क हो गया है। उनकी हर दृष्टि-विक्षेप के पश्चात् उनकी आँखो मे एक तरह का सूनापन दृष्टिगोचर होता। बातचीत करते समय कभी वाक्य के अन्त और कभी-कभी तो वाक्य के बीच मे ही वे चुप हो जाती और उस समय उनके हाथ एक दूसरे को इस तरह मलने लगते, मानो वे सम्भाषण को जारी रखने मे मस्तिष्क तथा हृदय को सहायता देने का प्रयत्न कर रहे है, परन्तु सुलक्षणा के मुख पर उनके विश्वासो की एक ऐसी अटलता दृष्टिगोचर होती कि उन विश्वासो पर वाद-विवाद करने का इन्दुमती के सदृश उद्दण्ड प्रकृतिवाली स्त्री का भी साहस न होता।

इन्दुमती ने पिता का वसीयतनामा भी पढ लिया था। उसे पिता से लाखो की सम्पत्ति मिली थी। अब वही पिता के भवन, उद्यान, धन, सम्पत्ति, सबकी मालिक थी। इस सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए भी उसी वसीयतनामे के साथ अवधबिहारीलाल ने एक पत्र द्वारा कुछ बाते सुझायी थी। उनके अनुसार इन्दुमती ने व्यवस्था आरम्भ की। वह कानपुर अब न लौटना चाहती थी। वहाँ का मकान और नौकर-चाकर उसने वैसे ही रखे, पर माता के शोक मे उनके पास रहना उसका कर्त्तव्य है, इसी दलील पर वह लखनऊ मे रहने लगी। अभी भी वह खादी पहनती थी, लेकिन खादी पहनने और अखबारो मे काग्रेस की खबरे पढने के सिवा अब काग्रेस के कार्यो से उसका प्रत्यक्ष मे कोई सम्बन्ध न रहा था।

× × ×

इन्दुमती ने ललितमोहन से जेल मे मिलने के लिए उचित समय पर जो दरख्वास्त भेजी थी, कानपुर जेल सुपरिण्टैण्डैण्ट के यहाँ से उसकी मजूरी तथा नियत तारीख की सूचना आते ही इन्दुमती वजीरअली को साथ ले कानपुर पहुँची। मुलाकात सिर्फ रिश्तेदारो से हो सकती थी, अत वजीरअली रोक

दिया गया। दोनो ने जेलवालो को लाख समझाने की कोशिश की कि वे धर्म के भाई-बहन है, पर मुसलमान-हिन्दू भाई-बहन हो सकते है, इसे जेलवाले काहे को मानने चले ? अकेली इन्दुमती ललितमोहन से मिलने लायी गयी। मुलाकात के लिए बीस मिनिट का समय था और दोनो के बीच मे लोहे की जाली थी, जिसमे से दोनो एक दूसरे को देख तो सकते थे, पर स्पर्श न कर सकते थे। फिर दोनो ही तरफ एक-एक जेलर दोनो की बाते सुनने के लिए नियुक्त था। इन्हे अधिकार था बीस मिनिट के पहले भी मुलाकात बन्द कर देने का, यदि इनकी दृष्टि से दोनो की किसी बात मे, दूर से भी, राजनीति की कोई गध आती हो ! आह, चार महीने के बाद यह मुलाकात थी और एक नयी सजा !

जब इन्दुमती ने ललितमोहन को देखा तब वह तो अवाक रह गयी। क्या यह वही ललितमोहन था ? बालो से रहित सिर ! मास से रहित शरीर ! तेज से रहित मुख ! मृत्यु उसके पिता के जीवित और मृत देह मे कोई अन्तर न कर सकी थी, लेकिन जेल ने जीवित ललित को मुर्दे से भी बदतर बना दिया था। इन्दुमती ललितमोहन को देखकर अपने को न सभाल सकी, वह रो पडी।

ललितमोहन उसे समझाने लगा। वह कह रहा था कि जेल आते ही वह बीमार हो गया था, इसीलिए वह इतना दुबला हो गया है, पर अब वह अच्छा है। पहले इस तरह के जीवन का उसे अनुभव न था, इसीलिए उसका स्वास्थ्य बिगडा था, पर अब वह इस जीवन का आदी हो गया है, लेकिन इन्दुमती पर उसके समझाने का कोई असर न पडा। अन्त मे ललितमोहन ने कहा—'इन्दु, तुम्हारे समान पढी-लिखी, विवेकी स्त्री का यह हाल ! अपने उद्देश्य की ओर तो देखो अरे, देश के लिए·····'

'देश' शब्द ललितमोहन के मुख से निकलते ही मुलाकात एकदम बन्द कर दी गयी। लोहे की जाली पर परदा गिर गया और ललितमोहन उठा दिया गया। इन्दुमती से जब दूसरे जेलर ने चलने के लिए कहा तब वह चौक पडी। इस चौक पड़ने के साथ ही उसका रोना भी रुक गया और उसने आश्चर्य से पूछा—'क्या बीस मिनिट हो गये ?'

'नही, लेकिन बात काबिले एतराज होने की वजह से मुलाकात बन्द कर

दी गयी।'

और अधिक आश्चर्य से इन्दुमती बोली—'काबिले एतराज ? काबिले एतराज कौनसी बात थी, जनाब ?'

'मुल्क ·· मुल्क की बात।'

बीच मे जल्दी से इन्दुमती ने कहा—'लेकिन ·'

इन्दुमती से भी शीघ्रता से जेलर ने उसकी बात काटी—'यहाँ अगर, मगर, लेकिन की कोई जगह नही है, न कोई बहस-मुबाहिसे की। तुम अगर सीधी तरह बाहर न चलोगी तो मुझे 'वीमेन वार्डर्स' को बुलाना पडेगा।

जो इन्दुमती अपने सामने सारे ससार के लोगो को तुच्छ समझती थी, उसी को आज एक मामूली जेलर इस प्रकार डाँट रहा था। इस दृश्य जगत की किसी भी नजर आनेवाली वस्तु से वह आज तक भयभीत न हुई थी, पर जिस तरह अँधेरे मे कोई बडी सी शक्ल देखकर किसी अकेले बालक के मन मे एक अज्ञात ढँग के भय से भरे भाव उठते है, उसी प्रकार दिन दहाडे उस ऊँचे पूरे जेलर को सामने देख और अपने को अकेला पा, इन्दुमती के मन मे उठे। उसकी मेधा नही, किन्तु अन्तर्प्रवृत्ति उसे तत्काल जेल के बाहर ले आयी।

जब उसने वजीरअली को यह सारा हाल बताया तब वजीरअली उसे मोटर मे बिठा सुपरिण्टैण्डैण्ट के दफ्तर को गया। दफ्तर मे यह मालूम हुआ कि सुपरिण्टेण्डेण्ट बँगले चला गया है। अभी बारह भी न बजे थे और सुपरिण्टैण्डैण्ट का दफ्तर से बँगले चला जाना उसे कुछ आश्चर्यजनक मालूम हुआ, पर वह पहले-पहल ही जेल आया था। उसे यह मालूम नही था कि दो हजार से पच्चीस सौ तनख्वाह पानेवाले 'आई० एम० एस०' जेल-सुपरिण्टैण्डैण्ट की तीन घण्टे से ज्यादा की जेल की ड्यूटी ही नही है। नौ बजे आकर बारह बजे के पहले घर चले जाने से ज्यादा जानवरो से बदतर कैदियो के लिए 'आई० एम० एस०' ऑफिसर और अधिक क्या कर सकता है !

वह इन्दुमती के साथ सुपरिण्टैण्डैण्ट के बँगले पहुँचा। यहाँ भी उसने इन्दुमती को मोटर पर ही बैठने को कहा और वह चला सुपरिण्टैण्डैण्ट से मिलने, पर साहब बहादुर बँगले के दफ्तर मे भी न थे। वजीरअली ने अपना नाम लिखकर चपरासी के हाथ सुपरिण्टैण्डैण्ट को भेज दिया और बरामदे मे

इधर-उधर घूमने लगा। जब वजीरअली बरामदे में घूम रहा था तब चपरासी लौटा और उसे घूमते हुए देख झपटकर उसके पास पहुँचा, बोला—'साहब गुसल मे है। तुम चुपचाप बैठ जाओ और यहाँ किसी तरह के गुल-गपाड़े की इजाजत··' वाक्य पूरा करते-करते चपरासी को जोर से छींक आ गयी। वजीरअली ने बरामदे मे रखी हुई एक कुर्सी पर बैठते हुए मुस्कराकर कहा—'और इस तरह छींकने की भी यहाँ इजाजत है, या नही ? इससे तो गुल-गपाडा नही होता ?'

चपरासी इसका कुछ उत्तर दे, इसके पहले ही अन्दर से आवाज आयी—'चपरासी !'

चपरासी दौडता हुआ भीतर गया। जिधर चपरासी गया था, उस ओर एक त्रस्त दृष्टि से देखते हुए वजीरअली सोचने लगा—'आदमी ने ही आदमी को कैसा कुत्ते के मानिंद बना दिया है !'

वजीरअली को फिर आवाज सुनायी दी—'वजीरअली···उससे कओ हमारा लंच टाईम। हमको फुरसट नेई। कल सुबह दस बजे जेल।'

वजीरअली ने लौटकर इन्दुमती से सब हाल कहा। तीन महीने मे मुलाकात होती थी। मुलाकात का यह हाल हुआ था, अत दोनो ने एक दिन कानपुर में और ठहरना तय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल इन्दुमती को घर पर ही छोड, अकेला वजीरअली सुपरिण्टेण्डैण्ट से मिलने पहुँचा। सुपरिण्टैण्डैण्ट को कल की मुलाकात 'पुलैटिकल' बात आरम्भ होते ही बन्द की गयी थी, यह हाल उसके प्रातःकाल जेल आते ही बता दिया गया था। कौनसी 'पुलैटिकल' बात हुई, यह पूछने की न सुपरिण्टेण्डैण्ट को फुरसत थी और न आवश्यकता। वह इस बात पर बहुत खुश हुआ कि उसका जेल का प्रबन्ध इतना अच्छा है और उसके मातहत जेल के नियमो का इतनी सावधानी से पालन करते है !

जब वजीरअली सुपरिण्टैण्डैण्ट से मिलने को आया और उसने अंग्रेजी में कहा कि वह किस लिए आया है, तब उसके आगे कुछ कहने के पहले ही, जिसे सुपरिण्टैण्डैण्ट हिन्दी भाषा कहता था, उस भाषा मे, वह गरजकर बोला—'समजा···समजा···टुम आया है उस पुलैटिकल प्रिजनर का मुलाकात का बाबट ··जेल का मुलाकाट मे पुलैटिकल बाट एलाउड नेई। अब मुलाकाट नेई

हो सकटा ।'

'बट·· ' कह वजीरअली बोलने पर उद्यत हुआ ।

परन्तु उसके मुँह से 'बट' शब्द निकलते ही सुपरिण्टैण्डैण्ट जल्दी से बीच ही में बोला—'नो बट प्लीज ! हमको और फुरसट नेई । टुम को कुछ केना हो टो आई० जी० पी० का पास जाओ ।'

वजीरअली अपना और अपमान न कराना चाहता था । वजीरअली और इन्दुमती अत्यन्त निराशा से लखनऊ लौटे । सुपरिण्टैण्डैण्ट की मुलाकात के बाद आई० जी० पी० से मिलने की वजीरअली की इच्छा न रह गयी थी । उसने सारे मामले पर आई० जी० पी० को एक दरख्वास्त भेजना उचित समझा । दरख्वास्त का मसौदा बना और इन्दुमती के हस्ताक्षर से वह दरख्वास्त भेज दी गयी । इन्दुमती को आज कितनी याद आयी अवधबिहारी-लाल की, अगर आज वे होते · ! अवधबिहारीलाल की इस समय याद आने पर इन्दुमती को जान पड़ा कि इस दुनियाँ में प्रभाव का शायद सबसे ऊँचा स्थान है ।

× × ×

ललितमोहन की अगली मुलाकात मे इन्दुमती ने ललितमोहन से अपना फिर से कालेज जाने का इरादा बताया । ललितमोहन ने सोचकर उत्तर दिया—'अब फरवरी का महीना तो आ ही गया । दो महीने के लिए कालेज जाने से क्या फायदा होगा ? जाना ही हो तो अगली जुलाई से जाना । लेकिन तुम्हे जीवन नीरस और सूना जरूर मालूम होता होगा, इसलिए सबसे अच्छी बात यह होगी कि अभी तुम किसी अच्छे क्लब की मेम्बर हो जाओ ।'

इन्दुमती को ललितमोहन की यह राय बहुत पसन्द आयी और वह लखनऊ लौटते ही वजीरअली की मार्फत 'रफाए आम' क्लब की मेम्बर हो गयी ।

इस क्लब की इन्दुमती पहली स्त्री सदस्या थी और इन्दुमती के लिए भी यह पहला क्लब था, पर कुछ ही दिनो मे उसने प्रयत्न कर अपने साथ दो स्त्रियो को और इस क्लब का मेम्बर बनाया । यहाँ का जीवन उसे कालेज के जीवन से मिलता-जुलता सा दीखा । फर्क यही था कि वहाँ सभी लडके थे, यहाँ सब उम्र के लोग , लेकिन वैसी ही चहल-पहल और वैसे ही बहस-

मुबाहिसे। क्लब के इस सामूहिक जीवन मे पुन प्रवेश करते ही इन्दुमती का पुराना स्वभाव फिर लौट आया। वही सबको तुच्छ समझने की प्रवृत्ति, वही अकड़ और वही अपनी प्रधानता। यद्यपि काग्रेस मे भी वह सामूहिक जीवन में रही थी, फिर भी उस सामूहिक जीवन और कालेज तथा क्लब के सामूहिक जीवन मे फर्क था। वहाँ उसका जिनसे सम्पर्क आया था, वे सब एक ही नाव में सवार थे, सबका प्राय एक ही सा जीवन था, पर यहाँ के व्यक्तियो के जीवन के उद्देश्य, रहन-सहन, सभी मे विभिन्नता थी। इसीलिए काग्रेस के क्षेत्रो मे गान्धीवाद के समय तक जब तक वह काग्रेस के सामूहिक जीवन मे रही थी, आलोचनात्मक बहस-मुबाहिसे नही चलते थे। यहाँ ससार भर की आलोचना के सिवा और किसी को कोई काम ही न था। फिर कालेज मे लडको को पढना पडता था, इम्तहान देने की चिन्ता रहती थी, यहाँ के सदस्यो को खेलने के सिवा और क्या करना था? जहाँ तक चिन्ताओ का सवाल है, वहाँ तक तो चिन्ताओ से पिड छुडाने, उनसे दूर हटने के लिए ही इस स्थान का निर्माण हुआ था।

इन्दुमती को जैसे जीवन की जरूरत थी, वैसा ही उसे मिल गया। वह शाम को सबसे पहले क्लब में पहुँचती, कभी-कभी सबेरे भी जाती और जब तक घर मे रहती क्लब की ही बाट देखा करती। क्लब मे एक भी ऐसा खेल न था जिसे खेलना उसने आरम्भ न किया हो—टेनिस, पिग-पाग, बिलियर्ड, शतरज, चौपड, ताश के अनेक खेल, जिनमे 'ऑक्शन-ब्रिज' मुख्य। 'ब्रिज' वह सदा बडे-बडे दाँव लगाकर ही खेलती थी। उस समय तक 'कान्ट्रैक्ट-ब्रिज' निकला न था।

क्लब के अधिकाश सदस्य एक तो उसके स्त्री होने के कारण, फिर काग्रेस का कार्य करने और खादी पहनने की वजह से उसका सम्मान करते थे, पर कुछ ऐसे भी थे जो उससे कोई सम्पर्क न रख पीठ पीछे उसका मजाक उडाते। वजीरअली उसका सबसे बडा भक्त था और इनका भाई-बहन होना कुछ लोगो के मजाक ही नही, पर कटाक्षो का भी सबसे बडा विषय था, पर इन्दुमती मजाक उड़ानेवालो और कटाक्ष करनेवालो को उसी तरह भुनगे के बराबर समझती, जैसे कालेज मे अपने विरोधी लड़को को समझती थी। कालेज तथा क्लब के जीवन मे एक अन्तर और था। वहाँ दीवालो पर जिस तरह की

तस्वीरे बनायी जाती, बोर्डों पर जिस प्रकार लिखा जाता, जिस तरह 'पेपर-बॉल' चलते, वैसा यहाँ कुछ न होता ।

इन्दुमती को 'ब्रिज' के कारण रात को घर लौटने मे अक्सर देर हो जाती । जब तक इन्दुमती न लौटती, सुलक्षणा न सोती । कई बार सुलक्षणा ने उसे इतनी रात तक बाहर न रहने तथा जल्दी घर लौटने के लिए कहा भी था । एक दिन जब वह रात को दो बजे लौटी और उसने देखा कि सुलक्षणा बैठी हुई उसका रास्ता देख रही है, तब वह बिगड पडी । इसके पहले भी सुलक्षणा को अपना मार्ग देखते हुए देखकर उसे झुँझलाहट आती थी, सुलक्षणा के जल्दी लौटने की हिदायते भी उसे बुरी मालूम होती थी, पर अब तक उसने सुलक्षणा से कुछ कहा नही था । आज वह तमककर बोली—'माँ, तुम वृथा ही मेरा रास्ता देखा करती हो । इस तरह तो तुम्हारी तबियत बिगड जायगी ।'

'और तेरी तबियत दो-दो बजे रात तक जागने से ठीक रहेगी ?'

'पर मैं तो रात को जब जागती हूँ, तब दिन को सो लेती हूँ । तुम्हे तो दिन को पूजा-पाठ से ही फुरसत नही मिलती ।' इन्दुमती ने और बिगड-कर कहा ।

'लेकिन, बेटी, इतनी रात गये बाहर - '

अब तो इन्दुमती आग बबूला हो गयी । 'इतनी रात गये बाहर की बात मै कई दफा सुन चुकी हूँ, माँ । मै पुराने दकियानूसी खयालात की नही, जिनके अनुसार औरत को रात को घर से बाहर रहने का अधिकार नही रहता । मै जाती हूँ क्लब, किसी भडुए के यहाँ नही । फिर उन्होने जेल मे मुझे क्लब का मेम्बर होने के लिए कहा, इसलिए मै क्लब की सदस्या हुई हूँ । मोटर पर जाती हूँ, मोटर पर आती हूँ, ड्राइवर और वजीरअली मेरे साथ रहते है, यद्यपि रात को बारह और दो बजे अकेले स्मशान मे जाने की भी मै हिम्मत रखती हूँ । मै सभ्य हूँ, सुसस्कृत हूँ । खेल के बीच मे से उठकर नही आ सकती । जो ईश्वर कही नही, उस पर तुम्हारा विश्वास हो सकता है । फिजूल का यह पूजा-पाठ तुम कर सकती हो । मेरा इन सब वाहियात धन्धो मे न मन लगता है और न मै अपना समय ही इसमे निरर्थक बर्बाद करना चाहती हूँ । बिना कुछ किये मनुष्य रह नही सकता । कुछ घण्टे क्लब मे जाकर जी बहला

आती हूँ। मुझे आश्चर्य होता है तुम्हारी क्लब जाने पर इस तरह की नाराजी देखकर।' और इस लम्बे भाषण के बाद, जो इस तरह बह रहा था जैसे चट्टानो को काटता हुआ नदी का प्रवाह बहता है, इन्दुमती जल्दी मे अपने कमरे मे चली गयी। इसके पश्चात् इन्दुमती ने न कभी सुलक्षणा को अपना मार्ग देखते हुए पाया और न अपने देर से आने की कोई शिकायत ही करते।

इन्दुमती ने दूसरे दिन इस कटु भाषण के कारण माँ से कुछ मीठी-मीठी बाते अवश्य की थी, लेकिन इन बातो मे उसने क्लब का कोई जिक्र न किया था। अपनी स्वतन्त्रता को रच मात्रा भी बाधा न पहुँचाते हुए वह माँ को भी प्रसन्न कर देना चाहती थी, पर उसने देखा कि सुलक्षणा पर उस सवाद का कोई असर ही न था। यद्यपि सुलक्षणा ने उससे फिर क्लब के विषय मे कोई बात न की थी, फिर भी उनका व्यवहार इन्दुमती से सदा के समान प्रेम-पूर्ण ही था। इन्दुमती को उस दिन की बात से सन्तोष था। यद्यपि बात कड़वी जरूर हुई थी, लेकिन उस बात के कारण रोज-रोज सुलक्षणा के उसके रास्ता देखने, उसके जल्दी-जल्दी क्लब से आने के प्रयत्न, क्लब मे भी रात ज्यादा देख पूरा मन न लगने, सुलक्षणा का बार-बार उसे जल्दी आने की हिदायते करने और उसके झुँझलाने, सब आफतो से पिड छूट गया था। बगीचे मे नयी फसल लगाने के लिए कूडा-कचरा जलाने को जिस प्रकार एक बार आग लगाने की जरूरत पड जाती है, उसी तरह उसने समझा कि उसके उस भाषण की जरूरत थी।

: २१ :

नवम्बर सन् '२३ की किसी तारीख को ललितमोहन की जेल से रिहाई होनेवाली थी। जनवरी सन् '२२ मे उसे दो साल की सजा हुई थी। दो साल जनवरी, सन् २४ मे पूरे होते थे, लेकिन जेल के नियमो के अनुसार, महीने मे चार दिन माफी के मिलते है, इन चार दिनो की माफी मे जिस महीने मे

कैदी जेल आता है वह, और जिस महीने मे छूटता है वह—इस प्रकार दो महीने शामिल नही किये जाते। ललितमोहन को २२ महीनो के ८४ दिन की माफी मिलनी चाहिए थी, किन्तु आरम्भ मे वह जेल की हर परेड को ठीक तरह निभा न सका था, साथ ही अपना काम भी पूरा न कर सका था, इसलिए कुछ दिन की माफी कट गयी थी और जितने महीने पहले छूट रहा था, इन महीनो की माफी मिलने का तो प्रश्न ही न था। इस हिसाब से उसके छूटने की नवम्बर सन् '२३ की कोई तारीख आती थी। जिस तारीख को वह छूटेगा, वह तारीख किसी को न मालूम थी। जेल मे अधिकाश बाते पोशीदा रखने के नियम है, पर जिन बातो के गुप्त रखने के कोई कायदे नही है, वे भी पोशीदा रखी जाती है। जेल के सचालको को हर बात गुप्त रखने की ऐसी आदत हो गयी है कि झूठ बोलना भी वहाँ के नियमो मे से एक नियम बन गया है। गोपनीयता के साथ मिथ्यावादिता एक आवश्यक चीज है और जहाँ एक बात झूठ बोली गयी कि उसे सत्य सिद्ध करने के लिए एक पर दूसरी और दूसरी पर तीसरी असत्य बाते चलती है। जेलवाले जान-बूझकर सदा झूठ बोलते हो, यह नही, पर जिस तरह जिन बातो को गुप्त रखना कायदे में नही है, उन्हे भी पोशीदा रखने की उन्हे आदत पड गयी है, उसी प्रकार मिथ्या भाषण की भी। यदि कभी धोखे से उनके मुँह से कोई सत्य बात निकल भी जाय, तो वे चौक-से पडते है, बगले झाँकने लगते है और सोचने लगते है कि उन्होने कोई अनर्थ तो नही कर डाला।

इन्दुमती की ललितमोहन से पहली मुलाकात उसकी सजा के लगभग चार महीने बाद हुई थी और उसके पश्चात् उसने हर तीसरे महीने ठीक तारीख को ललितमोहन से मुलाकात की थी। अगस्त, सन् '२३ मे वह ललितमोहन से मिलकर आयी थी और अधीरता से नवम्बर माह की राह देख रही थी। जब किसी बात के होने मे काफी समय रहता है तब उसका रास्ता देखते रहना उतना कठिन नही, जितना थोडा बच जाने पर। इस प्रतीक्षा मे आतुरता इसलिए और अधिक बढ गयी थी कि इस मुलाकात मे इन्दुमती को ललितमोहन फिर कुछ अस्वस्थ दीखा था।

सितम्बर का मध्य था। वर्षा की समाप्ति से आकाश और पृथ्वी स्वच्छ हो गयी था। चमेली मे एकाएक कलियाँ फूट-सी पडी थी और सरोवर भी

गोस्वामी तुलसीदास की उक्ति के अनुसार कमलो के कारण निर्गुण मे सगुण बन रहे थे। भ्रमरो और तितलियो की भी बाढ-सी आरम्भ हो गयी थी और इन सुन्दर जीवो के सग-सग ही मच्छरो की भी। कोयल की 'कूक' और पपीहे की 'पीऊ' बन्द होकर सारसो का चीखना शुरू हुआ था। हर ऋतु मे अच्छी-बुरी कितनी चीजो का इकट्ठा समावेश रहता है! विश्व मे न केवल सुख है, न दुख, न सिर्फ अच्छाई है, न बुराई, सबका कैसा मिश्रण, कैसा सम्मिलन है।

एक दिन इन्दुमती दोपहर का भोजन कर बैठी-बैठी उँगलियो की पोरो पर ललितमोहन के छूटने की तारीख गिन रही थी। ललितमोहन के छूटने की ठीक तारीख न मालूम होने पर भी, हिसाब लगा रही थी कि कितने दिन माफी के कटकर अन्दाजन किस तारीख को ललितमोहन छूटेगा। उसी समय एक तारवाले ने उसे एक तार लाकर दिया। तार खोलकर एक सेकिण्ड पढने के बाद वह बैठी न रह सकी। इसी तरह पिता की बीमारी का तार पाकर वह न बैठ सकी थी, पर क्रिया वही होने पर उस वक्त और इस समय मे उसकी मुद्रा मे आकाश-पाताल का अन्तर था, दिन-रात का फर्क। उस वक्त उसके मुख पर एकाएक दुख और चिन्ता ने कब्जा कर लिया था, इस समय हर्ष और उत्साह ने। तारवाला जा चुका था, पर उसने झट से दरवाजे के पास जाकर उसे जोर से पुकारा। वह लौट आया। उसके लौटते ही उसने अपने मनीबेग मे से दस रुपये का नोट निकाल उसे देते हुए कहा—'यह तुम्हारा इनाम है!' तारवाले ने अभिवादन कर नोट ले लिया और समझ गया कि तार मे श्रीमतीजी को कोई शुभ सवाद मिला है! उसे बडे-बडे ताल्लुकेदारो से भी किसी तार पर इतना इनाम न मिला था, इसलिए उसने बार-बार अपने मन मे कहा कि कोई बडा, बहुत बडा शुभ सवाद होना चाहिए!

तारवाले को पुरस्कृत कर इन्दुमती बच्चो के समान दौडती हुई सुलक्षणा की ओर चली और उनके कमरे मे घुसने के पहले ही जोर-जोर से पुकारना शुरू किया—'माँ! माँ! माँ! माँ!' सुलक्षणा यह सोच कि क्या कोई भयानक घटना हो गयी है, झपटकर कमरे के बाहर ही निकल रही थी कि इन्दुमती ने आँधी के समान कमरे के दरवाजे मे प्रवेश किया। सुलक्षणा आँधी के वेग मे गिरनेवाली तरु-शाखा के सदृश काँप-सी गयी और कठिनाई से गिरते-गिरते बची। इन्दुमती झपटकर माँ से लिपट गयी। उसके मुँह से कठिनाई से ये

शब्द निकल रहे थे—'वे · वे छूट·· छूट गये, माँ छूट गये !' इन शब्दो के साथ उसकी आँखो से आँसू भी बह रहे थे। सुलक्षणा अपनी बेटी के अन्त करण की यह शुद्धता और इस शुद्धता के कारण बच्चो की सी यह चपलता देख आनन्द-विभोर हो गयी। उनके अन्त करण ने बार-बार भगवान् से प्रार्थना की—'हे भगवन्, मेरी इस दुहिता को इसी तरह सदा शुद्ध और साध्वी रखना !'

माता से कानपुर जाने की आज्ञा माँग इन्दुमती ने ड्राइवर को बुलवाया। सामान उसे ले न जाना था, क्योकि सारा जरूरी सामान कानपुर के मकान में भी मौजूद था, अत वह शोफर का रास्ता देखते हुए कमरे मे जोर से इधर-उधर टहलने लगी।

कुछ ही क्षणो बाद बार-बार उसने अपने मन मे कहना शुरु किया—'आह, कितनी · कितनी देर हो रही है ! आखिर उस बदजात ड्राइवर को हुआ क्या है ? कही कानपुर की ट्रेन चली न जाय !' यथार्थ मे ड्राइवर को आने मे बहुत समय न लग रहा था, उसे आदमी बुलाने गया था और वह दौड़ता हुआ गया होता, तथा ड्राइवर दौडता हुआ भी आता, तो भी चलने और दौडनेवाले तो मनुष्य के पैर ही थे, हवा का आना-जाना, या मन की दौड तो थी नही। शोफर के आते ही उस पर एक जोर की डाँट पडी देर से आने के लिए, और हुक्म हुआ मोटर निकालने का। जब वह स्टेशन पहुँची तो उसने देखा कि उसकी घडी तीन-चार मिनिट आगे ही थी, पीछे नही। और गाडी को जाने में सचमुच अभी चालिस मिनिट बाकी थे।

पाँच मिनिट से अधिक वह स्टेशन पर न ठहर सकी, चालिस मिनिट तो दूर की बात थी, और उसने मोटर से कानपुर जाना तय किया। मोटर रवाना हुई। आह, बहुत ही धीरे चल रही थी मोटर ! इन्दुमती बार-बार ड्राइवर को तेज चलाने को कहने लगी। पैंतालीस, पचास और पचपन मील घण्टे की रफ्तार भी आज इन्दुमती को धीमी चाल मालूम होती थी।

जब मोटर उसके मकान पर पहुँची तब किस तरह मोटर से उतर तथा सीढियो पर चढकर वह ललितमोहन के कमरे मे पहुँची, यह उसे खुद ज्ञात न था। वहाँ पहुंचते ही झपटकर वह ललितमोहन से लिपट गयी। बिजली की चमक से ही उस त्वरा की उपमा दी जा सकती है। लगभग बीस, हाँ बीस

महीनो के बाद उसे उस वक्षस्थल, उन भुजाओ का आश्रय मिला था और ये बीस महीने इस समय उसे बीस वर्षों बीस युगो, अरे बीस जन्मो के समान जान पडते थे! उसकी जबान से कुछ न निकल रहा था, आँखो मे झर रहा था निर्झर। जब काफी आँसू बह चुके, तब उसे कुछ दिखायी दिया और उसके ओठो पर मुस्कराहट आयी। इस समय की उसकी मुस्कराहट मे वह भावना छिपी थी, जो दीर्घकालीन दुख के पहले के सुख का स्मरण आने पर हृदय में उत्पन्न होती है और मुस्कराते-मुस्कराते उसने ललितमोहन को देखना शुरू किया।

यह क्या, ललितमोहन के जो हाथ उसकी पीठ को सुहला रहे थे, वे क्या सूजे हुए थे? एकाएक उसकी नजर ललितमोहन के पैरो पर पडी। वे भी सूजे थे और अब उसने हठात् ललितमोहन का मुख देखा। वहाँ भी सूजन थी। उसकी वह मुस्कराहट लुप्त हो गयी। वह आश्चर्य, भय और चिन्ता—तीनो के कारण एकदम् नितान्त स्तब्ध-सी रह गयी।

× × ×

बीमारी के कारण ललितमोहन की रिहाई की खबर सारे शहर मे फैल गयी और दूसरे दिन प्रात काल से उसका स्वास्थ्य देखने के लिए उसके मकान पर एक खासी भीड जमा रहने लगी।

उसकी बीमारी की खबर सर रामस्वरूप को भी पहुँची। इन चार, साढे चार साल में सर रामस्वरूप बहुत ही बुढा गये थे, इन बीस महीनो मे तो बहुत अधिक। बाल तो उनके खिजाब न करने के कारण सफेद थे, पर चेहरे पर झुर्रियाँ, शरीर मे दुबलापन, हाथ मे कप और कमर में कुछ झुकाव, ये नयी चीजे थी। ललितमोहन का नाम वे अभी भी न लेते थे, पर अब सभी जानने लगे थे कि सेठजी का यह हाल पुत्र के कारण हुआ है। जब उन्होने ललितमोहन की बीमारी तथा उसके मुँह और हाथ-पैर की सूजन का हाल सुना तब तो वे कुछ देर अवाक्-से होकर सामने इस तरह देखते रह गये, जैसे हठात् उनकी आँखे फट गयी हो! कुछ ही देर मे हुक्म हुआ कि ललितमोहन की सारी उतारी हुई तस्वीरे यथास्थान लगा दी जायँ और आधे घण्टे के अन्दर! कितना बड़ा मकान था, कितनी तस्वीरे थी! यद्यपि उनके स्थान अभी भी खाली थे, फिर भी वर्षो से रखे-रखे तस्वीरो मे कई के काँच फूट गये

थे। जब सेठजी को खबर दी गयी कि सब तस्वीरो का आधे घण्टे मे लगना इसलिए सम्भव नही है कि उनके काँच फूट गये है, तब दूसरा हुक्म हुआ कि मोटर पर वे तस्वीरे मढनेवाले के यहाँ जायँ, तथा काँच लगकर फौरन वापस आयेँ। तब तक शेष तस्वीरे लगे। अत्यधिक जल्दी करने पर भी सारे काम मे कई घण्टे लग गये और इन घण्टो मे कितनी बार किस-किस पर, किस-किस तरह की डाँट पडी! जब तस्वीरे लग जाने की खबर सर रामस्वरूप को पहुँची तब उन्होने मुनीम को बुलाया। जब मुनीम आया तब रामस्वरूप चुपचाप कमरे मे टहल रहे थे। मुनीम को उन्होने देख लिया, पर मुनीम को देखकर भी कुछ बोले नही। मुनीम की समझ मे न आया कि वह खडा रहे, या उनके साथ-साथ घूमे। सेठजी के स्वभाव को मुनीम भली भाँति जानता था, अतः दोनो अवस्थाओ मे उसे झिड़की पड़ सकती थी। सेठजी का इस तरह घूमते रहना उनका सदा का अभ्यास न होने की वजह से मुनीम को अपने व्यवहार के निश्चय मे और कठिनाई पड़ी, परन्तु मुनीम के सौभाग्य से सेठजी ने हठात् खडे हो मुनीम से पूछा—'मुनीमजी, थे जानो हो, बो कठे रहे है?'

'कुण सेठजी?' सहज भाव से मुनीम ने पूछा।

मुनीम के एक स्वाभाविक प्रश्न पर अत्यन्त बिगडकर सेठजी बोले, 'कुण? कुण के? इतनी सी बात भी नही समझ्या और करोड़पती की मुनीमी करो हो! मुनीमी करो हो, या घास खोदो हो? · वोई जीकी तसवीराँ उतरवाई ही और फेरूँ लगवाई है—वो, कुण के?'

सिटपिटाते हुए मुनीम बोला—'ललितमोहन को घर जानू हूँ। कानपुर मे कुण नही जाने?'

'मोटर जाती है वहाँ तक?' सेठजी ने कुछ शान्त होते हुए पूछा।

'हाँ, मोटर जाती है।'

'तो ले चलो मुझे वहाँ। कपूत होवे या सपूत, लकडी तो बी की लागसी तोई मै सरग जासूँ।' और इन आखिरी शब्दो के निकलते-निकलते सेठजी के मुख से एक लम्बी साँस भी निकल गयी।

शाम हो रही थी। कानपुर की सड़को की बत्तियाँ तो अब तक नही खुली थी, लेकिन अनेक मकानो की बत्तियाँ जल गयी थी। उनकी खिड़कियाँ ऐसी जान पड़ती थी, मानो मकानों की आँखे हो। ललितमोहन के स्वास्थ्य

पूछने आनेवालो में से आखिरी मनुष्य अभी-अभी गये थे। उसी समय बाहर एक मोटर खडी होने की आवाज आयी। ललितमोहन ने इन्दुमती से बत्ती खोलने को कहा ही था और उसने बत्ती खोली ही थी कि धडधडाते और यह कहते हुए 'कठे · कठे है वो ?' सेठजी ने कमरे मे प्रवेश किया। उनके आगे-आगे ललितमोहन का पुराना नौकर था, जो सर रामस्वरूप को अच्छी तरह जानता था।

पिता की आवाज पहचानने मे ललितमोहन को कठिनाई न हुई और वह हड़बडाकर खडे हो कुछ आगे बढा, पर उसने अपने सामने यह किसे देखा वही क्या उसके पिता थे ? ललितमोहन कुछ तो रुका, पर फिर शीघ्रता से उसने उनके पैरो में सिर रख दिया। बूढे रामस्वरूप ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और उनके नेत्रो से आँसुओ की झडी लग गयी। ललितमोहन ने इसके पहले कभी पिता की आँखो मे आँसू न देखे थे। आह, कितना परिवर्तन था पिता के स्वरूप और व्यवहार दोनो मे ! ललितमोहन बोला, 'आप कैसे हो गये, काकाजी ?' यह वाक्य कहते-कहते ललितमोहन के भी आँसू निकल पडे।

'तो तू समझे थो कि थारे सूँ अलग होकर मै और कोई तरह को हो सकूँ हूँ ?' कितना मर्म था रामस्वरूप के स्वर और इस वाक्य मे ! 'थारी तबियत कैसी है ?' कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा।

'कोई खास बात नही है। ठीक हो जाऊँगा।'

आँखे फाड-फाड कर ललितमोहन को बार-बार सिर से पैर तक देखते हुए सेठजी बोले—'खास बात नही है ? मुँह सूजा है, हाथ-पैर सूजे है और तू कहता है कोई खास बात नही !'

उपर्युक्त बात कहते-कहते रामस्वरूप की दृष्टि इन्दुमती पर पडी, जो सिर नीचा किये हुए एक ओर सिकुडी-सिकुडी सी खडी थी। कमरे मे दो ही दरवाजे थे—एक बाहर से आने के लिए और दूसरा अन्दर के कमरे मे जाने के लिए। सेठजी, ललितमोहन, मुनीम और नौकर इस तरह खडे हुए थे कि इन्दुमती को न बाहर जाने को रास्ता था और न भीतर, इसलिए वह खडी रह गयी थी। किसी बाहरी व्यक्ति से उसे लज्जा भी न आती थी, पर न जाने सर रामस्वरूप को जानने के बाद वह क्यो सकुच सी गयी थी !

सेठजी ने इन्दुमती के पास जाते-जाते कहा, 'बीदनी ये ही है !'

कोई कुछ न बोला, पर इन्दुमती को रामस्वरूप के पैर छूने के सिवा अब और रास्ता ही क्या था ? जब वह पैर छू चुकने पर चुपचाप फिर उसी प्रकार खडी हो गयी तब सेठजी ने उसकी ठुड्ढी पकड उसका मुँह रोशनी की ओर करते तथा गौर से चेहरा देखते हुए कहा—'तू तो परदा नही करती न ? जलूसो मे जाती है। सभाओ मे भासन देती है। हमारे यहाँ भी सुसरा एक बार तो बहू का मुँह देखता है।' कुछ रुककर वे फिर बोले—'फूटरी घणी फूटरी वीदनी है !'

उस कारुणिक दृश्य मे भी ऐसा कोई न था, जिसे हँसी न आ गयी हो !

अब सेठजी ने नौकर की ओर घूमकर कहा—'सारा सामान महल को ले आ। खबरदार इस मकान में एक चिन्धी भी छोडी, तो ·' और फिर उन्होने इन्दुमती से कहा—'चल, पहले तू मोटर मे बैठ, फिर ललित बैठेगा।'

इन्दुमती ने ललितमोहन की तरफ देखा। सर रामस्वरूप से यह छिपा न रहा और उन्होने बिगडकर कहा—'उसकी तरफ क्या देखती है ? क्या मै कोई भी नही हूँ ?' और फिर ललितमोहन की ओर देखकर बोले—'चलो, तुम भी चलो।'

ललितमोहन को वही पुराना आदेशमय स्वर सुन पडा, जिसका पालन उसने सिद्धान्त की निश्चित की हुई बातो के सिवा सदा-सर्वदा बिना एक क्षण रुके किया था। आगे-आगे ललितमोहन, उसके पीछे इन्दुमती और उसके पीछे सेठजी थे। मोटर में पहले सेठजी ने इन्दुमती को बैठाया, फिर ललितमोहन को और बाद मे खुद बैठे। इन्दुमती और सेठजी के बीच की सीट पर ललितमोहन था। मुनीम बैठा ड्राइवर के पास। सेठजी ने ड्राइवर को पहले मन्दिर जाने का हुक्म दिया।

श्रीफल ठाकुरजी को भेंट की। भेंट कर सिर को पृथ्वी पर रख उन्होंने दण्डवत् की। जब वे दण्डवत् कर रहे थे, उस समय उनका चश्मा गिरा और फूट गया। उनके मन मे एकाएक उठा कि यह कोई अशकुन तो नही है ? चश्मा फूटकर यह तो नही जता रहा है कि रो-रोकर शीघ्र ही तेरी आँखे फूटनेवाली है, पर इस समय आनन्द के अतिरेक के कारण बहुत देर तक यह भाव उनके मन मे न ठहरा।

इन्दुमती जीवन मे पहली बार किसी भी मन्दिर मे आयी थी, और यह क्या ? आँखो मे आँसू भर, हाथ जोड इन्दुमती कितने भक्तिभाव से दर्शन करने मे निमग्न हो गयी ! उसके ओठ भी चल रहे थे। वह प्रार्थना कर रही थी, जीवन मे पहली प्रार्थना, ललितमोहन के आरोग्य के लिए !

और ललितमोहन कर रहा था उस समय निष्काम साष्टाग दण्डवत्।

जब मोटर सेठजी के महल पर पहुँची और सेठजी ने अपने पुत्र और पुत्रवधू के साथ महल मे प्रवेश किया तब कितना हर्ष था उन्हे ! मानो उनके घर मे पुत्रवधू सहित एक नये पुत्र ने जन्म लिया था ! इस हर्ष मे कुछ देर के लिए तो सर रामस्वरूप अपना बुढापा और पुत्र की बीमारी दोनो ही भूल गये।

ललितमोहन को घर लौटने पर आज पहले-पहल अपने घर की महत्ता का अनुभव हुआ। जिस घर मे वह पैदा हुआ था, जहाँ उसका लालन-पालन हुआ था और जहाँ वह कुछ वर्षों पहले सदा ही रहा था, उसी पुराने, अति पुराने घर मे कोई परिवर्तन न होते हुए भी आज उसे उसमे कितनी नवीनता दीख रही थी। दीर्घ काल तक जेल मे रहना और इन्दुमती को साथ मे लाना ही इस नवीनता और महत्ता के मुख्य कारण थे और इन्दुमती तो इस महल को देखकर भौचक्की-सी हो गयी थी।

× × ×

दूसरे दिन ही कानपुर के बडे-बडे डॉक्टर इकट्ठे किये गये। ललितमोहन की अच्छी तरह जाँच हुई। सर रामस्वरूप के कुटुम्ब के डॉक्टर से इन डॉक्टरो की गुप्त बातचीत का आशय था कि ललितमोहन की बीमारी काफी बुरी स्थिति मे है, पर सर रामस्वरूप, ललितमोहन, इन्दुमती आदि को डॉक्टरो ने यही कहा कि यद्यपि तकलीफ गुरदे की ही है, तथापि भय की कोई

बात नही और बहुत शीघ्र ललितमोहन की तबियत ठीक हो जायगी। डॉक्टरो की यह भी राय हुई कि जहाँ तक हो, जल्दी एक बार लखनऊ मेडिकल कालेज में जाकर एक्स-रे की फोटो उतरवा, पेशाब, पाखाने, खून आदि की जाँच करवा लेना चाहिए। इलाज सेठजी के कुटुम्ब के डॉक्टर का ही आरम्भ हो गया।

डॉक्टरो के जाते ही ज्योतिषियो का जमघट जमा। ललितमोहन को शनि की उन्नीस वर्ष की महादशा चल रही थी। उसमें सूर्य का अन्तर और राहु का प्रत्यन्तर था। ज्योतिषियो की दृष्टि से तीनो ही ग्रह पूज्य थे। शनि के लिए हर शनिवार को शनि का दान निश्चित हुआ। सूर्य के लिए इन्दुमती को कहा गया कि वह सूर्योपासना करे, हर रविवार को व्रत, सूर्योदय के समय भगवान् भास्कर का अर्घ्य, रक्त चन्दन, तथा लाल पुष्पो से पूजन और सूर्यास्त होने पर सध्या को अलूना भोजन। राहु का चालीस दिन का जप बैठाया गया। ललितमोहन के स्वस्थ होने तक दीर्घायु की कामना के लिए महामृत्यु जय मत्र के साथ अखण्ड रुद्राभिषेक तय हुआ और सारे उपद्रवो की शान्ति के लिए सहस्र चण्डी अनुष्ठान।

इन दोनो आवश्यक कार्यो से निपट सर रामस्वरूप ने अपनी पुत्रवधू के लिए वर्षों से जो आभूषण एकत्रित किये थे, वे लाकर इन्दुमती को दिये। इन आभूषणो के सात सेट थे। छै सेट थे हीरे, मोती, पन्ने, माणिक, नीलम, फीरौजे के और एक था नव-रत्नो का मिला हुआ। हीरे का सेट सफेद प्लैटि-नम धातु मे जड़ा हुआ था, जिससे नगो की दीप्ति और बढ गयी थी, फिर नग पोलकी या परब न होकर कमल थे, योरप मे बेल्जियम देश के, मोती थे पुरानी बसरा खान के और उन पर कलकत्ते मे पालिश करायी गयी थी। पन्ने और माणिक की अच्छे से अच्छे रग की मणियाँ लेकर उनके तावडे बनवाकर जडवाये गये थे। नीलम और फीरौजे के रग भी देखते ही बनते थे। और नव-रत्नो के मिले हुए सेट मे जिन रत्नो का प्रयोग हुआ था, वे भी अच्छे से अच्छे छाँट-छाँटकर इकट्ठे किये गये थे। हर सेट मे सारे अगो के जेवर थे—शीश फूल, कर्णफूल तथा झुमके, गलपटिया तथा हार, भुजबन्द, चूड़ियाँ, पोहची, हथफूल और अँगूठियाँ इत्यादि। समस्त आभूषणो की ठीक कीमत तो जौहरी ही लगा सकते थे, लेकिन देखने मे वे पचास-साठ लाख से

कम के न दीखते थे। जेवरात के सिवा जयपुर के मीने के काम की सोने की कुछ चीजें भी रामस्वरूप ने अपनी पुत्रवधू को दी। इनमे मुख्य थे इत्रदान, चौफूला, पानदान, गुलाब पाश, शृगार-पेटी आदि। वस्त्रो के सम्बन्ध मे सेठजी ने बहू से कहा—'कपडे तो मै बनवानेवाला था, पर तुम तो खादी पहनती हो। खादी के कपडे मुझ से खरीदकर न दिये जा सकेंगे, इसलिए कपडो के लिए ये दस हजार रुपये ··' और यह कहते हुए नोटो का एक बण्डल उन्होंने इन्दुमती के सामने रख दिया।

इन्दुमती अपने पिता की सम्पत्ति को ही बहुत बडी सम्पत्ति समझती थी; पिता के मकान, उद्यान आदि को दर्शनीय। उसने खादी पहनने के पहले अच्छे से अच्छे वस्त्र पहने थे, आभूषण भी; लेकिन इस महल, इन आभूषण आदि के सामने उसके पिता की धन-सम्पत्ति कौनसी चीज थी! आज उसे मालूम हुआ ललितमोहन के त्याग का महत्त्व, आज वह समझी कि देश के लिए ललितमोहन ने क्या किया था! बिना जाने ही ललितमोहन के लिए उसका सम्मान कितना अधिक बढ गया!

अब तक इन्दुमती न ईश्वर को मानती थी, न धर्म-कर्म को। कभी-कभी एकाएक उसके हृदय में उत्पन्न होनेवाली आत्मा की भावना भी तीन पाये की टेबिल और प्लैन्चेट के जलने के पश्चात् खत्म हो गयी थी, लेकिन कल मन्दिर में जाते ही हठात् न जाने कैसे उसके मन मे एक नये विश्वास की उत्पत्ति हुई। उसने निश्चय किया नित्य मन्दिर जाने का, माँग मे सिन्दूर भरने का, ललाट पर टिकली लगाने का, हाथो मे काँच की चूडियाँ पहनने का और पूरी-पूरी श्रद्धा के साथ हर रविवार को व्रत रखने तथा सूर्य-पूजन करने का।

ललितमोहन कई बार कहा करता था कि मानव-मन निसर्ग ही दो प्रकार के बनाता है—विश्वासी और अविश्वासी, लेकिन इन्दुमती ने इसे कभी न माना था। जब-जब यह विवाद छिडा था, तब-तब इन्दुमती ने यही कहा था, विश्वासी और अविश्वासी मनो का निर्माण सस्कार करते है। इन्दुमती मे ईश्वर तथा अदृश्य शक्तियो मे विश्वास का एकाएक उमड़ा हुआ यह ध्येय देखकर ललितमोहन को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उसने अपने मत मे परिवर्तन किया, इतना ही नही, इन्दुमती की राय भी गलत सिद्ध कर उसने कहा—

'मानव-मन की घडन यथार्थ मे सामयिक परिस्थिति करती है।'

ललितमोहन ने जेल मे ही तय कर लिया था कि जेल से छूटने पर वह यज्ञोपवीत तोड़े जाने का, तथा अनेक अशुद्धियो का प्रायश्चित्त करेगा। जब उसने पिता से अपना इरादा कहा तब कितना हर्ष हुआ उन्हे ! उन्होने अपने कुटुम्ब के पण्डित को बुला, तैयारी करा, विधिपूर्वक यह प्रायश्चित्त करा दिया।

शहर मे और दूर-दूर तक सर रामस्वरूप तथा ललितमोहन के समझौते के सवाद को फैलने मे देर न लगी। ललितमोहन की बीमारी के हाल और जेल से रिहाई के साथ-साथ इस समझौते के वृत्त को पत्रो ने भी छापा। पुराने दकियानूसी खयालो के मारवाडियो मे क्षोभ का ठिकाना न रहा और जाति के सरपच रामस्वरूप कायस्थ की लडकी को वह स्वीकार करने के अपराध मे जाति वहिष्कृत किये गये। सरकारी फिरको मे भी सर रामस्वरूप की असहयोगी बेटे को वापस घर लाने पर कम चर्चा न हुई, विशेषकर अग्रेजो के क्लब मे, पर इस समुदाय के हाथ मे जेल भेजने, डण्डे चलवाने, गोली से उडाने और फाँसी पर लटकाने के सिवा जाति-पचायत के समान और कोई ऐसा शस्त्र न था, जिससे ये रामस्वरूप को दण्ड देते। ललितमोहन को घर लाने के अपराध मे उपर्युक्त सजाएँ ठीक बैठती न थी। एक ही बात यह फिरका और कर सकता था—रामस्वरूप से 'सर' और 'रायबहादुरी' वापस लेना, पर इसमे अपना ही टुच्चापन दीखेगा, यह विचार फिलहाल इस समुदाय ने चुप रहना ही उचित समझा।

ललितमोहन के घर लौटने पर सर रामस्वरूप मे बाह्य परिवर्तन भी हो गया। ललितमोहन को घर से निकालने पर जो परिवर्तन उनमे हुआ था, वह शनै शनै, पर इस समय का परिवर्तन हुआ सहसा। उनकी आँखे नही बदली, पर उनकी दृष्टि मे जो शून्यता दीखने लगी थी, वह विलीन हो गयी, उसकी जगह ले ली एक विशेष प्रकार की उत्सुकता ने। अब वे जिस तरफ भी दृष्टि फेकते, उस दृष्टि मे उत्सुकता नजर आती। उनके दाँतो के रहते हुए भी वे इन दिनो दिखायी न देते थे। उनके ओठ दाँतो पर डिब्बी के ढक्कन के समान बन्द रहते, पर अब बार-बार ये ढक्कन खुला करते और उनकी दत-पक्ति के दर्शन हुआ करते। इन दो परिवर्तनो ने ही उनकी मुद्रा को सर्वथा बदल दिया। हाथो के कप, चाल-ढाल, सभी मे परिवर्तन हो गया। बूढे राम-

स्वरूप मे, बूढे रहते हुए भी, जवानी का जोश दिखायी पडने लगा।

कुछ दिन बाद सर रामस्वरूप पुत्र की जांच कराने अपने कौटुम्बिक डॉक्टर के साथ लखनऊ चल दिये और अवधविहारीलाल के उद्यान मे ही ठहरे। सुलक्षणा ने रामस्वरूप के सम्मुख न आते हुए भी बडी व्यवस्था की समधी की खातिर-तसल्ली की। सारा इन्तजाम था वजीरअली के जिम्मे। सर रामस्वरूप की इतनी बडी मेहमानदारी कही न हुई थी। लखनऊ का आतिथ्य-सत्कार था और वह भी समधी का। सुलक्षणा को इस समय बार-बार पति की याद आ रही थी।

मेडिकल कालेज मे ललितमोहन की जॉच के सारे कामो मे त्रिलोकीनाथ से बहुत मदद मिली। अपने चरित्र और बुद्धि के कारण विद्यार्थी होते हुए भी त्रिलोकीनाथ का मेडिकल कालेज में बडा सम्मान था और फिर व्यवहारिक दृष्टि मे अब त्रिलोकीनाथ डॉक्टर हो ही चुका था, अगले छै महीनो के पश्चात् उसका आखिरी इम्तहान था।

ललितमोहन की बीमारी के सम्बन्ध मे मेडिकल कालेज की सारी रिपोट से भी गुरदे की बीमारी का ही समर्थन हुआ। दोनो गुरदे ठीक काम नही कर रहे थे। 'एक्स–रे' की फोटो दोनो गुरदो मे छोटी-छोटी पथरियाँ बताती थी। पेशाब मे भी कई तरह के 'डिपाजिट' थे और 'आक्सोलेट्स' भी। सर रामस्वरूप के कौटुम्बिक डॉक्टर ने यद्यपि रामस्वरूप, ललितमोहन, इन्दुमती आदि से कुछ नही कहा, फिर भी जब वह लखनऊ से कानपुर लौटा तब वह ललितमोहन के स्वास्थ्य के विषय में और ज्यादा चिन्तित हो गया।

: २२ :

कलकत्ता सभी प्रणालियो की चिकित्साओ के लिए प्रसिद्ध है—एलोपैथिक, होमिओपैथिक, आयुर्वेदिक। यदि कलकत्ते मे किसी पद्धति की कमी है तो यूनानी हिकमत की। सन् २३-२४ में तो कलकत्ता इस दृष्टि से और ज्यादा

मशहूर था, क्योंकि वहाँ जितने बडे-बडे चिकित्सक थे, उतने भारतवर्ष के किसी स्थान मे नही। एलोपैथी मे सर नीलरतन सरकार, होमिओपैथी मे डॉक्टर यूनन और आयुर्वेद मे कविराज श्यामादास तथा गणनाथ सेन का नाम हिन्दुस्तान भर मे विख्यात था। सर रामस्वरूप ने ललितमोहन को कलकत्ते ले जाना तय किया और अपनी कलकत्ते की दूकान के मुनीम को वेल्जली स्ट्रीट मे कोई अच्छा बँगला किराये पर लेने के लिए लिखा। उस वक्त कलकत्ते का वर्तमान 'लेक एरिया' न बसा था और वेल्जली स्ट्रीट तथा उसके आस-पास के मुहल्ले सबसे अच्छे स्थान माने जाते थे। पन्द्रह सौ रुपया मासिक किराये पर बँगला ले लिया गया और सारा प्रबन्ध होते ही कोई चालीस आदमियो के साथ सर रामस्वरूप ललितमोहन और इन्दुमती को ले फर्स्ट क्लास की एक बोगी रिजर्व करा कलकत्ते पहुँचे। असहयोग की सादगी का कोई असर सर रामस्वरूप के वर्ग पर न पड़ा था और इस वर्ग के रईसो की यात्रा मे चालीस-पचास सगी-साथी, मुनीम-गुमाश्ते, सिपाही-चपरासी, नौकर-चाकर कम से कम समझे जाते थे।

कलकत्ता पहुँचकर ललितमोहन के इलाज में रुपया पानी के समान बहना आरम्भ हुआ। ठीक भी था ललितमोहन से अधिक सर रामस्वरूप के लिए और क्या हो सकता था ?

पहले कलकत्ते के डॉक्टर सर कैलाशचन्द्र बोस, जो मारवाडियो के केवल चिकित्सक ही नही, सभी कुछ थे, बुलाये गये। सर रामस्वरूप और सर कैलाश की बहुत पुरानी जान-पहचान थी और फिर तो कलकत्ते के डॉक्टरो का जमघट लग गया। तरह-तरह के विशेषज्ञों ने ललितमोहन को देखा। कलकत्ते के अच्छे डॉक्टरो में से किसी की भी फीस सोलह रुपये से कम नही, और अनेक की बत्तीस तथा किसी-किसी की चौसठ भी।

कलकत्ते मे फिर से 'एक्स-रे' फोटो उतरी, खून, पाखाने, पेशाब की जाँच हुई और डॉक्टर सर नीलरतन सरकार की राय के अनुसार डॉक्टर सर कैलाशचन्द्र का इलाज शुरू हुआ।

नवम्बर का महीना था। जाडा यद्यपि अच्छी तरह आरम्भ हो गया था, फिर भी कलकत्ते मे ठण्ड का बहुत कम असर रहता है। इलाज के लिए सरदी की मौसम बहुत अच्छी समझी जाती है, इतने बडे-बड़े डॉक्टरो ने

देखा था, अतः रामस्वरूप और इन्दुमती के मन मे एक विश्वास-सा उत्पन्न हो गया कि अब ललितमोहन को बहुत शीघ्र लाभ होगा, लेकिन न जाने क्यो स्वय ललितमोहन अपनी बीमारी के सम्बन्ध मे तटस्थ-सा हो गया था। जेल से निकलकर जिस ललितमोहन ने इन्दुमती को बारम्बार हृदय लगाते और गुदगुदाते हुए कहा था—'अब देखना कितनी जल्दी अच्छा होता हूँ मैं!' वही ललितमोहन अब अपनी बीमारी से सम्बन्ध रखनेवाली बातो मे प्राय. चुप रहा करता था। वह डॉक्टरो से जॉच बराबर कराता, दवा ठीक तरह लेता, डॉक्टरो की हरेक हिदायत पर पूरा-पूरा अमल भी करता, पर यह सब करते हुए उसमें उत्साह न था। जब दर्द के दौरे होते तब वह दर्द बर्दाश्त न होने के कारण तलमला उठता, पर पहले इस तलमलाहट मे जो एक तरह की तेजी थी वह भी अब चली गयी थी। पहले जब उसको दर्द उठता तब कभी वह जोर से चिल्ला पडता, फिर दर्द थोडा कम होने पर अपनी चिल्लाहट पर ही कहकहा लगाता, अब न वे चीखें थी और न वे कहकहे। हाँ, पीडा की असहनीयता के कारण तडप तो वह जाता ही और जब कष्ट कुछ कम पडता तो उस अट्टहास की जगह सुस्ती आ जाती।

डॉक्टरी इलाज आरम्भ होने के कोई १०-१२ दिन बाद उसकी तबियत कुछ सुधरती हुई मालूम पडी। मुँह तथा हाथ-पैर की सूजन बहुत कम हो गयी और दर्द के दौरो की सख्या तथा तेजी दोनो मे कमी जान पडने लगी। सर रामस्वरूप तथा इन्दुमती का उत्साह बहुत बढ गया और अब एक दिन इन्दुमती ने उसे बार-बार हृदय मे लगाते तथा गुदगुदाते हुए कहा—'अब देखना कितनी जल्दी अच्छे होते हो तुम!'

स्वास्थ्य मे कुछ सुधार होते ही ललितमोहन का ध्यान एकाएक कुछ पठन-पाठन की ओर घूमा। विवाह होने के पहले अध्ययन उसका एक व्यसन-सा था। विवाह के पश्चात् पहले तो वैवाहिक जीवन, फिर असहयोगी होने पर काग्रेस का कार्य, उसके बाद जेल-यात्रा के कारण उसका पठन-पाठन छूट-सा गया था। अनेक बार उसकी इच्छा अवश्य होती कि कुछ पढूँ लिखूँ, जेल मे यह इच्छा अत्यन्त प्रबल हो गयी थी, पर बाहर तो समय न मिलता और उस समय के जेलो मे लोकमान्य तिलक सदृश व्यक्तियो को छोड अन्यो के लिए लिखने-पढने की कोई अच्छी सुविधा न थी। अत. इन वर्षों में ललितमोहन का

पठन-पाठन बन्द-सा ही रहा था। कलकत्ते मे कुछ स्वस्थ होते ही उसने बहुत दिनो के छूटे हुए अध्ययन को आरम्भ किया। उसने रूसी क्रान्ति और जिन साम्यवादी सिद्धान्तो पर पर वह क्रान्ति हुई थी, उन पर कुछ साहित्य पढना आरम्भ किया।

ललितमोहन का अध्ययन बहुत समय तक न चल सका, क्योंकि उसके स्वास्थ्य का यह सुधार स्थायी न रहा। चौथे सप्ताह से उसकी तबियत फिर बिगडी और इस बार तो इतनी तकलीफ बढी जितनी इसके पहले कभी न हुई थी। जब दो हफ्ते और इलाज होने तथा अनेक दवाओ के बदलने पर भी कुछ फायदा न जान पडा तब एलोपैथिक इलाज बन्द कर आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ की गयी। कविराज श्यामादास तथा गणनाथ सेन दोनो ने ही उसे देखा, पर इलाज शुरू हुआ श्यामादास का। आयुर्वेदिक औषधियो ने तो कमाल कर दिया। एक सप्ताह के भीतर सूजन तो बिलकुल चली गयी सी मालूम पडी और दर्द के दौरे भी करीब-करीब बन्द से हो गये। सर रामस्वरूप अपनी मूँछो को इस जोर-जोर उमेठते हुए बार-बार कहने लगे—'इस देश की बीमारियो को वैद पहचानते है बैद, डॉक्टर नही। बैदक हमारे देश का इलाज है, डॉक्टरी विदेश से आया हुआ। चीरा-फाड़ी चाहे डॉक्टर कितनी ही करले, पर इलाज करना वह क्या जाने ?' सदा विलायती कपड़ा, विलायती घोडे, हर विलायती सामान छॉट-छॉट कर खरीदनेवाले सर रामस्वरूप की देशी इलाज की यह भक्ति! पर जितनी जल्दी आयुर्वेदिक औषधि से ललितमोहन को लाभ हुआ था, उतनी ही जल्दी फिर बीमारी लौटी, इस लौट के पश्चात् अनेक प्रयत्न करने पर भी जब आयुर्वेदिक दवा से फायदा न हुआ, तब डॉक्टर यूनन बुलाये गये, पर होमियोपैथी ने तो ललितमोहन की बीमारी पर कोई असर ही न किया।

फरवरी का महीना था, कलकत्ते आये तीन महीने के ऊपर हो चुके थे। कानपुर से जिस दशा मे ललितमोहन आया था, उसकी अपेक्षा उसकी हालत खराब थी। ललितमोहन अब कलकत्ता न रहना चाहता था। पर कानपुर जाने से भी क्या लाभ था ? अत सलाह होकर जयपुर जाना तय हुआ। जयपुर मे आयुर्वेद मार्तण्ड श्री लक्ष्मीरायजी और चिकित्सक चूडामणि राजवैद्य श्यामलालजी बडे प्रसिद्ध वैद्य थे, तथा मूल मे सर रामस्वरूप राजस्थान के ही

रहनेवाले थे, अतः उन्हे राजपूताने की आबहवा से भी काफी फायदे की उम्मीद थी। ललितमोहन कभी राजस्थान न गया था, इन्दुमती भी नही, दोनो को वहाँ आने मे कुछ उत्सुकता भी जान पडी । सर रामस्वरूप का जयपुर मे भी कारबार था । जयपुर मे शहर पनाह के बाहर एक अच्छी कोठी किराये पर ली गयी । कलकत्ते से जयपुर की यात्रा काफी लम्बी थी, इसलिए स्पेशल ट्रेन से जाना उचित समझा गया और सब लोग जयपुर पहुँचे । यहाँ भी वैद्य-डॉक्टरो की जाँच के पश्चात् वैद्यक इलाज शुरू हुआ ।

अप्रैल के अन्त तक ये लोग जयपुर ही रहे । जयपुर मे ललितमोहन को कभी थोड़ा लाभ जान पडता और कभी फिर वैसा ही मालूम होता । पर कलकत्ते के सदृश यहाँ उसकी तबियत अधिक बिगडी नही । अब जयपुर मे गरमी आरम्भ हो गयी थी और चिकित्सको की राय हुई कि गरमी मे राज-पूताना रहना ठीक न होगा । बीमारी रुक गयी है, अत किसी पहाड पर रहकर वहाँ औषधि ली जाय । दवा यहाँ से जाती रहेगी, एव एक साधारण वैद्य भी यहाँ से चला जायगा, जो औषधि भी देता रहेगा तथा जयपुर सब हाल भी लिखता रहेगा, जिससे समम-समय पर दवा परिवर्तन आदि भी होता रहेगा । किस पहाड़ पर जाना ठीक होगा, इस पर विचार होने के पश्चात् काश्मीर जाना निश्चय हुआ । प्रबन्ध होने पर काफिला काश्मीर चल पडा ।

× × ×

जयपुर से जब ये लोग काश्मीर के लिए रवाना हुए उस समय काफी गरमी पडने लगी थी , दिन मे हवा भी गरम हो चली थी, यद्यपि अभी भी रात ठडी होती थी । जयपुर शहर तो इतना सुन्दर था, किन्तु उसके आस-पास की भूमि मे कोई सुन्दरता नही थी । चारो ओर रेत के ढेर और गरम हवा के साथ उडते हुए रेत के कण । जयपुर से ललितमोहन जब दिल्ली की ओर जा रहा था उस समय उसका मन काश्मीर की विशद कल्पनाओ से भरा हुआ था । ललितमोहन कभी काश्मीर नही गया था, लेकिन उसने काश्मीर के सम्बन्ध मे पढा खूब था । भारतीय साहित्यकारो ने कितनी जगह काश्मीर का वर्णन किया है, कहाँ-कहाँ काश्मीर का वर्णन करते-करते वे अपने को भूल गये है । काश्मीर के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यो की मोहक कल्पनाओ मे ललित-मोहन को अपनी पीडाओ का भी स्मरण नही रहा । अपने चारो ओर का

शुष्क वातावरण देख ललितमोहन को अपनी कल्पनाओ मे और भी आनन्द मिलने लगा। यद्यपि ललितमोहन अपनी बीमारी के सम्बन्ध मे तटस्थ-सा हो गया था फिर भी उसकी आशा का अन्त नही हुआ था। जयपुर में उसका दौरा सफल नही हुआ, इसलिए वह अब काश्मीर जा रहा था। जयपुर के वास्तविक चित्र मे वह काश्मीर के अपने मानसिक चित्र से तुलना करने लगा। जिस स्थान मे उसे असफलता मिली थी उसकी हीनता और काश्मीर की श्रेष्ठता की कल्पना उसे आनन्ददायक प्रतीत होने लगी। जयपुर मे यद्यपि कुछ प्राकृतिक सौन्दर्य था, लेकिन बहुत कम। यथार्थ मे तो जयपुर की सुन्दरता मनुष्य द्वारा निर्मित थी। रेगिस्तान मे सीधी चौडी सडको पर एक से मकानो का समूह—यही तो जयपुर था न? और काश्मीर-प्रकृति जहाँ अपने विविध सुन्दरतम् रूपो मे अठखेलियाँ करती है, हरे-भरे वन, हिमाच्छादित पर्वत, निर्मल झीले, नदियाँ और उन पर बसे हुए नगर। काश्मीर मे अवश्य उसे कुछ लाभ होगा—ललितमोहन सोचने लगा।

काश्मीर मे आकर ललितमोहन का गया हुआ उत्साह लौट आया। औषधियो से वह पहले ही तग आ गया था, इसलिए उसने निश्चय किया कि वह काश्मीर मे बिलकुल औषधियाँ बन्द रखेगा। काश्मीर फलो के लिए बडा प्रसिद्ध है। यद्यपि मई के आरम्भ मे चेरी, स्ट्रा बेरी और कुछ विशेष फलो के अतिरिक्त और कोई फल नही आते फिर भी ललितमोहन ने अपने भोजन मे फलो का बडा स्थान रखा। आरम्भ के मानसिक उल्लास से ललितमोहन के स्वास्थ्य मे भी अन्तर पडने लगा।

ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ था। वसन्त के पतझड के बाद सब वृक्षो में नवीन पल्लव आ गये थे। उपत्यका मे यहाँ-वहाँ ग्रीष्म ऋतु होते हुए भी शरद ऋतु के कई तरह के सुमन खिले हुए थे। सुदर्शन और गुलाब के नीले और गुलाबी रग दृष्टि को विशेष रूप मे आकर्षित कर रहे थे।

ललितमोहन स्वस्थ-सा हो रहा था। प्रकृति की इस सुघर गोद मे आ इन्दुमती और ललितमोहन को अपने वैवाहिक जीवन के आरम्भ के रसमय और रहस्यमय दिन याद आने लगे। दोनो ने निश्चय किया कि वे काश्मीर का एक-एक स्थल देखेंगे और आनन्दपूर्वक दिन बितायेगे।

काश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य वहाँ की झीलो से बहुत बढ गया है। गमन-

चुम्बी शैल-शिखरो मे घिरे हुए मैदान मे अनेको निर्मल और शान्त झीले है जिनमे कमल के फूल खिला करते है। श्रीनगर के पास ही गुपकार के रास्ते पर विशाल डाल झील है। काश्मीरी भाषा मे डल झील या तालाब को कहते हैं। डल का अर्थ ही झील है। डाल उत्तर मे दक्षिण तक लगभग पाँच मील और पूर्व से पश्चिम तक लगभग इससे आधी है। पानी सब जगह गहरा नही है। उथले स्थलो पर पानी मे होनेवाले जगली पौधो की जडे काटकर उन्हे पानी के ऊपर इकट्ठा कर उस पर कुछ मिट्टी डालकर तैरनेवाले खेत बनाये जाते है, जिन पर साग-सब्जी की खेती होती है। इन्ही खेतो की चोरी काश्मीर में बडी प्रसिद्ध है।

डाल झील के किनारे मुगल जमाने के चश्मेशाही, शालीमार, निशात बाग है। इन्दुमती और ललितमोहन ने इन बगीचो के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुन रखा था, इसलिए सबसे पहले इन्हे ही देखने का कार्यक्रम रखा गया। सर रामस्वरूप के इन्तजाम मे कभी कोई कमी रहती ही नही थी। काश्मीर मे भी नौकागृह के अतिरिक्त मोटरकार, तीन-चार सुन्दर शिकारे (छोटी पर्यटक नौकाएँ), नौकर, गाइड वगैरह सबकी पूरी व्यवस्था थी।

इन्दुमती और ललितमोहन को नाव पर घूमने का भी बहुत शौक था। डाल झील मे से बगीचो को रास्ता जाता था। दो-तीन शिकारो मे खाने-पीने का सामान वगैरह ले इन्दुमती और ललितमोहन दोपहर को शालीमार बाग की ओर चले। शिकारा काश्मीर के जलमार्गो पर चलनेवाली एक विशेष नौका है। एक छोटी नाव काश्मीरी दस्तकारी के लाल ऊनी कपडे से सजी रहती है। उसी कपडे की छत रहती है। एक आदमी उसे चलाता है और दो या तीन आदमी उस पर आसानी से बैठ सकते है। इन्दुमती और ललितमोहन दोनो एक शिकारे मे पैर फैलाकर आराम से तकिये से टिककर बैठे हुए थे। नहर मे से होता हुआ शिकारा डाल झील की ओर चला जा रहा था। दोनो ओर चिनार के घने वृक्ष है। पानी के पास 'विलो' और 'रीड' है। विलो की डाले नीचे झुककर जल चूमने का प्रयत्न करती हुई मालूम होती हैं। दाल दरवाजा के बधान को पार कर कुछ दूर चलने पर शिकारा डाल झील के स्वच्छ शान्त पानी पर आ गया। दाहिनी ओर शकराचार्य (तख्ते सुलेमान) पर्वत-शिखर था। सामने की ओर अनेक हिमाच्छादित ऊँचे पर्वत-शिखर

दृष्टिगोचर हो रहे थे जिनकी कई शाखाएँ थी। पीछे की तरफ हरी पर्वत और बर्फ से ढकी हुई पीर पजाल पर्वत-शाखा थी। पानी इतना शान्त था कि पर्वत शिखरो का प्रतिबिम्ब उस पर इस प्रकार स्पष्ट दीख रहा था, जैसे किसी लम्बे दर्पण पर स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड रहा हो।

डाल झील का पानी इतना स्वच्छ था कि उसमे तैरती हुई मछलियाँ काफी गहराई तक स्पष्ट दीख पडती थी। डाल झील मे कई तरह के फूल होते है, जिनमे कई तरह के कमल के फूल प्रधान है। इस समय मई का महीना था, अतः कमल कही नही थे, कही-कही कमल के पत्तो के गुच्छे दृष्टिगोचर होते थे। शान्त पानी पर फैले हुए हल्के हरे रग के गोल बडे-बडे कमल के पत्तो पर जब कभी पानी की बूँदे पड जाती थी तो वे वही बडे-बडे मोतियो का स्वरूप ले कुछ समय के लिए रुक जाती थी। इन्दुमती का शिकारा जब कभी किसी कमल के पत्ते के पास से निकलता था वह इन पत्तो पर पानी उछालकर अनेक मोतियो का निर्माण कर देती थी। प्रकृति की सुन्दर गोद मे ललितमोहन और इन्दुमती का सुन्दर युग्म! इन्दुमती अत्यन्त सुन्दर युवती थी। डाल झील पर धीरे-धीरे वायु चल रही थी। आज इन्दुमती हल्के आसमानी रग की आन्ध्र देश की अत्यन्त पतली खादी की बिना बेल की साडी पहने हुई थी और उसी रग का एक ब्लाउज। डाल झील का नीला रग और नील आकाश देखकर ललितमोहन इन्दुमती की वेषभूषा की ओर विशेष रूप मे आकर्षित हुआ। हवा से इन्दुमती के पहले वस्त्र उसके शरीर मे बिलकुल लग गये थे और उनमें से उसके अगो की अपूर्व शोभा फूटी पडती थी। ललितमोहन ने इन्दुमती के कोमल हस्तो को अपने हाथ मे लेकर उससे पूछा—"इन्दु, कितना सुन्दर दृश्य है! आज मेरा स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा है। मै तो समझता हूँ कि प्राकृतिक सौन्दर्य मे मनुष्य को वैसे ही अच्छा कर सकने की सामर्थ्य है। मुझे विश्वास है कि मै यहाँ पूर्णतया स्वस्थ हो जाऊँगा।"

इन्दुमती के मन मे भी अनेक कोमल भावनाएँ उठ रही थी। वह ललित-मोहन का सौन्दर्य देख उसकी ओर आकृष्ट हुई थी। सचमुच वह कितना सुन्दर युवक है और साथ ही कितना शीलवान् और सुसस्कृत। इन्दुमती को आज ललितमोहन के सहवास मे आशातीत सुख का अनुभव हो रहा था।

पास ही से कई बार अन्य नावे भी निकलती थी। किसी मे खाने के सामान की दूकान रहती, किसी मे मछुए और किसी-किसी मे अन्य घूमने-वाले। एक नाव पर एक दूसरा कुटुम्ब जा रहा था। उस पर वाद्ययन्त्र बज रहे थे और मधुर स्वर मे कोई गा रहा था। ललितमोहन का ध्यान इस गान की ओर आकर्षित हुआ। कुछ देर तक दोनो इस सगीत को सुनते रहे। धीरे-धीरे शिकारा आगे बढ गया और उसके साथ ही साथ वह स्वर-लहरी भी।

धीरे-धीरे उनका शिकारा चिनार द्वीप के पास पहुँचा। मखमल के समान हरी दूब पर चिनार के बडे-बडे वृक्ष लगे हुए थे। कितना मनोरम स्थान था। इन्दुमती और ललितमोहन एक स्थल के बाद दूसरे सुरम्य स्थान देखकर बडे ही आह्लादित हो रहे थे।

यहाँ से दाहिनी ओर घूमकर ये लोग शालीमार बगीचे की ओर चले। पहले निशात बाग आता है, फिर शालीमार। ललितमोहन ने आज केवल शालीमार जाने का ही कार्यक्रम बनाया था। चिनार के द्वीप से दाई ओर घूमकर कुछ दूर झील मे से पूर्व की ओर चलकर एक पुरानी नहर मिलती है जिसके दोनो ओर चिनार के सघन वृक्षो की छाया है। यह नहर लगभग एक मील लम्बी है। दोनो किनारो पर हरी दूब है। यह नहर सीधे शालीमार बाग के दरवाजे पर पहुँचा देती है।

सध्या होते-होते इन्दुमती और ललितमोहन का शिकारा शालीमार बाग के सामने पहुँच गया।

शालीमार का अर्थ है—'प्रेम का आतिथ्य-गृह।' यह बगीचा जहाँगीर ने सत्रहवी शताब्दी मे बनाया था। बडे मनोरम स्थल पर यह बना है। पीछे महादेव पर्वत है, जिसकी चोटी पर सदैव बर्फ जमा रहता है। इसी पर्वत के ढाल पर देवदार वृक्ष के वन दीखते है। सामने डाल झील की दूर तक फैली हुई शान्त जल-राशि है।

सध्या हो रही थी। सूर्य अस्ताचल की ओर चला जा रहा था। सामने डाल झील का दृश्य इस समय और सुहावना हो गया था। आकाश मे कही-कही यहाँ-वहाँ कुछ बादलो के टुकडे भी थे। किन्तु बहुत कम। सूर्य की रश्मियाँ अब प्रखर नही रही थी। आकाश का रग अरुण हो गया था। सूर्य की प्रखरता कम होने के कारण उस पर बराबर दृष्टि ठहर जाती थी। आकाश

की अरुणिमा झील के पानी मे प्रतिबिम्बित हो रही थी ; जिसके कारण वह भी अरुण दीख पडता था। सफेद बादल आग्नेय हो गये थे। जब कभी कोई बादल का टुकडा सूर्य को आच्छादित कर लेता तो सूर्य की अरुण रश्मियाँ उसमे से फूटकर यदि एक ओर आग्नेय गगन की ओर दौडती थी तो दूसरी ओर झील की अरुण जल-राशि पर। गगन की ओर जानेवाली रश्मियाँ महादेव पर्वत के हिम को सुवर्णमय बना रही थी। हरीतिमा मे आच्छन्न पर्वत-शिखर पर सुवर्ण मुकुट की शोभा अपूर्व थी। सारा दृश्य आलोकमय अरुणिमा से भर उठा था।

उज्ज्वल पक्ष था, इसलिए विशेषकर इन्दुमती और ललितमोहन ने घूमने का यह समय चुना था। सूर्यास्त के बाद धीरे-धीरे चन्द्रमा मे आभा आने लगी।

मई का महीना था। कुछ गरमी होने लगी थी, किन्तु आज शालीमार मे तो मौसम बडा ही सुहावना था। इन्दुमती एक कुण्ड के शीतल जल मे अपने अरुण पैर डालकर बैठ गयी। साडी भीगने के भय मे उसने कुछ ऊपर उठा ली थी। ललितमोहन को इन्दुमती का सौन्दर्य वैसे ही बहुत प्रिय था और आज इस सुन्दरतम् स्थल मे इन्दुमती की यह मुद्रा ललितमोहन को बहुत लुभावनी लगी। वह पास ही के घास के कोमल गलीचे पर लेट गया इन्दुमती की गोद मे सिर रखकर। दोनो प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रशसा करने मे अपूर्व सुख का अनुभव कर रहे थे। दोनो को एक दूसरे से तथा अपने चारो ओर के दृश्य से पूरा-पूरा संतोष था। ललितमोहन को जहाँगीर का यह कथन बार-बार याद आ रहा था—

'अगर फिरदौस बररूए जमी अस्त
हमी अस्तो हमी अस्तो हमी अस्त'

शालीमार की चौथी छत एक ऊँची दीवाल के द्वारा अन्य छतो मे अलग थी। इस पर मुगल बादशाहो की सुन्दर बेगमे आमोद किया करती थी। इसी पर सबमे रमणीक आमोद गृह है जिनके दोनो ओर घास के मैदान हैं। अनेको कुन्ज है जिनके आस-पास अपेक्षाकृत एकान्त है। इन्दुमती और ललित-मोहन खूब घूम चुके थे। अब भोजन वगैरह करने के बाद कुछ आराम करने की इच्छा हुई। चिनार वृक्षो के एक कुन्ज में घास के मैदान पर जाकर इन्दुमती

और ललितमोहन विश्राम करने लगे। चिनार के वृक्षों की घनी छाया थी, इसलिए कुंज मे कुछ अन्धकार सा था। किन्तु बाहर का मैदान शुभ्र ज्योत्स्ना मे खूब आलोकित था। यहाँ-वहाँ की बाते करते-करते कुछ विश्राम कर चुकने के बाद आस-पास के दृश्य की अपूर्व सुन्दरता देख ललितमोहन ने इन्दुमती से एक छोटा सा नृत्य करने का आग्रह किया। इन्दुमती कत्थक नृत्य मे प्रवीणा थी ही। उसने इसकी शिक्षा पायी थी। किन्तु इधर कई दिनो से लगातार आपत्ति मे रहने के कारण उसका अभ्यास बिलकुल छूट गया था। आज का दिन तो उसके जीवन के सबसे आह्लादमय दिनो मे से था और फिर ललितमोहन के प्रेमपूर्ण आग्रह को तो वह कभी टाल ही नही सकती थी।

इन्दुमती ने नृत्य आरम्भ किया। मन्द समीर चल रहा था जिसमे इन्दुमती के पतले वस्त्र धीरे-धीरे उड रहे थे। इन्दुमती का नृत्य कत्थक ढग का था जिसमे हाथ-पैरो की चेष्टा और भावभगी मे भावनाएँ व्यक्त की जाती हैं। चेहरे की चेष्टा से लग रहा था कि वह किसी को अपने प्रेम का सन्देश समझा रही है और उससे यह सन्देश अपने प्रेमी तक ले जाने का आग्रह कर रही है। इन्दुमती का केवल चेहरा ही सुन्दर नही था। उसका एक-एक अग ढला हुआ था। इतने सुन्दर प्राकृतिक दृश्य मे एक अपूर्व सुन्दरी नाच रही थी। ऐसा मालूम होता था कि स्वर्ग की सबसे सुन्दर अप्सरा स्वर्ग के सबसे सुन्दर उपवन मे नृत्य कर रही हो। इन्दुमती समझा-समझा कर अपने दूत से जाने को कह रही थी। ललितमोहन के नेत्र उसकी सौन्दर्य सुधा का पान कर रहे थे। ललितमोहन ने इन्दुमती के साथ कितने ही रम्य स्थानो मे आमोद किया था, किन्तु इन्दुमती का आज का नृत्य उसे सर्वोत्कृष्ट जान पड रहा था। न कही वाद्य-यन्त्र थे, न इन्दुमती के पैरो मे घुँघरू ही, किन्तु आज उसका नृत्य अत्यधिक आकर्षक और स्वाभाविक था। इन्दुमती अब अपने प्रियतम के सन्देश की राह देख रही थी। कैसी मुद्रा उसने बनायी थी — कितनी स्वाभाविक! इन्दुमती की मुद्राओ से उसकी नृत्य प्रवीणता टपकी पडती थी। दमयन्ती के हस द्वारा प्रियतम के सन्देश के आदान-प्रदान का यह नृत्य था। लगभग पौन घण्टे तक इन्दुमती नाचती रही और ललितमोहन स्तब्ध-सा बैठा उसका रूप देखता रहा। अन्त में ललितमोहन ने एकाएक उठकर इन्दुमती को अपने बाहुपाश

मे जकड़ लिया। और कुछ देर तक दोनों अपूर्व सुख का अनुभव करते हुए एक दूसरे के साथ आलिगन मे बद्ध रहे।

एकाएक ललितमोहन का ध्यान घड़ी की ओर गया। बारह बज रहे थे। इन्दुमती ने कहा—'ओह! कितना देर हो गयी।' वापस जाने के लिए मोटर का इन्तजाम था, इसलिए कोई विलम्ब लगने का प्रश्न ही नही था। ये लोग मोटर मे लौट चले। इस दिन समस्त वैद्यो और डॉक्टरो की राय के खिलाफ ललितमोहन ने अपने मन मे इतनी देर तक भ्रमण किया था, किन्तु उसे जरा भी थकान का अनुभव नही हो रहा था।

काश्मीर में प्रतिदिन सैर करने के अतिरिक्त और कोई कार्य ही न था। इन्दुमती और ललितमोहन अधिकतर घूमते ही रहते। निशात बाग, चश्मेशाही, हारवन आदि सभी जगह वे गये। ललितमोहन को शालीमार बाग अधिक पसन्द आया और इन्दुमती को निशात। दोनो एक दूसरे की प्रशसा मे प्रतिस्पर्द्धा करते। श्रीनगर शहर भी खूब घूम-घूम कर देखा। शकराचार्य मन्दिर के दर्शन ललितमोहन ने डोली पर जाकर किये। तख्ते सुलेमान अथवा शकराचार्य पर्वत बिल्कुल श्रीनगर के पास ही है। उसी पर एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। ईसा के कई सौ वर्ष पूर्व इसे सन्दीमान ने बनवाया था। बाद मे गोपादित्य और ललितादित्य ने इसे ठीक कराया था। काश्मीर की उपत्यका के बीच दो ही पहाड़ियाँ है। शकराचार्य की पहाडी और हरि पर्वत। शकराचार्य पर्वत-शिखर पर बने हुए मन्दिर मे जाने के लिए छोटा रास्ता है। ललितमोहन ने उषाकाल के पूर्व ही इस मन्दिर पर जाने का कार्यक्रम बनाया था। लगभग ४ बजे इन्दुमती भी तैयार हो गयी थी। सुबह का नाश्ता करके शकराचार्य पर्वत की ओर ये लोग रवाना हुए। ललितमोहन एक डोली पर था और सब लोग पैदल। अभी तक तारे लुप्त नही हुए थे। हवा स्फूर्तिदायक और ठडी थी। पर्वत पर चढ़ना आरम्भ करते समय तक पौ फट गयी और दृश्य परिवर्तित हो गया। रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे विलुप्त हो रहा था और उसकी जगह प्रकाश फैल रहा था। हवा मे विशेष प्रकार का ताजापन था। इस वातावरण मे शकराचार्य पर्वत पर ऊँचे चढ़ते-चढ़ते श्रीनगर का दृश्य अत्यन्त सुन्दर दीखता था। वृक्षो के घने कुन्जो के बीच मे श्रीनगर की सिविल लाइन्स के मकान बहुत मनोहर दीखते थे। फिर कुछ दूर पर

डाल भील की विशाल जल-राशि । पूर्व का आकाश अरुण हो रहा था और पर्वतो के पीछे से सूर्य की अरुण रश्मियाँ ऊपर की ओर आ रही थी । चारो ओर के हिमाच्छादित शिखर अरुण रश्मियो से अरुण हो गये थे । चारो ओर बिल्कुल शान्ति थी । कभी-कभी पक्षियो के कलरव से निस्तब्धता भग हो जाती थी । ऊँचे भूरे और हरे पर्वतो के अरुण शिखर सुवर्ण के से मालूम होते थे । दृश्य अत्यन्त सुहावना था । हिमाच्छादित पर्वतो पर का सूर्योदय कितना सुन्दर होता है । इसे देखने के लिए ललितमोहन ने इतना कष्ट करके उषाकाल मे आने का कार्यक्रम बनाया था । इस दृश्य की अपूर्व शोभा देख ललितमोहन को बडी प्रसन्नता हुई । धीरे-धीरे सूर्योदय हो गया । अरुण शिखर फिर से शुभ्र हो गये । इन्दुमती सोचने लगी—प्रकृति कितनी जल्दी-जल्दी अपने स्वरूप बदलती है । अभी सारा दृश्य अरुण था, अभी शुभ्र हो गया ! काफी चढने के बाद ये लोग शकराचार्य के मन्दिर के सामने पहुँचे । पर्वत के ऊपर कुछ समभूमि है उस पर यह प्राचीन मन्दिर बना हुआ है । ऊपर चढने के लिए सीढियाँ है और सामने ही एक प्राचीन द्वार है । कहते है प्राचीन काल मे तो झेलम नदी से लेकर १,००० फुट ऊँचे पर्वत-शिखर पर बने हुए उस मन्दिर तक खुदावदार पत्थर की सीढियाँ थी । प्राचीन मन्दिर के चारो ओर जो पत्थर की जुड़ाई है उसमे चूना नही लगा है, केवल पत्थर एक दूसरे के ऊपर रखे है । ललितमोहन और इन्दुमती ने मन्दिर मे प्रतिष्ठित शिवलिग के दर्शन किये । चारो ओर का दृश्य अत्यन्त आकर्षक था । कुछ देर विश्राम करने के बाद ये लोग मन्दिर से वापस लौट आये ।

श्रीनगर मे अब गरमी होने लगी थी । जून के मध्य मे श्रीनगर मे काफी गरमी हो जाती है । आखिर श्रीनगर तो एक मैदान का ही शहर है । जून मे लोग गुलमर्ग और पहलगाँव चले जाते है । ये दोनो काश्मीर के निकट के ठडे स्थान है । ललितमोहन के स्वास्थ्य मे जो प्रारम्भिक उन्नति हुई थी वह स्थिर थी, किन्तु आगे कोई लाभ नही हो रहा था । गुलमर्ग श्रीनगर से २६ मील है और पहलगाँव ६८ मील । पहले गुलमर्ग जाने का निश्चय किया गया । गुलमर्ग में अधिकतर अच्छे मकान अंग्रेजो के है जो वहाँ गरमी मे आराम करने के लिए जाते हैं । श्रीनगर के रईसो के भी गुलमर्ग मे ग्रीष्म निवास हैं । सर रामस्वरूप के मित्र के प्रभाव मे दो सप्ताह के लिए

गुलमर्ग का एक अच्छा बँगला इन्दुमती और ललितमोहन के लिए मिल गया।

जिस दिन ये लोग गुलमर्ग के लिए रवाना होने वाले थे उस दिन प्रातःकाल से ही घने बादल थे। हवा भी जोर से चल रही थी और ऐसा जान पडता था कि पानी बरसेगा। मौसम अच्छा न रहते हुए भी ललितमोहन ने जाने का कार्यक्रम वैसा ही रखा। रवाना होते समय वर्षा की हल्की-हल्की फुहारे पडना आरम्भ हो गया था। दृश्य एक विशेष प्रकार का हो गया था। चारो ओर के हिमाच्छादित शिखर गहरे बादलो मे ढक गये थे। केवल नीचे की पहाडियाँ दृष्टिगोचर हो रही थी। उषाकाल के बाद से अब तक सूर्य की अरुणिमा और प्रखरता कही भी दृष्टिगोचर नही हुई थी।

इन्दुमती और ललितमोहन की मोटर श्रीनगर से लगभग ७॥ बजे चली। पथ के दोनो ओर के झाड़ वायु के वेग को बढाने मे सहायता कर रहे थे। वायु की यह इच्छा प्रतीत होती थी कि वह झझा का रूप धारण कर मेघो को उडा ले जाय। उधर मेघ बरसने पर तुले हुए मालूम होते थे। दो बड़ी शक्तियो के बीच पानी की छोटी बूँदे असहाय होकर यहाँ से वहाँ उड रही थी। मार्ग वर्षा के कारण आर्द्र हो गया था, किन्तु सफेदा के झाड़ो के पास बीच-बीच में झाडो के समानान्तर झाडो की जगह बिलकुल सूखी थी। आर्द्र और शुष्क स्थलो के कारण मार्ग एक विचित्र तरह का दीख रहा था। बीच-बीच मे काला चमकदार फिर सूखा-रूखा सा। आर्द्र स्थल से जब मोटर के चके सूखी जगह जाते थे तो उनके गीले निशान की धाराएँ बन जाती थी। इन सब धाराओ के कारण मार्ग पर एक रेखा-चित्र सा बन गया था, जिसका अपना अलग आकर्षण था। ललितमोहन दृश्य को बारीकी से देख रहा था किन्तु इन्दुमती अपने मानस लोक मे किसी समस्या को सुलझाने मे लगी हुई थी। मार्ग के रेखा-चित्र को कई बार गौर से देखने के बाद ललितमोहन ने उसकी ओर इन्दुमती का ध्यान आकृष्ट कराया। एकाएक चौककर इन्दुमती ने ललितमोहन के बारीक निरीक्षण को देखा। सचमुच मार्ग पर विचित्र रेखा-चित्र बन गया था।

धीरे-धीरे गुलमर्ग की पहाडी निकट आने लगी। अब वर्षा बन्द हो गयी थी, किन्तु अभी भी सघन घटाओ के कारण नित्य का सा प्रकाश नही था। गुलमर्ग की पहाडी के नीचे टगमर्ग एक स्थान है जहाँ मोटर का रास्ता समाप्त

हो जाता है और घोडे पर डोली द्वारा या पैदल जाने का रास्ता आरम्भ होता है । यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कोई एक घण्टा लग गया। यहाँ से गुलमर्ग घोडे के रास्ते द्वारा तीन मील दूर है और पैदल रास्ते द्वारा दो मील। रास्ता पहाड़ी पर से जाता है। टगमर्ग पहुँचकर ये लोग मोटर पर से उतर गये। ललितमोहन के लिए डोली का इन्तजाम था। इन्दुमती ने घोडे पर जाना तय किया। टगमर्ग से गुलमर्ग का रास्ता घने देवदार के वृक्षो के कुञ्जो मे से जाता है। पर्वत के बीच के जगल से आरम्भ होकर मार्ग आगे चलकर घुमावदार हो जाता है। चारो ओर घने चीड और देवदार आदि हिमालय के वृक्ष है । कभी हिमाच्छादित पवत शिखर और कभी गहरे खड्ड दिखायी देते है। रुक-रुक कर चलने के बाद कुछ घण्टो मे इन्दुमती वगैरह गुलमर्ग पहुँचे।

समुद्र से ८,५०० फुट ऊँचे गुलमर्ग मे गरमी का नाम भी नही था। काफी सर्दी थी। ऊँची पर्वत-शाखाओ के बीच इतने ऊँचे पर एक सम से स्थल पर गुलमर्ग बसा है। चारो तरफ साफ-सुथरे रखे गये लम्बे-लम्बे घास के मैदान है, जिन्हे देखकर ऐसा लगता है कि वे बडे यत्न से सुरक्षित रखे जाते है। उस सम भूमि के मैदानो पर यह हरा गलीचा दृष्टि को बडी शीतलता देता है। अग्रेजो का गुलमर्ग पर बडा प्राधान्य है। उनके कई मकान है, होटल है, क्लब है। नृत्यालय और सिनेमा-गृह भी है। बिजली और नल की भी व्यवस्था है। रास्ते घुमावदार और सम है। आजकल की सभी सुविधाएँ गुलमर्ग में उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया गया है। एक ओर ये सुविधाएँ है तो दूसरी ओर सुन्दर प्राकृतिक दृश्यो से गुलमर्ग भरा हुआ है। कुछ ही दूर 'रिज' पर से नीचे हिमालय के ऊँचे वृक्षो के घने जगल का अत्यन्त सुन्दर दृश्य दीखता है। फिर और नीचे झेलम नदी और अन्य झीलो से निर्मित काश्मीर की उपत्यका दृष्टिगोचर होती है। सामने ९० मील दूर स्थिर नगा पर्वत का २६,००० फुट ऊँचा पर्वत-शिखर दीखता है । विशेषता यह है कि ये दृश्य सदैव एक से नही रहते। प्रतिदिन, कभी-कभी तो कुछ घण्टो मे ही ये दृश्य बदलते रहते है। कभी धूप मे नगा पर्वत का हिम शिखर चमकने लगता है, कभी बादलो का अवगुठन उसे अपने क्रोड मे ले लेता है। नीचे की उपत्यका के दृश्य में बादल और धूप की आँख-मिचौनी से सदैव ही अन्तर पड़ता

रहता है । झील, झीलो के किनारे के मैदान, फिर पहाडो के ढाल पर का वन और धीरे-धीरे चढता हुआ ऊँचा पर्वत-शिखर-दृश्य की सभी बारीकियाँ दृष्टि को आकृष्ट कर लेती है ।

इन्दुमती और ललितमोहन गुलमर्ग मे दो सप्ताह रहे ।

गुलमर्ग की जलवायु ने ललितमोहन के स्वास्थ्य पर आरम्भ में अच्छा असर किया, लेकिन बाद मे कोई विशेष अन्तर नही पड़ा । 'रिज' पर जाने-वाले सम रास्ते द्वारा ललितमोहन अक्सर घूमने जाता और 'रिज' पर पहुँच-कर वहाँ विश्राम करता । सामने का नगा पर्वत का दृश्य ललितमोहन को अत्यधिक पसन्द था । वह घण्टो बैठकर नगा पर्वत को देखता रहता । हिम से चारो ओर नीचे तक ढके हुए इस पर्वत-शिखर की अपूर्व शोभा है । नीले गगन से लगे हुए लगभग उसी रग के पर्वत-शिखर में आकाश से कितनी भिन्नता था । वह बिलकुल उससे अलग दीखता था, किन्तु साथ ही लगा हुआ भी । नगा पर्वत ऐसा दीखता था, मानो वह इस ससार की वस्तु ही नही है ।

ललितमोहन को स्वाभाविक हिम को पास से देखने का बडा शौक था । बनिहाल के दर्रे पर ही उसने निश्चय कर लिया था कि काश्मीर का भ्रमण करते समय वह अवश्य ही किसी हिम-शृग की सैर करेगा । गुलमर्ग के दक्षिण का ओर तीन मील ऊपर चढकर लगभग १०,००० फुट की ऊँचाई पर किलनमर्ग है । किलनमर्ग से ही बर्फ आरम्भ हो जाता है जो १४,५०० फुट ऊँचे अकरावत हिम शिखर तक जाता है । किलनमर्ग लगभग ३०० फुट लम्बी और इतनी ही चौडी उच्च सम भूमि है । बीच मे से शुद्ध जल का एक झरना बहता है । चारो ओर कैम्प लगाकर ठहरने का अच्छा स्थान है । रास्ते मे कई तरह के सुन्दर फूलो की प्राकृतिक क्यारियाँ मिलती है, जिनके रग अत्यन्त आकर्षक होते है ।

बरफ के पास पहुँचकर ललितमोहन बड़ा प्रसन्न हुआ । कोई जोर की हवा नही थी और काफी धूप थी, इसलिए ठण्ड नही मालूम हुई । ललितमोहन और इन्दुमती दोनो बरफ पर खूब फिसले और बरफ उठा-उठाकर एक दूसरे पर फेक बडी क्रीडा की ।

सैर के बाद साथ लाया हुआ भोजन करने बैठते समय इन्दुमती सोचने लगी कि अब तो ललितमोहन बहुत अच्छा हो गया है । कुछ ही दिनो मे वह

की गयी क्रीडा मे उसे कितना आनन्द आया। ललितमोहन को बर्फ पर से फिसलने मे उस पर जोर से जूता डालकर अपना वजन सम्हालकर चढने में जरा भी दिक्कत नही हुई। हाँ, उछल-कूद बहुत होने के कारण वह कुछ श्रान्त अवश्य हो गया था। किन्तु उससे अधिक श्रान्त हो गयी थी इन्दुमती स्वय।

किलनमर्ग से सामने के शृगो का दृश्य गुलमर्ग के रिज की अपेक्षा अधिक स्पष्ट दिखायी देता है। ललितमोहन कुछ देर तक फिर इन्दुमती से नगा पर्वत की शोभा के सम्बन्ध मे बातचीत करता रहा। ऊपर नगा पर्वत और नीचे वूलर की रुपहली जल-राशि। इतने ऊँचे से भी यह दृश्य बड़ा स्पष्ट और सुन्दर था।

किलनमर्ग से जल्दी ही लौटना था, क्योकि केवल एक ही दिन का कार्यक्रम था। बर्फ पर अधिक ऊँचा चढने का सामर्थ्य भी अभी ललितमोहन मे नही था, इसलिए अफरखत की यात्रा नही की गयी और ये लोग गुलमर्ग वापस लौट आये।

गुलमर्ग मे दो सप्ताह रहने के बाद गरमी रहते हुए ही श्रीनगर वापस लौटने का कार्यक्रम बनाया गया, क्योकि ललितमोहन की इच्छा पहलगाम जाने की भी थी। पहलगाम लिद्दर और टानिन नामक पहाडी नदियो के सगम पर बसा हुआ एक सुन्दर पहाडी स्थल है। पहलगाम से ही अमरनाथ जाते है। यही से और भी कई दर्शनीय स्थानो को जाने का रास्ता है। शेषनाग की प्रख्यात झील पहलगाम से १६ मील की दूरी पर है। पहलगाम के ऊपर ही लिडार उपत्यका है। सोनमर्ग जाने का रास्ता भी यही से है। ललितमोहन इन सब स्थानो पर जाने को उत्सुक था, किन्तु गुलमर्ग से लौटकर उसके स्वास्थ्य मे फिर गडबड होने लगी। उसे फिर दौरा आया और इस बार तो वह बडा ही भयानक था। न जाने जेल ने उसे कैसी बीमारी देकर भेजा था कि काश्मीर का यह सुख भी वह बहुत दिन न भोग सका और जुलाई के आखिर मे फिर उसकी तबियत ज्यादा बिगड गयी। पुन सूजन बढ गयी, दर्द के असहनीय दौरे होने लगे और इस बार वह जितना हतोत्साह हुआ उतना इसके पहले कभी न हुआ था। फिर से इलाज आरम्भ हुआ, पर अब जयपुर से जो वैद्य साथ मे आये थे उनके हाथ की बीमारी न रह गयी

थी। चिट्ठी-पत्री से जयपुर खबर भेज वहाँ से दवा मँगाकर भी औषधोपचार चल सकने की भी स्थिति न थी। और काश्मीर मे कोई ऐसा चिकित्सक न था जिस पर इन लोगो का विश्वास बैठता।

सर रामस्वरूप को तो अब कुछ सूझ ही न पडता था। उन्हे अपने नाइट होने के सम्मान मे दी गयी पार्टी अब जितनी याद आती उतनी कोई चीज नही। फिर पहले वे उस पार्टी की ललितमोहन से चर्चा कर उस (ललित-मोहन) की सान्त्वना से कुछ शान्ति लेते थे, पर अब ललितमोहन के सामने वे कभी उसकी बात न करते और भीतर ही भीतर उनका हृदय दग्ध हुआ करता। इन्दुमती की चिन्ता की भी कोई सीमा न थी, पर वह सहज मे हार माननेवाली न थी। उसने विचारते-विचारते ससुर से कहा कि वे या तो ललितमोहन को लेकर योरप चले, या वे न चल सके तो इन्दुमती के साथ ललितमोहन को योरप भेज दे। पहले तो रामस्वरूप ने इस बात को स्वीकार न किया, पर और कोई उपाय न देख इन्दुमती के साथ ललितमोहन को योरप भेजना उन्होने मजूर कर लिया।

अगस्त के मध्य मे सब लोग कानपुर के लिए रवाना हो गये। काश्मीर की सबसे सुन्दर ऋतु जो अगस्त से आरम्भ होकर अक्टूबर तक चलती है, और जिसकी ललितमोहन बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था, उसी मौसम के शुरू-शुरू मे ही उसे काश्मीर छोड देना पडा।

बार-बार ललितमोहन को एक बडी प्रचलित युक्ति याद आ रही थी—'मेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और।' इस बार ये लोग रावलपिण्डी के रास्ते लौटे।

: २३ :

कानपुर पहुँचकर ललितमोहन के योरप जाने की तैयारी आरम्भ हुई। पास पोर्ट का, जहाज का, अनेक प्रकार के प्रबन्ध करने थे। इन्दुमती ने इस

सारे इन्तजाम के लिए वजीरअली को बुलाना ठीक समझा और उसने वजीर-अली को ललितमोहन की इस समय की हालत तथा अपने योरप जाने के विचार आदि के सम्बन्ध मे सब कुछ खुलासा लिख उससे आने की प्रार्थना की। वजीरअली ने गत मार्च मे एम० एस-सी० के द्वितीय वर्ष का इम्तहान दिया था और जून मे उसका नतीजा निकलते ही जुलाई मे उसे प्रोफेसरी की जगह मिल गयी थी। गरमियो की छुट्टियो के पश्चात् कालेज खुल चुके थे अत· वजीरअली का किसी लम्बे समय के लिए लखनऊ छोड़ना सम्भव न था, लेकिन ललितमोहन की इस हालत मे बहन का पत्र पाकर वह लखनऊ मे भी न रह सकता था। एक बार कानपुर चलकर सारा हाल देखने के पश्चात् उसने अपने आगे का कार्यक्रम तय करना निश्चय किया, परन्तु मन ही मन उसने यहाँ तक सोच लिया कि अगर ऐसी ही जरूरत हुई तो वह नौकरी छोड देगा।

वजीरअली ने ललितमोहन को लगभग दस महीन के बाद देखा। रोज-रोज देखनेवाले को तन्दुरुस्ती के सुधार तथा बिगाड दोनो ही उतने स्पष्ट नही दीख पडते, जितने बहुत दिन पश्चात् देखनेवाले को। ललितमोहन को देखते ही वजीरअली का चेहरा ऐसा 'फक' हो गया कि इन्दुमती एव ललितमोहन दोनो से ही उसके हृदय के भाव छिपे न रह सके। ललितमोहन वजीरअली की ओर देखते हुए एक रूखी मुस्कराहट के साथ बोला—'क्यो, ऐसे कैसे रह गये ? बहुत तबियत खराब हो गयी है न ?'

अपने को सँभालते हुए वजीरअली ने कहा—'नही, नही, ऐसा कुछ नही, कुछ ज्यादा दुबले जरूर नजर आते हो, पर यह काश्मीर से यहाँ तक आने की मुसाफिरी··'

ललितमोहन जोर का एक कहकहा लगाकर बोला—'दुबला नजर आता हूँ, या फूला हुआ ?' कुछ रुकते हुए उसने फिर कहा, 'मै तो अब जाने की तैयारी कर रहा हूँ।'

ललितमोहन के इस अट्टहास तथा स्वर मे पहले की अपेक्षा वजीरअली को महान् अन्तर जान पड़ा। चौबीसो घण्टे साथ-साथ रहने के कारण शायद रामस्वरूप, इन्दुमती आदि इस फर्क की भी सिनाख्त न कर सकते थे, पर वजीरअली इस सम्बन्ध मे कुछ न कहना चाहता था, अतः अपने को और भी

सँभालते हुए बोला—'हाँ, वह तो बहन ने मुझे लिखा कि योरप जाने की तैयारी हो रही है। उसी के मुताल्लिक तमाम इन्तजाम करने के लिए ही तो मै हाजिर हुआ हूँ।'

'नही, वजीर, योरप नही, अब तो दूसरे लोक को हो जाने की तैयारी है।' यह कहते हुए ललितमोहन ने मुँह फेर करवट बदल ली।

इन्दुमती अवाक् सी रह गयी। ललितमोहन ने अब तक कभी ऐसी बात मुँह से न निकाली थी, पर उसने तुरन्त ही अपने को सँभालते, वजीरअली की ओर देखते और ललितमोहन के पलँग पर बैठ उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'आज कैसी बात कर रहे हो तुम? क्या कोई नयी तकलीफ है?'

ललितमोहन ने कोई उत्तर न दिया। एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता कमरे में छा गयी। इन्दुमती और वजीरअली बार-बार एक दूसरे की ओर देखते, पर ज्योंही एक को मालूम होता कि दूसरा उसकी तरफ देख रहा है, त्योंही वे दृष्टि दूसरी ओर घुमा लेते। एक-एक क्षण कितना कठिन हो रहा था, पर उसी समय ललितमोहन को दर्द का दौरा आ गया। ऐसे अवसरो पर अच्छी, या बुरी किसी भी घटना का मनुष्य स्वागत करता है। कुछ न कुछ हो, इसके लिए अनजान में ही व्यग्रता रहती है, और बिना कुछ हुए ऐसी स्थिति बदलना बडी कठिन बात हो जाती है। दोनो ललितमोहन के दर्द के इस दौरे मे व्यस्त हो गये। वजीरअली ने देखा कि कैसी भयानक पीडा होती है। ललितमोहन बार-बार धनुषाकार-सा हो जाता। और फिर लस्त हो-होकर पलँग पर गिर-सा पडता। दौरा कोई पन्द्रह मिनिट रहा। पन्द्रह मिनिट पन्द्रह युग के समान बीते। जब दौरा खत्म हुआ तब ललितमोहन इतना सुस्त हो गया तथा वह आँखे बन्द कर इस तरह लेट गया कि किसी का साहस उससे बात करने का न हुआ। कुछ देर बाद जब इन्दुमती वजीर-अली को लेकर अपने कमरे मे गयी तब उसकी आँखे आँसुओ से भरी हुई थी, एव उसके शरीर में भी थोड़ा-सा कम्प था। कमरे मे पहुँचते ही उसका बाँध टूट गया। वजीरअली ने उसकी पीठ सुहलाते हुए कहा—'बहन, तुमसी हिम्मतवर औरत का यह हाल!'

'बहुत ··बहुत हिम्मत रखी, वजीर, मन ही मन घुटी·· हाँ घुटी जाती

थी, आज तुम्हे ··तुम्हे देखकर···' रोते-रोते इन्दुमती ने कहा और आगे वह कुछ न कह सकी ।

वजीरअली की आँखे भरी हुई थी। वह अपने नीचे के ओठ दाँतो से चाबते हुए आँसू पी जाना चाहता था, क्योकि वह जानता था, इस वक्त किसी तरह की उसकी निर्बलता बताने से सारी परिस्थिति और बिगड जायगी। जब वह आँसू पीने मे समर्थ न हो सका तब उसने छीकने के बहाने चेहरे को रूमाल से ढक लिया और किसी प्रकार अस्वाभाविक छीक को छीक रूमाल हटाते हुए अपने सारे चेहरे के साथ-साथ आँखो और नाक को थोडी अधिक सावधानी से पोछ डाला। इतने पर भी इन्दुमती यदि स्वय स्वस्थ होती और उसकी ओर देखती होती तो वजीरअली की दृष्टि उसके हृदय के भेद को खोले बिना न रहती।

इधर कुछ समय मे वजीरअली स्वस्थ हुआ। और इधर इन्दुमती का आवेश भी आँसू बह जाने से आप से आप कुछ घट गया। अब बडे हिम्मत भरे स्वर मे वजीरअली ने कहा—'पर, बहन, ललित जरूर अच्छे हो जायँगे, इसमे मुझे जरा भी शक नही है।'

दिलासे की बात ठीक समय कही गयी थी। इन्दुमती ने एक कुर्सी पर बैठते तथा आँसू पोछते हुए कहा—'तुम्हे पक्का विश्वास है ?' उसके स्वर मे अभी भी भर्राहट थी।

'बिलकुल पक्का।' अत्यन्त दृढता से वजीरअली बोला। वह भी अब एक दूसरी कुर्सी पर बैठ गया। और फिर कुछ रुकते हुए उसने कहा—'तुमने योरप जाने की जो तजवीज की है वह एकदम मौजूँ बात हुई।'

जब अपनी किसी तजवीज का अपना कोई स्नेही समर्थन करता है, तब चाहे कैसी ही परिस्थिति क्यो न हो, मनुष्य को सतोष होता ही है। इन्दुमती कुछ सन्तुष्ट सी होकर बोली—'तुम ऐसा समझते हो ?'

'बेशक! बात यह है कि वहाँ के डॉक्टरो और यहाँ के डॉक्टरो का कोई मिलान नही हो सकता।' कुछ ठहरकर उसने फिर कहा—'बीमारी तो वही 'किडनी' की है न ?'

'हाँ, कलकत्ते, जयपुर कही भी बीमारी के निदान के सम्बन्ध मे कोई मत-भेद न था।'

'निदान ही खास बात है। एक मर्तबा जहाँ निदान ठीक हो गया वहाँ दवा तो फिर लगती ही है, एक नही तो दूसरी, और दूसरी नही तो तीसरी।'

'लेकिन, भाई, अभी तक तो कोई भी औषधि नही लगी। उसी दवा को लेते-लेते लाभ जान पडा और उसी को लेते फिर तबियत बिगडी।'

'हाँ, अभी तक कोई दवा ठीक माफिक नही आयी, लेकिन योरप मे कोई न कोई ठीक तरकीब जरूर सोची जा सकेगी, मुमकिन है वे आपरेशन करे, दूसरी किडनियाँ ही लगा दे।'

'दूसरी किडनियाँ!' आश्चर्य से इन्दुमती ने कहा।

'हाँ, क्यो? साइन्स क्या नही कर सकता?'

नये गुरदे लगाने की बात पर इन्दुमती सिर नीचा किये कुछ देर तक सोचती रही अत कुछ क्षण निस्तब्धता रही। फिर एकाएक इन्दुमती बोली—'पर, क्यो, वजीर, पहले से उनकी तबियत बहुत ज्यादा खराब है, नही?'

बलात्, लापरवाही को स्वर मे लाते हुए वजीरअली ने उत्तर दिया—'यो ही थोडी-बहुत, लेकिन '

बीच ही मे इन्दुमती बोली—'पर ज्यो ही तुमने उन्हे देखा, तुम कितने घबडा गये थे।'

'वह तो इस वजह से कि मैने उन्हे बहुत वक्त के बाद देखा था।'

'और आज उन्होने जैसी बात कह दी वैसी भी पहले कभी न कही थी।'

'ऊँह, उस पर तो खयाल ही नही करना चाहिए। बीमार तो न जाने क्या-क्या सोचा करते है।' कुछ रुककर बात को दूसरी ओर ले जाते हुए वह बोला—'पर देखो, योरप जाते-जाते कुछ वक्त तो लग ही जायगा और आज जैसा दर्द का दौरा मैने देखा, वह रुकना ही चाहिए।'

'तुम समझते हो इसके लिए अब तक कम प्रयत्न हुआ है?'

'मेरा यह कहना नही है कि कम प्रयत्न हुआ, पर एलोपेथी में ऐसी कई दवाएँ है जो दर्द को उस वक्त तो दबा ही सकती है। इसलिए जरूरी यह है कि एक भरोसेवाला डॉक्टर, जो अपने से हमदर्दी भी रखता हो, चौबीसो घण्टे तुम्हारे महल मे रहे। तुम्हे शायद मालूम होगा कि त्रिलोकीनाथ अब डॉक्टर हो गये हैं।'

'अच्छा, इसी साल ?'

'हाँ, सनद तो उन्हे इसी साल मिली है, पर पास होने के पहले ही गरीबो का इलाज तो वे सालो से करते थे।'

'वह मै जानती हूँ ?'

'पास होते ही उन्होने लखनऊ में एक दवाखाना खोला है । कैसी भीड़ होती है रोज वहाँ लखनऊवालो और आस-पास के देहातियो की ! जो दस-दस, बीस-बीस साल से प्रैक्टिस करते है, उनके दवाखानो पर भी वैसी भीड़ नही होती।'

'वह तो होना ही चाहिए ; उनकी जान-पहचान कितनी है।'

'और फिर अगर मुफ्त मे कोई इलाज करे तो बीमारो की कमी थोडे ही हो सकती है ?'

'अच्छा, अभी वे मुफ्त मे इलाज करते है ?' कुछ आश्चर्य से इन्दुमती बोली ।

'गरीबो से तो एक पैसा भी लेने की उन्हे कसम है । बडे आदमी जो दे देते है, ले लेते है । अकेले है । खाने-कपडे, रहन-सहन मे उतना ही खर्च करते है, जितना इस मुल्क का गरीब से गरीब आदमी कर सकता है । अब कालेज की फीस वगैरह भी नही देनी पडती, इसलिए पन्द्रह रुपये महीने मे काम चल जाता होगा ।'

'पन्द्रह रुपये महीने मे !' अत्यन्त आश्चर्य से इन्दुमती ने कहा ।

'और क्या ? शेख शादी ने कहा है कि मिसर में कहत के वक्त यूसुफ भर-पेट इसलिए न खाते थे कि भूखो को भूल न जायँ । त्रिलोकीनाथ भी इसी उसूल पर चलते है, पर मुश्किल यह है कि मिसर मे कहत थोडे दिनो की चीज थी, वहाँ भूखे हमेशा नही रहते थे, पर इस मुल्क में हमेशा कहत न रहते हुए भी हमेशा रहते है। और इसीलिए त्रिलोकीनाथ की ऐसी रहन-सहन हमेशा की चीज हो गयी है।' कुछ ठहरकर वजीरअली फिर बोला—'मै उनसे कहूँगा कि तुम लोगो के योरप जाने तक वे यहाँ आकर रहे और ललित को सँभाले ।'

'पर तुमने कहा न उन्होने दवाखाना खोला है।'

'पर तुम्हारे लिए उनके दिल मे जो जगह है, वह क्या तुम से छिपी है ?

महीने-बीस दिन का मामला है। उनके दवाखाने में एक महीने के लिए मै किसी दूसरे डॉक्टर को मुकर्रर कर दूँगा। कई इस साल पास होकर निकले है। सब को अभी काम भी न मिले होगे। त्रिलोकीनाथ के दवाखाने मे तो कोई भी ब-खुशी चला जायगा। कितनी जान-पहचान हो जायगी उसकी और फिर एक महीने का उसका शुकराना दे दिया जायगा।'

'यह जो भी कहोगे, भेज दूँगी।

'क्या तुम्हारा भाई इतना भी नही कर सकता। फिर तुम्हे जानना चाहिए कि वह अब प्रोफेसर हो गया है।' मुस्कराते हुए वजीरअली ने कहा।

'पर मै भी तो अब करोडपति की बहू हूँ, यह तुम भूल गये क्या ?' हँसते हुए इन्दुमती ने उत्तर दिया।

दोनो कई बार मुस्कराये और हँसे होगे, पर इतने उद्वेग के पश्चात् आज की इस मुस्कराहट एव हँसी की एक खास कीमत थी। इन्दुमती की इस मुस्कराहट ने एक बात और की। वजीरअली प्रोत्साहित हो उठा एक लम्बे भाषण के लिए। वह बोला 'बहन, एक बात हमेशा खयाल मे रखना। फलॉ बीमार अच्छा हो ही नही सकता, इसे कोई नही कह सकता। किसी वक्त जो बीमारियॉ अच्छी न होनेवाली समझी जाती थी आज अच्छी होने लगी है। 'डिप्थीरिया' को ही ले लो। एक वक्त था जब यह 'घट सर्प' मौत की ही एक शक्ल माना जाता था, पर अब इसका इलाज, और मामूली नही पक्का इलाज निकल आया है। कैन्सर अभी भी अच्छा न होनेवाला फोड़ा समझा जाता है, लेकिन इसकी दवा बड़ी तन्देही से तलाश की जा रही है। कभी-कभी पढने को मिलता है कि बहुत जल्द कैन्सर भी अच्छे होने लगेगे। बीमारी को जो दुश्मन कहा जाता है यह बिलकुल दुरुस्त है। जिस तरह दुश्मन से जग कर उसे हराना फर्ज है, उसी तरह बीमारी से भी लड़ना चाहिए। दुश्मन को सामने देख पस्त हिम्मत हो हाथ पर हाथ रख कर बैठना तो बुजदिल कर सकते है, मेरी हिम्मतवर और बहादुर बहन नही। तुमने जो योरप जाना तय किया है इससे ज्यादा हिम्मतवरी और दूरन्देशी की और कोई बात हो ही नही सकती, कोई नही।'

कितनी तसल्ली दी इन्दुमती को वजीरअली के इस भाषण ने। राख से ढकी अग्नि पवन से जिस तरह पुनः प्रज्वलित होती है उसी तरह इस भाषण

रूपी पवन ने उसके मन की दबी हुई हिम्मत को फिर से जाज्वल्यमान कर दिया ।

× × ×

डॉक्टर त्रिलोकीनाथ कानपुर आकर सर रामस्वरूप के महल के एक हिस्से मे रहने लगा । इसी साल जिसे डॉक्टरी की सनद मिली है वह डॉक्टर ललितमोहन सदृश रोगी का क्या इलाज करेगा, यह सर रामस्वरूप ने बार-बार कहा था, और इलाज कानपुर के बडे-बडे डॉक्टरो का ही हो भी रहा था, पर कुछ ही दिन मे त्रिलोकीनाथ की सज्जनता तथा परिश्रम देख राम-स्वरूप को उसके आने से बडी खुशी हुई । वह सीनियर डॉक्टरो से जूनियर डॉक्टरो के समान बर्ताव करता । दवा इत्यादि के सम्बन्ध मे दबी जबान से उन डॉक्टरो को सलाह अवश्य दे देता, पर यथार्थ मे वह कम्पाउण्डर और नर्स के सदृश बरतता । ललितमोहन ने भी त्रिलोकीनाथ के समान मनुष्य कभी नही देखा था, वह कितना बुद्धिमान् तथा परिश्रमी था और साथ ही कितना सज्जन एव निस्पृह । यद्यपि ललितमोहन की बीमारी अधिक ही होती जा रही थी, पर त्रिलोकीनाथ के निकट रहने के कारण उसे इस हालत मे भी एक प्रकार का सतोष था । योरप जाने की सारी तैयारी हो चुकी थी, पासपोर्ट मिल गये थे, जहाज का प्रबन्ध हो गया था, पर अब ललितमोहन की ऐसी हालत न थी कि वह मुसाफिरी कर सके अत उसकी तबियत में सुधीर का रास्ता देखा जा रहा था । सारी बाह्य निराशाओ पर भी आशा की अन्तर्धारा अभी भी बह रही थी । जिस प्रकार हिमालय पर की नदियो का पानी जाडे मे ऊपर से बर्फ हो जाने पर भी उस बर्फ के नीचे धार बहती रहती है वही हाल आशा की इस अन्तर्धारा का था ।

इन्दुमती तो अब प्रातःकाल मन्दिर मे देवदर्शन और रविवार को सूर्य पूजन के सिवा एक क्षण के लिए भी ललितमोहन का कमरा न छोड़ती । असीम भक्ति से वह नित्य भगवान् से और रविवार को सूर्य से प्रार्थना करती ललित-मोहन की आरोग्यता के लिए । कितनी सेवा, कितनी टहल करती वह ललित-मोहन की । उसकी भगवद्भक्ति और पतिपरायणता देख सर रामस्वरूप दाँतो उँगली दबाते और अनेक बार अपने मन ही मे कहते—'नाटक करने-वाली छोरियाँ भी ऐसी हो सकती है ?'

ललितमोहन का स्वास्थ्य पूछने आने वालो का भी ताँता-सा लगा रहता, पर इनमे अधिकाश काग्रेसवादी और इन्दुमती के लखनऊ के मित्र ही रहते। जाति बहिष्कृत तथा असहयोगी पुत्र को घर लानेवाले सर रामस्वरूप के रिश्तेदार, जाति-बन्धु और सरकार परस्त लोगो ने तो इस समय रामस्वरूप के महल का पूरा बहिष्कार कर रखा था।

समय दौड रहा था और समय के साथ ही ललितमोहन की बीमारी की दौड बढती ही जा रही थी। कोई दवा, कोई अनुष्ठान, कोई मन्त्र-तन्त्र, कोई झाड़ा-फूँकी, कुछ भी तो उसे लाभ न पहुँचा रहे थे। जो कुछ किया जा सकता था, सब कुछ हो रहा था और हर नयी बात के साथ नयी आशा तथा उसका कोई परिणाम न देख नयी निराशा का आवागमन। हर हफ्ते बम्बई से योरप जहाज जा रहे थे और हर सप्ताह इन्दुमती एव ललितमोहन का प्रस्थान मुलतबी हो रहा था। कितनी पीडा थी और कितनी सहन-शक्ति।

आजकल कभी-कभी जब ललितमोहन नीद या तन्द्रा से जागता और उसके पास कोई न होता तब उसे अपने अस्तित्व मे ही सन्देह हो जाता। अपने अस्तित्व मे विश्वास के लिए वह कभी एकाध शब्द या वाक्य मे अपने आपसे प्रश्न करता और उसका उत्तर भी देता परन्तु इस प्रयोग मे कई मर्तबा उसे ऐसी भ्रान्ति होती जैसे दो अन्य व्यक्तियो मे प्रश्नोत्तर हो रहा है और वह उनसे अलग उसे सुन रहा है। तब वह अपने मुख पर अपना हाथ फेरता, पर उसे जान पडता जैसे वह किसी दूसरे का हाथ है और वह उस हाथ को अपनी आँखो द्वारा दूर से देख रहा है। वह एकदम घबडाकर उठ बैठता और भौचक्की सी दृष्टि से अपने चारो ओर देखता। इतने पर भी जब उसका सन्देह दूर न होता वह किसी को जोर से पुकारता। किसी दूसरे के कमरे मे आने और उससे बात करने अथवा उसके सिर, पेट आदि पर हाथ रखने या फेरने से ही ललितमोहन का यह भयानक सन्देह दूर होता। कई बार तन्द्रा मे ललितमोहन चुपचाप पडा रहता और कई बार आँखे फाड़-फाड अपने चारो ओर इस प्रकार देखता मानो उसकी समझ मे ही नही आ रहा है कि उसके चारो ओर क्या है और वह कहाँ है? अनेक बार ललितमोहन को जीवन एक सरिता के रूप मे दीखता। उसे जान पडता यह जीवन-सरिता बह रही है, दौड रही है, नाच रही है, कभी-कभी उछल पडती है। कौनसी ऐसी गति है

जो इसमे न हो। फिर वह कितनी मस्त है अपने आप मे, किसी की उसे चिन्ता नही। और इस सरिता मे वह ? · वह इसमे तैर रहा है, तरते-तैरते थक रहा है, थक रहा क्या, थक गया है।

ललितमोहन की बीमारी अब उस स्थिति को पहुँच गयी थी जहाँ कष्ट की अपेक्षा भी मानसिक क्लेश अधिक हो जाता है। इस अवस्था मे मनुष्य का हालत शायद पशु से भी अधिक खराब हो जाती है। मनुष्य मे कल्पना करने की शक्ति होती है, जो पशु मे नही। कष्ट की जिस अवस्था मे ललितमोहन था उस अवस्था मे मनुष्य प्राय कष्ट के अधिकाधिक होने की कल्पना किया करता है। फल यह होता है कि कष्ट की अपेक्षा मानसिक क्लेश का परिमाण कही अधिक बढ जाता है। चूँकि पशु मे कल्पना की शक्ति नही अत उसका मानसिक क्लेश कष्ट के परिमाण से बढने नही पाता।

डॉक्टरो के आश्वासनो, रामस्वरूप तथा इन्दुमती के प्रोत्साहनो पर भी अब ललितमोहन की दृष्टि मे उन आश्वासनो और उन प्रोत्साहनो का कोई प्रतिबिम्ब तक न दिखता।

फिर जिस ललितमोहन का मन विश्वास से ओत-प्रोत भरा हुआ था उसी के मन मे अब कितना अविश्वास आ गया था। डॉक्टरो के चेहरो को वह अविश्वास भरी दृष्टि से देखता। यदि कोई दो व्यक्ति धीरे-धीरे बाते करते होते तो कान खडे कर उनकी बाते सुनने की कोशिश करता। इधर उधर से कोई आवाज आती तो उसे भी अविश्वासपूर्ण मुद्रा से सुनता। हर बात की, और खास कर चिकित्सको तथा अपने समीपवर्तियों की वह अविश्वासी मन से जॉच करने की कोशिश करता। पहले चिकित्सक रोगी को जाँचता है। उसके नातेदार और मित्र भी कभी उसके सिर पर, कभी पेट पर, कभी हाथ पर हाथ रख उसकी भिन्न-भिन्न प्रकार से जॉच करते है, पर जब बीमारी पुरानी हो जाती है और इलाज से लाभ न पहुँचकर बढ़ती जाती है तब बीमार अपने चिकित्सक और समीपवर्तियो की जॉच करने लगता है। यह जॉच होता है एक खोज भरी नजर से एक खास ढँग के सम्भाषण द्वारा।

ललितमोहन अब इतना दुबला हो गया था कि यदि वह कुछ ओढे रहता तो पलँग पर लेटा हुआ ही न दिखता। उसकी आवाज अब इतनी

धीमी हो गयी थी कि जब वह बोलता तब जान पडता कि वह आवाज बहुत दूर से आ रही है।

अब बार-बार ललितमोहन मृत्यु की बात करता, मृत्यु को सामने देखता, और उसकी गोद मे पहुँच क्यो नही रहा है, इस पर आश्चर्य करता।

इन्दुमती ने पिता को मरते देखा था, पर उनकी मृत्यु इस प्रकार एकाएक हुई थी कि उसके मन मे कई बार उठा करता था कि यदि डॉक्टरो को समय मिलता · ? पर ललितमोहन की बीमारी चलते-चलते तो अब साल भर के ऊपर बीत चुका था। लखनऊ, कलकत्ता, जयपुर, काश्मीर, सारा हिन्दुस्तान नापा जा चुका था। लाखो रुपये औषधोपचार तथा आब-हवा की तबदीली मे खर्च हो चुके थे, लेकिन इतने पर भी कोई परिणाम न निकला था। इन्दुमती बार-बार अपने मन मे कहती 'तो-तो ये डॉक्टर, यह विज्ञान इतनी-इतनी निरर्थक चीजे है ?' लेकिन उसे फिर-फिर कर योरप याद आ जाता। यदि किसी तरह वह ललितमोहन को योरप ले जा सकती। पर ज्योहा उसे योरप का स्मरण आता, उसी याद के सग-सग ही लगी हुई एक दूसरी बात भी स्मरण आती। क्या योरप में कोई मरता नही है ? और जब उसे किसी दिशा में भी चैन न मिलता तो वह भगवान् की प्रार्थना करने लगती।

डॉक्टर ललितमोहन को देखते, कभी सान्त्वना भरे वाक्य कहकर, कभी मुँह लटकाये हुए चले जाते। आपरेशन की बात भी सोची गयी थी, पर दोनो गुरदे खराब थे और दोनो तो निकाले न जा सकते थे। डॉक्टरो से सर रामस्वरूप तथा इन्दुमती वे ही प्रश्न इधर से उधर और उधर से इधर घुमा-घुमा कर पूछते। न प्रश्न समाप्त होते और न उत्तर ही। त्रिलोकीनाथ इन सवाल-जवाबो मे कोई भाग न लेता, जो कुछ किया जा सकता बस करता रहता।

मनोविज्ञान के ज्ञाता चिकित्सक शान्त रोगियो के वनिस्बत अशान्त रोगियो को ज्यादा पसन्द करते हैं, क्योकि अशान्त मनोवृत्ति रोग से भी झगडा करती है, पर रोगी के अशान्त नातेदारो और मित्रो को नही। इनसे चिकित्सको का नाको दम रहता है, क्योकि ये अपनी इस अशान्ति के कारण इधर से घूम, उधर से आ, चिकित्सक को एकान्त मे बुला, न जाने क्या-क्या कर, बीमारी की सच्ची स्थिति क्या है, इसी का पता लगाने की कोशिश किया

करते है; और इन्हे अगर सच्ची बात बता भी दी जाय तो उस पर विश्वास नही करते। एक ही सवाल को भिन्न-भिन्न भाषा और अलग-अलग रूपो में रोज नये-नये ढग से पूछते है। ये यह सदा भूल जाते है कि दुनियाँ मे सिर्फ इन्ही के घर मे बीमारी नही आयी है तथा चिकित्सक पर दूसरे बीमारो की भी जिम्मेदारी है।

दिवाली आ रही थी। कालेज बन्द हो गये थे। वजीरअली कानपुर आ वही के एक होटल मे ठहरा हुआ था। सुलक्षणा भी दामाद की सख्त बीमारी के कारण लखनऊ से कानपुर आ गयी थी और सर रामस्वरूप के उद्यान मे ठहरी थी। क्योंकि बेटी के घर ठहरना तथा खाना उनके लिए सम्भव न था।

ललितमोहन के इलाज से सम्बन्ध रखनेवाली हर वस्तु की व्यवस्था भी थी ही, पर सभी दिनोदिन शिथिल होते जाते थे, खास कर नौकर-चाकर। उनके कार्यो की फुर्ती और सावधानी दोनो ही कम होती जाती थी। शारीरिक थकावट मन पर असर किये विना थोडे ही रह सकती है। मानसिक दृष्टि से वहाँ के सभी लोगो की दशा बडी अस्थिर थी। किसी सख्त बीमार और उसके पास रहनेवाले समुदाय के भाव और भाषा दोनो ही बदल जाते है। एक ओर यदि निराशा को स्पर्श मात्र करनेवाला शब्द उनके सामने निराशा को मूर्तिमन्त रूप मे खडा कर देता है तो दूसरी तरफ आशा की धुँधली किरण पूर्ण विश्वास को।

एक दिन अर्ध रात्रि के समय ललितमोहन को दर्द का जोर का दौरा हुआ। शायद इतना जोर का दौरा इसके पहले कभी न हुआ था। इन्दुमती पति के पलँग के निकट ही बैठी हुई ऊँघ रही थी। ज्योही दर्द की तडप शुरू हुई वह खड़ी हो गयी और त्रिलोकीनाथ को बुलाने जाने लगी, पर ललितमोहन ने यह कह कि बार-बार 'मर्फिया' से बेहोश होते-होते वह थक गया है, अत्यन्त आग्रहपूर्वक उसे रोक दिया। दर्द तेज था, अत्यधिक तेज, पर उसी तेजी से आज वह चला भी गया। ललितमोहन लस्त-सा लम्बी साँस लेता हुआ बोला—'इन्दु, अब तुम उम्मीद छोड दो। मै बार-बार यही बात कहता हूँ, पर न जाने तुम्हारा कैसा आशावाद है। तुम्हारी नाना प्रकार की उम्मीदे मुझे और तकलीफ दे रही है।'

इन्दुमती कुछ न बोली। ललितमोहन ने उसके दोनो हाथ पकड लिये। वह बैठ गयी। उसका मुख झुक गया।

कुछ रुककर ललितमोहन फिर बोला—'एक दिन सभी को जाना पडता है, मै भी जा रहा हूँ। कोई जल्दी जाता है, कोई देर से। कई बडे-बडे, बहुत बडे-बडे आदमी भी जल्दी गये है, बहुत ही जल्दी। अभिमन्यु सोलह वर्ष मे ही चला गया था। शकराचार्य कितने शीघ्र चल दिये। रामतीर्थ को देखो। विवेकानन्द की भी कुछ ज्यादा उम्र न थी। शेली और कीट्स तो और भी कम के थे। पर, इन्दु, ये अपने जीवन में बडे-बडे काम कर गये। कौन कितने दिन जीता है, इसे महत्त्व नही है, महत्त्व है, कौन क्या करके जाता है, इस को। मै भी सोचता था कुछ करके जाऊँगा, पर वह न हो सका। मुझे जाने का दुःख नही है। जानती हो काहे का दुःख है?'

इन्दुमती प्रतिमा के समान बैठी हुई थी, उसके मुँह से कुछ न निकल रहा था, आँखो से भी नही। कहने को तो कुछ था नही और रोते-रोते आँखो का पानी भी शायद सूख गया था।

कुछ ठहरकर ललितमोहन आगे बढा—'मुझे है दो बातो का दुःख—एक तुम्हे, इन्दु, तुम्हे छोडने का और दूसरा अपने सारे कामो को अधूरा छोडकर जाने का।'

इन्दुमती से अब बैठे न रहा गया। वह खडी हो गयी।

उसे खडा देख ललितमोहन बोला—'बैठो, बैठो, मेरी आज न जाने क्या-क्या कहने की इच्छा हो रही है, मेरी बाते तो सुन लो, शायद फिर न कह सकूँ।' जब इन्दुमती न बैठी तब ललितमोहन उसकी ओर कातर-सी दृष्टि से देखता हुआ बोला—'क्या अब तुम्हे भी मेरे पास बैठने मे डर लगता है?'

इन्दुमती यह कहते हुए 'क्या · क्या कहते हो तुम!' हठात् बैठ गयी और फिर बोली—'तुम्हारी ये वाहियात बाते मुझसे सुनी नही जाती।'

'ये वाहियात बाते नही, इन्दु, ये ही काम की बाते है; कम से कम मेरे लिए। जानेवाले की बाते रहनेवाले से भिन्न हो जाती है। जानेवाले को जिन बातो से शान्ति मिलती है रहनेवालो को अशान्ति। जानेवाले के लिए जो बाते काम की रहती है, रहनेवाले के लिए वाहियात। लेकिन रहनेवाले को जाने-

वाले का कथन सुन लेना चाहिए, शान्ति से सुन लेना चाहिए। इससे जाने वाले को तो सान्त्वना मिलती ही है, पर रहनेवाले को भी पीछे से पछताना नही रह जाता।'

कमजोर ललितमोहन को ऐसा जान पडा जैसे वह किसी सभा मे घण्टो बोल चुका हो। कुछ सुस्ताने के लिए वह ठहर गया। इन्दुमती चुपचाप बैठी हुई थी।

'एक दिन जब मैने तुम्हे अपना जीवन वृत्तान्त बताया उस दिन की तुम्हे याद है न ?' कुछ देर बाद ललितमोहन ने कहा।

इन्दुमती ने मुख से कुछ न कह सिर हिलाकर 'हाँ'—का सकेत कर दिया।

'स्मरण है, उस दिन मैने तुम से कहा था कि कितना पूर्ण है मेरा जीवन तुम्हारे और देश-कार्य के कारण ?'

'हाँ।' इस बार केवल एक अक्षर इन्दुमती के मुँह से निकला।

'आज मरते-मरते भी मै यही मानता हूँ। जीवन अस्थायी वस्तु है, अमर तो कोई रहता नही। हाँ, इस अस्थायी जीवन की अवधि कभी लम्बी रहती है और कभी छोटी, लेकिन जीवन मे जो पूर्णता का अनुभव कर पाते है उन्हे मै धन्य मानता हूँ। एक ओर यदि मुझे तुम्हे और अपने कामो को अधूरा छोडने का दु ख है तो दूसरी तरफ जीवन मे मै इस पूर्णता का अनुभव कर सका, इसका सन्तोष भी, चाहे इस समय की अवधि कितनी ही कम क्यो न रही हो।'

ललितमोहन को सुस्ताने के लिए पुन चुप होना पडा। कुछ देर बाद वह फिर कह चला। 'फिर अधिकाश व्यक्तियो को अपने कुछ कृत्यो पर पश्चात्ताप होता है। पर मुझे अपने जीवन मे ऐसी एक भी घटना याद नही आती जिसका मुझे किसी प्रकार का भी खेद हो। मेरे सामने सदा महान् जीवनियाँ ही जीवन का आदर्श रही। मैने जान-बूझकर किसी का जी नही दुखाया। यदि किसी को कोई सहायता पहुँचा सकता था, तो पहुँचाने का प्रयत्न किया। जिस भूमि पर जन्म लिया उसके प्रति भी अपने कर्त्तव्यो को करने की कोशिश की।'

फिर कुछ सुस्ताकर ललितमोहन कहने लगा—'कौन कैसा है यह तब तक घोषित नही किया जा सकता जब तक वह मर नही जाता, क्योकि अच्छा कहा

जानेवाला जीवित व्यक्ति अपनी बाद की कृतियो से बुरा भी हो सकता है। इसलिए जहाँ पूर्णता का अनुभव करने के कारण मै अपने को धन्य मानता हूँ, वहाँ इसलिए भी अपने को धन्य समझता हूँ कि किसी बुरी कृति के करने के पूर्व ही मै जा रहा हूँ। परन्तु जहाँ मुझे ऐसे वक्त जाने के कारण सन्तोष है, वहाँ दो बातो के कारण असन्तोष भी।'

हठात् इन्दुमती के मुख से निकल गया 'किन बातो के कारण ?'

ललितमोहन ने कुछ उत्सुकता मे कहा—'पहली बात तो यह कि मै कोई ऐसा कार्य न कर सका जिसका कोई स्थायी महत्त्व हो। क्योकि मृत्यु के समय यह भावना शायद बडी प्रबल रहती है कि जीवित रहते हुए जो कुछ किया है उसके किस अंश को मृत्यु न मार सकेगी। और दूसरी बात यह कि कितने अधूरे कामो को छोडकर मै जा रहा हूँ।' कुछ रुकते हुए उसने बात आगे बढायी—'देखो तुम्हारे दर्शन के पूर्व मैने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया है। तुमने मेरे जीवन में आकर मुझे एक नया सुख दिया था, तुम मेरा पहला असन्तोष तो दूर नही कर सकती पर दूसरा कर सकती हो। जाने के समय तुम मुझे एक नयी शान्ति देकर विदा करोगी ?...जो मै कहूँगा वह कर सकोगी ?'

'जो कहोगे, करूँगी।' एकाएक दृढता से इन्दुमती ने उत्तर दिया। अचानक ऐसी दृढता न जाने कहाँ से उसके स्वर मे आ गयी।

इसी समय त्रिलोकीनाथ ने उस कमरे मे प्रवेश किया। वह बिना बुलाये भी अनेक बार ललितमोहन को देखने आया करता था लेकिन दम्पति को त्रिलोकीनाथ के आने की आहट न मिली।

'मेरे जितने अधूरे काम है, उनको पूरे करना। तुम मे वह क्षमता है। तुम वह कर सकती हो।'

उसी दृढता से इन्दुमती ने उत्तर दिया। 'अगर ऐसा मौका ही आया तो मै इस विषय में कुछ उठा न रखूँगी।'

'अब मै बहुत दूर तक सुख से मर सकूँगा।' ललितमोहन निर्बल किन्तु शान्त स्वर मे बोला।

लेकिन इन्दुमती की वह दृढता जिस प्रकार एकाएक आयी थी, उसी-तरह चली गयी। अब वह रो रही थी।

त्रिलोकीनाथ ने निकट आकर पूछा—'कैसी तबियत है ?'

× × ×

दीपावली का दिन था। सारे हिन्दू-समाज मे गृहो को झाड-बुहार, लीप-पोत कर लक्ष्मी-पूजा की तैयारी की जा रही थी। धनवान् और निर्धन सभी इस पूजन की व्यवस्था मे निमग्न थे—श्रीमान् अपने धन को और बढाने तथा चचला लक्ष्मी को अपने गृह मे 'स्थिरा भव, स्थिरा भव, स्थिरा भव' कह स्थिर करने के लिए और गरीब किसी तरह सुविधापूर्वक अपनी गुजर-बसर करने के लिए। सन्ध्या को बिजली के लहुओं से प्रासाद और दीपको से झोपडे आलोकमय हो गये। महलो मे भी यत्र-तत्र तेल के चिराग दीख पडते थे। बिजली बाहर से आयी हुई चीज थी, दीप हमारे देश की वस्तु। त्योहार का नाम ही दीपावली था। अत. केवल बिजली की रोशनी सम्पन्नता बढाने और श्री को स्थिर रखने के लिए शायद पूरा फल न दे इसलिए मिट्टी के दियो को भी महलो मे स्थान मिला था।

सर रामस्वरूप के यहाँ सभी चिन्ता मे डूबे हुए थे, लेकिन नया दिन न मनाना तो अशकुन का द्योतक था, अत सर रामस्वरूप के महल की भी सफाई, पुताई आदि हुई थी और वह बिजली के प्रकाश से जगमगा रहा था। सेठजी ने इन्दुमती को भी, शुभ शकुन के लिए आज वह ठीक तरह की वेष-भूषा करे, यह कहला दिया था और चूँकि आजकल इन्दुमती को झाडा-फूँकी तक पर विश्वास हो गया था, अत उसने ससुर की आज्ञा का अक्षरश पालन किया। काश्मीर से लाये हुए वस्त्रो मे से उसने सबसे बढिया साड़ी तथा शलूका पहना, अपने जेवरात के सात सेटो मे से सबसे मूल्यवान हीरे का सैट। माँग मे बड़ी सावधानी से सिन्दूर भरा। ललाट पर शुभ कामनाएँ करते-करते टिकली लगायी। हाथो मे नयी काँच की चूडियाँ पहनी और पैरो मे सुन्दर महावर लगा चाँदी के पायजेब तथा बिछिया धारण की। कोई कितना ही धनवान क्यो न हो, पैरो में हिन्दुओ मे, खास कर मारवाडियो मे, सोना या जडाव के जेवर तब तक नही पहने जा सकते जब तक किसी तिलकधर राजा महाराजा ने बख्शे न हों अतः लाखो के आभूषण देने पर भी पैरो के लिए रामस्वरूप ने उसे चाँदी के जेवर ही दिये थे। इसके पहले उसने पैरो के आभूषण कभी न पहने थे। इस प्रकार की वेष-भूषा कर, पान खा, जब बारह

फुट ऊँचे और आठ फुट चौडे शीशे मे इन्दुमती ने अपने आपको देखा तब उसे बहुत दिन बाद अपने पिता का कथन एकाएक याद आ गया—'विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।'

इन्दुमती जब लक्ष्मी-पूजा के पूर्व इस वेष-भूषा मे ललितमोहन के पास पहुँची तब ललितमोहन को ऐसा जान पड़ा मानो स्वय लक्ष्मी ही उसके सामने खडी है।

आज रूपचतुर्दशी और दीपावली साथ-साथ थी अत. ललितमोहन ने भी क्षौर इत्यादि करा खादी के नये काश्मीरी वस्त्र धारण किये थे। उसके बाल भी अब फिर से बढकर वैसे ही लहरदार हो गये थे, लेकिन बालो को छोड़ और उसका सारा सौन्दर्य इस बीमारी ने कपूर के समान उडा दिया था। यथार्थ में स्वस्थता ही सुन्दरता की नीव है।

सर रामस्वरूप की गद्दी मे लक्ष्मी-पूजा हुई। सेठजी ने शरीर पर राजपूताने का लम्बा अँगरखा और सिर पर कसूमे के रग की लाल पगडी लगाग्री थी। गले मे मोती की कण्ठी तथा जरी का दुपट्टा था। पूजा से निपट सेठजी मोटर मे मन्दिर को रवाना हुए। इन्दुमती भी दूसरी मोटर पर मन्दिर चली।

ललितमोहन के पास इस वक्त डॉक्टर त्रिलोकीनाथ के सिवा और कोई न था। एकाएक ललितमोहन को दर्द का दौरा हुआ। आज शायद पहला मौका था जब दर्द के समय ललितमोहन के पास इन्दुमती मौजूद न थी। दर्द काफी तेज था और काफी देर तक रहा। त्रिलोकीनाथ ने 'मर्फिया' का इजैक्शन देना चाहा, पर दीपावली के दिन दवा से बेसुध होना ललितमोहन ने मजूर न किया।

जब दर्द कुछ कम पड़ा तब ललितमोहन ने त्रिलोकीनाथ से पूछा, 'क्यो, डॉक्टर, अभी भी आप समझते है कि मै अच्छा हो सकता हूँ?'

कुछ रुककर विचारते हुए त्रिलोकीनाथ ने उत्तर दिया, 'यदि मै यह कहूँ कि सम्भव है आप अच्छे न हो तो क्या आपको घबड़ाहट होगी?'

ललितमोहन स्वय अनेक बार कहता रहता था कि वह अब अच्छा न होगा, लेकिन आज पहली मर्तबा किसी दूसरे ने उसके सामने यह बात कही थी। फिर यह कहनेवाला एक डॉक्टर था, ऐसा-वैसा डॉक्टर नही, इतने दिनो तक साथ-साथ रहते हुए ललितमोहन को मालूम हो गया था कि चाहे

त्रिलोकीनाथ को डॉक्टरी की सनद मिले बहुत दिन न हुए हो, लेकिन उसकी क्या वकत थी। ललितमोहन त्रिलोकीनाथ की बात पर चौक-सा पड़ा, उसने एक शून्य-सी दृष्टि से त्रिलोकीनाथ की ओर देखा, पर कुछ बोला नही।

त्रिलोकीनाथ से ललितमोहन का चौक पडना तथा उसकी दृष्टि दोनो ही छिपे न रह सके। उसने कहा—'ललितमोहनजी, मैने आपको देखने के पहले आपकी कीर्ति सुनी थी। आपने देश के लिए अपने सर्वस्व की जो आहुति दी है, वह देश का बच्चा-बच्चा जानता है। आपका चरित्र तथा त्याग दोनो ही अगणित मनुष्यो के लिए आदर्श है एव सदा आदर्श रहेगे। यथार्थ में व्यक्ति की परख उसके उसूलो पर नही, पर उन उसूलो को वह कहाँ तक कार्यरूप मे परिणत करता है, इस पर की जानी चाहिए। सिद्धान्त तो प्राय सभी के अच्छे रहते है,पर उन सिद्धान्तो को कार्यान्वित विरले ही कर सकते है। ललित-मोहनजी, आपने यही करके बताया है। अन्ध परम्परा धर्म को, शत्रुता न्याय को, तर्कहीनता सत्य को और उद्विग्नता तुलनात्मक बुद्धि को नष्ट कर देते है, पर जीवन भर आप मे इनमे से कोई चीज नही रही। यहाँ आकर मैने नजदीक से भी आपको देखा। ऐसी कठिन बीमारी मे भी आपकी सन्ध्या-पूजा बराबर चलती है। आप मन्दिर नही जा सकते तो यहाँ चित्रो मे भगवद् दर्शन करते है। जिस वायुमण्डल मे आप पैदा हुए, जो सस्कार आप मे है, उनकी वजह से आप ऐसे आस्तिक है। निराशा के समय जिस अधिक से अधिक शान्ति, अधिक से अधिक धैर्य, अधिक से अधिक विवेक, और अधिक से अधिक विचार की आवश्यकता होती है, वह भी आप मे मैने पाया। पर इसी के साथ मै एक बात देखता हूं, आप अप्रसन्न न हो, तो निवेदन करूँ।'

'त्रिलोकीनाथजी, जितने नजदीक से आपने मुझे देखा है, उतने ही निकट मे मै भी आपको देखता रहा हूँ, आपकी किसी बात से भी नाराज होने की मै कल्पना नही कर सकता।'

'इस आश्वासन के बाद मै जो कुछ कहना चाहता हूँ, हलके हृदय से कहूँगा।' यह कह त्रिलोकीनाथ ने एक लम्बी साँस छोडी, मानो हृदय हल्का कर लिया और फिर उसने कहा—'इतने आस्तिक होने पर भी आप मृत्यु से डरते है।'

इस बार ललितमोहन और अधिक चौका। वह कुछ कह न सका और

एकटक त्रिलोकीनाथ की ओर देखने लगा ।

त्रिलोकीनाथ ने अब धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—'मृत्यु से आप ही डरते है, ऐसा नही है, सब डरते है, और साधारण हृदय रखनेवालो के लिए मृत्यु का भय एक स्वाभाविक चीज है । फिर जिसे मृत्यु का भय कहते है, वह यथार्थ मे मृत्यु का भय न होकर न जीने का भय होता है । किन्तु जो आपके समान आस्तिक है, जिनमे ऐसे-ऐसे त्याग करने का पुरुषार्थ है, वे इस डर से ऊपर उठ सकते है । आखिर मृत्यु है क्या ? मै वैज्ञानिक हूँ, साथ ही मैने वेदान्त का भी थोडा-बहुत अध्ययन किया है और दोनो दृष्टियो से देखने पर यथार्थ मे नतीजा एक ही निकलता है । कोई वस्तु सर्वथा नष्ट नही होती, उसका रूपान्तर होता है, यह विज्ञान कहता है। बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है, जो बीज वृक्ष उत्पन्न करता है, वह नष्ट हो गया, यह जान पड़ता है, लेकिन उसी वृक्ष से फिर वैसा ही बीज निकल आता है । बीज क्या था, वह वृक्ष था, और वृक्ष क्या है, वह बीज है। सारा विश्व यथार्थ मे एक तत्त्व है, यह विज्ञान मानता है । सारी सृष्टि ईश्वरमय है, यह वेदान्त कहता है । अन्तर एक ही है कि विज्ञान उस तत्त्व को जड़ कहता है, वेदान्त चैतन्य, पर वैज्ञानिक उस तत्त्व को अपने किसी यन्त्र आदि से न देख सके है, न जाँच, और न कभी देख सकेगे, न जॉच, क्योकि पार्थिव साधनो से जो पार्थिव नही है, वह कैसे देखा और जॉचा जा सकता है । परन्तु, इसके विपरीत हमारे ऋषि-महर्षियो ने उसका अनुभव किया है, वह अनुभव की वस्तु है, न देखने की न जॉचने की। इसीलिए चाहे मैने उसका अनुभव न किया हो, पर मै उसे चैतन्य मानता हूँ । आप उसे चैतन्य मानते है, इसमे मुझे सन्देह ही नही, अन्यथा यह सन्ध्या-पूजा यह उपासना निरर्थक है, क्या मै आपको ठीक समझ सका हूँ ?'

ललितमोहन जो त्रिलोकीनाथ के इस सारे भाषण को सुन ही नही पर पी-सा रहा था, इतना ही बोला—'बिलकुल ।'

त्रिलोकीनाथ आगे बढा—'जब विज्ञान और वेदान्त दोनो ही यह कहते है कि यथार्थ मे विश्व एक ही तत्त्व है, तब उस तत्त्व का नाश सम्भव ही नही है । वह तत्त्व भिन्न-भिन्न प्रकार के पार्थिव स्वरूपो से ढका रहता है, जो पार्थिव स्वरूप विज्ञान के शब्दो में परमाणुओ के एकीकरण से निर्माण होते तथा मिटकर पुन निर्माण होते रहते है । यह इस दृश्य जगत का सनातन

नियम है। पार्थिव वस्तुओ का तो रूपान्तर अवश्यम्भावी है और यदि यह समझ लिया जाय तो मृत्यु से भय कैसा ? कहिए, आप मुझसे सहमत है या नही।'

गम्भीरता से विचारते हुए ललितमोहन न इतना ही कहा—'सहमत तो हूँ।'

त्रिलोकीनाथ ध्यान से ललितमोहन की ओर देखते हुए बोला—'पर मैं जानता हूँ कि समझ लेने से ही काम नही चलता। इस स्थिति का अनुभव होना चाहिए और दूसरा चाहे समझा सके, पर अनुभव नही करा सकता, वह स्वय को ही करना पडता है। नास्तिक कभी भी अनुभव नही कर सकते, यह मै नही कहता, लेकिन आस्तिक शीघ्र अनुभव कर सकते है। आपके समान आस्तिक तो और भी शीघ्र ; और जब वे मृत्यु को सामने देखते है, तो कभी-कभी उन्हे यह अनुभव और भी जल्दी हो जाता हैं। हमारे पुराणो में राजा खट्वाग की एक कथा है। आपने तो पुराण सुने है, खट्वाग की कथा का स्मरण है ?'

कुछ उत्साह से ललितमोहन ने कहा—'हाँ, अच्छी तरह। वही खट्वाग न, जो देवताओ की ओर से दैत्यो के साथ युद्ध करने गया था और जब सुरो की विजय हो गयी तथा इन्द्र ने उससे वर माँगने को कहा तब खट्वाग ने सुरपति से पूछा कि मेरी आयु कितनी है। देवेश ने जब उससे कहा कि केवल एक मुहूर्त, तब उसने उस मुहूर्त मात्र मे अपना कल्याण कर लिया।'

'आपके सस्कारो के कारण आपको उपदेश की आवश्यकता नही है, ललितमोहनजी, केवल स्मरण भर करा देने की जरूरत है।' कुछ गद्‌गद् से स्वर से त्रिलोकीनाथ बोला। अन्त समय उपस्थित होने पर उसकी अनुपस्थिति के आश्वासन कष्ट को कम करने की अपेक्षा उल्टा बढा देते है, क्योकि जीवित रहने की स्वाभाविक इच्छा को इन आश्वासनो से सहायता मिलती है, जीवन-मरण का सघर्ष उल्टा बढ जाता है, अत ऐसे अवसर पर तो मरनेवाला मृत्यु का ससाहस आलिगन कर सके, ऐसे सम्भाषण ही कष्ट को कम कर सकते है। त्रिलोकीनाथ ने आज की इस सारी बातचीत मे यही सिलसिला पकडा था। ललितमोहन डूब रहा था, जब उसे बचाना सम्भव न था, तब वह हिम्मत के साथ किस तरह डूबे, यह सवाल था। सबको एक दिन मरना है, यह निश्चित

होने पर भी जब तक मृत्यु प्रत्यक्ष मौजूद नही हो जाती तब तक मृत्यु सम्बन्धी चर्चा केवल कल्पना की बात रहती है। मृत्यु के सदृश निश्चित साथ ही काल्पनिक शायद सृष्टि में अन्य कोई वस्तु नही। किन्तु ललितमोहन के लिए यह मृत्यु अब कल्पना की चीज नही थी, वह थी वास्तविकता और भयानक, महाभयानक वास्तविकता। त्रिलोकीनाथ ने देखा कि उसकी आज की बातचीत का वही परिणाम हुआ जो उसने सोचा था। इस वास्तविकता का सामना करने के लिए ललितमोहन के मुख पर कितना साहस दृष्टिगोचर हो रहा था।

कुछ रुक त्रिलोकीनाथ ने कहा—'आप किससे चिपटे हुए है? शरीर से, जिसका क्षय और नाश कोई रोक नही सकता। सदा बहनेवाले जीवन की ओर देखिए, जो नदी के उस प्रवाह के समान बहता ही रहता है, जिससे अगणित तैराक तैर-तैर कर पार होते जाते है, पर उनके पार हो जाने पर भी उस बहाव में कोई अन्तर नही पडता। और यदि जीने से ही प्रेम हो जाय तो फिर जीवन से प्रेम नही रहता। या इस जीवन को आप एक अन्य प्रकार से भी देख सकते है। यह समूचा जीवन फव्वारे के समान है। जिस तरह फव्वारे मे धाराओ और बिन्दुओ का निरन्तर उठना और गिरकर विलुप्त होना बन्द नही होता वैसा ही हाल समूचे जीवन मे वैयक्तिक जीवन की धाराओ और बिन्दुओ का है। या इसे आप एक और दृष्टि से भी देखे। यह जीवन-सरिता कही गहरी, कही उथली, कही तेज, कही धीमी, कही कठोर चट्टानो को काटती, कही कोमल बालू मे सोती बह रही है, बिना रुके, बस बह रही है। वैयक्तिक जीवन की लहरे और बुद्बुदे उसमे उठते और विलीन होते जाते है, पर इससे उसके प्रवाह मे कोई फर्क नही पडता।' एकाएक वह रुक गया और फिर कह चला—'अभी कुछ दिन पहले एक रोज मै आधी रात के समय आपको देखने आ रहा था, तब आप श्रीमती इन्दुमतीजी से कह रहे थे—"मेरे जितने अपूरे कार्य है, उनको पूरे करना।" स्वराज्य की स्थापना आपके सामने हुई या नही, इस बात को आपके लिए मै गौण मानता हूँ। आपके लिए मुख्य बात है इस महान् अनुष्ठान मे योग देना। वह आप दे चुके। आपका कर्त्तव्य पूरा हो गया। यदि स्वराज्य की स्थापना देखना ही सबका अभीष्ट हो, तब तो स्वराज्य के लिए भी कोई मरकर शहीद न होगा। ससार मे स्वराज्य जैसे महान् कार्य के लिए भी आसक्ति न होनी चाहिए। और फिर आपके अधूरे

कार्य एक इन्दुमतीजी पूरे करेगी ? यदि आपको जाना ही पड़ा तो इस पार्थिव नाम रूपात्मक शरीर के बन्धन को छोड़कर आप मे जो परम तत्त्व है, दूसरे शब्दो मे आत्मा वह बन्धन-रहित हो, आपके कार्यो को न जाने किन-किन से पूर्ण करायगी । आपको समय और स्थान न बाँध सकेगे । विज्ञान मे जिसे 'सापेक्षता' का नियम कहते है इससे आप परे रहेगे । और यदि कुछ चीजो से आपका वियोग होगा तो कुछ से सयोग भी । यदि कुटुम्बियो, मित्रो, दृश्य जगत आदि से मृतक का वियोग होता है तो उसके मूल तत्त्वो और सारे अदृश्य से उसका सयोग । और जीवन कितने दिन चला इसे भी महत्त्व नही, महत्त्व है इसे कि वह जिया किस तरह गया । यथार्थ मे जीवन साँसो का भीतर खीचना और बाहर छोड़ना नही, वह है जीने की कला । और फिर युवावस्था की मृत्यु एक प्रकार से तो वृद्धावस्था की मृत्यु से अच्छी है । वृद्धावस्था में प्राय भावनाओ का स्रोत सूख जाता है, हृदय पथरा जाता है, उस समय यदि जीवन नीरस हो जाता है तो मौत भी ।' कुछ रुककर त्रिलोकीनाथ ने फिर कहा—'बहुधा मनुष्य मृत्यु से भयभीत रहता है पर यथार्थ मे उसे रहना चाहिए जीवन से भयभीत, क्योकि पतन मृत्यु के अवसर पर नही होता, वह प्राय होता है तब, जब जीवन अपनी विकसित अवस्था मे रहता है । जिसने जीवन को आपके सदृश चलाया हो उसे मृत्यु से क्या डर हो सकता है ? और इतने पर भी यदि भय जान पड़ता है तो वह मृत्यु को न समझने के कारण ।'

त्रिलोकीनाथ जब अन्तिम वाक्य कहकर चुप हो गया तब भी ललित-मोहन कुछ न बोला । करवट ले, अपने शरीर को कुछ आगे झुका, वह सामने की शून्यता मे इस तरह देखने लगा मानो जीवन और मृत्यु दोनो का रहस्य जानने का ही नही, प्रत्यक्ष मे देखने का प्रयत्न कर रहा हो । उसकी दृष्टि, उस समय ऐसी हो गयी थी जो भूली हुई बात को स्मरण करने लगती है । वह उस मुद्रा मे था जिसमे मनुष्य अपने अन्तःकरण के अन्धकारयुक्त स्थानो को आलोकित करता हुआ सोचता है । जिस भाँति एक छोटी सी ज्योति अन्धकार से भरे हुए कमरे की अगणित वस्तुओ को दिखा देती है उसी भाँति त्रिलोकीनाथ के इस समय के सम्भाषण ने ललितमोहन के मस्तिष्क में केन्द्रित ज्ञान-भण्डार को प्रकाश मे ला दिया था । शनै शनै उसकी दृष्टि में

स्मरण आनेवाली शान्ति आयी। धीरे-धीरे एक विचित्र प्रकार का आलोक उसके मुख पर भी दीख पडने लगा और उसके ओठो पर प्रसन्नता खेलने लगी। उसके मन मे इस समय बार-बार उठ रहा था—'ज्ञान का काम केवल व्याख्या करना ही नही सन्तोष देना भी है।'

उसी समय मन्दिर से लौटकर सर रामस्वरूप और इन्दुमती ने प्रवेश किया। दोनो को ललितमोहन के मुख पर एक नवीन उत्साह नजर आया। आशा बहुधा बलदात्री ही होती है, पर कभी-कभी जब सर्वथा निराश परिस्थिति मे भी आशा दीखती है, तब निर्मलता की उत्पत्ति हो जाती है और ऐसे अवसरो पर आशा से नही किन्तु निराशा से बल मिलता है। जब ललितमोहन से स्वास्थ्य पूछा गया तब उसने उत्तर दिया 'बहुत अच्छा हूँ।' उसके स्वर मे भी एक नया जोश था।

ललितमोहन ग्यारह दिन और जिया। उसकी बीमारी बढती ही जाती थी, पर उसके शारीरिक महान् कष्टो पर भी उसके मुख पर एक अद्भुत प्रकार की शान्ति थी। अब वह दर्द के बाहर चला गया था। दर्द इतना बढ गया था कि शारीरिक दृष्टि से तो वह स्वय दर्द ही बन गया था, परन्तु मानसिक दृष्टि से वह अपने को दर्द से अलिप्त देखने लगा था।

प्रबोधनी एकादशी को ललितमोहन ने यह शरीर छोड़ दिया।

आज रामस्वरूप के महल का दृश्य शोक और सन्ताप का मूर्तिमन्त रूप था। ललितमोहन के शव के साथ हजारो की भीड थी। देश के लिए धन सम्पत्ति के साथ-साथ उसने अपना शरीर भी बलिदान कर दिया था। जनता ने इस विदेशी सरकार को उसका 'खूनी' घोषित किया और ललितमोहन शहीद हो गया।

: २४ :

इन्दुमती को ललितमोहन की मृत्यु से ऐसी ठेस लगी कि वह तो पागल ही हो गयी। उसकी विक्षिप्तता उसके चेहरे पर छप सी गयी, खास कर उसकी आँखो पर। उसकी आँखे खुली तो रहती पर जान पडता कि अपने आस-पास की कोई चीज को न देख, दूर, बहुत दूर किसी वस्तु को देख रही है। उसका उन्माद उसके अग-प्रत्यग के सचालन से भी प्रकट हो जाता। इस सचालन मे कभी अत्यधिक शीघ्रता, कभी नितान्त धीमापन, कभी एकाएक झटका, कभी एक विशेष प्रकार की ऐठन रहती। जान पड़ता कि उसकी स्वाभाविक नही किन्तु किसी अन्य शक्ति पर उसके शरीर की सारी गति निर्भर है। उसके स्वर और बातचीत से तो उसका पागलपन बिलकुल ही स्पष्ट हो जाता। जब वह बोलती कभी उसका स्वर भारी, कभी पतला, कभी कर्कश, कभी खरखराहट तथा कभी भरभराहट के साथ निकलता। बातो में कभी सिलसिला ही न रहता, वे सदा अटपटी होती। कभी वह रोती कभी हँसती और कभी नाना प्रकार की बाते तथा कृतियाँ करती। कभी तो उसे याद रहता कि ललितमोहन अब इस दुनियाँ मे नही है, पर कभी-कभी वह यह भूल ही जाती। उसकी बाते तथा कृतियाँ उसके जीवन के उसी विभाग से सम्बद्ध रहती जो इन पाँच, साढे पाँच वर्षो मे उसने ललितमोहन के साथ बिताया था। इस विक्षिप्त अवस्था मे उसे अपना इसके पहले का जीवन याद ही न रहा था, मानो वह कोई पूर्वजन्म हो! कोई जब उससे कुछ कहता तो कभी तो उससे क्या कहा जा रहा है यह उसे सुनायी ही न देता, कभी वह उसे सुन तो लेती पर समझती नही और कभी समझकर कुछ कथन का कही का कही आशय लगाकर उसका कुछ का कुछ उत्तर देती। उसे न अपने नहाने-धोने की सुधि थी, न वस्त्रो की और न खाने-पीने की। ललितमोहन को उसके—अधूरे कामो के सम्बन्ध मे उसने बडे साहसपूर्वक जो यह आश्वासन दिया था कि 'अगर ऐसा मौका ही आया तो मै इस विषय मे कुछ उठा न रखूँगी।' उसके स्मृति-पटल से बिलकुल विलुप्त हो गया, साथ ही साथ पिता का

कथन कि 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' अनेको बार स्मरण आने पर भी इस वक्त याद न रहा था। युवावस्था मे मृत्यु सबसे बडी दु ख-पूर्ण घटना मानी जाती है, परन्तु कभी-कभी जीवित मृतक से भी बुरे हो जाते है और इस दृष्टि से विक्षिप्त अवस्था शायद सबसे बुरी अवस्था है। ललित-मोहन की युवावस्था मे मृत्यु यदि महान् दु खपूर्ण घटना थी तो इन्दुमती का यह पागलपन उससे भी अधिक।

सुलक्षणा तेरह दिनो के पश्चात् लखनऊ लौट जाना चाहती थी, पर बेटी की यह हालत देख लखनऊ जाना उनके लिए एक समस्या हो गया। वे चली जाती तो कौन इन्दुमती को नहलाता-धुलाता, कौन उसे खिलाता-पिलाता, कौन इस समय उसकी सँभाल करता? बल्कि सर रामस्वरूप के उद्यान से आकर अब रामस्वरूप के महल में रहने के लिए सुलक्षणा को विवश होना पड़ा था। सर रामस्वरूप के लिए जीवन मे इससे बडा दु ख सम्भव न था, पर बहू के पागलपन ने इस महान् दु ख के साथ उनके मन मे एक नयी चिन्ता पैदा कर दी।

एक दिन जब सुलक्षणा अपनी पूजा मे बैठी हुई थी उन्हे एकाएक इन्दुमती का गान सुन पड़ा। इन्दुमती ऊँचे स्वर से 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक का एक गाना गा रही थी। सुलक्षणा पूजा छोड दौड़कर बेटी के कमरे मे आयी। अब वह गाना बन्द कर जोर से चिल्ला रही थी—'वन्स मोर! वन्स मोर!' सुलक्षणा ने आते ही उसे जोर से हिलाकर कहा—'बेटी! बेटी! क्या···क्या कर रही है, होश मे आ, होश मे, यह वक्त गाने का है!'

'मै क्या करूँ, उनका भी कहना न मानूँ?' और सामने की तरफ हाथ बढा उँगली उठाकर वह बोली—'देखो न, कह रहे है वे—'वन्स मोर! वन्स मोर!'''

'कहाँ·· कहाँ है बेटी वे? · वे तो चले गये। इतने अच्छे थे कि कदाचित् यह बुरी दुनियाँ उनके रहने लायक न थी।' रोते हुए सुलक्षणा ने कहा।

'चले···चले गये।···क्या ··क्या कहा, माँ, तुमने? चले गये? · हाँ ·· हाँ, मैने···मैने उन्हे लखनऊ मे ही पढने के लिए कहा था, इसलिए नाराज होकर चले गये।···मुझसे नाराज होकर चले गये। पर ··पर, माँ, मै···मै उन्हे मना लूँगी।' और आँखे फाड-फाड़कर सामने की ओर देखते हुए वह

रो पड़ी ।

एक समय जब सुलक्षणा इन्दुमती के कमरे मे बैठी हुई थी, तब इन्दुमती जोर से दौडकर उनसे लिपट गयी और बोली—'कितनी···कितनी जोर से कड़कती है यह बिजली चेरापूँजी मे ।'

एक दिन प्रातःकाल जब सुलक्षणा गुलाब के कुछ फूल अपने भगवान् की प्रतिमा पर चढा रही थी तब इन्दुमती ने लपककर उन सारे फूलो को समेट लिया और अपनी साड़ी के पल्ले मे ले दौड़ी-दौडी अपने कमरे मे आयी। जब सुलक्षणा उसके पीछे-पीछे कमरे मे पहुँची, तब उन्होने देखा कि इन्दुमती गुलाब के फूलो को तोड़-तोड कर उनकी पखड़ियाँ अपने पलँग पर बड़ी व्यवस्थापूर्वक फैला रही है। कुछ देर तक तो सुलक्षणा चुपचाप उसे देखती रही, फिर उसके निकट जाकर उसके कन्धे पर हाथ रख धीरे से बोली—'बेटी ! क्या कर रही है ?'

इन्दुमती ने घूमकर माँ को देखते हुए क्रोध से कहा—'तुम निर्जीव प्रतिमा की पूजक क्या जानो कि उन्हे श्वेतशैया पर गुलाब की ये गुलाबी कोमल-कोमल पखडियाँ कितनी अच्छी लगती है ।'

एक दिन सन्ध्या को सुलक्षणा शौच से निवृत्त हो जब इन्दुमती के कमरे में जाने लगी तब उन्होने देखा कि कमरा भीतर से बन्द है । वे कुछ घबड़ायीं और उन्होने जोर से पुकारा—'बेटी ! बेटी !'

भीतर से इन्दुमती ने उत्तर दिया—'ठहरो, आती हूँ ।'

पर जब कुछ देर तक फिर दरवाजा न खुला तब सुलक्षणा ने दरवाजा भड़भडाया । अब उन्हे कोई भी जवाब न मिला । कुछ देर रुककर फिर उन्होने पुकारा—'बेटी ! ओ बेटी !!'

पर फिर भी कोई उत्तर नही । अब तो सुलक्षणा बहुत घबड़ायी । उन्होने नौकरानी को बुलाया । नौकरानी ने भी पहले दरवाजा भड़भड़ाया । बहुत भडभडाने पर भी जब कोई उत्तर न मिला तब सेठजी को खबर दी गयी । सर रामस्वरूप आये, उन्होने भी जोर-जोर से पुकारा—'बीदनी ! बीदनी !!' पर सन्नाटा ही रहा ।

आखिर सेठजी के लुहारखाने से लुहार बुलाया गया और उसने दरवाजे के कब्जे निकालकर उसे खोला । सब लोग यह सोच धडकते हुए हृदय से कमरे

मे घुसे कि इन्दुमती शायद ही जीवित मिले। पर सबको देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि इन्दुमती अच्छी से अच्छी साडी और हीरे के जेवर का पूरा सेट पहनकर शीशे मे अपने को देख रही है।

सुलक्षणा झपटकर उसके पास पहुँची और रोते हुए बोली, 'बेटी ! बेटी !! यह क्या' यह क्या है ?'

कुछ आश्चर्य से इन्दुमती ने कहा—'क्यो ? काकाजी ने कहा था, आज दिवाली है, इसलिए शुभ-शकुन की दृष्टि से मुझे ठीक वेषभूषा करनी चाहिए।'

एक दिन इन्दुमती 'धन-धन श्री कश्मीर धरणि मन हरणि सुहावनि' गाकर नाच रही थी।

एक रात को वह स्वय ही जोर-जोर से हँसती और बिस्तर पर इधर से उधर और उधर स इधर लोटती हुई कह रही थी—'अब नही, अब नही, अब और न गुदगुदाओ···और न गुदगुदाओ।'

एक सन्ध्या को वह बडे-बडे कदम रख घूमते हुए पुकार रही थी—'वजीर ! ओ वजीर !'

सुलक्षणा सन्ध्या की प्रार्थना मे थी अत नौकरानी आयी। नौकरानी को देखकर वह कडककर बोली—'तुझे नही, मै वजीरअली को चाहती हूँ, उसने कहा था कि वह शादी का सारा इन्तजाम एक हफ्ते के अन्दर कर देगा।'

इन्दुमती के पागलपन के कारण कई बार उसका कमरा युद्ध-क्षेत्र का रूप ग्रहण कर लेता। बिस्तर के गद्दे, तकिये और ओढन इधर-उधर फैल जाते, चादर और खोलियाँ फट जाती, गद्दे और तकियो की रुई कई जगह से निकल आती। दरवाजे और खिडकियो के परदे छिन्न-भिन्न हो जाते, उनके काँच फूट जाते और भी इसी तरह न जाने क्या-क्या हो जाता।

पहले कुछ दिनो तक ऐसा जान पडा कि इन्दुमती का पागलपन बढता ही जा रहा है। सेठजी के कौटुम्बिक डॉक्टर ने उसे देखकर दवाएँ भी दी, पर किसी दवा का कोई असर न दीख पडा। सुलक्षणा ने सर रामस्वरूप से इन्दु-मती को लखनऊ भेजने के लिए कहलाया, पर उन्हे मालूम नही था कि किसी मारवाडी के घर मे पुत्र की मृत्यु के बाद इतने शीघ्र पुत्रवधू का मैके ले जाने का प्रस्ताव बडे से बडे जुल्म से कम नही। सेठजी ने सुलक्षणा को कहला दिया कि यह बात तो सोची तक नही जा सकती।

कुछ समय पश्चात् इन्दुमती की हालत मे एकाएक एक परिवर्तन हुआ। उसका रोना, हँसना, अन्य बाते, कृतियाँ सब बन्द हो गयी। और वह एकदम चुप रहने लगी। इस चुप्पी मे वह किसी को पहचानती या नही, यह भी कहना कठिन था। इन्दुमती की अवस्था ने सुलक्षणा को और चिन्तित कर दिया, पर रामस्वरूप की व्यग्रता कुछ कम हुई। इन्दुमती के पागलपन का हँसना, गाना और अनेक बाते तथा कृतियाँ उनके इस समय के शोक से भी उन्हे अनजान मे भी अधिक कष्ट दे रही थी।

इन्दुमती की यह नितान्त अकर्मण्य अवस्था भी बहुत दिन न चली और अब उसने रोना—केवल रोना शुरू किया। कितना · कितना यह रोती ! दिन रोती, रात रोती, रोती बस रोती। कितने·· कितने आँसू बहाये उसने ! आँसू से अधिक अनवरत बहनेवाली और आँसू से अधिक जल्दी सूखनेवाली दुनियाँ मे शायद कोई चीज नही। सुलक्षणा भी पति की मृत्युशैया पर कम नही रोयी थी, पर उनका रोना और इन्दुमती का रोना भिन्न था। सुलक्षणा रुदन के समय होश मे थी पर इन्दुमती को होश था या नही, यह कहना विशेषज्ञो के लिए भी कठिन था। सुलक्षणा तक को मन ही मन इस बात पर आश्चर्य हुआ कि इन्दुमती के इतने आँसू निकल कहाँ से रहे है। इन आँसुओ ने उसके स्मृति-पटल को मानो धोना आरम्भ किया और ऐसा जान पडने लगा जैसे वह अपने चारो ओर की स्थिति को पुन समझने का प्रयत्न कर रही है।

जिस प्रकार बच्चे धीरे धीरे अपनी माँ को पहचानना प्रारम्भ करते है उसी प्रकार पहले इन्दुमती ने सुलक्षणा को पहचाना फिर अपनी सारी परिस्थिति को। उसके मन मे आया—बडी बात है अभी भी उसके पैर उसके शरीर को सँभालने के योग्य है और उसकी गर्दन उसके सिर को गिरने नहीं दे रही है। अब कभी वह पूरे होश मे आ जाती और कभी फिर बेसुध हो जाती।

एकाएक उसे अपने पिता का कथन कि 'विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है' याद आने लगा, वही कथन जो इतने दिनो मे वह सर्वथा भूल गई थी। अब जब भी वह होश में आती, सबसे पहले उसे अपने पिता का यह कथन स्मरण आता। इस समय 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है'

यह वाक्य उसे होश मे रखने के लिए जितनी मदद करता, उतनी अन्य कोई वस्तु नही। धीरे-धीरे जब उसे पुन बेहोशी दबाने लगती, तब वह इसी वाक्य का जप-सा करने का प्रयत्न करती। यह बेहोशी दूर रखने मे और बेहोशी मे इसकी याद आते ही होश मे लाने मे दोनो मे, ही सहायक होता। शनै शनै इन्दुमती इस वाक्यरूपी लाठी से इस समय के अन्धकार को टटोलते हुए प्रकाश मे आयी और अब उसे अपना सारा गत जीवन फिर से दिखायी पडने लगा।

उसके मन मे उठा 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व जो सचमुच ही सब कुछ है, उसी व्यक्तित्व को मैने किस तरह नष्ट कर दिया था, मै जो अपने को ज्ञान की ज्योति मानती, गिरते-गिरते ऐसे-ऐसे अन्ध गर्त मे गिरी कि कहाँ हूँ—इसका पता मुझे स्वय को ही न रह सका ! ऐसी बेहोशी ! ऐसी विक्षिप्तता ! इन पॉच, साढे पॉच वर्षो के पहले मैने अपने सामने किसी को महत्त्व न दिया था और वही ठीक था। पिताजी का कथन कितना सत्य है—"जो अपने को केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सफल और सुखी होता है।" त्रिलोकीनाथ के प्रति भी मेरा आकर्षण हुआ था, पर किस तरह उसे रोक मै अपने को ठीक पथ पर लायी। ललितमोहन का आकर्षण मै न सम्हाल सकी , बह गयी। जो विवाह न करने का निश्चय कर बैठी थी, वही किया। और फिर अपने व्यक्तित्व को भूल इस प्रकार अपने आपको ललितमोहन मे विलीन कर दिया ! क्या फल निकला इस तरह व्यक्तित्व के लीन करने का ! सारा ज्ञान चला गया ! सारी बुद्धि नष्ट हो गयी ! जो मै कभी न रोयी थी वह रुदन की नदी बन गयी। जब पहले-पहल वह लखनऊ आकर लौटा, स्टेशन पर आँसू आरम्भ हुए और फिर तो धीरे-धीरे उनका ऐसा पूर आया कि उन्होने मुझे डुबो ही दिया। इस तरह ज्ञान का और बुद्धि का नाश हुआ कि मैने जो प्रार्थना अपने इन्फ्लूएन्जा की बीमारी के वक्त तक नही की थी, वही मन्दिर के पत्थर की मूर्ति के सामने प्रारम्भ की। आकाश के सूर्य की उपासना आरम्भ की। निर्जीव पत्थर प्रार्थना सुनकर क्या कर सकता है ? वह सूर्य जो स्वय जल रहा है, चौबीसो घण्टे, निरन्तर जिसमें लपटे निकल रही है, वह दूसरे की जलन कैसे दूर करता ? अनुष्ठानो

के ढोग और मन्त्र-तन्त्र तथा झाड-फूँक तक मे यकीन ! माँग में सिदूर, ललाट पर टिकली, पैरो मे महावर, पायजेब और बिछिया सौभाग्य के रक्षक ! और सौभाग्य क्या चीज है ? विवाह-सस्था मे विश्वास न रखनेवाले का सौभाग्य मे विश्वास ! भौतिक पदार्थमय यह सारा विश्व । सब भौतिक पदार्थ असख्यो परमाणुओ का सग्रह । और हर परमाणु मे उदअणु तथा निअणु के कारण निरन्तर गति । ललितमोहन इन परमाणुओ का सुन्दर सग्रह था, सुन्दरतम । उदअणु और निअणु की गति मे था परमाणुओ की स्थिति मे कोई विकृति होने के कारण, जो विकृति हर भौतिक पदार्थ मे किसी न किसी समय होती ही है, और जिसे ठीक करने का अब तक विज्ञान कोई उपाय नही निकाल सका, वह नष्ट हो गया। मै क्या भौतिक पदार्थ का वैसा ही सुन्दर··· सुन्दरतम सग्रह नही हूँ ? एक दिन मै भी नष्ट हो जाऊँगी। पर, तब तक शायद विज्ञान उस उपाय को निकाल ले जिससे मेरा नष्ट होना बच जाय, और यदि नष्ट भी होना है तो नष्ट होने तक ? ललितमोहन ने एक दिन तक बात तो ठीक ही कही थी—"कोई जल्दी जाता है, कोई देर से । कौन कितने दिन जीता है, इसे महत्त्व नही, महत्त्व है, कौन क्या करके जाता है इसको ।" मैं इसमे एक बात और जोड़ती हूँ—"महत्त्व है, कौन क्या करके जाता है इसी के साथ कौन क्या भोग कर जाता है, इसको ।" और कौन क्या भोगता है, यह पिताजी के इस कथन पर अवलम्बित है—"अपने को ही केन्द्र मानकर सब कुछ अपने लिए करना चाहिए और ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानना ।" तब क्या मुझे उचित है कि इस अन्धकार मे पडी रहूँ ? ससार की सभी सच्ची युक्तियाँ इतनी प्रचलित है कि विद्वान और मूर्ख सबकी जबान पर रहती है—"बीती ताहि बिसारि दे आगे के सुधि ले ।" यह भी वैसी ही युक्ति है । ललितमोहन को मैने वचन भी तो दिया है कि उसके अधूरे कामो को मै पूरा करूँगी, लेकिन इसी के साथ पिताजी को भी आश्वासन दिया था कि "निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ मानूँगी ।" ललित-मोहन के कार्यो मे मुझे भी रस था । वही काम करूँगी, पर · पर करूँगी अपने हाँ, अपने लिए ।'

इस प्रकार सोचते हुए इन्दुमती ने जब अपने चारो ओर के वायुमण्डल तथा अपने आस-पास की समस्त वस्तुओ को देखा, तब उसे उनमें कोई अन्तर

न दीखा। उसका कमरा तक जैसा का तैसा था। उस कमरे का सारा सामान भी जहाँ का तहाँ रखा था। कितना स्थायित्व था इस बाह्य दृश्य मे और इसके ठीक विपरीत उसने अपने मन की अवस्था देखी, कितने परिवर्तन हुए थे उसकी मानसिक दशा मे। इन्दुमती सोचने लगी—'जड की तुलना मे जिस चैतन्य की इतनी विशेषता, इतनी महानता मानी गयी है, उसकी अपेक्षा तो यह जड ही अच्छा है। जड ही श्रेष्ठ है।'

इन्दुमती को पूर्ण रूप से स्वस्थ होते-होते छै महीने के ऊपर लग गये। इन्दुमती स्वस्थ तो हो गयी, पर क्या यह इन्दुमती ललितमोहन की मृत्यु के पहले की इन्दुमती थी ? इन्दुमती का सारा खून सूख गया था। वह चाहे ककाल के सदृश दुबली न हुई हो, पर सगमरमर के समान सफेद अवश्य हो गयी थी। वैधव्य के कारण उसे सफेद साडी ही पहनना पड़ती थी, अत जब कभी वह निश्चल खडी या बैठी रहती, तब जान पड़ता वह इन्दुमती न होकर उसकी सगमरमर की मूर्त्ति है।

सुलक्षणा ने कुछ निश्चिन्त हो सेठजी से लखनऊ जाने के लिए कहलाया। सर रामस्वरूप सुलक्षणा के जाने मे क्या आपत्ति कर सकते थे, पर जब उन्होने देखा कि इन्दुमती सुलक्षणा को पहुँचाने स्टेशन जा रही है, तब उन्होने सुलक्षणा को धीरे से कहला दिया कि उनके समाज के नियमो के अनुसार कम से कम एक वर्ष तक विधवा घर से नही निकल सकती। सुलक्षणा ने इन्दुमती को समझा दिया, वह स्टेशन तो नही गयी, पर उसके मन मे एकदम उथल-पुथल-सी मच गयी। 'विधवा। कैसी विधवा! निज के व्यक्तित्व को सब कुछ समझनेवाली मै अपने को अन्य विधवाओ के समान विधवा कैसे समझ सकती हूँ ? और फिर छै महीने इसी महल मे बन्द रहूँ। ललितमोहन बीस महीने जेल मे बन्द रहकर उस हालत मे बाहर निकला था और मै बारह महीने इस कैद मे। फर्क तो इतना ही है न कि वह लोहे का पिंजरा था और यह सोने का है।'

सर रामस्वरूप के महल मे रोज प्रात काल रोना होता था। कुछ स्त्रियाँ आती और रोकर चली जाती। अब तक इन्दुमती अस्वस्थ थी, इसलिए सेठजी ने उससे कुछ न कहलाया था, पर जब वह स्वस्थ हुई और सुलक्षणा भी चली गयी, तब उसके पास उसी रात को उन्होने सदेश भेजा कि वह रोज

प्रात काल 'बैठक' मे जाया करे। सदेश लानेवाली एक नौकरानी थी।

इन्दुमती ने उससे पूछा—'कैसी बैठक ?'

'वही, जहाँ रोज रोया जाता है!' नौकरानी ने कहा।

'ओह! उसे बैठक कहते है! तो मुझे भी रोज वहाँ रोने जाना चाहिए।'

'हाँ, मालकिन!'

'पर, क्या मै गत छै महीने मे कम रोयी हूँ कि अब रोज प्रातःकाल उस "बैठक" में बैठकर रोऊँ ?'

'यह दस्तूर की बात है।'

'दस्तूर की बात! रोने मे दस्तूर कैसा ?' इन्दुमती ने आश्चर्य से पूछा।

'वह दस्तूर का रोना है ही, मालकिन। जो रोने आती है, उन्हे रोने के लिए महनताना मिलता है।'

'महनताना ! रोने के लिए महनताना!' अत्यन्त आश्चर्य से इन्दुमती बोली।

'हाँ, मालकिन, ये किराये की रोनेवाली है, क्योकि जात-बिरादरी, रिश्ते-दारी मे से तो आजकल कोई यहाँ आता नही; और बैठकं एक साल रहना ही चाहिए।'

'किराये की रोनेवाली!' इन्दुमती ने मन ही मन सोचा, उसका हृदय ग्लानि से भर गया। अब तो उसे उस महल मे एक-एक क्षण भारी हो गया। छै महीने तक वह वही बन्द रहे और बिना रोने की इच्छा के रोज प्रात काल किराये की रोनेवालियो के साथ रोवे, यह उसके लिए असम्भव था। रात भर उसे नीद न आयी। इसी उधेडबुन में वह लगी रही कि उसे क्या करना चाहिए। अन्त मे उसने लखनऊ जाना तय किया। दूसरे दिन जब सर राम-स्वरूप मन्दिर गये हुए थे तब उसने मोटर मँगा, मोटर से ही लखनऊ प्रस्थान कर दिया। जाते समय वह सेठजी के नाम निम्नलिखित पत्र छोड गयी—

पूज्य काकाजी,

कल जब माँ लखनऊ जा रही थी, तब मै स्टेशन जाना चाहती थी, लेकिन आपका सन्देश पहुँचा कि मै साल भर तक इस महल के बाहर नही निकल सकती।

रात को मुझे आपकी यह आज्ञा भी मिली कि मै रोज प्रातःकाल 'बैठक' मे जाया करूँ।

उन्हे मैने जितना चाहा है, तथा आज भी जितना चाहती हूँ, उससे अधिक शायद कोई स्त्री किसी पुरुष को नही चाह सकती। उनके लिए मै जितना रोयी हूँ, उतना कदाचित् कोई किसी के लिए न रोया होगा।

परन्तु बिना इच्छा के मै दुनियाँ मे कोई काम नही कर सकती। अपनी मशा के खिलाफ मै छै महीने इस महल के बाहर न निकलूँ और बिना रोना आये रोज सुबह रोऊँ, यह मुझसे नही हो सकेगा।

आपका कानपुर के समाज मे जो स्थान है, वह मुझसे छिपा नही है। साल भर के पहले मेरे बाहर निकलने से और 'बैठक' में न जाने से आपकी प्रतिष्ठा को कोई बट्टा लगे, यह मै नही चाहती, अत. मै लखनऊ जा रही हूँ।

यदि आपको मेरे बाहर निकलने में कोई आपत्ति न हो और मेरा 'बैठक' मे आना अनिवार्य न समझा जाय, तो मुझे आज्ञा भेज दीजिएगा, मैं लौट आऊँगी; अन्यथा छै महीने के बाद दर्शन करूँगी जब इस प्रकार के कोई बन्धन न रह जायँगे।

आपकी आज्ञाकारिणी
प्रिय पुत्रवधू
इन्दुमती

जब सर रामस्वरूप को यह पत्र मिला तब उन्होने सिर पीटकर बार-बार अपने मन में कहा—'नाटक करवावाली ही तो है।' पर उपाय क्या था। उन्होने लोगो में यही जाहिर किया कि उसकी अस्वस्थता के कारण उन्होने ही उसे उसकी माँ के साथ लखनऊ भेज दिया है।

अब रामस्वरूप ने अपना दुःख अकेले ही भोगना आरम्भ किया, न कोई घर मे था और न कोई सच्चा पड़ोसी। घर में किसी के न रहने पर दु:ख बटाते है सच्चे पड़ोसी। सच्चे पड़ोसियो में बराबरी की भावना रहना आवश्यक है। दुःख की साझेदारी ऐसे पडोसियो के बीच ही हो सकती है। परन्तु धनवान हो जाना ही निर्धनो से पृथक् हो जाना है। धनवान बिना यह महसूस किये कि वह उपकार कर रहा है, किसी का भला कर ही नही सकता।

उपकृत उसकी मनोवृत्ति जानते है और उसके अहसानो को विवशता के कारण मजूर करते है। जब कोई अनिवार्य दुख किसी श्रीमान् को होता है, तब वह उसमें भी उसी प्रकार एकाकी रहता है जिस तरह धनभोग के सुख में। उसके द्वारा उपकृत व्यक्ति उसके दुःख को न बढ़ाते हुए उसी तरह उसे सान्त्वना देने पहुँच जाते है जिस प्रकार वह धनवान उनके दुखो मे साझा न रखते हुए भी धन द्वारा उन पर एहसान करने पहुँचता है। अन्तर इतना ही रहता है कि धनवान की सान्त्वना सोने-चाँदी के निर्जीव टुकडो से होती है और निर्धनो की सूखे-रूखे शब्दो से। समाज की वर्तमान रचना मे अमीरो और गरीबो का इस तरह का सम्बन्ध अनिवार्य है।

× × ×

इन्दुमती फिर से काग्रेस की मेम्बर हो गयी, क्योकि ललितमोहन ने १६२७ से काग्रेस का ही काम किया था और उसके अधूरे काम को पूरा करने का अर्थ काग्रेस में ही काम करना था। इस वर्ष दिसम्बर मे काग्रेस का अधिवेशन कानपुर मे होनेवाला था। इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिए जो कुछ इन्दुमती से हो सका, उसने करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

इन्दुमती ने यद्यपि ललितमोहन को नित्य के जीवन से निकालकर अपने रोजमर्रा के काम करने की कोशिश की थी, परन्तु उसने देखा कि वह अपने यत्न मे सफल नही हो रही है। जब-जब उसका मन ललितमोहन की तरफ खिचता, वह बार-बार उसे समझाती—'आखिर वह क्या था? अगणित परमाणुओ का सग्रह ही न?' पर उसके निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी वह उसी अगणित परमाणुओ के सग्रह की ओर मुड़ जाता। जब इन्दुमती किसी काम मे लगी रहती, किसी से बाते करती रहती; तब तक तो गनीमत रहती, यद्यपि उस वक्त भी उसे ललितमोहन अनेक बार याद आ जाता, पर जब उसे कोई काम न रहता था जब उसके पास कोई न होता, तब तो उसका मन ललितमोहन से हटता ही नही। रात को अगणित बार वह उसे सपने मे दीखता। कई बार वह सपने में बडबडाकर और चौक-चौक कर उठ पडती।

अप्रैल का अन्त हो रहा था। छै वर्ष पहले इसी अप्रैल मे उसने पहले-पहल ललितमोहन को अपने पिता की जुबली के उत्सव में देखा था। कितनी

याद आती उसे उस समय से लेकर ललितमोहन के साथ रहने की समस्त घटनाएँ। उसका विवाह, उसके पश्चात् लखनऊ का उसका विहार, इसके पश्चात् कानपुर का जीवन, काग्रेस का काम, ललितमोहन की गिरफ्तारी तथा जेल की मुलाकात। इसके उपरान्त ललितमोहन की बीमारी, कलकत्ता, जयपुर और काश्मीर के दृश्य। ललितमोहन की जेल की इन्दुमती की मुलाकाते और बीमारी के हालात भी इस समय उतने भयानक न जान पड़ते। अनेक बार बिना विचारे ही वह ललितमोहन के प्रथम मिलन के पश्चात् से लेकर उसकी मृत्यु तक की घटनाओ को सिलसिलेबार चिन्तन करने लगती। ललितमोहन का सबसे अधिक स्मरण उसे अपने उद्यान मे आता, जहाँ उसने विवाह के पश्चात् अपने दिन ललितमोहन के साथ बिताये थे। इस समय भी उसी प्रकार गरमी की मौसम थी, उसी तरह बेला, गुलाब, चम्पा फूल रहे थे, वैसी ही हरी दूब थी, जिस कुण्ड मे वे अनेक बार जल विहार करते, वह भी वैसा ही था, पर कितना · कितना अन्तर हो गया उस वक्त और इस वक्त मे ? क्या काम के थे अब वे पुष्प, अब वह दूब और वह कुण्ड ! ये वसन्त के वे दिन थे जब फूले हुए फूलो के दर्शन तथा महक से मस्तिष्क मे एक तरह की मस्ती आ जाती है, हृदय मे एक प्रकार की हिलोरे उठने लगती है। अनेक बार चुपचाप चारो ओर का दृश्य देखते हुए न जाने कितनी देर तक मनुष्य मूक बैठा, खडा या पडा रहता है और उसकी समझ मे नही आता कि वह करे क्या ? इन्दुमती का भी प्राय आजकल यही हाल रहता। और इस हालत मे उसे उपर्युक्त सस्मरण आते।

अप्रैल में शुक्लपक्ष की सप्तमी के बाद ज्यो ही चाँद का बढना आरम्भ हुआ, त्यो ही इन्दुमती अपने उद्यान मे अधिकाधिक जाने लगी। जिस प्रकार चॉद से समुद्र की लहरे खिचती हुई सी जान पड़ती है, उसी प्रकार इस समय इन्दुमती की स्थिति जान पडी। उद्यान मे जा इन्दुमती कभी वृक्षो के कुञ्ज में और कभी हौज के किनारे बैठ जाती। कभी चन्द्रमा को देखती और कभी चॉदनी से अलकृत धरती को। कभी चन्द्रिका से चमचमाते और वायु से नाचते पत्तो को निरखती और कभी पल्लवो तथा शाखाओ के बीच से छन-छन कर जमीन पर पडती हुई ज्योत्स्ना को। कभी कुण्ड मे पडते हुए मयक के प्रतिबिम्ब को अवलोकती और कभी पवन के झोको से विचलित हुए कुण्ड के जल

की नन्ही-नन्ही चमकती हुई लहरो को। और हर दृष्टि विक्षेप मे उसे ललित-मोहन का स्मरण आये बिना न रहता। इस याद के कारण अनेक बार उसके फेफडो की दशा धोकनी के सदृश हो जाती। कितनी जल्दी-जल्दी उसकी साँस चलने लगती और शीतल चाँदनी से चमका हुआ वह सारा दृश्य जल-सा उठता। अतीत के जो सस्मरण इस आग को लगाते, वे ही इस आग मे जल-जलकर आँसू बन जाते और जिस आग को लगाते उसी को बुझाने का प्रयत्न करते। ये सारे दृश्य उसे कितना कष्ट देते, पर फिर-फिर कर वह उन्ही को देखने जाती। इस कष्ट मे उसके साथ सुखमय सस्मरण जो रहते। सूनेपन के दु ख की अपेक्षा यह सस्मरणमय कष्ट कदाचित् उसे अच्छा जान पडता। कौन-से विचार सुखद होते है और कौनसे दु खद, यह विचारक की उस समय की मनोवृत्ति पर निर्भर रहता है जब वे विचार उठते हैं।

कभी-कभी इन्दुमती ललितमोहन के इन सस्मरणो से भी अत्यधिक बेचैन हो उठती, तब वीणा उठाती, सितार छेडती, हारमोनियम धोकती, पर उस वक्त भी उसे गान याद आते विप्रलम्भ के ही। कई बार वह चित्र बनाने की कोशिश करती, पर चित्र आपसे आप बनने लगता ललितमोहन का। और ऐसे समय उसे ललितमोहन द्वारा कही हुई अनेक बाते याद आ जाती। इन्ही बातो मे उसे एक दिन याद आया, गीता के ससार रूपी अश्वत्थ वृक्ष का वर्णन। उस अश्वत्थ से उसने मनुष्य शरीर का मिलान आरम्भ किया। ऊपर जड़वाले उस अश्वत्थ और मानव-तन मे कितना साम्य था। जिस प्रकार उस अश्वत्थ की जडे ऊपर, उसी प्रकार इस शरीर का जिस मस्तिष्क के द्वारा सचालन होता है वह भी ऊपर। जिस तरह उस अश्वत्थ की जडो के नीचे उसकी सारी शाखाएँ, उसी प्रकार इस शरीर के मस्तिष्क के नीचे इसके सारे अवयव। और यह सोचते-सोचते इन्दुमती को अपने गत जीवन की सारी बाते फिर याद आ गयी। उनमे से कुछ को वह पत्र, कुछ को पुष्प और कुछ को फलरूप मे देखने लगी। एक समय उसे एकाएक याद आया, वृक्ष को काटनेवाला लकड़हारा। उसने सोचा यदि पृथ्वी पर रहनेवाले लकडहारे नीचे जडवाले वृक्षो को नीचे से प्रहार कर काटते है तो इस पृथ्वी के ऊपर रहनेवाला यम भी लकडहारे के समान ही होगा, जो अदृश्य होते हुए भी इस शरीर रूपी ऊपर जड़वाले शाखा के ऊपरी भाग पर प्रहार कर इसका सहार करता है। फिर वह कितना

कुशल है। पृथ्वी पर के लकड़हारो की कुल्हाडी, उनकी कृति दिखायी देती है, ऊपरवाले लकड़हारे का शस्त्र, उसका कर्म दीखता ही नही। मृत्यु यथार्थ में मस्तिष्क की ही तो मृत्यु है। यदि मस्तिष्क नही, तो भिन्न-भिन्न अवयवो का क्या प्रयोजन ? किसी पागल का मरना-जीना दोनो समान है। और यह सब सोचते-सोचते इन्दुमती विचारने लगती कि कही वह फिर से पागल तो नही हो रही है।

धीरे-धीरे उसे ऐसा जान पड़ा कि ललितमोहन के चित्र बनाने से उसे एक तरह की शान्ति मिलती है। उसने मन को थोडी सी आजादी दी। मन ने हाथ चलाना आरम्भ किया और उसने देखा कि कुछ दिन के बाद काम से फुरसत मिलते ही आप से आप वह ललितमोहन के चित्र बनाने मे लग जाती है। ललितमोहन का चित्र बनाते-बनाते उसने जिस शान्ति का अनुभव किया था, वह बढने लगी, क्योकि उसने देखा कि ललित-मोहन का चित्र बनाते हुए वह उसमे अपने को भूल-सी जाती है। उसे हठात् खयाल आया कि यह फिर से बेहोशी तो नही है, वैसी बेहोशी जैसी ललितमोहन की मृत्यु के बाद उसके पीछे पड़ गयी थी, पर उसने महसूस किया कि यह बेहोशी नही है। तब यह क्या है ? उसने बार-बार अपने से पूछा ; उसे उसका कोई स्पष्ट उत्तर तो नही मिला, पर उसने देखा कि उसे बेहोशी न होते हुए भी शान्ति अवश्य मिलती है।

ललितमोहन के सम्पर्क के पूर्व उसे अपने आप एक सूनेपन का अनुभव होने लगा था। ललितमोहन के सग ने इस शून्यता को भरा था। जब वह जेल गया, तब वही शून्यता फिर आयी, पर उस शून्यता को कुछ दिनो बाद ललित-मोहन के सस्मरणो ने भरा। ललितमोहन का चिर-वियोग फिर उस सूनेपन को लाया, यद्यपि यह सूनापन, सूनापन होते हुए भी पहले की शून्यताओ से भिन्न था। इसने उसे पागल बना दिया। स्वस्थ होने के बाद प्रयत्न करने पर भी वह इस नये सूनेपन को दूर न कर सकी। पर उसने देखा कि ललितमोहन के ये चित्र इस शून्यता को कम से कम कुछ दूर तक आपसे आप भर रहे है।

× × ×

साढे ग्यारह महीने मे वार्षिक श्राद्ध होता है। कार्त्तिक कृष्ण एकादशी को कानपुर मे ललितमोहन की बरसी थी। सर रामस्वरूप ने गत छै मासो

मे यद्यपि इन्दुमती को कानपुर न बुलाया था, तथापि बीच-बीच में इन्दुमती के कारिन्दे के पास सेठजी का इन्दुमती के कुशल समाचार जानने के लिए पत्र आता रहता था और इसके उत्तर मे कारिन्दे से ही इन्दुमती भी सेठजी का स्वास्थ्य पूछते हुए पत्र लिखवाती रहती थी। बहू से वे किसी प्रकार बोल तो लिये थे, पर बहू को पत्र लिखना सर रामस्वरूप के लिए असम्भव था, अत यह खत-किताबत कारिन्दे की मार्फत ही चल रही थी। रामस्वरूप को इन्दुमती के घूमने-घामने, काग्रेस का काम करने और क्लब जाने का हाल भी मालूम हो गया था। कानपुर से लखनऊ दूर ही कितना था। और फिर काग्रेस के अधिवेशन की तैयारी हो रही थी, जिसमे इन्दुमती लखनऊ में रहते हुए भी पूरा भाग ले रही थी। पर सेठजी सब बाते जानते हुए भी इस तरह अन-भिज्ञ से बने रहे, जैसे उन्हे कुछ मालूम ही न था। अन्य कोई उपाय न देख उन्होने यह रास्ता अख्तयार किया था और वे इसे बहुत बड़ी बात समझते थे कि इन्दुमती कानपुर मे नही है तथा अपनी जाति का सम्मान चले जाने पर भी शेष हिन्दू समाज मे उनकी इज्जत-आबरू किसी प्रकार बची हुई है। इसी लिए गत छै महीनो मे उन्होने इन्दुमती को बुलाया नही था, पर ललितमोहन की बरसी पर उन्होने उसे बुलाया। इसका एक बहुत बडा कारण था, जो इन्दुमती को श्राद्ध के पश्चात् मालूम पडा।

बरसी से निपटकर सर रामस्वरूप बहू के पास आये और रोते हुए बोले—'मेरे करम तो फूटने वाले थे सो फूट चुके, पर अब तेरी जिन्दगी कैसे बीतेगी, यह सवाल मुझे और पीडा पहुँचा रहा है।' यह वाक्य पूरा करते-करते उनके मुख पर पडी हुई झुर्रियाँ और गहरी हो गयी, मानो उनके आन्तरिक शोक की गहराई का वे बाह्यरूप हो।

इन्दुमती ने कोई उत्तर न दिया। यद्यपि उसने सकल्प-सा कर लिया था कि वह अब कभी न रोयगी, फिर भी सिर नीचा किये हुए वह रो रही थी।

कुछ रुककर सेठजी ने कहा—'बीदनी, बन्द घरो के दरवाजे खोलना ही पड़ते है। मै अब कितने दिनो का, सत्तर के आस-पास पहुँच रहा हूँ।'

इन्दुमती फिर भी चुप थी। सर रामस्वरूप उसे किधर लिये जा रहे थे, यह उसकी समझ मे न आ रहा था।

कुछ ठहरकर सेठजी फिर बोले—'अगर आज तेरी गोद भरी होती,

ललित की निशानी···उसका छोटा-सा बच्चा भी होता ' रामस्वरूप पूरी बात न कह सके, उनका गला रुक गया।

इन्दुमती एकदम चौक पड़ी। उसके मन मे सेठजी की बात रुक-रुक कर उठने लगी—'मेरी गोद भरी होती · ललित की निशानी· ·उसका छोटा-सा बच्चा भी होता।' पर वह कुछ न कह सकी।

कुछ देर निस्तब्धता रही। सेठजी गला साफ करते हुए बोले—'ऐसी हालत मे परायो से भी घर भर जाता है, दुनियाँ में होता ही आया है, बीदनी !' इस वाक्य को पूरा करते-करते रामस्वरूप का मुद्रा ऐसी हो गयी, मानो चुप हो जाने पर भी वे कह रहे थे कि ऐसे मामलो मे नियति के क्रूर विधानो को स्वीकार करने के सिवा मनुष्य और कर ही क्या सकता है ?

फिर इन्दुमती के मन मे रुक-रुक कर सेठजी की बात उठने लगी—'परायो से घर भरा जाता है। दुनियाँ मे होता ही आया है।' और अब इस बात पर उसका मन टिप्पणी भी करने लगा—'क्या क्या कह रहे है उसके ससुर। अपने एक मात्र पुत्र का स्थान पराये से भरने की बात।'

सेठजी ने फिर कहा—'किसी को तेरी गोद मे बैठाना ही होगा और तुझे करना होगा उसका पालन-पोषण। स्त्री माँ, बाप, धनी और लडके के सहारे ही रह सकती है। नही तो क्या होगा, तेरी जिन्दगी का, क्या होगा इस सारी धन-सम्पदा का और कैसे चलेगा मेरा नाम।'

इन्दुमती को मौन देखकर सेठजी ने फिर कहा—'सोच ले, बीदनी, लखनऊ जाकर अपनी माँ से भी विचार ले। सोचकर जवाब भेज देना।'

यह कहते हुए सेठजी उठे और चले गये। इन्दुमती समझ गयी कि अन्तिम वाक्य का अर्थ यह भी है कि सेठजी मुझे बिना बच्चा गोद लिये और अपना सारा जीवन तथा समय उस बच्चे को दिये कानपुर में किसी तरह का स्वच्छन्द जीवन बिताते हुए रखना नही चाहते। इन्दुमती दूसरे दिन ही लखनऊ लौट आयी।

कानपुर मे काग्रेस के अधिवेशन के बाद ही चुनाव की तैयारियाँ आरम्भ हुई, और काग्रेसवादियो में मतभेद बढना भी शुरू हो गया। सन् २२ मे सत्याग्रह जाँच कमेटी की रिपोर्ट के पश्चात् जिस प्रकार परिवर्तनवादी और अपरिवर्तन-वादी काग्रेस के ही दो दलो मे गाली-गलौज आरम्भ हुई थी, उसी की

पुनरावृत्ति होती जान पड़ी। इस बार एक तरफ काग्रेस थी और दूसरी तरफ स्वतन्त्र काग्रेस दल, प्रति सहयोगी दल इत्यादि काग्रेसवादियो के ही अन्य दल। काग्रेस के नेता थे प० मोतीलाल नेहरू और काग्रेस का विरोध करने वाले अन्य काग्रेसवादियो के इन दलो के नेता थे लाला लाजपतराय और प० मदनमोहन मालवीय आदि। इन दलो ने मुख्यत 'हिन्दू-हित' की बात उठायी। फिर सन् २२ के झगडे के बाद तो दिल्ली के काग्रेस के विशेष अधिवेशन मे परिवर्त्तन तथा अपरिवर्त्तनवादी दलो मे समझौता हो गया था, पर इस बार यह भी हुआ और इस खुले चुनाव मे काग्रेसवादी काग्रेसवादी के विरुद्ध ही खडे हो गये। कितनी व्यक्तिगत 'तू-तू' 'मै-मै' हुई। नेहरूजी और लालाजी ने भी एक दूसरे के खिलाफ क्या-क्या बका। महात्मा गान्धी तथा पुराने अपरिवर्त्तन दलवाले काग्रेसवादियो को चुनावो से कोई दिलचस्पी न होने के कारण वे सब खादी का विधायक कार्य करते हुए इस झगडे मे तटस्थ रहे। मोतीलालजी को इस समय सबसे अधिक सहायता दो प्रान्तो से मिली—मद्रास मे और मध्य प्रान्त के उत्तरीय भाग मे। मद्रास मे वहाँ के प्रसिद्ध वकील श्रीनिवास आयगर इस समय पूरे बल के साथ काग्रेस में आ गये थे।

चुनाव के जब नतीजे निकले तब मालूम हुआ इस बार किसी भी प्रान्त में काग्रेस का बहुमत न था, पर हर जगह सबसे बड़ा दल काग्रेस का ही था। केन्द्रीय असेम्बली मे काग्रेस-सदस्यो की सख्या प्रायः उतनी ही थी जितनी इसके पहले की असेम्बली मे। आपसी झगडो मे इतना भी हो जाना बडी बात थी।

इन्दुमती जो सत्याग्रह जाँच कमेटी की रिपोर्ट के समय कौंसिल प्रवेश के इतने विरुद्ध थी, काग्रेस की तरफ से प्रान्तीय असेम्बली की मेम्बर हो गयी।

: २५ :

इन्दुमती का लखनऊ का उसका जीवन उसी प्रकार चल रहा था जिस तरह पति की मृत्यु के बाद उसने वहाँ का जीवन आरम्भ किया था। नित्य प्रति के उसके कार्यक्रम मे दो चीजे मुख्य रहती थी—क्लब जाना और ललितमोहन के चित्र बनाना। ललितमोहन के भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र तो धीरे-धीरे इतने बन गये थे कि अपने कमरे के अन्य सब चित्र हटाकर अब उसने ललित-मोहन के चित्रो को ही रखा था। वह इन चित्रो के सामने बैठकर गाने भी गाती। कौसिल उसके जीवन मे एक नयी चीज और आ गयी थी। उसका और रामस्वरूप का उसके कारिन्दे के द्वारा उसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अभी भी चलता था। अनेक पत्रो मे सेठजी ने जो बात कानपुर मे उसे कही थी, उसे बिना स्पष्ट किये सकेत से स्मरण दिलाया था, पर पहले काग्रेस के अधिवेशन और फिर चुनाव का बहाना ले उसने उसका उत्तर चुनाव के बाद देने के लिए लिखवा दिया था। लगभग सवा साल से वह ससुर से न मिली थी। और इस सवाल को टालती जा रही थी, लेकिन अब उसे स्वय ही इस विषय में कुछ न कुछ निर्णय करने की इच्छा होने लगी।

फरवरी का अन्त हो रहा था। हेमन्त बीतकर शिशिर ऋतु चल रहा थी, हेमन्त की शीत शिशिर में कम होती जा रही थी। वृक्ष पत्ते झड़ा रहे थे। पीपल, नीम, अजन, अमलतास आदि सबके पत्ते झड रहे थे। इन्दुमती का उद्यान भी सूखी पत्तियो से रोज भर-सा जाता। नित्य ही ये पत्तियाँ झाड़-बुहार कर साफ की जाती और नित्य फिर वही होता। एक दिन इन्दुमती अकेली उद्यान में एक कुण्ड के समीप बैठी-बैठी इन शुष्क पल्लवो का झडना देख रही थी, साथ ही वह कुण्ड की मछलियो को आटे की गोलियाँ खिला रही थी। कभी कोई मछली अपना सिर ऊँचा कर, कभी कोई पूँछ को हिला और कभी कोई पैतरा बदलकर इन गोलियो को लील रही थी। अधिकाश मछलियाँ लाल थी, कोई-कोई पीली, सफेद और काली भी। इनमे से कई अभी पूरी मछलियाँ नही हुई थी, बच्चे-बच्चियाँ थी। इन्दुमती कभी गिरी

और पडी हुई पत्तियों को देखती तथा कभा चपल और सजीव मछलियो को। एकाएक उसकी नजर पल्लवो से सर्वथा रहित वृक्षो पर पड़ी। उसके मन मे उठा, बहुत जल्दी पीपल कैसे चौडे-चौडे, हरे कच्छ पत्तो से भर जायगा। नीम की कैसी कोमल-कोमल पत्रावली निकल आयगी। अजन के झूगरो के समान कितने पत्ते उगेगे। और अमलतास मे तो बिना पत्तो के ही पीले-पीले फूल और लम्बी-लम्बी फलियाँ निकलेगी। शिशिर मे उद्भिज सृष्टि की खाली हुई यह गोद कितनी जल्दी भर जायगी। हाँ, जो वृक्षावली मर चुकी है, उसकी दूसरी बात है। और जब वह यह सोच रही थी तब हठात् उसकी दृष्टि कुण्ड मे पड़ते हुए अपने प्रतिबिम्ब पर पड़ी। अपनी छाया को ही सम्बोधन कर वह अपने मन में कहने लगी—'तू कहाँ मरी है, तू भी तो जीवित है। फिर तेरी गोद ही क्यो रिक्त रहे। पर ··पर क्या किसी दूसरे के बच्चे को गोद लेने से तेरी गोद भर सकती है ? पीपल मे नीम के पत्ते तो नही उग सकते। अंजन मे अमलतास के पीत-पुष्प और लम्बी-लम्बी फलियाँ तो नही निकल सकती। यदि यह उद्भिज सृष्टि फल-पुष्पादि उत्पन्न करने की शक्ति रखती है तो तेरी वह शक्ति कही चली थोडे ही गयी है और जब तक विज्ञान परमाणुओ की स्थिति वा उद्अणुओ और निअणुओ की गति की विकृतियो को ठीक करने का उपाय नही निकाल लेता, तब तक अमरता अपने ही रूप को, या जिसे व्यक्ति चाहता है उसी के स्वरूप को फिर से सन्तान के रूप मे प्रकट करने पर निर्भर है। दूसरे का गोद लिया हुआ बच्चा सर रामस्वरूप की सम्पत्ति का अधिकारी हो सकता है, उनका नाम भी उससे चल सकता है, लेकिन उससे तेरी गोद कैसे भरेगी ? वह ललितमोहन की निशानी कैसे माना जा सकेगा ?' और यह सोचते-सोचते उसकी दृष्टि फिर से मछलियो और उनके बच्चो पर पडी। एकाएक उसके मन मे विधवा-विवाह की बात उठी, किन्तु तुरन्त ही विवाह-सस्था के विरुद्ध उसके जो भाव थे, उन्होने उस विचार को आगे बढने से रोक दिया। फिर उसे ललितमोहन के साथ विवाह करने का जो नतीजा निकला था, वह याद आया, और यह भी उसके मन में उठा कि पुन. विवाह करने का अर्थ ललितमोहन की निशानी उत्पन्न करना न होकर ललितमोहन के स्थान पर ही दूसरे को बिठा देना होता है, जो उसके लिए सर्वथा असम्भव है। दूसरे का बच्चा गोद लेने से उसकी

गोद नही भरेगी और वह चाहती है, ललितमोहन की निशानी, जो विधवा-विवाह से सम्भव नही। वह बच्चा अवश्य चाहती है, पर अपने हाड-मास से उत्पन्न हुआ और ललितमोहन की निशानी के रूप मे। ललितमोहन चल दिया, अत बिना ललितमोहन के स्थान पर किसी को बिठाये उसकी यह इच्छा पूरी कैसे हो ? उसने रामायण, महाभारत, पुराण आदि नही पढे थे, पर ऐसा शिक्षित हिन्दू कौन है, जो इन ग्रन्थो की मुख्य कथाएँ न जानता हो ? उसे इन प्राचीन पुस्तको मे वर्णित नियोग की कुछ कथाएँ याद आयी। चित्रागद और विचित्रवीर्य के मरण पर वेदव्यास के नियोग से उनकी पत्नियो के धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए थे। बिना किसी को ललितमोहन के स्थान पर बिठाये यदि वह नियोग द्वारा सन्तान प्राप्त करे तो ? पर यह बात भी उसके मन मे बहुत देर तक न ठहर सकी। न जाने कितने दिन उसे इस नियोग का प्रयोग करना पडे और विवाह-सस्था मे विश्वास न रहते हुए भी ललितमोहन का आज भी उस पर ऐसा आधिपत्य था कि ललितमोहन के सिवा किसी से उस प्रकार के शारीरिक ससर्ग की कल्पना ने ही उसके मन मे महाघृणा उत्पन्न कर दी। बिना विवाह, बिना नियोग, बिना किसी के शारीरिक ससर्ग के सन्तान की इच्छा ! छब्बीस वर्ष की उम्र मे छोटे से बालक के समान चन्द्रखिलौना प्राप्त करने के सिवा और इसे क्या कहा जा सकता है ? उसके मन मे एकाएक उठा—पायस-पान से जिस प्रकार कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा को राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न हो गये थे, अपने तन के मैल का पुतला बना पार्वती ने जिस तरह गणेश को पैदा कर लिया था, उस जमाने मे किसी की नाक, किसी के कान से जैसे बच्चे प्रकट हो जाते थे, कई के तो इच्छा करने से ही—'मानस पुत्र' वैसा ही यदि कोई उपाय निकल आता। और ऐसी बात सोचने पर उसे स्वय ही अपनी मूर्खता पर हँसी आये बिना न रही। घर लौटकर उसने निश्चय किया कि एक बार सतति-विज्ञान पर कुछ पुस्तके पढना अवश्य चाहिए ; शायद कोई रास्ता निकल सके। कोई विचार मन मे आने के पश्चात् वह कार्यरूप मे परिणत न हो, यह तो इन्दुमती के लिए सम्भव ही न था। उसने इस विषय पर कुछ पुस्तके पढना आरम्भ किया।

जैसे-जैसे इन्दुमती इस सम्बन्ध मे पढती उसका विषय से अनुराग बढता जाता। किसी भी तरह सन्तान पाने की उसकी इच्छा अधिकाधिक तीव्र होती

जाती। धीरे-धीरे वह माँ बनने के लिए विकल हो उठी। इस विकलता मे उसकी कल्पना इतनी सक्रिय हो चली कि ललितमोहन की आकृति का एक बच्चा उसके मानसिक नेत्रो के आगे झूमने लगा। बच्चे के रूप मे वह अपने प्रियतम को पा जायगी इस आशा से वह आनन्द-विभोर हो उठी। ऐसी मानसिक अवस्था मे अनेक बच्चो की आकृतियाँ उसके नेत्रो के सामने से चल-चित्र की तरह तेजी से गुजरने लगी। सभी बच्चो की आकृतियो का मिलान वह उनके माँ-बाप से करती और यह सोचकर प्रसन्न होती कि अधिकाश बच्चे अपने माँ बाप के अनुरूप ही होते है। तो फिर अवश्य ही उसका बच्चा उसकी इच्छा के अनुरूप होगा। लेकिन इसे वह इतनी सरलता से न मान सकी। सचमुच उसकी कामना थी बच्चे के रूप मे ललितमोहन को पाने की। इसलिए उसने अब आनुवशिक विज्ञान (Heredity) पढना शुरू किया।

भिन्न-भिन्न मतो के रहने पर भी अधिकाश का मत इन्दुमती को इसी पक्ष का दीखा कि सन्तान बहुत दूर तक माता-पिता के अनुरूप ही होती है स्वरूप और मत दोनो ही दृष्टियो से।

परन्तु पुरुष और स्त्री के शारीरिक सम्पर्क के बिना बच्चा पैदा करने की कोई भी विधि इस सारे साहित्य मे न मिल सकी। इस शारीरिक सम्पर्क के लिए इन्दुमती तैयार न थी अत बहुत समय तक बच्चे का काल्पनिक रूप ही उसके सामने घूमता रहा, पर वह काल्पनिक वस्तु प्रत्यक्ष मे उसे किस प्रकार प्राप्त हो इसका कोई उपाय उसे न मिल सका। इसी समय एक दिन उसे एक अग्रेजी पत्र में एक लेख पढने को मिला, जिसका शीर्षक था—

'आर्टिफिशल इनसेमिनेशन' अर्थात् 'कृत्रिम गर्भाधान'।

लेख मे कृत्रिम गर्भाधान का इतिहास, उसकी वर्तमान परिस्थिति और इससे सम्बन्ध रखने वाली सभी बाते थी।

इस लेख को पढकर इन्दुमती हर्ष से उछल पडी, उसने मन मे विचारा ही नही, जोर से कहना शुरू किया—'तो · तो बिना·· बिना पुनर्विवाह के, बिना · बिना नियोग के, बिना ··बिना किसी के उस प्रकार के शारीरिक ससर्ग के, मेरी · हाँ, मेरी गोद भर सकती है।' कुछ रुककर वह फिर जोर से बोली—'और वह बच्चा या बच्ची···वह···वह सतान भी मेरी मनोभावनाओ के अनुसार ललितमोहन · ठीक ठीक ललितमोहन के अनुरूप भी हो सकती

है।' फिर वह ठहर गयी और फिर उसने उसी प्रकार के स्वर मे कहा—'यदि ··यदि मेरा मन · मेरा ओत-प्रोत··मेरा सभी कुछ आज भी ललित-मोहन मय है तो·· तो उस सतान को उनके समान·· ठीक उनके सदृश होना ही चाहिए। · आह ! आज उनके चित्र ही जब मुझे इतनी शान्ति देते है, मेरे सूने··हाँ, मेरे शून्य ससार को इतनी दूर तक भर देते है, तो · अगर मै अपनी सतान के रूप मे फिर फिर से उन्हे पा जाऊँ ! कितना ··कितना सुखी जीवन हो जायगा मेरा !' और अब इन्दुमती के हृदय की गहरी से गहरी सतह से संतान-प्राप्ति की इच्छा ने एक विचित्र प्रकार की आवाज के रूप मे उठ उसकी सारी ज्ञानेन्द्रियो को व्याप्त कर लिया। यह आवाज ऐसी आवाज थी जो स्त्रियो के हृदय में ही उठ सकती है।

वह उस पत्र को लिये हुए उसी रात्रि को डॉक्टर त्रिलोकीनाथ के पास पहुँची।

डॉक्टर त्रिलोकीनाथ अपने दवाखाने से लौट, हाथ-मुँह धो, खाना खाकर बैठा हुआ एक पुस्तक पढ रहा था कि इन्दुमती ने उसके कमरे में प्रवेश किया। रात्रि के समय इन्दुमती अब तक कभी उसके यहाँ न आयी थी, अत· उसे इन्दुमती के इस समय आने पर कुछ आश्चर्य हुआ। उसने नम्रता से इन्दुमती का स्वागत कर उसे दूसरी कुर्सी पर बिठाया। इन्दुमती उसके दवाखाने तो गयी थी, पर मकान पर नही। उसने चारो तरफ से कमरे को देखा। कितना सादा कमरा और उसी के साथ कितना स्वच्छ। कितना कम सामान था उस कमरे मे। इन्दुमती ने उस पत्र का वह लेख डॉक्टर त्रिलोकीनाथ को दिखा, यह कहते हुए उसे वह पत्र दिया—'जरा इसे पढेगे ?'

त्रिलोकीनाथ ने पत्र ले लिया और सरसरी तौर पर लेख को देखते हुए कहा—'मै इसे पढ चुका हूँ, श्रीमतीजी, और इसी को नही, इस विषय पर मैने और भी बहुत सा साहित्य पढा है।'

'तो इस प्रकार बच्चे पैदा किये जा सकते है ?' कुछ आराम से कुरसी पर टिकते हुए इन्दुमती बोली।

'क्यो नही ? यह तो बहुत ही साधारण-सी बात है। अमेरिका मे तथा अन्य अनेक देशो मे पशुवर्ग में तो इस पद्धति का बड़ा सफल प्रयोग हुआ है। विज्ञान ने अगर नाश के इतने आयोजन किये है तो निर्माण की तरफ उसकी नजर न हो, यह थोडे ही है।'

निश्चित की हुई किसी बात में सकोच करना इन्दुमती न जानती थी। उसने बिना किसी तरह की झिझक के सीधे-सीधे कहा—'तो, डॉक्टर साहब, मै इसी पद्धति से एक बच्चा चाहती हूँ।

त्रिलोकीनाथ ऐसा चौका कि वह पत्र उसके हाथ से गिर पडा। वह कुछ बोल ही न सका और मुँह कुछ फाड़ एकटक इन्दुमती की ओर देखने लगा।

इन्दुमती से त्रिलोकीनाथ का आश्चर्य छिपा न रहा। उसने हँसते हुए कहा—'आपको मेरी बात पर ताज्जुब हुआ ?'

'मै अभी भी समझता हूँ कि आप विज्ञान का और मेरा दोनो का शायद मजाक उड़ा रही है।'

'मजाक उड़ाना तो आप तब कह सकते थे, जब मै इस पर विश्वास न करती। मुझे यकीन है कि यह हो सकता है और इसीलिए मै आपके पास आयी हूँ।'

'पर पर, श्रीमतीजी, आप···आप इस पद्धति से···' आगे त्रिलोकीनाथ कुछ न कह सका।

'हाँ, मै इसी पद्धति से बच्चा चाहती हूँ।' इन्दुमती बोली। कुछ रुककर वह आगे बढी—'मै पत्नीत्व मे विश्वास न करती थी, इतने पर भी मैने विवाह किया, मुझे मातृत्व मे भी विश्वास न था, पर मै देखती हूँ कि बिना बच्चे के मेरा सारा जीवन नीरस है।'

'तो आप तो प्रगतिवादी है। अगर बच्चा ही चाहिए तो फिर फिर से · क्षमा कीजिए, तो निवेदन करूँ।' बहुत झिझकते हुए त्रिलोकीनाथ ने कहा।

'फिर से विवाह कर लूँ, आप यह कहना चाहते होगे ?'

'जी हाँ।'

'पर, त्रिलोकीनाथजी, मेरे प्रथम पति के स्थान पर किसी को भी बिठाना मेरे लिए असम्भव है। सन्तति की उत्कट इच्छा होने पर मैने सारे विषय पर हर दृष्टिकोण से विचार किया। विवाह-सस्था पर विश्वास न होते हुए भी मैने पुनर्विवाह की बात सोची। पुरानी नियोग-पद्धति भी मेरे दिमाग में आयी। लेकिन फिर से विवाह तो दूर रहा, मेरे लिए यह भी सम्भव नहीं

कि मै किसी से उस तरह का शारीरिक सम्पर्क कर सकूँ। आज मेरे पति नही है, पर आज भी उन्ही से मेरा जीवन ओत-प्रोत है और अगर मै सन्तति चाहती हूँ तो भी इसीलिए कि सन्तति के रूप मे मैं उन्हे ही फिर से प्राप्त करना चाहती हूँ। मैने इधर सन्तति-विज्ञान पर बहुत-कुछ पढा है और अपनी हार्दिक अवस्था देखते हुए मुझे विश्वास है कि यदि इस पद्धति से मुझे अच्छे कीटाणु मिल जायँ तथा बच्चा पैदा हो सके, तो मै उस बच्चे के रूप में उन्ही को पा सकूँगी।'

त्रिलोकीनाथ गम्भीर विचार मे डूब गया। इन्दुमती की इस पति-परायणता पर उसके मन मे इन्दुमती के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह कोई इन्द्रियो के तोष के लिए, किसी ऐहिक सुख की इच्छा से त्रिलोकीनाथ के पास नही आयी थी। त्रिलोकीनाथ वैज्ञानिक था अत इस पद्धति से बच्चा हो सकता है, इसे वह जानता था। बच्चे की गढन मे माता की भावनाओ का कितनी दूर तक हाथ रहता है, यह भी विज्ञान के आधार पर ही वह मानता था, पर इसी के साथ समाज मे स्थापित नैतिक बन्धनो मे भी उसे विश्वास था। आज इन्दुमती के समान पति-परायणा स्त्री पति की ही पुत्र के रूप मे पुनरागमन की इच्छा से इस पद्धति का आश्रय लेना चाहती थी, कल व्यभिचारिणी अपना व्यभिचार छिपाने के लिए भी यही कर सकती थी और तब तो समाज मे नैतिकता के स्थान पर अनीति का ही दौरदौरा हो जायगा।

इस उधेडबुन मे लगे रहने के कारण जब त्रिलोकीनाथ कुछ देर तक कुछ न बोला, तब इन्दुमती ने फिर कहा—'त्रिलोकीनाथजी, आप मेरे स्वभाव से भली भाँति परिचित है। किसी बात पर निश्चय कर लेने के पश्चात् मै उस निर्णय को बदलना नही जानती। महीनो के सोच-विचार के उपरान्त मैने यह निश्चय किया है। आपके पास मै इसलिए आयी हूँ कि आप मेरे सहपाठी रहे है। मुझे अच्छी तरह जानते है। आपने मुझ से कहा भी था कि जब जरूरत हो तब मै आपको कष्ट दे सकती हूँ। मैने यह भी सोचा था कि आप अच्छे कीटाणुओ का भी प्रबन्ध कर सकेंगे, जो हर तरह के रोगादि से मुक्त हो। लेकिन मै आपको किसी असमजस मे नही डालना चाहती। अगर आप मेरे इस कार्य को न कर सके, तो मुझे स्पष्ट कह दे। रुपये लेकर तो कोई भी डॉक्टर यह कर देगा।' इन्दुमती चुप हो त्रिलोकीनाथ की ओर

देखने लगी।

धीरे-धीरे त्रिलोकीनाथ ने कहा—'परन्तु आपको यह विचार तो करना ही होगा कि आपका यह निर्णय नैतिक दृष्टि से…'

बीच मे ही इन्दुमती ने कहा—'नैतिक दृष्टि से ! कैसी नैतिक दृष्टि ? डॉक्टर, नैतिक दृष्टि सदा बदलती रहती है। इन भिन्न-भिन्न दृष्टियो को मैं उन बीमारियो के समान समझती हूँ जिनका असर सिर्फ बच्चो पर हो सकता है, जैसे—जूडा, बोदरी माता इत्यादि। और अधिकाश व्यक्ति जीवन भर समझ में बच्चे हा रहते है।'

'पर सामाजिक दृष्टि से भी कहाँ तक उचित…'

बीच मे ही इन्दुमती खिल्ली-सी उडाती हुई बोली—'सामाजिक दृष्टि ! सामाजिक दृष्टि से मै कभी किसी चीज को देख ही नही सकती। किसी गृहस्थ स्त्री का नाटक मे पार्ट लेना भी समाज नही देख सकता था। मारवाड़ी और कायस्थ मे विवाह हो, यह भी समाज को कब मान्य था ? समाज में स्त्रियो का किसी क्लब का मेम्बर होना भी दूषित चीज मानी जाती थी ! पति के मरने पर पत्नी के साल भर तक घर से निकलने मे भी समाज को आपत्ति थी। और समाज का एक टुकडा यह भी चाहता था कि बिना रोना आये ही मै किराये की रोनेवालियो के साथ बैठकर साल भर तक रोज प्रात काल रोऊँ।'

'लेकिन इन छोटी-छोटी वातो मे और जो बात आप चाहती है, उसमे अन्तर ‥'

इन्दुमती से फिर बीच मे ही बोले बिना न रहा गया—'तो विधवा-विवाह समाज कुछ दिन पहले वर्जित समझता था, आज भी बहुजन समाज अनुचित मानता है, वह मै कर लूँ तो कोई आपत्ति न होगी। नियोग जो पहले प्रचलित था, वह भी शायद क्षम्य माना जायगा, लेकिन अपने पूर्व-पति में अनन्य निष्ठा रखते हुए किसी इन्द्रिय सुख की कामना से नही, पर केवल सन्तान की उत्पत्ति के हेतु, वरन् गये हुए पति की पुन प्राप्ति की इच्छा से पिचकारी का आश्रय समाज न बर्दाश्त कर सकेगा।'

'परन्तु, श्रीमतीजी, क्षमा कीजिए, यदि मै स्पष्ट कहूँ। अगर समाज इसे बर्दाश्त करता है तो व्यभिचारिणियो को भी अपना व्यभिचार ढाँकने के लिए एक शस्त्र मिल जाता है।'

'जैसे अभी व्यभिचार होता ही न होगा ? उसे ढाँकने के प्रयत्न गर्भपात, भ्रूण-हत्याएँ न हो रही होगी ?'

त्रिलोकीनाथ फिर चुप होकर सोचने लगा। इस बार उसका सिर झुका हुआ था। वह किस वेग से विचार कर रहा था, यह उसकी कनपटियो की नसों के रह-रहकर उछलने से जान पड़ता था। इन्दुमती उसकी ओर देख रही थी।

कुछ देर बाद इन्दुमती ने उठते हुए कहा—'अच्छी तरह विचार कर मुझे कल तक जवाब भिजवा दीजिएगा। जैसा मैने कहा, मै आपको असमजस मे नही डालना चाहूँगी, पर मेरा निश्चय अटल है। आपका उत्तर पाने पर किसी दूसरे डॉक्टर की शरण लूँगी।'

त्रिलोकीनाथ जो खड़ा हो गया था, गम्भीरता से सोचते हुए बोला—'मुझे एक हफ्ते का समय दीजिए। इतनी बड़ी बात का निर्णय मै एक दिन मे न कर सकूँगा।'

'अच्छी बात है, मै एक सप्ताह तक आपकी प्रतीक्षा करूँगी।' कुछ ठहरकर उसने कहा—'देखिए, डॉक्टर, भूत को देखते-देखते मै स्वय भूत बनती जा रही हूँ। मुझे चाहिए भविष्य, उज्ज्वल भविष्य।'

इन्दुमती ने चलते हुए उस पत्र को उठा लिया, जो उसने त्रिलोकीनाथ को दिया था और जो त्रिलोकीनाथ के हाथ से गिर पडा था। त्रिलोकीनाथ उसे मोटर तक पहुँचाने गया।

एक हफ्ते तक यद्यपि त्रिलोकीनाथ का रोजमर्रा का काम चलता रहा तथापि इन्दुमती को उसे जो उत्तर देना था, वही उसके दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न था। जीवन में शायद किसी प्रश्न ने उसके मन में इस प्रकार की चिन्ता की उत्पत्ति न की थी। उसके सेवाव्रत मे चिन्ता का कोई स्थान न था, वह थी निस्पृह। डॉक्टरी पेशे ने भी उसकी इस अनासक्तिपूर्ण मानसिक अवस्था मे उसे मदद पहुँचायी थी। जिनका वह इलाज करता, वह सभी अच्छे हो जाते, यह नही, कई को उसका इलाज माफिक नही भी आता, कई मर भी जाते, पर उसे इसकी चिन्ता न होती, कम डॉक्टरो को यह चिन्ता होती भी है, पर जिन डॉक्टरो के कुटुम्ब होते है, वे अपने कुटुम्बियो की बीमारी मे निस्पृह नही रह पाते। लोभी, लालची डॉक्टर तो चिन्ता का बण्डल ही बने

रहते है। त्रिलोकीनाथ का न कुटुम्ब था और न उसे किसी प्रकार का लोभ-लालच। जन्म, विकास और नाश जिस तरह निसर्ग की कृति पर कोई प्रभाव नही डालते और उसका चक्र, अविरल रूप से चला करता है, वैसा ही त्रिलोकीनाथ का सेवा-कार्य चला करता था। अभी भी उसके नित्य के कार्य मे कोई अव्यवस्था नही हुई, पर उसका मन चिन्तित हो उठा। इन्दुमती के स्वभाव को वह भली भाँति जानता था। उसे मालूम था कि इन्दुमती ने जो ठान लिया है, उससे वह विचलित होनेवाली नही। इन्दुमती को समझाकर उसके निश्चय से डिगाने की उसमे शक्ति नही, यह उससे छिपा न था। त्रिलोकीनाथ के सामने दो ही रास्ते थे—इन्दुमती की इच्छा पूर्ण करना या उसे किसी दूसरे डॉक्टर के पास जाने देना। विज्ञान और वेदान्त दोनो को समझनेवाले त्रिलोकीनाथ के हृदय मे इन्दुमती का जो स्थान था, उसे वह अब तक स्वय शायद न समझ सका था। इसीलिए उसके मन मे यह सघर्ष था। कभी वह सोचता—'मै यदि समाज के नैतिक बन्धनो को उचित मानता हूँ तो उन बन्धनो के तोड़ने की किसी कृति से मुझे सम्पर्क न रखना चाहिए। इसमे शक नही व्यभिचार अभी भी होता है, गर्भपात और भ्रूणहत्याएँ भी होती है; पर मैने क्या कभी व्यभिचार की ओर कदम उठाया, डॉक्टर होते हुए भी मैने किसी का गर्भपात नही कराया मैने किसी भ्रूणहत्या मे योग नही दिया। मनुष्य सिर्फ अपने कृत्यो के लिए जिम्मेदार है। समस्त समाज, सारी दुनियाँ का उत्तरदायित्व कोई नही ले सकता।' पर ज्यो ही वह निर्णय करता कि उसे इन्दुमती को इकार कर देना चाहिए, त्यो ही उसके मन मे इन्दुमती के किसी दूसरे डॉक्टर के पास जाने की बात उठती। वह विचारने लगता—'न जाने वह डॉक्टर कैसा होगा, कहाँ से "टेस्ट ट्यूब" बनाकर लायगा। उसके कीटाणुओ मे किसी भयानक रोग के कीटाणु भी होना असम्भव नही, और जब यह बात फैलेगी, तब न मालूम समाज को भी वह क्या कहेगा। इन्दुमती ने जब मेरे पास आकर मुझसे मदद चाही है तो, जो मै बिना माँगे हुए भी लोगो की हर तरह की सहायता करने का प्रयत्न करता हूँ, वही मै माँगने पर भी मदद न दूँ और इन्दुमती को।' "और इन्दुमती को।" ये साढे सात अक्षर उसके मन में आते ही इन्दुमती के तथा अपने सम्बन्ध के विषय मे अगणित बाते उसके हृदय मे उठने लगती, पर इस सम्बन्ध में वह किसी निर्णय पर न

पहुँच पाता ।

इसी विचारधारा की लहरो मे डूबते-उतराते, आवर्तो मे चक्कर काटते, त्रिलोकीनाथ का एक हफ्ता बीत गया। त्रिलोकीनाथ बहुत होशियार और सावधान डॉक्टर था। अपने विषय का वह सदा अध्ययन भी करता रहता और तत्सम्बन्धी नये से नया साहित्य पढता। इस एक सप्ताह मे उसे कृत्रिम गर्भाधान के सम्बन्ध मे जितना भी साहित्य उपलब्ध हो सका उसने सब पढा। सातवे दिन प्रात काल जब उसने नहा-धोकर अपना मुख शीशे मे देखा तब वह एकाएक अपने आप से कह उठा—'अच्छी बात है तो अब बिना पत्नी के तू पिता बन और बिना पति के इन्दुमती माता बने।' अपने आप से यह कह उसने इस क्रिया के लिए नये डॉक्टरी औजार खरीदे।

यदि मनुष्य नतीजे भोगने को तैयार हो तो इस बात के विवेक रखने की भी शायद जरूरत नही है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नही। हाँ, यह कह देना जितना सरल है उतना भोगना नही। पर त्रिलोकीनाथ के सदृश व्यक्ति यदि अपनी कृति के किसी नतीजे को भोगने के लिए अपने आपको तैयार कर ले तो फिर वह उसे भोग लेता है। इन्दुमती के इस कृत्रिम गर्भाधान के सारे नतीजे को भोगने के लिए त्रिलोकीनाथ ने अपने को तैयार कर लिया। अग्रेजी के प्रसिद्ध साहित्यिक समरसैट मोघम ने एक स्थान पर लिखा है कि मनुष्य को अपनी कृतियो के लिए तीन बातो का ध्यान रखना पडता है—जिस ससार मे वह रहता है उससे उसका सम्बन्ध, जिन व्यक्तियो के बीच वह रहता है उनसे उसका सम्बन्ध, और अपने आप से उनका सम्बन्ध। त्रिलोकीनाथ अपनी हर कृति के सम्बन्ध मे इन तीन बातो पर ध्यान रखता था पर सबसे अधिक अन्तिम बात पर। आज के निर्णय पर भी इसने तीसरी बात पर ही सबसे अधिक ध्यान रखा था।

शस्त्र क्रिया समाप्त हुई। जिस वक्त वह कृत्य हो रहा था, इन्दुमती अपने कमरे के चारो ओर लगे अपने ही बनाये ललितमोहन के चित्रो मे अपने आपको भूल गयी थी।

दो महीने के बाद एक दिन प्रातःकाल जॉचने पर मालूम हुआ कि शस्त्र-क्रिया सफल हो गयी थी। इन्दुमती को गर्भ था। जिस समय जाँच का नतीजा त्रिलोकीनाथ ने इन्दुमती को बताया, उस वक्त इन्दुमती के हर्ष का ठिकाना

न रहा। जिस दिन उसे यह पता लगा, उस दिन वह कैसी नीद सोयी। न जाने कितने समय के बाद उसे ऐसी नीद आयी थी। इन्दुमती को ललितमोहन का दु:ख आज भी था, पर आज उसकी उद्विग्नता चली गयी। दु:खी को नीद आ जाती है, पर उद्विग्न को नही।

: २६ :

इन्दुमती के गर्भाधान के बाद उसकी दृष्टि से उसके सामने अनेक छोटी-छोटी समस्याएँ उठी। पहला प्रश्न था कि उसे अब अपने ससुर को गोद के सम्बन्ध मे क्या लिखना चाहिए, दूसरा था उसे माँ को क्या कहना चाहिए और तीसरा था समाज का सामना उसे किस तरह करना चाहिए? एक तो वह जिस प्रकार अपने पिता द्वारा पाल-पोस कर बडी की गयी थी, उसके कारण, दूसरे उसने अपना जीवन अब तक जिस तरह बिताया था उसकी वजह से और तीसरे गर्भ ने उसके मन मे इस समय जो हर्ष तथा उत्साह उत्पन्न किया था, उसकी प्रेरणा से ये सारे सवाल उसने बहुत जल्दी तय कर डाले।

ससुर के सम्बन्ध मे उसने निर्णय किया कि उन्हे सारा विषय साफ-साफ लिखकर उनसे पूछेगी कि उन्हे उसके द्वारा उत्पन्न किया हुआ अपना पौत्र यदि स्वीकार हो तो वह कानपुर आकर उनकी आज्ञानुसार उनके महल मे रह उस पौत्र का पालन-पोषण करने को तैयार है। अगर उन्हे उसकी यह कार्रवाई पसन्द नही तो वे उसे दिये हुए जेवर के सातो सैट और दस हजार का कुल कपडा, जो उन्ही के महल मे रखा है, वापस सँभाल ले, जिसे चाहे उसे गोद ले आवे, पर यह वे समझ ले कि उनका गोद लाया हुआ लडका उनकी निर्जीव सम्पत्ति का भले ही उत्तराधिकारी हो जाय पर वह ललितमोहन की निशानी कभी न हो सकेगा।

माँ के विषय मे उसने निश्चय किया कि वह माँ को भी सब सच्चा हाल बता देगी। वे उसे सदा कहा करती थी कि स्त्री का यथार्थ विकास पत्नीत्व और

मातृत्व में ही है। दोनो मे स्वत का विश्वास न रहते हुए भी उसने अपने पति के जीवित रहते और पति की मृत्यु के पश्चात् भी अपने पत्नीत्व का आदर्श रूप से पालन किया है और उसी प्रकार की भावनाओ से वह मातृत्व की ओर अग्रसर हो रही है। जो कुछ उसने किया है वह अगर माँ को भी रुचिकर न जान पडा तो यद्यपि उसके पिता सम्पत्ति उसे दे गये है तो भी वह उस धन-दौलत को माँ के पास छोड़, इतना ही नही, कानून से जिस तरह वे चाहेगी उसकी लिखा-पढी कर, घर से निकल जायगी। वह सादा जीवन बिताना भी ललितमोहन के साथ सीख चुकी है और उस जीवन के लिए जितनी आय की जरूरत है उतना सूत कात, कपडा बुन, कसीदा कर, लड़कियो को पढा-लिखा कमाने की क्षमता रखती है।

समाज के बारे मे तो इन्दुमती को अपना मत निश्चित करने मे कोई कठिनाई ही न जान पडी। वह समाज के भिन्न-भिन्न सभ्य कहे जानेवाले अगो को कालेज, काग्रेस, क्लब, कौसिल अनेक स्थलो पर देख चुकी थी। अपने सामने उसने कही भी किसी को कोई महत्त्व न दिया था। कौसिल के मेम्बर होने के बाद तो उसने कई नेताओ और डिप्टी महात्माओ को नजदीक से देखा था। उनके चरित्रो को जानती थी। इस समाज के सामने उसे आँखे या सिर झुकाने का प्रश्न ही कहाँ था? और समाज के सम्बन्ध मे जब वह यह सोच रही थी तब आप से आप उसमे फिर वही पुरानी उद्दण्डता तथा अकड लौट आयी। अकेले बैठे-बैठे ही उसने समाज के कई व्यक्तियो को याद कर-कर विचित्र तरह के मुँह बनाये, बिचकाये और खडे होकर अनेक बार इधर से उधर तथा उधर से इधर अकडकर चली।

उसे इस समय कितना याद आ रहा था अपने पिता का प्रधान उपदेश 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' अगर उसे गर्भ से सुख मिल रहा है तो वह दुनियाँ की क्या परवाह करती है?

और उसे कितना अखण्ड विश्वास था अपनी शुद्धता पर, अपनी निष्ठा पर, एव इस बात पर कि उसे ललितमोहन की सच्ची निशानी पुत्र के रूप मे मिलेगी ही, जो पुत्र ठीक ललितमोहन के समान होगा; रूप तथा गुण दोनों ही बातो मे।

समाज मे इन्दुमती के कृत्रिम गर्भाधान की बात के फैलने में बहुत समय न

लगा, क्योकि थोडे ही दिनो के अन्दर सर रामस्वरूप ने अपनी जाति-पचायत के सामने बहू को व्यभिचारिणी सिद्ध करते हुए उसे अपने घर मे लाकर रखने के लिए क्षमा-याचना का एक पत्र भेजा । उसके बाद ही वे पुन अपनी जाति मे ले लिये गये, इतना ही नही, फिर से अपनी जाति के सरपच हो गये । उन्होने बडी धूम-धाम से स्वय एक लडका गोद लिया, जिसका उत्सव इस तरह मनाया गया मानो ललितमोहन के सदृश ही उन्हे दूसरा पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ हो । ललितमोहन के शोक मे उन्होने जो काली पगडी बाँधी थी वह इस उत्सव मे बदल गयी और इस जलसे में सरकारी, गैर-सरकारी सभी तरह के लोग शामिल हुए । अपने नये लड़के से सर रामस्वरूप ने छोटे-बडे सभी सरकारी अफसरो से झुक-झुक कर सलामे करवायी और इस तरह रामस्वरूप फिर से सरकार के कृपा-भाजन बन गये । अफसरो ने भी इस नये लडके से राजभक्ति की आशा कर पुरानी बातो को भुला दिया । जातीय और सरकारी दोनो ही क्षेत्रो मे रामस्वरूप की फिर से ऐसी आवभगत आरम्भ हुई मानो उन क्षेत्रो में रामस्वरूप का स्थान सदा सुरक्षित था और किसी अन्य को वह स्थान दिया ही न जा सकता था । रामस्वरूप ने फिर से हर सरकारी और जातीय पचायत के कामो का समर्थन शुरू किया । सरकार का सिर्फ एक ही काम ऐसा था जिससे रामस्वरूप अप्रसन्न थे, और वह था नित्य-प्रति बढने वाला इनकमटैक्स ।

इस गोद नशीनी के बाद सर रामस्वरूप के जीवन में भी फिर से परिवर्तन आरम्भ हुआ । ललितमोहन के घर से निकलने के पश्चात् इस गोद नशीनी तक एक के बाद दूसरे धक्के ने उनके शरीर को जर्जर कर दिया था । उनकी रहन-सहन को बदल दिया था । वेश्याएँ विदा हो गयी थी ; खिजाब चला गया था ; इत्र, तेल ने भी छुट्टी ले ली थी । ललितमोहन के घर लौटने पर एक बार फिर से एक नये आनन्द का ज्वार उठा था, पर ललितमोहन की बीमारी तत्काल ही भाटा ले आयी थी और ललितमोहन की मृत्यु ने तो उन्हे छार-छार कर दिया था । उस मृत्यु का असर भी उन पर बहुत काल तक रहा, कुछ समय तो वर्णनातीत, लेकिन गोद नशीनी होते ही उनके जीवन ने पलटा खाया । अब उनकी अवस्था सत्तर वर्ष के ऊपर थी । शरीर अत्यन्त कृश था । बाल सन से सफेद हो गये थे, आँखो पर चश्मा लगता था, हाथ

काँपते थे। गोद नशीनी ने अवस्था नही घटायी, वह तो बढती ही गयी। शरीर भी मोटा नही हुआ। बालो मे भी कालापन न आया, चश्मा भी मौजूद रहा, हाथो का कम्प भी न गया, परन्तु मन एकदम बदल गया और मन के परिवर्तित होते ही शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातो मे भी परिवर्तन हो गया। उनके बाल मशीन से खस किये जाते थे, पर वे बढा लिये गये। उनमे खिजाब तो नही किया गया, पर फुलेल लगने लगा। इस उम्र मे भी वे झडे न थे, और उनका घनापन रामस्वरूप को महान् आनन्द देता। कानो मे इत्र के फोहे आ गये। चश्मे का काला फ्रेम रग-बिरगा हो गया। शरीर पर के सादे वस्त्र लखनऊ के चिकन के कामवाले वस्त्रो मे परिवर्तित हो गये। काँपते हुए हाथो की उँगलियाँ अँगूठियो से सुशोभित हो गयी। और सबसे बडी बात यह हुई कि वेश्याओ ने फिर से उनके महल मे प्रवेश किया। सत्तर वर्ष की उम्रवाले सर रामस्वरूप और यह वेश्या-सग! हवस! हाँ, हवस! विषय-वासना की यह वह प्यास थी जिसका अन्त कदाचित् मृत्यु मे ही होता है! पर्ल बक ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गुड अर्थ' मे एक स्थान पर लिखा है 'बुढापे का प्रेम कितनी हबस रखता है और फिर कितनी सरलता से सन्तुष्ट भी हो जाता है।' कितना सत्य है यह कथन! रामस्वरूप के इस समय के आचरण से इसकी सचाई ज्ञात होती है। वे अनेक बार अपने आप से कहते— 'मै सत्तर के ऊपर हूँ। पण के हुयो? धरम सास्त्रो में कलजुग मे भी एक सौ बीस बरस की उमर कही है।·· और···और मेरे घर मे तो उमर बढ रही है बढ! भाईजी (पिता) की अवस्था मरती बखत साठ की थी, दादाजी की पचास की, मै हूँ सत्तर का! ··पर ललित? ऊँह!···वह···छोडो उसकी बात! ···तो·· तो कलजुग मे एक सौ बीस बरस की उमर हो सकती है।· हे रुघनाथजी महाराज,·· आपकी इसी भगती के बाद भी मै एक सौ बीस बरस के पहले मर जास्यूँ?···यह धन, यह सुख, यह वैभव, सबका सब छूट जायगा? रुघनाथजी महाराज, घणी महनत, घणी कोसिस सूँ या सारी कमाई कीनी है, एड़ी को पसीनो चोटी और चोटी को पसीनो एडी तक ला-लाने! और इतनी जल्दी सिर्फ सत्तर बरस की अवस्था मे यह सब छूट जायगा? नही, नही, आपने तो मेरे सारे मनोरथ पूरे किये है। यह धन, यह वैभव, आप ही की किरपा के कारण·· पर महाराज, ललित ··ललित

की बीमारी के बखत की मेरी बिनती ?… उँह ।… छोडो, छोडो उसकी बात । वह तो पूरब जनम का दुश्मन पैदा हुआ था, बैर भँजाने के लिए । अरे इस गॉव मे ही वह सीताराम पचासी के ऊपर है और वह राधेश्याम तो नब्बे के ऊपर होगा । दोनो हट्टे-कट्टे । मेरा सरीर थोडा खराब हो गया, पर "हाथ कमाया कामडा दई ने दीजे दोस ।" उस ललित के कारण जिन्दगी के कितने बरस गये ? अरे राज और जाती मे मान जो सात सुखो मे दो सुख है वे भी चले गये । पर वे तो फिर लौटकर आ गये । यह सरीर फिर ठीक हो सकता है । हाजमा भर ठीक चाहिए और हाजमा दॉतो पर है, और दॉत मेरे बत्तीस के बत्तीस मौजूद ! … तो· तो मै एक सौ बीस बरस तक जी सकता हूँ ! · और एक सौ बीस बरस का हुआ तब तो अभी आधी ही बीती है ! …फिर जवानी कायम रखने मे सबसे बडी मदद देती है लुगायाँ ! जब ललित की मॉ मरी तब भी तो मन गिर गया था । मगल मुखियो ने ही फिर से मन हरा किया । ललित के कारण भी यही हुआ पर फिर · ठीक हो रहा हूँ । ·हो जाऊँगा, फिर ठीक हो जाऊँगा । रुघनाथजी की किरपा और इन मगल मुखियो का साथ फिर…फिर‥ सब ठीक कर देगा । और "जद तोड़ी सॉस तद तोडी आस" कही है । फिर मै तो मर नही रहा हूँ । हाल बिगड़ा ही क्या है ? बस प्यास, प्यास बनी रहे । प्यास ही जीना है और प्यास की बुझी हालत ही मौत ।'

धन की चाह को अवस्था बाधा नहीं पहुँचाती, क्योकि धन की चाह सर्वथा मानसिक होती है, पर शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली वासनाओ पर अवस्था का असर होता ही है । जैसे-जैसे इन्द्रियाँ शिथिल होती जाती है वैसे-वैसे ये वासनाएँ भी । अत इस अवस्था मे और शारीरिक स्थिति मे रामस्वरूप का यह वेश्या-सग कुछ आश्चर्यजनक अवश्य था, उन्हे इस अवस्था मे इस सग से पहले का-सा सुख मिलता हो, यह भी नही, पर सग छूटने से क्लेश हुआ था, उस क्लेश का स्मरण, उसका भय इस सग के फिर से लाने का कारण हुआ ।

रामस्वरूप इस नये परिवर्तन मे ललितमोहन के निकालने से लेकर अब तक के जीवन को धीरे-धीरे इतना भूल गये कि उन्होने यह भी विस्मृत कर दिया कि वे उसे भूल गये है । परन्तु अवस्था मे वे बूढे हो गये थे । बूढे होने

पर भी उनकी इच्छाएँ जवानो की सी थी। बिना जाने रामस्वरूप के लिए यह एक दुखमय परिस्थिति थी। अवस्था और इच्छाओ के असामजस्य से अधिक दुखदायी कदाचित् कोई स्थिति नही होती। फिर वे नित्य अपनी अवस्था का हिसाब भी लगाया करते। यद्यपि वे एक सौ बीस वर्ष जीने की कल्पना करते, और इस हिसाब से अभी उन्हे पचास वर्ष और जीना था तथापि उनके जीवन का अब जो एक-एक दिन जाता उसका हिसाब उनके अनजाने ही उनका मन लगाया करता। जहाँ युवावस्था मे बढती हुई उम्र पर कदाचित् ही ध्यान जाता है, वहाँ वृद्धावस्था मे मन हर क्षण उसी का हिसाब लगाया करता है।

इस समय कानपुर, लखनऊ और आस-पास के सारे सभ्य समाज मे दो ही चर्चाएँ थी—एक इन्दुमती की और दूसरी साइमन कमीशन की।

महान् सुचरित्र, सर्वस्व त्यागी ललितमोहन की पत्नी, लखनऊ के एक प्रधान वकील अवधबिहारीलाल की पुत्री, और कानपुर के अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक सर रामस्वरूप की पुत्रवधू व्यभिचारिणी! गर्भवती! हर जगह, हर सभा-सोसाइटी मे यही बात। काग्रेस क्षेत्रो मे भी यही चर्चा। कही दो भले कहे जानेवाले व्यक्ति भी मिल जायँ या बैठे हो तो इसी प्रसग पर वार्तालाप!

भारतीय राजनैतिक सुधारो पर विचार करने के लिये उसी समय सर जान साइमन की अध्यक्षता में ब्रिटिश सरकार ने एक 'कमीशन' नियुक्त किया था। कमीशन के सारे सदस्य 'सफेद' होने के कारण मिसर देश के शासन-सुधारो पर नियुक्त 'मिलनर कमीशन' के सदृश इस कमीशन के बहिष्कार की भी तैयारी हो रही थी। सर तेजबहादुर सप्रू के सदृश नरम नेता ने सबसे पहले इसके बायकाट के सवाल को उठाया था और काग्रेस तथा समस्त राजनैतिक दल इकट्ठे हो इस आन्दोलन मे भाग ले रहे थे। सारे पढे-लिखे समाज में दूसरी चर्चा इस प्रश्न पर थी। लेकिन जहाँ-जहाँ तक के लोग इन्दुमती, ललितमोहन, अवधबिहारीलाल और रामस्वरूप को जानते वहाँ-वहाँ तक तो कुछ दिनो तक इन्दुमती की बात ने साइमन कमीशन के बायकाट की चर्चा से भी अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया। ऐसे मौको पर सामाजिक सवालो को राजनैतिक प्रश्नो से भी अधिक प्रधानता प्राप्त हो जाती है।

एक दिन इन्दुमती के क्लब के तीन सदस्य ताश की टेबिल पर 'कटथ्रोट' खेल रहे थे। सभी चिन्तित रहते 'डमी' को लेने के लिए। पर 'डमी' से भी कही ज्यादा फिक्र इन महाशयो को इन्दुमती का था। खेल चल रहा था और बाते भी।

एक ने कहा—'वाह। वाह। क्या बात है। आँ जनाब ने खूब ही फर्माया। अजी हजरत, डॉक्टरी निकले भी सैकडो ही साल गुजर गये, पर आज तक तो कभी सुना नही कि रबर की नलियो से भी बच्चे पैदा हो सकते है।'

दूसरा बोला—'हुजूर आजी, रबर की नली की बात नही है, टैस्ट ट्यूब एक तरह की पिचकारी होती है।'

पहले व्यक्ति ने फिर कहा—'पिचकारी सही, सरकार, रबर की नली न सही, पिचकारी से कही कोई बच्चा हुआ है ऐसा किसी ने सुना ?'

तीसरे बगाली थे, उन्होने कहा—'आप रोबर की नोली और पिचकारी का बात करता है, हिन्दुओ का मोहा-भारत मे लिखा है कि बेदब्यास ऋषि का सामने से बिचित्रोबीर्ज और चित्रोगोद राजा का रानी और एकठो दोसी नोगा होकर निकोल गिया और उनका गोरभ रोह गिया।'

'तो आँ जनाब का फर्माना है कि इस वक्त भी कोई ऐसा ही रिसी इस मुल्क मे पैदा हुआ है जो रबर की नली या पिचकारी से बच्चा पैदा करता है।'

'पर इसमे ऋषि-महर्षि की जरूरत ही नहीं है। आपने क्या वजीरअली से उस सारे किस्से को नही सुना ?' दूसरे ने कहा।

'अजी छोडिए भी उस छोकरे की बात। दोनो भाई-बहन बने थे। मैं तो समझता हूँ कि वह बच्चा उसी छोकरे का है। कालेज मे प्रोफेसर हुआ है। इस तरह के लोग हमारे बच्चो को पढाकर अच्छे रास्ते पर ले जायँगे। लाहौलवलाकूवत्।' पहले ने अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा।

'मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि साइन्स से इस तरह की चीजे होना गैर-मुमकिन नही है।' दूसरा बोला।

तीसरे ने कहा—'और होम कहता हूँ दूसरा बात। साइन्स का आड मे दुनियाँ का सोब पाप छिपाने सकता है।'

'वा-वाह, क्या ठीक फर्माया है, सरकार ने।' पहला बोला—'मेरी तो यह राय है कि इन दोनो का हमारे क्लब का मेम्बर रहना हमारे क्लब की

बडी से बडी तौहीन है। जिस तरह भी हो इन दोनो को इस क्लब से निकाल देने की कोशिश करनी चाहिए।'

लखनऊ के जुडीशल कोर्ट के 'बाररूम' मे एक दिन यही चर्चा चल रही थी।

एक नौजवान वकील ने एक वृद्ध वकील से पूछा—'हाँ, बताइए, जनाब, कानून की दृष्टि से यह टैस्ट ट्यूब बच्चा किस श्रेणी मे आता है?'

एक दूसरा अधेड़ उम्र का पजाबी वकील बोला—'हाँ, यह इक्क बडा स्वाल है। इसे "इललैजिटीमेट चाइल्ड" सुबूत करना भी इक्क मुश्किल बात होगी।'

उस वृद्ध वकील ने उत्तर दिया—'क्यो? ललितमोहन को मरे तो कोई अढाई साल हो चुके। इतने दिनो तक गर्भ रह सकता है?'

एक अन्य वकील बोला—'नही, नही, यह बात नही है, लेकिन माँ का व्यभिचार सुबूत तो होना चाहिए न।'

'गर्भ ही व्यभिचार का सुबूत है।' एक दूसरे वकील ने कहा।

इसके पहले जो बोला था वही फिर बोला—'मामला इतना सरल नही है। जिसने यह कृत्रिम गर्भाधान किया है उसके इजहार होगे, और न जाने क्या-क्या होगा।'

वृद्ध वकील ने कहा—'जो कुछ हो, गजब हुआ है, इसमे शक नही, अवधबिहारीलाल का इतना बडा नाम इस छोकरी ने डुबा दिया। आप सब जानते ही है कि अवधबिहारी मेरे जानी दोस्तो मे थे।'

कुछ वकील एक साथ बोल उठे—'खूब, खूब जानते है!...अच्छी तरह... अच्छी तरह...।'

उसी वृद्ध वकील ने फिर कहा—'भाई मेरे, खुदा कहो, कुदरत कहो, कुछ भी कहो, जिसने दुनियाँ बनायी है, दुनियाँ मे सभी कुछ बनाया है, उसी ने आदमी और औरत को अलग-अलग तरह का बनाया है, लेकिन आजकल तो हम खुदा और कुदरत से भी आगे बढ जाना चाहते है।'

एक दूसरा बूढा वकील कहने लगा—'ईश्वर या कुदरत ने मर्द और औरतो को अलग-अलग ढग से बनाया है, इससे तो मै भी सहमत हूँ। औरत को कोमलता मिली है, डरनेवाला दिल मिला है। सस्कृत साहित्य मे उसके

सबोधनो मे "कोमलागी" "भीरु" न जाने ऐसे कितने शब्द है। अवधबिहारी-लाल ने अपनी लडकी को निसर्ग के प्रतिकूल दृढ, निर्भीक न जाने क्या-क्या बनाने की कोशिश की। मै तो कहता हूँ नारी अगर कोमलागी की जगह "दृढागी" हो जाय, "भीरु" के स्थान पर "निर्भीक" तो वह न औरत रह जायगी न मर्द।'

इस बूढे की बात सुन वहाँ सभी हँस पडे।

एक दिन दो काग्रेसवादी स्टेशन के 'रेस्टराँ' मे बात कर रहे थे।

एक ने कहा—'केवल ललितमोहन के नाम को नही, भाई, हमारी पवित्र काग्रेस तक के नाम को इस औरत ने बट्टा लगाया है। जहाँ एक ओर इस वक्त बारडोली के कर-बन्दी आन्दोलन की सफलता ने काग्रेस का सिर ऊँचा किया है, वही दूसरी तरफ इस इन्दुमती ने उसे झुका भी दिया है।'

दूसरे ने कहा—'इसमे कोई सन्देह है ? मैने तो जब उसकी इतनी रफ्त-जफ्त उस मुसलमान प्रोफेसर के साथ सुनी तभी मेरा सिर ठनका था। जहाँ किसी हिन्दू स्त्री के साथ कोई मुसलमान हुआ कि बस समझ लो कि वह गयी और फिर गयी।'

'और देखो तो कैसी ला-जवाब चीज टैस्ट ट्यूब की बात निकाली है।'

'पर कौन विश्वास करता है उस वाहियात बात पर।'

'अब सवाल यह है कि इस औरत को हमारी कौसिल और सारे काग्रेस सघटन से निकाला कैसे जाय ?'

दूसरा हँसता हुआ बोला—'पर क्यो जी मै तो अभी-अभी काग्रेस में आया हूँ, मैने तो उसे देखा नही, तुम तो सदा ही उसे कौसिल मे देखा करते हो, बहुत खूबसूरत है ?'

पहले ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'इसमे तो कोई सन्देह ही नही, लाखो मे ही नही, करोडो मे एक, और फिर सुन्दरता के साथ ही कैसा रोब है उसमें, बडे-बडे सेनापतियो मे भी कदाचित् वैसी अकड न होगी।'

'और ऐसी औरत के निकल जाने से तुम्हारी कौसिल, हमारा सारा कांग्रेस सघटन सूना न हो जायगा ?'

बातें इतनी बढ गयी थी कि वजीरअली ने सारे विषय पर अखबारो में एक व्योरेवार वक्तव्य दिया। अब तो आग में घी पड़ गया। पत्रो मे खूब ह

चर्चा शुरू हुई और होते-होते अन्त मे पत्रवाले डॉक्टर त्रिलोकीनाथ की मुलाकात के लिए पहुँचे। त्रिलोकीनाथ ने स्वीकार कर लिया कि 'कृत्रिम गर्भाधान' उसी ने किया है, और इसकी रिपोर्ट भी उसने 'रायल एकैडमी ऑफ साइन्स' और 'रायल कालेज फार मेडिसन' को भेज दी है। उस रिपोर्ट की प्रतिलिपि भी त्रिलोकीनाथ ने पत्रो को दे दी। पर त्रिलोकीनाथ के सदृश सर्वप्रिय और सर्वमान्य व्यक्ति की बात पर भी किसी को विश्वास नही हुआ, वरन् अधिकाश डॉक्टर त्रिलोकीनाथ का भी इन्दुमती से वैसे ही सम्बन्ध की चर्चा करने लगे जैसी वजीरअली के सम्बन्ध के विषय मे करते थे। धीरे-धीरे अनेक सभाएँ होना आरम्भ हुआ और उनमे इन्दुमती पर लानत के प्रस्ताव पास होना शुरू हुए।

चूँकि इन्दुमती का सार्वजनिक जीवन था इसीलिए यह सार्वजनिक विप्लव। और आश्चर्य यह था कि इन्दुमती के विरुद्ध इस आन्दोलन मे वे पढे-लिखे, अपने को आधुनिक कहनेवाले, तथा किसी भी नैतिक सिद्धान्त की मजाक उडानेवाले लोग सम्मिलित थे। किन्तु जितने अधिक आक्षेप इन्दुमती पर होने लगे उतने ही ज्यादा समाज के प्रति विद्रोह के भाव उसके मन मे उठने लगे। वह अपने को निरपराधिनी, पतिपरायणा, साध्वी सभी कुछ मानती थी। पिता के उस कथन से कि 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' इस समय उसे अत्यधिक सान्त्वना मिल रही थी। वह कथन उसके हृदय मे महान् साहस उत्पन्न कर रहा था। धीरे-धीरे समाज को घृणास्पद चीज समझ वह समाज से अधिकाधिक दूर हटने लगी। कौसिल, काग्रेस, क्लब सभी सस्थाओ से त्याग-पत्र दे, और इन त्याग-पत्रो मे अपनी कार्रवाई को अधिक से अधिक निर्दोष सिद्ध कर तथा इन संस्थाओ वा समाज को पेट भर गाली दे वह अपने गर्भ मे ही तल्लीन हो गयी।

समय बीत चला, क्रमश इन्दुमती के प्रसव का दिन समीप आया। डॉक्टर त्रिलोकीनाथ ने उसके मकान पर ही प्रसव का सारा आधुनिक प्रबन्ध कर दिया। आखिर समय आ ही पहुँचा और वह था बसत पचमी का दिन। लेडी डॉक्टर तथा डॉक्टर त्रिलोकीनाथ बुला लिये गये। सुलक्षणा आजकल अपने भजन-पूजन में इतनी तल्लीन हो गयी थी कि वे बिना अत्यधिक आवश्यकता के किसी से बात ही न करती थी, अत उन्हे न बुलाना ही उचित

समझा गया। इन्दुमती की प्रसव पीड़ा मे कितना दर्द, कितनी लज्जा, कितना हर्ष और कितनी आशा का सम्मिश्रण था।

अन्त मे डॉक्टरनी ने उसे पुत्र होने की सूचना दी। उसने उस अर्द्धमूर्छित अवस्था मे भी किस तरह आँखे फाड़-फाड़ कर नवजात शिशु को अवलोका। कितनी इच्छा थी उसे उस अर्द्धमूर्छित स्थिति मे भी यह देखने की कि वह शिशु ललितमोहन के समान है या नही। वह यह देखकर निराश हो गयी कि बच्चा ललितमोहन से जरा भी न मिलता था। वह सोचने लगी कि विज्ञान भी झूठा हो सकता है ? उसने पढा था माता के भावो के अनुरूप ही सन्तति होती है। पशुओ के गर्भाधान के समय उत्तम जाति और रूप के पशु माताओ के सामने खडे किये जाते है, यह भी उसे ज्ञात था। उसने गर्भाधान के समय केवल ललितमोहन के चित्रो को ही देखा था, उसी का चिन्तन किया था। फिर यह बच्चा ललितमोहन के सदृश क्यो न हुआ ? इस अर्द्धमूर्छित अवस्था मे इस विचार ने उसे उद्विग्न कर डाला , पर उसी समय उसके मन मे उठा—जन्म के समय ललितमोहन भी न जाने कैसा हो, बच्चो मे बडे होने पर परिवर्तन भी तो होता है। और ज्योही उसके मन मे यह बात उठी त्योही उसे विश्वास-सा हो गया कि बडे होने पर यह शिशु अवश्य ललितमोहन के समान हो जायगा।

समय पर इन्दुमती के बालक का नामकरण हुआ। इस नामकरण सस्कार मे डॉक्टर त्रिलोकीनाथ और वजीरअली के सिवा और कोई न आया। शिशु का नाम मयकमोहन रखा गया।

: २७ :

इन्दुमती को इस समय न राजनैतिक क्षेत्र, न सामाजिक क्षेत्र, सक्षेप में किसी सार्वजनिक कार्य से दिलचस्पी न थी , वह तल्लीन थी मयकमोहन, केवल मयकमोहन मे।

शिशु के पालन-पोषण, उसकी सेवा-सुश्रुषा मे इन्दुमती अपने आपको भी भूल गयी थी। पिता का कथन 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' उसने इस समय जिस तरह विस्मृत किया था, उस प्रकार शायद जीवन मे कभी नही, ललितमोहन के सग मे भी नही। प्रात काल से ले सायकाल तक और सायकाल से ले दूसरे प्रात काल तक मयकमोहन का ही कार्य उसका कार्य था।

उसे स्वय बच्चो के लालन-पालन का कोई अनुभव न था। उसके कोई बच्चा हुआ न था और उसके जन्म के पश्चात् उसकी माँ के भी नही। वह खुद किस तरह बडी की गयी थी इसका स्मरण, तीन वर्ष की उम्र के पहले का रहना, उसे सम्भव न था। सुलक्षणा जीवित रहते हुए भी इस दुनियाँ की वस्तु न रह गयी थी अत इन्दुमती ने त्रिलोकीनाथ की मार्फत एक निपुण 'आया' को नौकर रखा और उसको इतना अधिक वेतन दिया जितना उसे अन्य कही मिल सकना असम्भव था। इन्दुमती आया को सन्तुष्ट रखना चाहती थी कि वह उसकी नौकरी छोड दूसरी जगह जाने का विचार भी न करे। इतनी ज्यादा तनख्वाह देने का यही कारण था। पर इन्दुमती बच्चे को आया के हाथ मे सौप स्वय निश्चिन्त न हो जाना चाहती थी। अनुभवहीनता के कारण वह मयक के पालन-पोषण मे कोई गलती न कर बैठे, इसीलिए उसने आया को रखा था। आया के आने के पश्चात् भी वह बालक का सारा कार्य खुद ही करती और आया से केवल सहायता लेती थी।

स्थानीय खादी भण्डार से ही नही, दूर-दूर के खादी भण्डारो से नमूने मँगा-मँगा कर उसने मयक के लिए अच्छे से अच्छा ऊनी, रेशमी और सूती कपडा खरीदा था। वह स्वय भी खादी पहनती थी और मयकमोहन को तो अन्य किसी वस्त्र का स्पर्श तक न कराना चाहती थी, खादी को छोड़ ललितमोहन की अन्य कपडा न छूने की प्रतिज्ञा थी अत ललितमोहन के समान न रहने पर भी जिसे वह ललितमोहन का छोटा रूप मान रही थी उसे वह दूसरे किसी वस्त्र का कैसे स्पर्श कराती?

फिर शिशु का पालन-पोषण डॉक्टर त्रिलोकीनाथ की राय के अनुसार ठीक वैज्ञानिक ढग से हो रहा था। उसके कुछ उदाहरण लीजिए। एक बार दूध पिलाने के पश्चात् तीन घण्टे के पूर्व मयकमोहन को गाय का या डिब्बे

का दूध तो दूर रहा, माँ का दूध भी न पिलाया जाता था। गाय ऐसी रखी गयी थी जिसने सिर्फ तीन हफ्ते पहले बच्चा दिया था और फिर ढोर डॉक्टर ने उसकी जाँच कर ली थी कि वह सब तरह से निरोग है या नही। जिस शीशी से शिशु को दूध पिलाया जाता था वह हर बार 'एन्टीसैप्टिक' दवा को पानी मे मिलाकर धोयी जाती थी। दिन मे दो बार बच्चे की तेल की मालिश होती थी और मालिश के बाद गरम पानी में कपडे डुबाकर उसका शरीर पोछा जाता था। हफ्ते मे एक बार बालक का पेट साफ किया जाता था। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था कि जिस कमरे मे मयक रहता है उसकी ठीक तरह से सफाई-धुलाई होती है या नही। पूर्व और पश्चिम की आमने-सामने की खिड़कियाँ खुली रखी जाती थी और मयक का पलँग उत्तर-दक्षिण मे रहता था, अत कमरे मे बराबर पवन का आवागमन रहते हुए भी बच्चे को सीधी हवा न लगती थी। कमरे में या चारो ओर कोई हल्ला-गुल्ला न हो इस पर भी ध्यान रहता था। रात को कमरे मे इस तरह का प्रकाश रखा जाता था कि बालक की आँखो पर बत्ती की सीधी किरण कभी न पहुँचे।

मयक के इस लालन-पालन मे इन्दुमती को ऐसा मालूम होता मानो वह अन्नपूर्णा देवी का अवतार है और उससे सारे विश्व का पालन हो रहा है। बच्चे को अपना दूध पिलाते हुए उसे जान पड़ता कि वह सारे प्राणियो का उदर पोषण कर रही है और उसे वस्त्र पहनाते हुए ज्ञात होता कि वह मानव जाति की नग्नता ढाँक रही है।

जागते और सोते दोनो ही अवस्थाओ मे इन्दुमती घण्टो शिशु को देखा करती। कभी उसका खिलता और कभी कुम्हलाता मुख, कभी जागृत और कभी सपनीली आँखे, कभी मुस्कराते और कभी खिचकर गम्भीर होते ओठ कभी लम्बी और कभी साधारण गति से चलनेवाली साँसे इन्दुमती की दृष्टि को ही शिशु पर से न हटने देती, उन सब में उसे हर पल पर नवीनता दीखती। अनेक बार बच्चा अपनी भवो को तान, मुट्ठियो को बाँध, शरीर को मरोडकर पैर पटकते हुए जोर से रो उठता। ऐसा मालूम होता कि उसे कोई बडी भारी आन्तरिक वेदना सता रही है। यद्यपि इस वेदना का रहस्य इन्दुमती या किसी की समझ मे न आता, परन्तु इन्दुमती का स्तन उसके मुख मे आते ही इतनी बड़ी वेदना का तत्काल शमन हो जाता। भवे फिर

सीधी हो जाती, मुट्ठियाँ ढीली पड़ जाती, शरीर की ऐठन निकल जाती और पैरों का पटकना बन्द हो जाता। तो क्या भूख ही इस वेदना का रहस्य रहता ? कहना कठिन है, क्योंकि कई बार तो ऐसे अवसरो पर उसे गाय का दूध पिलाये बहुत कम समय बीता होता। बीमारी ? नही नही, शारीरिक दृष्टि से वह सर्वथा स्वस्थ रहता। तब ? उत्तर सरल नही है। और जिस तरह वह अकारण रो पडता उसी प्रकार अकारण मुस्कराने लगता। पतले-पतले ओठो के बीच दाँतो से रहित नन्हे-नन्हे मसूडे दीखने लगते। मुस्कराते या हँसते समय बच्चो और बूढो दोनो के मसूडे दृष्टिगोचर होते है, पर एक कितने सुन्दर और दूसरे कितने असुन्दर जान पडते है। मुस्कराते समय न मयक की भवे वक्र होती, न मुट्ठियाँ कड़ी और न शरीर मे मरोड़ दिखायी देती, न पैर ही पटके जाते। तब क्या वेदना सुख से अधिक तीव्र होती है ? इसका उत्तर भी कठिनाई से खाली नही। और कभी बच्चा चुपचाप सीधा लेटे हुए अपनी छोटी-छोटी टाँगो को हिलाता, मानो बिना बाईसिकल के ही बाईसिकल चल रहा हो। ऐसे समय वह निर्निमेष दृष्टि से सामने की ओर देखता रहता। कितनी गम्भीर हो जाती उसकी मुख-मुद्रा। अबोध बच्चा और बुजुर्गी से भरा हुआ यह गाम्भीर्य ! वह क्या सोचता रहता ? कौन इसका जवाब दे सकता है ? बच्चो की मानसिक दशा का न अब तक पता लग सका है और भविष्य मे भी शायद न लग सकेगा। और इस अवस्था में बच्चा अपने शरीर और अन्य पदार्थो मे किसी भेद का अनुभव भी नही करता, यहाँ तक कि वह अपने हाथ की उँगलियो और पैर के अँगूठो से उसी तरह खेलता है जैसे खुनखुने आदि खिलौनो से।

धीरे-धीरे शिशु ने माता को पहचानना आरम्भ किया। पहले यह पलँग या पालने पर रोने लगता और ज्योही उसे इन्दुमती गोद मे उठा लेती वह चुप हो जाता। शनै शनै वह भुजाएँ बढाकर इन्दुमती की गोद मे जाने की आतुरता दिखाने लगा। इन्दुमती के हृदय मे एकाएक उठा—'क्या इसे अपना पूर्व जन्म स्मरण आ रहा है और उस काल की मेरी स्मृति ?' किन्तु तुरन्त इन्दुमती का मस्तिष्क उसके हृदय को ठीक रास्ते पर लाया; उसने फौरन सोचा—'कहाँ की कहाँ मै रही थी ? फिर वही आत्मा और जन्म-जन्मान्तर के चक्कर ! अरे अगर मैने फिर उन्हे पाया है तो अपनी उत्कट

भावनाओ के कारण, वैज्ञानिक ढग से, और विज्ञान का ही सहारा लेकर !'

इतनी वैज्ञानिक सँभाल होने पर भी एक बार एकाएक बालक को दस्त लगने आरम्भ हुए। मामूली दस्तो पर इन्दुमती ऐसी घबडायी जैसे मयक चला जा रहा है। जिन्हे हम सबसे अधिक प्यार करते है उनकी छोटी-छोटी बीमारी के समय भी हमे ऐसा भास होता है। इन्दुमती को ऐसा जान पडा जैसे सारी सृष्टि प्रलय की ओर अग्रसर हो रही है। त्रिलोकीनाथ ने जाँच कर कहा कि शिशु के दाँत आ रहे है, पर आज उसे त्रिलोकीनाथ पर भी भरोसा न रह गया था। जब तक लखनऊ के अच्छे-अच्छे सारे डॉक्टरो ने त्रिलोकीनाथ का समर्थन न कर दिया तब तक इन्दुमती को धैर्य न बँधा।

नीचे के दोनो दाँत निकलने पर कितनी सुन्दरता बढ गयी मयक के मुख की और अब तो वह जगते हुए भी मुस्कराने लगा था। धीरे-धीरे ऊपर के भी दोनो दाँत आये और चार दाँतो से युक्त मुस्कराहट ही नही खिलखिला-हट। आह ! किस तरह यह खिला देती इन्दुमती के मानस-सर का कमल।

मयक के नामकरण सस्कार के सदृश उसके अन्न-प्राशन सस्कार मे भी त्रिलोकीनाथ तथा वजीरअली को छोड और कोई न आया, पर इन्दुमती ने इस अवसर पर बोरो अन्न बटवाया, क्षुधितो तथा दलितो को।

धीरे-धीरे बालक ने बैठना आरम्भ किया और फिर थोडा-थोडा घसिटना तथा इसके पश्चात् घुटने चलना एव घुटनो के ही बल चपलता से दौडना। खिलौने पहले से ही आना आरम्भ हो गये थे, पर अब तक के खिलौनो का बालक की दृष्टि से उसका मुख ही स्थान था। अब खिलौनो का महत्त्व बढा। जब कोई रबर की गेद इन्दुमती इधर से उधर फेकती, चचलता से मयक उसकी ओर दौड़ता। जब कोई चाबी भरा हुआ टीन का खिलौना इधर-उधर भागता तब चपलता से वह उसके पीछे जाकर उसे पकड लेता।

शनै शनै बच्चे ने बोलना शुरू किया। पहला अक्षर था—'माँ।' इन्दुमती ने मन मे कहा 'आह ! तो मयक ने पहले-पहल मुझे ही बुलाया।' और फिर हठात् उसके मन मे मयक के पूर्व जन्म की बात उठी। उसका मन बिना लगाम के घोडे के समान दौड़ गया यह सोचते हुए 'पहले पहले वे मुझे इन्दु हाँ, इन्दु कहते थे, सदा मेरा नाम ही लेते थे और ··और अब ··?' लेकिन मस्तिष्क रूपी चाबुक सवार ने हृदय रूपी अश्व को बाग डोर

फेक फिर बाँध लिया और इन्दुमती अपनी ही मूर्खता पर हँस पडी। 'माँ' के बाद 'दादा' आदि अनेक शब्द प्रस्फुटित होने लगे और शब्दो के साथ ही हाथ उठ-उठकर बुलाने आदि के सकेत करने लगे, ताली बजाने लगे, प्रणाम के लिए जोडे जाने लगे।

अब मयक ने खडा होना शुरू किया , फिर एक-एक, दो-दो, चार-चार डग उठना और ये डग उठाना माँ की दोनो हाथ की तर्जनी अँगुलियो को पकडने के लिए। फिर चलना और तदुपरान्त दौडना भी आरम्भ कर दिया।

धीरे-धीरे उसने अक्षरो के शब्द तथा शब्दो के वाक्य बनाना शुरू किया। शनै शनै अपने आप दूसरो को समझाना और दूसरो की बाते स्वय समझना भी आरम्भ हुआ। उसकी तोतली शब्दावली इन्दुमती को किसी अत्यन्त सुरीले सगीत से कम रुचिकर न जान पडती। कुछ और बडे होने पर मयक ने जिद करना शुरू किया। वह छोटी से छोटी बात पर जिद करता। अत्यधिक स्नेह करने पर भी उसकी जिद पर कभी-कभी इन्दुमती बिगड पडती। उसे डाँटती, कभी एकाध हलकी-सी चपत भी जड़ देती। वह इस तरह रो पडता जैसे कोई भीषण चोट लग गयी हो। इन्दुमती घबड़ा उठती। अपने को ही कोसते हुए जल्दी से उसे गोद मे उठा दुलराने लगती। कितना पश्चात्ताप होता इन्दुमती को और माँ की डाँट, मार से पीडित बच्चे को माँ की गोद मे ही सान्त्वना मिलती। वह कुछ देर तक तो सिसकता, लेकिन फिर चुप हो स्नेह भरी दृष्टि से माँ की ओर देखते हुए अपनी छोटी-छोटी बाहुओ को माँ की ग्रीवा मे डाल देता। इन्दुमती की इस डाँट और मार को वह सर्वथा भूल जाता। कौन बच्चा माँ की डाँट-डपट तथा मार-पीट को याद रखता है ?

मयक अब माँ के घुटने पर बैठे बिना न खा सकता, और उसके गले के नीचे ही न उतरता। इसी तरह वह माँ की लोरियाँ सुने बिना न सो सकता। चाहे इन लोरियो का अर्थ वह न समझे, पर बिना उस स्वर के उसे नीद आती तो रो-रो तथा मचल-मचल कर।

जब बालक तीन वर्ष का हुआ और उसने कुछ अधिक समझना शुरू किया तब इन्दुमती ने उसे कहानियाँ कहनी आरम्भ की। अधिकाश किस्से होते ललितमोहन से सम्बन्ध रखनेवाले। शनै. शनै वे कहानियाँ सचित्र

की जाने लगी, उन्ही चित्रो से जो इन्दुमती ने ललितमोहन के भिन्न-भिन्न अवसरो के बनाये थे। मयक कैसे अनुराग से ललितमोहन के इन दास्तानो को सुनता, कैसा मग्न हो ललितमोहन की तस्वीरो को देखता। और ऐसे अवसरो पर इन्दुमती के हृदय मे वही पूर्व-जन्म वाली बात बार-बार अपने आप उठती तथा इन्दुमती चौक-चौक कर उसे अपने हृदय के बाहर निकाल फेकने का प्रत्यन करती।

जब बालक चौथे वर्ष मे था तब ललितमोहन के इन किस्सो मे उसका और इन्दुमती का सम्भाषण होता। एक दिन इन्दुमती के कमरे में माँ-बेटो मे इस तरह बातचीत चल रही थी—

'एक था तरुण और एक थी तरुणी, बेटा' इन्दुमती ने कहा।

'त्या माँ एत था तलुन और एत थी तलुनी ?' मयंक तुतलाते हुए बोला।

'हाँ, एक था तरुण और एक थी तरुणी और दोनो बडे अच्छे थे, बेटा।'

'तलुन औल तलुनी बले अच्छे थे, माँ।'

'हाँ बडे अच्छे, बेटा। दोनो ने जब से एक दूसरे को देखा तभी से प्रत्येक के मन मे एक दूसरे के प्रति प्रेम का समुद्र उमड आया था ?'

'प्लेम ता त्या, माँ, प्लेम ता त्या ?'

'समुद्र बेटा, समुद्र।'

'छमुद। छमुद त्या होता है, माँ ?'

'बम्बई, तुझे ले चल कर एक बार समुद्र दिखाऊँगी।'

'बम्बई-बम्बई' कूदते हुए मयक ने कहा। और फिर उसी प्रकार कूदते-कूदते मयक कमरे के बाहर चला गया। इन्दुमती भी उसके पीछे-पीछे चली।

एक दिन उठते हुए बादलो को खिड़की मे से देखते हुए इन्दुमती ने मयक से कहा—'वे क्या उठ रहे है बेटा ?'

'बद्दल' मयक बोला।

'चेरापूँजी मे ये पल-पल पर उठा और बैठा करते है।'

'बद्दल उथा औल बैथा तलते थे। तहाँ...तहाँ—माँ ?'

'चेरापूँजी मे, बेटा। और इतनी जोर से गरजते और कड़कते थे कि क्या कहूँ।'

उसी समय उठते हुए बादलो की एक जोर की गरज हुई। मम्रक झपट

कर इन्दुमती के गले से लग गया और इन्दुमती ने उसे चिपटाते हुए कहा—'हाँ, इसी · इसी तरह चेरापूँजी के बादलो की गरज सुन मै उनसे लिपट जाती थी। कितनी दृढता से वे उस समय अपने अंक मे मेरा गाढालिगन कर लेते थे।

पर बादलो की गरज के कारण माँ के इस लम्बे से कथन पर मयक का ध्यान नही गया।

एक दिन जब मयक कुछ ठुमक-ठुमक कर चल रहा था तब इन्दुमती ने कहा—'तू तो ठुमक ही रहा है, बेटा, पर मै तो नाचना भी जानती हूँ।'

'नाचना, माँ, तुम नाचना भी जानती हो।'

'हाँ, बेटा, नाचना, बडा अच्छा नाचना जानती हूँ।' यह कहते हुए इन्दुमती ने बिना घुँघरू के ही 'कथक' नृत्य के दो चक्कर लगाये।

बिना नृत्य-कला का 'क' 'ख' जाने ही मयक ने माँ की नकल करने का प्रयत्न किया।

इन्दुमती एक दीर्घ निश्वास लेती हुई बोली—'कई बार उनके सामने भी मै नाची हूँ, बेटा।'

'उनते·· उनते छामने, माँ, तिनते · तिनते छामने ?'

'तेरे पिता के, बेटा।' कुछ रुककर इन्दुमती ने फिर कहा—'और एक दिन तो जिस तरह तू अभी जरा-सा नाचा, उसी प्रकार अपनी जीवन-कथा बताते हुए वे भी नाचे थे।'

'वे भी नाचे थे ?'

'हाँ, बेटा, वे भी नाचे थे। उन्हे अंग्रेजी नाच आता था। वे नाचे थे अंग्रेजी नाच। और इस प्रकार कहते हुए इन्दुमती ने मयक के एक हाथ से अपना हाथ मिला और दूसरा हाथ मयक की कमर मे डाल पश्चिमी नाच के उपक्रम का प्रयत्न किया, परन्तु इन्दुमती इतनी बडी और मयक इतना छोटा था कि इस नाच का एक कदम भी न उठ सकता।

एक दिन मयक को, तथा ललितमोहन की बाल्यावस्था के एक काल्पनिक चित्र को, जो इन्दुमती ने ही बनाया था, देखते हुए इन्दुमती ने कहा—'कितना मिलता-जुलता है तू उनसे, बेटा।'

'बहूत मिलता हूँ, बहूत, माँ ?'

'हाँ, बेटा, बहुत मिलता है, बहुत । वैसे ही गहरे काले पतले-पतले बाल । वैसा ही गुलाबी झाँई लिये गोरा-गोरा रग ।·· वैसी ही रसीली बड़ी-बडी ग्राँखे ।—'

ग्रौर इन्दुमती ग्रागे कुछ कहे इसके पहले ही मयक जबर्दस्ती ललितमोहन का चित्र इन्दुमती से छीन स्वय उसे देखने लगा ।

× × ×

मयक की पट्टी-पूजा के लिए वजीरग्रली ने ही एक हिन्दू पण्डित का प्रबन्ध कर लिया था । उसके नाम-सस्कार ग्रादि के मौको पर जिस तरह पण्डित मिल गये थे, उसी प्रकार इस ग्रवसर पर भी । यथेष्ट दक्षिणा देने पर किसे किस काम के लिए पण्डित की कमी पड़ सकती है ?

मयक के इस तरह के सभी कार्यो मे ग्रब तक दो व्यक्ति सम्मिलित रहते थे—त्रिलोकीनाथ ग्रौर वजीरग्रली, पर इस बार ग्रकेला वजीरग्रली ही था । इन्दुमती को इसका मन ही मन खेद था, पर पट्टी-पूजन का जब समय हो रहा था, तब उसने देखा कि एकाएक डॉक्टर त्रिलोकीनाथ झपटा हुग्रा चला ग्रा रहा है । उसके चेहरे तथा कपड़ो पर पडे हुए कोयले एव धूल ग्रादि से स्पष्ट था कि वह रेल से उतर सीधा इन्दुमती के मकान पर ग्राया है । इन्दुमती तथा वजीरग्रली दोनो को ही त्रिलोकीनाथ के ग्राने से बडी खुशी एव सन्तोष हुग्रा ।

पट्टी-पूजा हो गयी । पट्टी-पूजा के बाद जब बच्चे ने जोर-जोर से 'गणेश-जी' का 'ग' ग्रौर 'ग्राम' का 'ग्र' रटना शुरू किया, तब इन्दुमती को एक ग्रद्‌भुत प्रकार के हर्ष मिश्रित गर्व का ग्रनुभव हुग्रा । यह ग्रनुभव कदाचित् हर माता को होता है ।

एक दिन इन्दुमती ने बिहार के भूकम्प का हाल त्रिलोकीनाथ से पूछा । त्रिलोकीनाथ ने वहाँ जो-जो हुग्रा था, उसका ब्योरेवार वर्णन सुनाया । इन्दु-मती ग्रौर त्रिलोकीनाथ का यह सम्भाषण त्रिलोकीनाथ के जिस कथन से समाप्त हुग्रा, वह इन्दुमती को बहुत दिनो तक स्मरण रहा । कथन यह था—

'हमारे बडे-बडे विचार, हमारी बडी-बडी योजनाएँ भूकम्प ग्रादि छोटी-सी प्राकृतिक घटना के कारण नष्ट हो जाती है । उस समय हमे ग्रपनी क्षुद्रता का ज्ञान होता है । हमे ग्रत्यधिक निराशा होती है, हम निसर्ग को दोष देते हैं, परन्तु उस समय हमें यथार्थ मे यह मानना चाहिए कि हमें ग्रपनी क्षुद्रता

का ज्ञान करा देने के लिए प्रकृति ने हमारे साथ एक छोटा-सा मजाक किया है ।'

कुछ समय बाद मयकमोहन की पढाई के सम्बन्ध मे इन्दुमती, त्रिलोकीनाथ और वजीरअली के बीच एक बहस छिड़ गयी ।

'यह तो आप दोनो को ही मानना होगा कि शिक्षा के सम्बन्ध मे मुझे आप दोनो की बनिस्बत ज्यादा अनुभव है ।' वजीरअली ने कहा ।

मुस्कराते हुए त्रिलोकीनाथ बोला—'इसमे मतभेद की गुजाइश ही नही हो सकती । आप प्रोफेसर ही है ।'

इन्दुमती कुछ न कहकर केवल हँस दी ।

कुछ रुकते हुए त्रिलोकीनाथ कह चला—'परन्तु इतना तो आपको मानना ही होगा कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति एक 'टाइप' को उत्पन्न करती है, व्यक्ति को नही ।'

'मानता हूँ, लेकिन इस "टाइप" मे से ही व्यक्ति निकलते है ।' वजीरअली ने कहा ।

'रवीन्द्र बाबू किस विश्वविद्यालय मे पढे थे ?' त्रिलोकीनाथ बोला ।

'और गाधी बैरिस्टर है । डॉक्टर, यह बहस का कोई नुक्ता नही हो सकता । दुनियाँ मे अब तक कोई ऐसी शिक्षा-पद्धति नही निकली जिसे आप 'आदर्श' कह सके । वजीरअली ने कहा ।

'परन्तु इस देश की सारी शिक्षा तो दफ्तरो के मुहर्ररो को बनाने के लिए दी जाती है । सरकार का उद्देश्य इस देश के निवासियो को शिक्षित करना न होकर ऐसे क्लर्क पैदा करना है, जिससे उसका राज-काज चलता रहे ।' इन्दुमती बोली ।

मुस्कराते हुए वजीरअली ने कहा—'बहन, तुम तो बिलकुल ही "हिज मास्टर्स वायस" हो गयी हो ।'

'कैसे ?' इन्दुमती बोली ।

वजीरअली ने कहा—'तुम वही कह रही हो, जो ललितमोहन भी उस समय प्राय. कहा करते थे, जब उन्होने असहयोग के जमाने मे कालेज छोड़ा था । स्कूलो, कालेजो का बायकाट तो उसी समय समाप्त हो गया । उस जमाने में राष्ट्रीय शिक्षा के लिए जो सस्थाएँ बनायी गयी थी, वे भी एक के

बाद एक असफल हुई । और उसी जमाने मे नही, उसके पहले बगाल के विभाजन के वक्त, होमरूल के जमाने मे, हर राष्ट्रीय आन्दोलन मे राष्ट्रीय शिक्षा का सवाल उठा, हर वक्त कुछ सस्थाएँ बनी और हर बार वे असफल हुई । हमारे पढाने-लिखाने मे इस सरकार का जो मतलब है, वह मै मानता हूँ, लेकिन बाहरी सरकार रहते हुए राष्ट्रीय शिक्षा किसी बडे रूप मे चल ही नही सकती । हर देश का इतिहास यही बताता है । और जब तक पढायी-लिखायी के लिए कोई बहतरीन तरीका नही आ जाता, तब तक मौजूदा स्कूलो और कालेजो के बहिष्कार के मै विरुद्ध हूँ । यह तो आप दोनो ही मानेगे कि बच्चो को इसलिए पढाया जाता है कि वे मनुष्य बने और अपनी रोजी कमा सके ।'

'इसमे क्या मतभेद हो सकता है ?' त्रिलोकीनाथ बोला ।

'हाँ, इसमे दूसरी राय की गु जाइश नही है ।' इन्दुमती ने कहा ।

वजीरअली फिर बोला—'हमारे देश की शिक्षा रोजी कमाने के रास्ते बहुत कम बनाती है, इसे मै मानता हूँ, परन्तु यह बच्चो को कुछ दूर तक ही क्यो न हो, मनुष्य बनाती है , इससे इकार नही किया जा सकता ।'

'पर कैसे मनुष्य यह प्रश्न है ।' त्रिलोकीनाथ ने कहा ।

वजीरअली मुस्कराते हुए बोला—'आपके समान मनुष्य । कम से कम बिना पढे-लिखे लोगो से बहतरीन मनुष्य ।'

'हाँ, यह तो ठीक है ।' इन्दुमती ने कहा ।

वजीरअली बोला—'बहन, तुम तो जानती हो कि गाधीजी के लड़को तक के दिलो मे इस बात का मलाल है कि उनके बाप ने उन्हे ठीक ढँग से पढाया-लिखाया नही । यह कहना तो बहुत सरल है कि लडके स्कूलो और कालेजो वगैरह से निकल यदि और कुछ न कर सके तो नालियाँ साफ करे, लेकिन गाधीजी के आश्रम तक मे इन्ही विश्वविद्यालयो के ग्रेजुएटो की कितनी इज्जत होती है, यह भी तुम देख चुकी हो । मयक को अगर शुरू से ही स्कूल न भेजा गया, तो उसके मनुष्य बनने मे जो कमियाँ रह जायँगी, उन पर बाद मे हम लोगो को ही पछताना पडेगा । घर में वैसी पढाई हो ही नही सकती , सैकडों लडको के साथ पढने मे जो बात होती है, वह अकेले पढने मे नही आ सकती । स्कूल-कालेजो का वायुमण्डल ही अलग तरह का रहता है , और

उससे आप दोनो ही परिचित है।'

अन्त मे इन्दुमती और त्रिलोकीनाथ ने यह विषय वजीरअली पर ही छोड़ दिया और वजीरअली ने मयक को एक स्कूल मे भरती करा दिया। जिस समय वजीरअली ने मयक को स्कूल मे भरती कराया पहले दिन तो मयक बड़ी खुशी-खुशी स्कूल गया। उसे उस दिन नयी और सुन्दर पोशाक पहनायी गयी। साथ मे एक अच्छा-सा बस्ता, जिसमे पढने-लिखने का सारा सामान था, उसे दिया गया। एक नयी जगह, एक नये काम के लिए वह जा रहा था। उसका हृदय उत्साह से भरा हुआ था। पर स्कूल पहुँचते ही ज्योही उसे नाना प्रकार के बन्धनो का अनुभव हुआ त्योही उसकी सारी खुशी और उत्साह कपूर हो गये। अब तक की स्वच्छन्दता की जगह ये बन्धन! वह घबड़ा उठा और दूसरे दिन से स्कूल जाते समय उसने रोना शुरू किया। परन्तु यह अवस्था भी बहुत समय तक न रही। माण्टीसरी शिक्षा-पद्धति, जिसमे तीन वर्ष की अवस्था से बच्चे पढाये जाते है, यदि देश में प्रचलित हो सके तो बच्चो की पढाई में ऐसी कठिनाइयाँ न पडे। पर यह पद्धति बडी खर्चीली है और देश है इतना गरीब। देश की गरीबी दूर होने पर ही इस प्रकार के कार्य हो सकते है।

जब मयक को स्कूल जाते हुए कुछ समय हो गया तो एक दिन इन्दुमती के मन मे उठा—'तो···तो मयक अब बडा हो रहा है। मेरे सिवा भी अन्यो से उसका सम्बन्ध हो रहा है।···और यथार्थ मे यह उसका बढना है या घटना। अवस्था ज्यो-ज्यो बढती है, त्यो-त्यो व्यक्ति मृत्यु के समीप ही तो जाता है। यथार्थ मे वह बढता नही घटता है। क्या ही अच्छा होता यदि मयक सनकादिक ऋषियो के समान सदा पाँच वर्ष की ही अवस्था मे रहता। न बढने के कारण ही तो वे ऋषि अमर माने जाते है।'

: २८ :

मयक को स्कूल में भरती करवाने के कुछ पूर्व वजीरअली ने अपनी साम्यवाद सम्बन्धी एक सस्था की जो कुछ दिनो चलकर बन्द हो गयी थी, पुनर्स्थापना की थी। इस सस्था की पुनर्स्थापना के समय वजीरअली ने यह भी निश्चय किया था कि इस बार इस सस्था का क्षेत्र चाहे पहले कुछ दिनो तक दफ्तर मे बहस-मुबाहसा ही रहे, पर अन्त मे मजदूरो के बीच कार्य करना होगा। वजीरअली का समाजवाद और साम्यवाद का अध्ययन अब पूर्णता तक पहुँच गया था। उसे अब विश्वास हो गया था कि उसकी सस्था अल्पजीवी न रहेगी और उसका क्षेत्र भी दफ्तर तक सीमित न रहकर मजदूरो के सगठन तक विस्तीर्ण हो जायगा।

दफ्तर के वाद-विवाद को अभी वह आवश्यक इसलिए मानता था कि कार्यकर्त्ताओ की तैयारी बिना इसके सम्भव न थी और अधिक कार्य बिना पर्याप्त कार्यकर्त्ताओ के न हो सकता था।

यद्यपि इन्दुमती अभी भी अपने पुत्र मे ही तल्लीन रहती, ललितमोहन से न मिलते हुए भी उसे वह ललितमोहन से मिलता-जुलता दीखता, और जब तक वह स्कूल मे रहता वह बडी आतुरता से उसकी प्रतीक्षा किया करती, तथापि बालक के स्कूल जाने के कारण उसे दिन को अवकाश अवश्य रहता। इन्दुमती को सार्वजनिक कार्य से कोई दिलचस्पी नही थी, पर जब वजीरअली ने उसे समझाया कि उसकी सस्था उन्हे उखाड फेकने के लिए है जो इस समय सार्वजनिक क्षेत्रो के किसी न किसी रूप में नेता है, और जिन्होने उसके खिलाफ इतना असत्य प्रचार कर समाज मे एक प्रकार का विप्लव-सा मचवा दिया था, तब अवकाश के समय का कोई उपयोग करने के लिए इन्दुमती ने वजीरअली के इस काम मे थोड़ा-बहुत हिस्सा लेना आरम्भ किया।

पहले इन्दुमती ने सोशलिस्ट लीग के दफ्तर मे जाना शुरू किया। वजीर-अली के साथियो ने उसका हार्दिक स्वागत किया। उसे अनजाने ही इस बात से सतोष-सा हुआ कि घर के बाहर भी ऐसा कोई स्थान है जहाँ उसे बहि-

ष्कृत दृष्टि से नही देखा जाता। जब मयक स्कूल जाता तब इन्दुमती इस दफ्तर में आ जाती। यहाँ समाज के सम्पन्न विभाग की खूब आलोचना होती, मजदूरो के उत्कर्ष की योजनाएँ बनती, इस सम्बन्ध मे अन्य देशो के दृष्टान्त दिये जाते, और इन सब चर्चाओ से इन्दुमती का जी बहल जाता।

वजीरअली की सोशलिस्ट लीग के इन बहस-मुबाहसो मे वजीरअली ही प्रधान भाग लेता था, क्योकि उसके अध्ययन के बराबर किसी का अध्ययन न था। अधिकतर लोग प्रश्नकर्त्ता रहते और वजीरअली उत्तर देनेवाला। कभी-कभी बिना किसी बहस के ही वह कोई बात कह देता, जिसे उसके कार्य-कर्त्ता कठस्थ कर लेते। कभी-कभी वजीरअली की अदम-मौजूदगी मे भी अन्य कार्यकर्त्ताओ मे बहस छिड जाती। इसमे कभी-कभी गरमा-गरम बाते और बातो के छोटे-मोटे झगडे भी हो जाते। एक तो बहुत कम ऐसा होता और कोई छोटा-मोटा झगड़ा हो भी जाता तो उसकी वजीरअली को फौरन इत्तिला होती और वह उसे तत्काल निपटा भी देता।

एक दिन समाजवाद और साम्यवाद पर चर्चा चल रही थी।

'मार्क्स और एंजिल्स के पहले भी समाजवादी और साम्यवादी थे।' वजीरअली ने कहा।

'अच्छा मार्क्स के पहले भी समाजवादी और साम्यवादी थे?' एक अन्य व्यक्ति ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

'बेशक,' वजीरअली बोला। 'यो तो समाजवाद और साम्यवाद उस समय के है जब आदमी ने जगलो के व्यक्तिगत जीवन को छोड समूहो मे रहना शुरू किया, उस वक्त व्यक्तिगत जायदाद नही थी, लेकिन अगर हम उस पुराने जमाने को छोड भी दे तो भी मार्क्स के पहले इस जमाने मे भी कई समाज-वादी और साम्यवादी विचारक तथा कार्यकर्त्ता हुए है, पर इनमे ज्यादातर पश्चिम मे। इनमे खास है—थॉमस किर्कप, सेण्ट साइमन, ऑबिन फोरियर, लुई ब्लॉ, प्राँधो, हाप्सकिन, थाम्पसन, ग्रे वगैरह।

'तो मार्क्स ने कोई नया वाद दुनियॉ के सामने नही रखा? एक अन्य मनुष्य ने पूछा।

कुछ विचारते हुए वजीरअली ने उत्तर दिया—'एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि मार्क्स ने कोई नया वाद दुनियाँ के सामने नही रखा और

दूसरी तरह से यह भी कहा जा सकता है कि मार्क्स ने जो वाद दुनियाँ के सामने रखा वह बिलकुल नया है।'

'एक दूसरे से ठीक विरुद्ध दो बाते इस सम्बन्ध मे कैसे कही जा सकती है?' इन्दुमती ने पूछा।

वजीरअली बोला—'इस तरह, बहन, कि समाजवाद और साम्यवाद की परम्परा तो चली आ रही थी लेकिन मार्क्स के पहले वह परम्परा थी सिर्फ काल्पनिक। मार्क्स ने उसे वैज्ञानिक सूरत दी।'

'जरा ब्योरेवार तरीके से समझायेगे तो महरबानी होगी।' एक आदमी ने कहा।

'इस बारे में बातचीत के सिलसिले मे बहुत ब्योरेवार चर्चा तो हो न सकेगी, इसके लिए तो आपको समाजवाद और साम्यवाद पर किताबे पढनी होगी, लेकिन मार्क्स के वैज्ञानिक साम्यवाद की खास-खास बातो को समझाने की मै कोशिश करता हूँ। कुछ रुककर गला साफ करते हुए वजीरअली आगे बढा। 'मार्क्स के कथनो को हम मोटे रूप से छै हिस्सो मे बॉट सकते है। उनका पहला कथन इतिहास की आर्थिक व्याख्या से सम्बन्ध रखता है। याने वे कहते है कि आदमी जो कुछ करता है आर्थिक कारणो से। ससार का नियम परिवर्त्तन है। ये परिवर्त्तन मानव-समाज मे आर्थिक कारणो से होते है और वर्तमान पूँजीवादी स्थिति कई परिवर्त्तनो के बाद आयी है। उनका दूसरा कथन है वर्ग सघर्ष के बारे मे। आर्थिक हितो के आपसी विरोध की वजह से यह सघर्ष चला करता है। उनका तीसरा कथन है मूल्यो के निस्बत। वे कहते है कि किसी चीज का मूल्य आँकने मे उस पर आदमी का कितना श्रम लगा है यही तौलने का मुख्य तराजू है। उनका चौथा कथन मजदूरो के श्रम से ताल्लुक रखता है। वे कहते है कि मजदूर को श्रम का पूरा एवजाना न मिलकर उसका बहुत सा हिस्सा पूँजीपति की जेब मे चला जाता है। उनका पाँचवाँ कथन है पूँजीपति की मनोवृत्ति के विषय मे। वे कहते है पूँजीपति लगातार कोशिश करता है कि मजदूर के श्रम का एवजाना मजदूर को कम से कम मिले और उसका ज्यादा से ज्यादा हिस्सा पूँजीपति के पास रहे। और उनका छठवाँ कथन है पूँजीपतियों के आपस के सघर्ष के सम्बन्ध में। वे कहते है कि बडा पूँजीपति छोटे को खा जाने की हमेशा कोशिश किया

करता है । इस तरह उनकी छै बातो मे दो है इतिहास से ताल्लुक रखने-वाली, दो है चीजो के मूल्य के सम्बन्ध मे और दो है इस समय समाज की दर्दनाक हालत के कारणो के विषय मे । मार्क्सवाद के सारे सिद्धान्त इन छै वजूहात पर निर्भर है । इस सारे विवेचन को करने मे मार्क्स का एक खास तरीका जिसे अब हिन्दी मे 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' कहते है, अग्रेजी मे इसके लिए शब्द है 'डायलेक्टिकल मेटीरियलिज्म' ।

वजीरअली के इस लम्बे कथन को वहाँ पर उपस्थित सभी ने बडे ध्यान से सुना, परन्तु अधिकाश के चेहरो से प्रगट होता कि वजीरअली का पूरा कथन उनकी समझ मे नही आया है । उपस्थित लोगो के मुखो पर एक बार दृष्टि दौडाकर वजीरअली कुछ मुस्कराकर बोला—'शायद मै आप लोगो को सारा विषय इस तरह न समझा सका कि आप लोग पूरी तौर पर समझ जायँ ।'

एक व्यक्ति ने कहा—'आपने तो ठीक तरह समझाया ही होगा, पर हम लोगो की बुद्धि···'

बीच ही मे बात काटते हुए वजीरअली बोला—'नही नही, आपकी बुद्धि की बात नही, विषय ही ऐसा है । जैसा मैने शुरू मे कहा था कि आप लोगो को समाजवाद और साम्यवाद पर किताबे पढनी होगी । पर मोटे रूप मे आप यह समझ ले कि मार्क्सवाद की इमारत छै उन खम्भो पर खडी है, जिनका मैने अभी जिक्र किया । इस समय की दर्दनाक हालत को सुधारने के लिए वे पूँजीवाद का अन्त ही एक मात्र तरीका मानते है । पूँजीवाद के अन्त के बिना श्रम करनेवालो का शोषण नही मिट सकता और बिना शोषण मिटे समाज के ज्यादा लोग सुखी कैसे हो सकते है । उनका मुख्य लक्ष है शोषण का खातमा । व्यक्तिगत सम्पत्ति का नाश होकर हर आदमी अपनी शक्ति के मुताबिक काम करे और अपनी जरूरत के अनुसार प्राप्त । इसीलिए मार्क्स उत्पादन और वितरण दोनो का राष्ट्रीयकरण चाहते है , पर इसका मतलब व्यक्तित्व और कुटुम्ब वगैरह का नाश नही, वरन् पूँजी की चक्की में जो ज्यादातर व्यक्ति पीसे जा रहे है और जीवन के विकास के मौके जो गिनती के लोगो को मिलते है उस पूँजीवाद के अन्त से व्यक्तित्व के सच्चे विकास का रास्ता तो उलटा खुल जाता है ।

'बेशक···बेशक···' कुछ लोगो ने एक साथ कहा। वजीरअली के उपर्युक्त कथन को सभी लोग भली भाँति समझ रहे थे।

'फिर एक बात और होती है। अभी व्यक्ति को जिस तरह की जोखिमे उठानी पडती है, व्यक्तिगत सम्पत्ति के नाश तथा उत्पादन और वितरण के राष्ट्रीयकरण हो जाने पर इन जोखिमो का भी अन्त हो जाता है' वजीर-अली बोला।

लोगो के चेहरो से जान पड़ता था कि अब फिर वे उसकी बातो को पूरी तौर पर नही समझ रहे है।

वजीरअली ने कुछ रुककर कहा—'मार्क्स का वैज्ञानिक साम्यवाद पहले पूँजीवाद की व्याख्या करता है, फिर उसकी बुराइयाँ बताता है, फिर समाज मे उसकी जगह पाने की भविष्यवाणी कर उसके लिए लड़ता है।'

'ठीक ··बिलकुल ठीक ··' कई व्यक्तियो ने कहा। लोगो की समझ मे फिर आ रहा था।

'मार्क्स ने बहुत सी किताबे, लेख वगैरह लिखे है, पर इनमे सबसे मुख्य है दो—'कैपीटल' और 'कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो'। इस तमाम साहित्य को पढ-पढ मार्क्स के बाद समाजवाद और साम्यवाद के कई रूप हुए। इनमे खास है—'राष्ट्रीय समाजवाद', 'गिल्ड समाजवाद', 'समष्टिवाद', 'अराजकता-वाद' वगैरह।

'एक वाद से दूसरे वाद मे क्या फर्क है ?' एक व्यक्ति ने पूछा।

'बहुत से छोटे-छोटे फर्क है, लेकिन उनके जानने के लिए भी आप लोगो को किताबे पढनी होगी।' वजीरअली कुछ ठहर गया और फिर बोला—'अभी रूस ही ऐसा देश है जहाँ साम्यवाद को कुछ दूर तक कार्यरूप मे परिणत किया गया है।'

'कुछ दूर तक ही ?' एक व्यक्ति ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

'हाँ, कुछ दूर तक ही' वजीरअली ने उत्तर दिया। 'समाज की पूरी साम्यवादी सूरत अभी रूस मे भी नही हुई है। पूरी साम्यवादी रचना में तो राजसत्ता जैसी भी कोई चीज न रह जायगी।'

'राजसत्ता भी नही ?' एक आदमी ने और अधिक आश्चर्य से कहा।

'हाँ, राजसत्ता भी नही।' वजीरअली बोला। 'न पुलिस, न फौज,

न राजसत्ता। और साम्यवाद का यह दावा है कि जनता का सच्चा सुख साम्यवाद के जरिये से ही आ सकता है।'

'सो तो ठीक है।...बिलकुल ठीक।' कई व्यक्तियो ने एक साथ कहा।

जब वजीरअली ने लोगो से और कुछ पूछना हो तो पूछने के लिए कहा तब एक दूसरे के मुखो की ओर देखने के सिवा किसी ने कुछ नही पूछा। विषय ही इतना गम्भीर था कि किसी की कुछ पूछने की हिम्मत न पडी।

एक दिन फैसिज्म के ऊपर वजीरअली ने वक्तव्य दिया—'दर असल फैसिज्म कोई वाद नही। जब वह कोई वाद नही तब उसके सिद्धान्तो की क्या चर्चा हो? सिद्धान्तो की चर्चा तो तब हो न जब उसके कोई सिद्धान्त हो। जब पूँजीवाद नीची से नीची सतह को पहुँचता है, उसकी समस्याओ तथा उलझनो का निपटास नही हो पाता, उसकी विरोधी ताकते उभरने लगती है, तब तमाम पूँजीवादी इकट्ठे हो, एक डिक्टेटर के सहारे सारे हिंसात्मक साधनो के जरिए पूँजीवाद की रक्षा करते है, और तुर्रा यह कि मजदूरो को इस भुलावे में रखा जाता है कि पूँजीवादियो के हित मे नही पर मजदूरो के हित मे यह सगठन हो रहा है। युद्ध फैसिज्म को कायम रखने के लिए सबसे जरूरी चीज है। अपने ही देश और अपनी जाति को सर्वोपरि घोषित कर फैसिज्म युद्ध के लिए यह तैयारी करता है। सबसे पहले सन् १९१९ मे फैसिज्म मुसोलिनी के नेतृत्व मे इटली मे पैदा हुआ। इसके बाद 'जातीय समाजवाद' के नाम से हिटलर के नेतृत्व मे जर्मनी पहुँचा और अब तो दूर-दूर तक फैलता हुआ नजर आ रहा है।'

एक दिन समानता और असमानता पर बाते चल रही थी। एक सज्जन ने अपनी धोती घुटनो तक चढाते और दोनो पैर कुर्सी पर रखते हुए कहा—'सृष्टि मे ही समानता नही है।'

वजीरअली ने उत्तर दिया—'आज सचमुच मे आपने एक बुनियादी सवाल उठाया है। आपका यह कहना मै मानता हूँ कि सृष्टि मे समानता नही है, लेकिन असमानताएँ दो तरह की है। कुछ असमानताएँ कुदरती है और कुछ आदमियो की बनाई हुई।'

'जैसे?' एक दूसरे व्यक्ति ने पूछा।

'जैसे खूबसूरती और बदसूरती, बुद्धिमान होना या मूर्ख होना, इसी तरह

की अन्य कई, पर बहुत कम, असमानताएँ कुदरती असमानताएँ है ।' वजीर-अली बोला ।

'और आदमियो की बनायी हुई असमानताएँ ?' उसी महाशय ने पूछा जिसने 'जैसे' कहा था ।

'धनवान होना और गरीब होना, जमीदार होना और किसान होना, साहूकार होना और कर्जदार होना, पढा-लिखा होना और अपढ होना, विवाहिता होना और वेश्या होना, इसी तरह की दूसरी, लेकिन ज्यादातर असमानताएँ आदमियो की बनायी हुई असमानताएँ है ।'

एक अन्य सज्जन, जो जोर-जोर से बीडी धोक रहे थे, अपनी बीडी को अपने टूटे से जूते के तले मे बुझाते हुए बोले—'बिलकुल ठीक फर्मा रहे हैं, आँ जनाब ।'

वजीरअली फिर बोला—'आदमियो की बनायी हुई इन असमानताओ की शुरूआत पहले तो खास परिस्थितियो की वजह से हुई । इन असमानताओ को बहुजन समाज ने पहले लाचार होकर मजूर किया और फिर इनके परम्परागत होने के सबब से बिना इन पर कोई गौर किये या बिचारे । और एक बात हुई ।'

'कौनसी ?' एक सज्जन ने खखारते हुए पूछा ।

वजीरअली ने उत्तर दिया—'जो इन असमानताओ की वजह से आराम से रहने लगे थे उन्होने तगदीर, पूर्वजन्म के पैदाइशी हक, कानूनी अधिकार वगैरह न जाने क्या-क्या कहकर जिसे असमानता में से तकलीफे है उस बहु-जन समाज का ध्यान ही इन असमानताओ के कारणो की तरफ न जावे इस बात की लगातार कोशिशे की ।'

एक महाशय, जिनके ललाट पर प० मदनमोहन मालवीय के समान सफेद चन्दन की टिकली लगी हुई थी अपनी गाधी टोपी के बाहर निकली हुई चुटइया को टोपी के अन्दर करते हुए बोले—'तो आप समझते है तगदीर और पूर्वजन्म कोई चीज नही ?'

'मुतलक नही' वजीरअली ने दृढता से कहा ।

'कैसी तगदीर ! कैसा पूर्वजन्म' कई व्यक्ति एक साथ बोल उठे ।

'तगदीर और पूर्वजन्म बडे से बडा ढकोसला है ।' इन्दुमती ने कहा ।

वजीरअली बोला—'देखिए, तगदीर पूर्वजन्म, पैदाइशी हक, कानूनी अधिकार वगैरह के सिद्धान्तो को बना, इन सिद्धान्तो की बुनियाद पर अपने धन, अपने अधिकारो को सुरक्षित कर निर्जीव धन ही नही लेकिन जीते-जागते बहुजन समाज का अपने लिए उपयोग करनेवाले ये मुट्ठी भर सम्पन्न लोग चोरो और डाकुओ से भी ज्यादा भयानक हो गये है। चोर और डाकू अपना काम लुक-छिपकर करते है, कानून मे उनके लिए सजाएँ है। पर ये सम्पन्न व्यक्ति सब कुछ करते है खुले खजाने, समाज द्वारा मजूर किये गये सिद्धान्तो के मुताबिक।'

'ठीक · बिलकुल ठीक···। ये लोग सचमुच चोरो और डाकुओ से भी कही ज्यादा भयानक है।' कई लोगो ने एक साथ कहा।

वजीरअली फिर बोला—'और फिर इन सम्पन्न लोगो ने अपनी बातो को इन सिद्धान्तो की बुनियाद पर खड़ा करने के लिए जो कुछ कहा है और जो कुछ कहते है या जो कुछ लिखा है और जो कुछ लिखते है वह सब जोर दे देकर बार-बार दुहरा-दुहराकर। दुनियाँ में जोर दे देकर अगर बार-बार दुहरा-दुहराकर कोई बात कही या लिखी जाती है तो लोग उस पर विश्वास करने लग जाते है, गलत बात भी सही समझी जाने लगती है।'

'बिलकुल ठीक फर्मा रहे है आँ जनाब।' अपनी बीड़ी को अपने टूटे हुए जूते के तले मे बुझाते हुए जिस महाशय ने पहले यह कहा था उसी ने इस बार नयी बीड़ी को जलाते हुए कहा।

कुछ देर निस्तब्धता रही और फिर वजीरअली बोला—'कुदरती और आदमियो की बनायी हुई इन असमानताओ के निस्बत अच्छी तरह सोचिए ऐसे मामले खूब सोचने से ही समझे जा सकते है। किसी चीज पर यदि बिना समझे विश्वास हो जाता है तो इसलिए कि वह हमेशा होती हुई दीखती रही है। रोज ही किसी वस्तु को देखते रहने पर आँखे मट्टी हो जाती है, दिमाग बिना सोचे इन पर विश्वास करने लगता है, लेकिन कभी-कभी एकाएक · ।

एक दिन वजीरअली ने कहा—'आदमी के जीवन और समाज के जीवन मे फर्क है। आदमी की जिन्दगी मे वर्षों की जो कीमत है समाज की जिन्दगी मे सदियो की। फिर बिना मूल्यो मे परिवर्त्तन हुए मानव-हृदय में परिवर्त्तन नही होता। और इन दोनो बातो के बिना बलपूर्वक जो समाज रचना

की जा रही है वह कहाँ तक मुस्तकिल रह सकेगी, यह एक सवाल है। फ्रास की क्रान्ति असफल हो गयी। रूस की क्रान्ति भी सच्चे साम्यवाद को कायम न कर सकी। रूस मे आज भी एक आदमी और दूसरे आदमी की आमदनी मे जमीन-आसमान का फर्क है। कई लोगो का तो यह खयाल है कि रूस मे साम्यवादी समाज नही पर व्यवस्थापिको का समाज बन रहा है।'

मुस्कराते हुए एक व्यक्ति ने कहा—'तो अब आप गाधीवादी बन रहे है?'

गम्भीरता से सोचते हुए वजीरअली बोला—'नही, हूँ तो मै मार्क्सवादी ही पर सारे मामले पर मै फिर-फिरकर विचार किया करता हूँ और अब एक सीमा तक गाधीवाद और मार्क्सवाद को एक दूसरे का विरोधी नही मानता। मार्क्सवाद के अनुसार भी भिन्न-भिन्न देशो के समाज की रचना उन-उन देशो की परिस्थिति के मुतालिक होगी। जो लोग हिन्दुस्तान को रूस के समान बनाने की कोशिश कर रहे है वे मेरी राय मे भूल कर रहे है। आँख बन्द कर किसी का भी अनुसरण बुरी चीज है। हमारा देश एक पुराना देश है। इस देश का अपना इतिहास है, अपनी सस्कृति है और अपनी सभ्यता है। गाधीवाद उसका प्रतीक है। गाधीवाद जो व्यक्तिगत सुधार चाहता है उसके बिना समाज का सुधार नही हो सकता। गाधीवाद जिस नैतिकता पर चलने को कहता है उसके बिना व्यक्तिगत सुधार मुमकिन नही। गाधीजी का सर्वोदय व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो ही जीवनो के लिए जरूरी है। मार्क्सवाद इनमे से किसी के भी खिलाफ नही। मार्क्सवादी होते हुए भी मै तो इस देश का कल्याण गाधीवाद और मार्क्सवाद के समन्वय मे देखने लगा हूँ।'

इन्दुमती नित्य वजीरअली की सोशलिस्ट लीग मे जाती और उनकी बातो मे दिलचस्पी लेती रही, और यद्यपि उसे साम्यवाद या समाजवाद मे कोई खास अनुराग न था और न वह वर्त्तमान समाज को बदलकर साम्यवाद या समाजवाद कायम करने को अपना कार्यक्रम बनाना चाहती थी, परन्तु सोशलिस्ट लीग, उसके मेम्बरो की गरमा-गरम बहसो और अपने कार्यक्रम मे अपने लिए एक नया लगाव उसे मनोरजक प्रतीत होता था।

थोडे ही दिनो में वजीरअली के निश्चयानुसार दफ्तर के वाद-विवादो से आगे बढकर सोशलिस्ट लीग का काम मजदूर बस्तियो और कारखानो मे पहुँचा और ज्यो-ज्यो यह काम आगे बढने लगा दफ्तर की बहसो मे कमी होती गयी। मजदूर बस्तियो का यह काम लखनऊ और कानपुर दोनो जगह शुरू हुआ। अब वहाँ के अधिकाश सदस्य सुबह-शाम दफ्तर आकर वाद-विवाद करते रहने के स्थान पर मजदूरो की बस्तियो में जाने और अपने विचारों का प्रचार करने मे अपना समय लगाने लगे। वजीरअली तो अब दफ्तर बहुत ही कम आता और आता भी तो इधर-उधर की कुछ आवश्यक बातें पूछ-ताछ लेता। किसी को कुछ पूछना होता तो उसका उत्तर दे देता और प्राय कहता यदि हमे मजदूरो का सच्चा सगठन बनाना है तो हमे ज्यादा समय मजदूरो मे ही बिताना चाहिए। दफ्तर बैठे-बैठे हम मजदूरो की कठिनाइयो और उनकी रोजमर्रा की बातो को कभी न समझ सकेगे।'

जिस प्रकार त्रिलोकीनाथ के साथ इन्दुमती ने पहले-पहल गाँव देखा था उसी तरह वजीरअली के साथ उसने सर्वप्रथम लखनऊ मे मजदूरो की बस्ती देखी। गाँव उसे जितना गन्दा दीखा था, गाँव मे रहनेवाले जितने घृणास्पद, उससे कही अधिक गन्दी दीखी उसे मजदूरो की बस्ती और गाँववालो से कही अधिक घृणास्पद जान पडे उस बस्ती मे रहनेवाले मजदूर। गाँव के झोपडे कच्चे थे और मजदूरो के घर अधिकतर पक्के, पर वे कच्चे झोपडे इन पक्के क्वार्टरो से कही स्वच्छ थे। उन कच्चे झोपडो मे रहने की जगह अधिक न थी, पर इन क्वार्टरो की अपेक्षा तो कही अधिक। गाँव के उन झोपडो मे एक कुटुम्ब किसी प्रकार सुविधा से रह सकता था। कोठरियो के सिवा छोटे-छोटे आँगन थे जिनके कारण जगह की कोताही उतनी अधिक न जान पडती थी, पर इन घरो मे तो ऐसा ज्ञात होता मानो घास की गजियो के सदृश मनुष्यो और उनके सामान की गजियाँ लगी है। एक ही कोठरी मे सोना, बैठना, सामान रखना, सब कुछ। गाँव में प्याज-लहसुन का बहुत अधिक प्रचार न होने के कारण तथा अधिकाश व्यक्तियो के बाहर पैखाने आदि जाने की वजह से वैसी दुर्गन्ध नही थी जैसी इन घरो के छोटे-छोटे रसोईघरो मे प्याज एव लहसुन की छौक तथा पैखाने और पेशाब के कारण। फिर एक चीज की दुर्गन्ध यहाँ और थी जो गाँव मे न थी, यह थी मनुष्यो के मुँह से निकलनेवाली देशी

शराब की। कूडा-कचरा फेकने के टिकिट घर रहने पर भी सभी जगह कूडा-कचरा पडा था। उसे ठीक जगह फेंकने की किसी को आदत ही न थी। कूडा-कचरा ही नही, पखाना तक इधर-उधर दीखता था , खास कर बच्चो की, जो बाहर की नाली मे ही नही पर कही भी पैखाना करने को बैठा दिये जाते थे। पेशाब तो कई जगह वयस्क लोगो तक की पडी थी, क्योकि कही भी बैठकर पेशाब कर देना कोई बुरी बात समभी ही न जाती थी। थूक और पान के पीक की तो इतनी बहुतायत थी कि शायद ही कोई जगह हो जहाँ यह दृष्टिगोचर न होता हो। आम का मौसम था और खाये हुए आमो की गुठलियाँ तथा छिलके इस थूक और पीक से कम दिखायी न पडते थे। कितने मक्खियो के दल भिनभिना रहे थे इन आमो के अवशेषो और पैखानो तथा कूडा-करकट के ढेरो पर। गाँव इन्दुमती ने पहले-पहल देखा था कुँआर महीने मे जब रबी की फसल बोयी जा रही थी। बोनेवाले बैलो की घण्टियाँ और कभी बोनेवाले व्यक्तियो की एकाध तान भी सुनायी दे जाती थी। उस मधुर ध्वनि के स्थान पर इन क्वार्टरो मे हो-हल्ला मचा था आपसी भगडो और गाली-गलौज के कारण। गाँव के निवासी भी निर्धन थे, उनके कपडे भी कम से कम ही थे और वे भी इधर-उधर फटे हुए तथा बिगडैल। पर उनकी अपेक्षा भी मजदूरो के कपडे इन्दुमती को कही गन्दे जान पडे। और बच्चे तो अधिकाश नगे ही घूम रहे थे।

इन्दुमती को गाँव देखकर शहर याद आया था। उसे लखनऊ का जीवन निर्मल नीर के समान जान पडा था और गाँव में सब कुछ कीचड़वत्, पर आज उसी लखनऊ के शहराती जीवन का उसे वह विभाग दीखा जो गाँव के देहाती जीवन से भी कही अधिक घृणास्पद था। जैसी ग्लानि से इन्दुमती का मन उस दिन भर गया था, जब वह त्रिलोकीनाथ के साथ गाँव गयी थी वैसी ही ग्लानि आज उसके मन मे उत्पन्न हुई वरन् उससे भी अधिक। सोशलिस्ट लीग के दफ्तर मे बैठ गपशप करना, सम्पन्न वर्ग की भाँति-भाँति की आलोचना करते हुए उन्हे नष्ट कर मजदूरो के उत्कर्ष की योजनाएँ बनाना एक बात थी और मजदूरो से सम्पर्क स्थापित कर उन योजनाओ को कार्यरूप में परिणत करना सर्वथा दूसरी। इन्दुमती को जब वह त्रिलोकीनाथ के साथ गाँव गयी थी उस समय लौटते हुए उसने त्रिलोकीनाथ से जो एक बात कही

थी हठात् याद आयी । 'इस देश में सौ में से अस्सी आदमियो के रहने के कितने स्थानो को आप और हम ठीक कर सकते है' और वह मन ही मन कहने लगी— 'इन अगणित मजदूरो का उद्धार ··! असम्भव···सर्वथा असम्भव बात है। मै फिर से कहाँ · कहाँ जा रही हूँ ?' इन्दुमती को जान पडा जैसे उसका दम घुट रहा है और वह इसके बाद शायद कभी इन क्वार्टरो मे पैर न रखती पर एकाएक उसे यहाँ एक ऐसा व्यक्ति दीखा और उसने उसे बरबस सा अपनी ओर इस प्रकार खीचा कि दिनोंदिन इन्दुमती का आगमन इस महान् गन्दगी· मे भी बढ चला ।

इस व्यक्ति का नाम था वीरभद्र। उम्र लगभग ३० वर्ष। उँचाई छै फुट से भी अधिक। शरीर न मोटा न दुबला गठा हुआ। रग कोयले के सदृश नितान्त काला, परन्तु काले के साथ ही शीशे के समान चमकदार। आँखे बडी-बडी जिनमे लाल डोरे। बाल रग के समान ही काले, पर उनमे घूँघर। जितना रग काला उतने ही सफेद दाँत और हँसते समय लाल मसूडो के दर्शन। मूँछे छोटी-छोटी पर उनके बाल सीधे खडे हुए।

वीरभद्र मजदूरो का मेट था। हिन्दी की चौथी पुस्तक तक शिक्षा प्राप्त की थी। जैसा ऊँचा और बलिष्ठ उसका शरीर था वैसा ही मन भी। उसे ऊँचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त नही हुई थी। वह सुसस्कृत भी नही कहा जा सकता था, पर वीर वह अवश्य था। अशिक्षितो तथा असस्कृतो दोनो मे ही वीर हो सकते है। वीरता एक नैसर्गिक गुण है, परन्तु अशिक्षित तथा असस्कृत वीरो और शिक्षित तथा सुसस्कृत वीरो मे अन्तर होता है। सिपाही के गुण प्रथम प्रकार के वीरो मे और सिपहसालार के गुण दूसरी प्रकार के वीरो मे पाये जाते है। सिपाही की वीरता मे जो उत्कटता, उत्सर्ग हो जाने की जो भावना रहती है वह सिपहसालार मे नही। कभी-कभी आगे-पीछे की बहुत सी बाते सोचने-विचारने के कारण वीर सिपहसालार भी कायरो के सदृश कृति करते देखे जाते है पर सच्चे सिपाही नही। शिक्षा और सस्कृति के पालिश की फिसलन के कारण कभी-कभी सिपहसालार फिसल पडते है। वीरभद्र की नैसर्गिक वीरता खुरदरी थी। शिक्षा और सस्कृति का उस पर पालिश न चढा था अत वह ऐसी वीरता थी जहाँ फिसलने का मौका ही नही रहता। वीरता के सिवा वीरभद्र मे दो सद्गुण और थे। उसमे कदर ईमानदारी थी

और हाथ मे लिये काम को पूरा करने की पूरी-पूरी क्षमता। परन्तु इन सद्‌गुणो के साथ-साथ उसमे कई दुर्गुण भी मौजूद थे। वह शराब पीता था। जुआ भी खेलता था। अपनी औरत को अनेक बार पीटता था और वेश्याओ के यहाँ भी जाता था।

: २६ :

इन्दुमती की समझ मे न आया कि वीरभद्र के प्रति उसके कैसे भाव है। वीरभद्र को देखते ही उसके मन मे जैसी भावनाएँ उठी थी वैसी इसके पहले कभी न उठी थी यह उसे अवश्य जान पड़ता था, परन्तु इन भावनाओ की तह मे क्या है इसका पता बार-बार विचार करने पर भी वह न लगा सकी।

विवाह न करने के अपने निर्णय पर भी कालेज मे सर्वप्रथम त्रिलोकीनाथ के प्रति उसका आकर्षण हुआ था। त्रिलोकीनाथ के मन मे उसके प्रति कैसे भाव है इसका पता पाने के लिए जब उसने रक्षाबन्धन के दिन राखी बाँधने का प्रपच रचा था और त्रिलोकीनाथ के राखी न बँधवाने पर घर लौटकर जब रात को नीद न आने के कारण उसने सारे विषय पर अपने मन मे विवेचना की थी तब उसे जान पडा था कि त्रिलोकीनाथ के प्रति ही नही—बैजनाथ, अलोपीप्रसाद, मदनमोहन आदि सभी के प्रति उसका वैसा ही खिचाव है। वीरभद्र के लिए उसके मन मे जो भावनाएँ उठ रही थी वे त्रिलोकीनाथ के प्रति उसकी जो भावनाएँ थी उससे सर्वथा भिन्न थी।

इसके पश्चात् ललितमोहन के उसे दर्शन हुए थे। प्रथम बार स्टेशन पर उसे देखते ही वह अपनी सुध-बुध भूल गयी थी। पिताजी की जुबली के उत्सव मे ललितमोहन के सहवास, फिर उसके वियोग, फिर सयोग और फिर चिर-वियोग के समय उसकी जो हालते रही वे भी उसे याद आयी और उन मनोदशाओ का सिंहावलोकन कर जब उसने वीरभद्र के प्रति अपनी भावनाओ का उन मनोदशाओ की भावनाओ से मिलान किया तब उसे जान पड़ा कि ललित-

मोहन के प्रति उसका जो प्रेम था उससे भी वीरभद्र के प्रति उसका जो आकर्षण हुआ उससे कोई मिलान नही हो सकता। कुछ देर बाद तो वह ललितमोहन और वीरभद्र के प्रति अपनी भावनाओ के मिलान करने पर आश्चर्य से स्तम्भित-सी रह गयी। मन ही मन उसने कहा—'कहाँ · कहाँ वे भावनाएँ और कहाँ····· कहाँ ये। · ·· और कहाँ · कहाँ ललितमोहन तथा कहाँ··· ··वीरभद्र! कहाँ · कहाँ ललितमोहन का रूप, गुण, शिक्षा और सस्कृति। ···कहाँ ··कहाँ वीरभद्र का रूप, गुण, शिक्षा और सस्कृति,' इन्दुमती सोचने लगी—'गौरवर्ण सारे वर्णो मे सुन्दर माना जाता है, जो निसर्ग ने ललितमोहन को दिया था। उसके ठीक विपरीत वीरभद्र का रग था काला, एकदम काला। फिर वर्ण के अतिरिक्त सौन्दर्य मे मृदुता का स्थान होता है। ललितमोहन के मुख और सारे अग-प्रत्यग मे कैसी मृदुता थी। उसके ठीक विपरीत वीरभद्र मे मृदुता के स्थान पर काठिन्य और ऐसा-वैसा काठिन्य नही, काठिन्य की पराकाष्ठा। सद्‌गुण उसमे दीखते ही न थे। मुख से शराब की बदबू और उसके जुए, बदचलनी, औरत को पीटने आदि की अफवाहे। शिक्षित भी वह न था, अधिक से अधिक अर्द्धशिक्षित कहा जा सकता था। और सस्कृति तो उसमे छू तक न गयी थी। फिर वह था समाज के निकृष्ट से निकृष्ट मजदूर वर्ग का, न अभिजात वर्ग का और न मध्यम श्रेणी का। ऐसे वीरभद्र के प्रति उसके खिचाव का मिलान ललितमोहन के प्रति उसका जो प्रेम था उससे करना ही हास्यास्पद है। फिर उसका जीवन तो आज भी ललितमोहन से भरा हुआ है। ललितमोहन के मरने पर वह पागल हो गयी थी सन्तान की इच्छा होने पर भी वह पुनर्विवाह न कर सकी, नियोग इत्यादि भी नही। दूसरे किसी से वैसे शारीरिक सम्पर्क की उसके मन मे कल्पना तक न उठी थी। ललितमोहन को ही पुन प्राप्त करने के लिए विज्ञान का सहारा ले उसने मयक की उत्पत्ति करायी थी। ऐसा था आधिपत्य उस पर ललितमोहन का। वीरभद्र के प्रति अपने खिचाव का ललितमोहन के प्रति उसका जो प्रेम था उससे मिलान करने पर इन्दुमती को अपने आप पर ही बार-बार आश्चय होने लगा।

सावन का महीना था। वर्षा ऋतु अपनी युवावस्था में थी। आकाश घनी घटाओ से घिर गया था। रात्रि का समय था। बीच-बीच में बिजली चमकती

और बादल गरजते थे । हवा मे तेजी थी और जान पडता था जोर से पानी बरसनेवाला है । इन्दुमती अपने शयनागार मे अपने पलँग पर लेटी हुई इसी उधेडबुन मे लगी हुई थी । मयक उसी के निकट एक छोटे पलँग पर निद्रामग्न था । इन्दुमती को नीद न आ रही थी । वह बार-बार करवट बदल रही थी । हठात् उसे याद आया वह दिन जब लगभग सोलह वर्ष पूर्व राखी पूनम को त्रिलोकीनाथ तथा उसके अन्य साथियो ने राखी न बँधवायी थी और वह इसी कमरे मे नीद न आने के कारण इसी प्रकार की उधेड़बुन मे गोते लगा रही थी । उस दिन के पहले उसने कभी अपने जीवन का सिंहावलोकन न किया था और उस दिन एकाएक न जाने कितनी बाते इकट्ठी उसके मन मे उठी थी । उसे याद आया उस दिन किया हुआ बहु-विवाह सम्बन्धी अपना विवेचन और जो इन्दुमती ललितमोहन तथा वीरभद्र के प्रति अपनी भावनाओ के मिलान पर बार-बार अपने आप पर आश्चर्य करती थी उसी इन्दुमती के मन मे जो न कुँआरा था और न विधुर, उस विवाहित, पत्नीवाले वीरभद्र से विवाह करने की बात उठी । इन्दुमती को जान पड़ा जैसे डी० सी० करेन्ट बिजली का जोर का धक्का उसे लगा हो । वह पलँग से कूद पडी और सीधी खिडकी की ओर जा उसे खोला । जोर की वर्षा हो रही थी । वर्षा के साथ ही हवा की तेजी बढ गयी थी । पूरे तूफान का दृश्य था । यद्यपि खिड़की पर सायबान था, पर दरवाजे खुलते ही पानी का एक झोका-सा कमरे मे आया । इन्दुमती ने तत्काल फिर दरवाजा बन्द कर दिया । उसे याद आयी सोलह वर्ष पूर्व की उसी दिन की फिर एक बात । उस दिन भी उसने इसी प्रकार खिडकी खोली थी और बाहर का तूफान देख उसने सोचा था—'इस विश्व में सदा ही तूफान चला करता है, हृदयरूपी कक्ष के द्वार खोल देने पर वहाँ भी कोई चीज स्थिर नही रह सकती ।' और जब वह यह सोच रही थी तब उसे याद आयी उस दिन के बाद की जीवन की अनेक घटनाएँ । कैसे-कैसे तूफान मे चलते-चलते उसकी जीवन-नौका यहाँ तक आयी थी । और जब वह जीवन का फिर सिंहावलोकन कर रही थी उस समय उसे याद आयी सोलह वर्ष पूर्व की उस रात की रिमझिम वर्षा । तो उस दिन की रिमझिम वर्षा के समय की उधेड़बुन और जीवन के प्रथम सिंहावलोकन के बाद जब उसकी जीवन-नौका इतने तूफानो के बाद गुजरी थी तब आज तो घनघोर वृष्टि हो रही

थी। आज की उधेड़बुन उसकी जीवन-नौका को शायद डुबो ही देगी। और उसके मन मे जब यह डूबने की बात उठी तब उसे हठात् याद आया अपने पिता का उपदेश—'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' आज बहुत समय बाद उसे पिता का वह उपदेश याद आया था। सोलह वर्ष पूर्व की उस रात को उसने निश्चय किया था लाल या केशरी रग के वस्त्र पहनना, क्यो कि आग की लपटो और दीपक की ज्योति के ये ही रग है, आग के आलोक मे क्या-क्या भस्म हो जाता है तथा दीपक की ज्योति पर कितने पतगे अपने प्राण विसर्जन करते है। उसने निश्चय किया कि उस समय न कर सकी तो न सही अब वह इन्ही रगो के वस्त्र पहनेगी, जिससे वह अपने को आग अथवा दीपक की ज्योति माने और ससार मे सब कुछ भस्म करने की उसमे शक्ति है यह समझ ले। उसे उस सोलह वर्ष पूर्व की सर्वप्रथम सूनेपन की अनुभूति भी याद आयी और यह भी याद आया कि इसी कमरे की स्तब्धता भग करने के लिए उसने अपने चाबियो के गुच्छे को बजाया था तथा उसके मन में उठा था कि ससार की समस्त समस्याएँ एक प्रकार के ताले तो है ही, उनके खोलने के लिए कोई न कोई कुञ्जी भी रहती है, पर शायद उसके पिता का उपदेश ऐसी कुञ्जी है जिससे सारे ताले खुल जाते है। सोलह वर्ष पूर्व उसे अपने पिता का उपदेश सब तालो को खोलने के लिए जैसी कुञ्जी दीखा था वैसी ही कुञ्जी आज भी जान पडा।

इन्दुमती फिर आकर पलँग पर लेट गयी। इतनी उधेडबुन मे भी न जाने कैसे उसे नीद आ गयी। नीद मे इन्दुमती स्थिर दिखायी दे रही थी, पर यथार्थ में इस समय उसकी दशा उस नदी के समान थी जिसका पानी हेमन्त मे ऊपर से बर्फ हो जाने के कारण स्थिर हो जाता है, किन्तु उस बर्फ के नीचे धारा बराबर बहती रहती है। इसीलिए स्थिर दीखने पर भी इन्दुमती स्वप्न देख रही थी। उसे दीखा काला वीरभद्र एक बड़े ऊँचे वृक्षो से रहित बीहड और भयानक काले पर्वत पर खडा है। काले बादलो से सारा आकाश आच्छादित है। जोर की हवा चल रही है तथा मूसलाधार पानी बरस रहा है। प्रलय का सा दृश्य है। वीरभद्र यद्यपि कपडे पहने है तथापि वर्षा के कारण भीग जाने से उसके कपडे अग-प्रत्यगो मे चिपट गये है और उन भीगे हुए कपडो के कारण उसके गठे हुए शरीर के सारे अग-प्रत्यग दृष्टिगोचर हो रहे है। इन्दुमती

भीगती और डरती हुई उसी पहाड पर चढ रही है। उसके भी वस्त्र भीग जाने के कारण उसके अग-प्रत्यगो मे चिपट गये है। पहाड पर चढती हुई इन्दुमती को पहाड़ पर खड़ा हुआ वीरभद्र एकटक देख रहा है और उसके ऊपर पहुँचते ही लपककर वह उसे अपने बाहुपाश मे ले लेता है और उसका इस प्रकार दृढालिगन करता है कि इन्दुमती को जान पड़ता है मानो लोहे की बाहुओ ने उसे लोहे के शरीर से चिपटा लिया हो। आलिगन के बाद वीरभद्र उसके ओठो को चूमता है और यह इतने बलपूर्वक कि उसके ओठो से खून निकलने लगता है। इन्दुमती को इस भयानक आलिगन और चुम्बन मे भी एक ऐसा अद्भुत प्रकार का आनन्द आता है जैसा इसके पूर्व उसे कभी न मिला था। आलिगन और चुम्बन करनेवाले वीरभद्र मे उसे एक अद्भुत प्रकार का सौन्दर्य दीखता है। न जाने कितनी देर इस अवस्था मे रखने के बाद जब वीरभद्र उसे छोड़ता है तब एकाएक इन्दुमती की नीद खुलती है।

ज्योही इन्दुमती की नीद खुली त्योही तो उसने अचकचाकर अपने चारो ओर देखा। न पहाड था, न वर्षा और न वायु। न कही वीरभद्र दृष्टिगोचर होता था। वह अपने कमरे मे अपने पलँग पर लेटी हुई थी। उसी के पास दूसरे पलँग पर सो रहा था मयक। इस दृश्य को देखने के बाद भी उसने अपनी साडी को टटोला। वह भीगी भी नही थी। तो···तो यह सब वह क्या देख रही थी, वह सोचने लगी। स्वप्न था, निस्सन्देह स्वप्न था। कैसा काला, कैसा भयानक, वह स्वप्न था, पर भयानक होने पर भी कैसा सुन्दर। वीरभद्र काला है, शायद भयानक भी, पर काला और भयानक होने पर भी वह सुन्दर है अवश्य सुन्दर है। नीद आने के पूर्व उसने लाल या केशरी वस्त्र पहनने की बात सोची थी इसलिए कि आग की लपटो और दीपक की ज्योति के ये ही रग है। आग के आलोक में क्या-क्या भस्म हो जाता है तथा दीपक की ज्योति पर कितने पतग अपने प्राण विसर्जन करते है। पर उसने जो स्वप्न अभी-अभी देखा था उस स्वप्न के पानी और आँधी के सामने कौनसी आग और कौनसी दीप-ज्योति बिना बुझे रह सकती है।

इन्दुमती को अपने निकट वीरभद्र की आवश्यकता···नितान्त आवश्यकता जान पडने लगी और जिस ललितमोहन को वह इतने वर्षों तक न भूल सकी थी, जिस मयकमोहन के लालन-पालन मे उसने सारी सृष्टि को विस्मृत कर

दिया था, उस ललितमोहन को भी इस समय वह भूल गयी तथा मयक के पास मे सोते रहने पर भी उस ओर भी उसका ध्यान आकृष्ट न रहा।

वीरभद्र की ऐसी याद मे इन्दुमती को पिता का उपदेश भी स्मरण न आया।

हाँ, एक बात उसके मन मे अवश्य उठी। वह सोचने लगी कि जिस सुख को वह वीरभद्र से चाहती है वह क्षणिक···कितना क्षणिक होगा, परन्तु यह बात भी बहुत देर तक उसके मन मे न रही, क्योकि इसी के बाद उसके मन मे यह भी उठा कि क्षणिक तो इस दुनियाँ मे सभी चीजे है। स्थायित्व यहाँ है ही कहाँ ?

इन्दुमती को अब हर क्षण अपने निकट वीरभद्र की आवश्यकता जान पडती थी और इस आवश्यकता की पूर्ति वह वीरभद्र के यहाँ जाकर ही कर सकती थी। वीरभद्र जिस सामाजिक स्तर का था वह स्तर इन्दुमती के स्तर से बहुत नीचे का था। अतः इन्दुमती वीरभद्र के यहाँ कैसे जाया करे यह उसके लिए एक समस्या हो गयी।

बहुत सोचने-विचारने के बाद मजदूरो के क्वार्टरो मे मजदूरो की सेवा करने के बहाने से जाने के सिवा उसे अन्य कोई रास्ता वीरभद्र के यहाँ जाने का न सूझ पडा।

पहले-पहल जब इन्दुमती इन क्वार्टरो मे आती तब वजीरअली को साथ लाती। सारे क्वार्टरो का चक्कर लगाती, उनके और उनके निवासियो के सुधार की योजनाएँ बताती और घूम-फिर कर वीरभद्र के क्वार्टर मे बैठती। वीरभद्र के क्वार्टर मे उसका बैठना भी स्वाभाविक था, क्योकि वह मजदूरो की इस यूनियन का मन्त्री था। मन्त्री तो वह हाल ही मे यूनियन की स्थापना के बाद बना था, मजदूरो का नेता था इसके पहले से। कुछ ही दिनो में इन्दुमती का यहाँ आना इतना बढ चला कि वजीरअली को अपनी सस्था के अन्य कामो के कारण उसका साथ देना सम्भव न दीखा। अब वजीरअली कई बार सस्था के अन्य कार्यकर्त्ताओ को इन्दुमती के साथ भेजता, पर कुछ दिनो बाद जब यह भी सम्भव न रहा तब इन्दुमती ने यहाँ अकेला आना ही शुरू कर दिया। मजदूरो की भलाई मे इन्दुमती की इतनी दिलचस्पी देख वजीरअली को बडी प्रसन्नता हुई। इन्दुमती का इकरूखापन, दृढता और

हाथ में लिये हुए काम के पीछे पड़ने की प्रवृत्ति को वजीरअली भली भाँति जानता था और उसे मन ही मन विश्वास हो गया कि इन्दुमती द्वारा मजदूरो की बडी भलाई होनेवाली है ।

इन्दुमती ने जब सोशलिस्ट लीग के दफ्तर मे जाना शुरू किया था तब वह मयक के स्कूल मे रहने के समय जाती थी पर मजदूरो की बस्ती मे छुट्टी के दिनो को छोड वह प्राय सूर्यास्त के बाद जाती क्योकि तभी मजदूर काम से लौटते। सूर्यास्त के बाद जाकर कभी-कभी वह बहुत रात गये लौटती। छुट्टी के दिनो मे तो प्राय वह प्रात.काल से रात्रि तक वही रहती। इस प्रकार मयक का और उसका साथ अब बहुत कम रहने लगा। वही मयक जिसे वह आया इत्यादि के रहते हुए क्षणमात्र को न छोड़ती थी अब पूर्णतया आया के सिपुर्द हो गया था । पहले मयक को माता के इस बिछोह से कष्ट भी कम न हुआ। अनेक बार वह रोता भी। जब-तब वह अधिक मचल भी जाता। उसके इस मचलने पर इन्दुमती बुलायी भी जाती और इस बुलावे पर वह तमकती हुई ही आती। मयक डाँटा जाता, कभी-कभी एकाध चपत भी खा जाता। पर धीरे-धीरे मयंक को अपनी आया ही सब कुछ दीखने लगी। आया के प्रति इस अनुराग ने मयक का कष्ट भी कम कर दिया और इन्दुमती का भी।

: ३० :

इन्दुमती के मजदूरो की बस्ती मे आने का चाहे कोई भी आन्तरिक कारण क्यो न रहा हो, पर उसके इस निरन्तर आवागमन ने इस बस्ती की हालत को सुधारना अवश्य आरम्भ कर दिया। क्वार्टरो की जगह नही बढी, पाखानो, नलो आदि मे भी वृद्धि नही हुई, उनका भीड-भडक्का भी कम नही हुआ, पर उनका गन्दापन अवश्य कम हो गया ।

परन्तु इस जड सृष्टि के सिवा यहाँ की चेतन सृष्टि मे कोई सुधार न दीख

पड़ता था। शराबखोरी, जूआ, हो-हल्ला, गाली-गलौज सबका हाल पूर्ववत् था। मजदूर बस्ती में इन्दुमती का जो समय व्यतीत होता उसका थोडा भाग वहाँ के सुधार मे जाता। शेष समय उसका वीरभद्र के क्वार्टर मे ही बीतता। कभी वह वीरभद्र से बाते करती, कभी उसकी पत्नी पार्वती से और कभी उनकी तीन वर्ष की बच्ची कमला को खिलाती। जब वह वीरभद्र से बात करती तब और जब पावती से उसकी बातचीत होती अथवा कमला को खिलाना चलता तब भी वह सदा वीरभद्र को कभी प्रत्यक्ष और कभी आँख बचा कनखियो मे देखा करती। वीरभद्र के सम्बन्ध मे उसके मन मे जो-जो भावनाएँ उठा करती वे उसके भीतर की भीतर रह जाती। किसी अन्य से तो दूर रहा वीरभद्र से भी वह इस सम्बन्ध मे कुछ न कह सकती। वीरभद्र सच्चरित्र नही है यह उसे अफवाहो से ही ज्ञात न हुआ था, पर पार्वती की दबी जबान से भी मालूम हो गया था, जो धीरे-धीरे उसकी मित्र-सी होती जाती थी। वीरभद्र के मुँह से शराब की दुर्गन्ध तो सदा उडा ही करती थी और छुट्टी के दिनो मे अनेक बार वेश्यालयो मे जाने के कारण वह लापता भी रहता था, पर ऐसे दुश्चरित्र वीरभद्र ने भी उसकी ओर कभी नजर भर कर देखा तक न था। विधवा होने के बाद इन्दुमती सादे खादी के कपडे ही पहनती था, वीरभद्र को देखने के पहले बाल आदि सँवारने की ओर भी उसका ध्यान न रहता था, पर वीरभद्र के दीखने के पश्चात् सादे वस्त्र भी वह बडे ध्यान से पहनती। बाल इत्यादि बडी सावधानी से सँवारती। कितनी इच्छा होती उसकी कि वीरभद्र उसे अच्छी तरह देखे तो। दुश्चरित्र वीरभद्र उसके प्रति ऐसा सच्चरित्र क्यो रहता है, इस पर उसे आश्चर्य भी होता। पर वह उससे कुछ कह न पाती। वीरभद्र के सम्बन्ध मे उसे सपने कई प्रकार के आया करते। कई बार नीद खुलने पर वह खीजती भी, उसकी इच्छा होती वह सदा इस प्रकार के सपनो मे ही क्यो नही रहती। पर चाहे सुस्वप्न हो या दुस्वप्न सदा सर्वदा सपनो मे कौन रह सकता है ?

जिस तरह धीरे-धीरे, पर कुछ ही महीनो मे, इन्दुमती ने इस बस्ती मे सुधार किया उसी प्रकार धीरे-धीरे, पर कुछ ही महीनो मे, मजदूरो को भी इन्दुमती का सारा जीवन वृत्तान्त ज्ञात हो गया। इन्दुमती को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिन मजदूरो के लिए वह इतना कार्य कर रही थी, जो मजदूर

आरम्भ मे बडी श्रद्धा से उसके आदेशो के पालन का प्रयत्न करते थे, वे अब उससे खिचे-खिचे से रहने लगे है और उसके आदेशो की भी अवहेलना करते है। पहले तो मजदूरो के व्यवहार का यह अन्तर उसे जान न पडा, पर जब धीरे-धीरे उसने देखा कि फिर से कूड़ा-करकट इधर-उधर बिखरने लगा है, मल-मूत्र करने और थूकने आदि छोटी-छोटी बातो पर भी लोग उसके कथन पर ध्यान नही देते, तब उसे उनके व्यवहार का अन्तर ज्ञात हुआ। इसका कारण उसकी समझ मे तब आया जब एक दिन वीरभद्र की कोठरी मे वह पार्वती के पास खडी थी और पास के एक दूसरे क्वार्टर से उसके सम्बन्ध मे जो बाते हो रही थी वे उसके कान मे पड़ी। वीरभद्र आज कही गया हुआ था—शायद वही जहाँ वह रात्रि को अक्सर जाया करता था।

'हाँ, हाँ, सौ चूहे मारकर बिल्ली हज को चली है।' आवाज किसी मर्द की थी।

'मै तो उस लडके को भी स्कूल मे देख आया हूँ जो हमारे नेता वजीर-अली से हुआ है।' यह भी मर्द की आवाज थी, पर उसकी नही जिसने पहली बात कही थी।

एक औरत बोली जो स्वर से स्पष्ट मालूम हो गया—'वह लड़का वजीर-अली से मिलता है ?'

इसके पहले जो व्यक्ति बोला था उसी ने फिर कहा—'बिलकुल, हूबहू वजीरअली के माफिक है। अगर वजीरअली की उस उम्र की कोई तस्वीर मिल जाय तो मै उस तस्वीर और उस लडके को दिखाकर साबित कर दूँ कि वजीरअली मे और उसमे कोई फर्क ही नही है।'

एक दूसरे मर्द ने कहा—'और ये देवीजी हम मजदूरो का भला करेगी ! ईश्वर बचाये ऐसी औरतो से हमारी औरतो को।'

'मैने तो जब से उसकी ये करतूते सुनी है, उसकी तरफ देख नही सकती।' एक अन्य स्त्री बोली।

'और इस सारी कार्रवाई को छिपाने के लिए ढंग भी अनोखा निकाला है।' एक मर्द ने कहा।

'कैसा ?' एक दूसरी स्त्री ने पूछा।

उसी मर्द ने उत्तर दिया—'कहा जाता है कि बच्चा पिचकारी से पैदा किया गया है।'

एक जार की हँसी की आवाज आयी। और कुछ देर बाद फिर सुन पड़ा—

'पर, भाई, सारे पापो का प्रायश्चित्त तो वह कर रही है। कितनी सेवा करती है मजदूरो की।' आवाज मर्द की थी।

एक औरत ने कहा—'हमे ऐसी सेवा नही चाहिए। मेरी चले तो मै मजदूरो की बस्ती मे ऐसी औरत को पैर न रखने दूँ।'

कुछ देर मे सब तरफ से अपना सारा साहस बटोरते हुए भर्राये से स्वर मे इन्दुमती बोली—'बहन, जो कुछ तुमने सुना है, वह सब झूठ है, काला से काला झूठ। उनके मरने के कुछ वर्ष बाद मयक हुआ है यह सच है, पर न वह वजीरअली का है और न उससे मिलता-जुलता है। वह सचमुच पिचकारी से ही पैदा हुआ है।' इन्दुमती के इस भर्राये हुए स्वर मे एक बात और थी, जैसे वह सफाई दे रही हो, बिना माँगी सफाई। इन्दुमती ने आज तक अपनी किसी भी कृति की इस प्रकार की सफाई किसी को न दी थी। और फिर यह सफाई भी इस तरह दी जा रही थी जैसे इस सफाई के लिए भी वह शब्दो को खोज रही हो।

पार्वती ने कहा—'पर थोड़ी देर को मै अगर यह भी मान लूँ कि यह सब सही है तो भी ..'

बीच ही मे बात काटकर इन्दुमती अब तमककर बोली—'पर, बहन, मान कैसे ली जाय, झूठी बात थोडी देर को भी कैसे मानी जा सकती है?'

'हाँ, हाँ, वह तो सब झूठ होगी ही, पर मै तो यह कहती हूँ कि यदि सच भी हो तो भी ऐसे मर्दो के मुँह से ये बाते सोभा नही देती जो दुनियाँ का कोई ऐसा दुराचार नही जिसे न करते हो।'

इन्दुमती अब बैठी न रह सकी, रूमाल से मुँह पोछते हुए उसने उठकर जाते-जाते कहा—'मयक के जन्म का पूरा रहस्य फिर कभी बताऊँगी।'

इन्दुमती ने कैसी शीघ्रता से उस मजदूर बस्ती से बाहर निकल मोटर पर बैठ घर की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

इन्दुमती को बाहर से लौटने मे आजकल प्राय देर हो जाया करती थी

अत मयक आया के पास ही सोया करता था। उस दिन जब इन्दुमती घर पहुँची तब रात आधी के ऊपर बीत चुकी थी। इतनी देर करके लौटने पर इन्दुमती सीधी अपने कमरे मे जाकर सो जाया करती थी, परन्तु आज वह उस कमरे मे गयी जिसमे मयक आया के साथ सोया करता था। बिजली के मन्द बल्ब का प्रकाश था। भादो के अन्त के साथ-साथ वर्षा का भी अन्त हो रहा था अतः काफी गरमी होने के कारण बिजली का पखा चल रहा था और उसकी भनभनाहट की ध्वनि से कमरा भरा हुआ था। मयक पलँग पर निद्रा-मग्न था और उसके पलँग के पास ही जमीन पर अपना बिस्तर बिछा उसकी आया सो रही थी।

इन्दुमती दबे पैरो मयक के पलँग के पास पहुँची और इस तरह ध्यान से मयक को देखने लगी जैसे इसके पहले उसने मयक को देखा ही न हो। पर जब प्रकाश के अभाव मे इच्छानुसार इन्दुमती मयक को न देख सकी तब जिस प्रकार दबे पैरो वह मयक के पास पहुँची थी उसी प्रकार वहाँ से लौटी। अपने कमरे में आ उसने वहाँ से बिजली का एक टार्च उठाया, दीवाल पर लगी हुई वजीरअली की एक तस्वीर उतारी और मयक के कमरे मे लौट उसी तरह दबे पैर मयक के पलँग के पास पहुँची। इन्दुमती न मयक को जगाना चाहती थी और न आया को, इसीलिए उसने मयक के कमरे की बिजली की कोई बड़ी बत्ती न जलायी थी और इस तरह चल रही थी जिससे उसके चलने मे किसी प्रकार की आहट न हो।

मयक के पलँग के पास पहुँच उसने टार्च जला मयक का मुख और वजीर-अली की तस्वीर देखना आरम्भ किया। बहुत देर तक वह दोनो को देखती रही। कभी उसकी पुतलियाँ मयक के मुख पर और कभी वजीरअली की तस्वीर पर जमती। दोनो को बहुत देर तक देखने के बाद वह वैसे ही दबे पैरो अपने कमरे में लौट गयी और एक कुर्सी पर टार्च तथा दूसरी पर वजीरअली की तस्वीर पटक जोर से बोली—'जरा·· जरा भी तो नही मिलता मयक का चेहरा वजीर से।···और वह मजदूर कहता था "बिलकुल हूबहू वजीरअली के माफिक है।"·· झूठा · बदजात कही का।'

इन्दुमती की इच्छा थी कि मयक ललितमोहन के सदृश हो। जब वह पैदा हुआ तब उसे यह देखकर निराशा भी हुई थी कि मयक ललित के सदृश

नही है। पर बडे होने पर बच्चे कई बार बदल भी जाते है और बडा होने पर मयक शायद ललितमोहन के सदृश हो जायगा इस आशा पर उसने धैर्य धारण कर लिया था। अब उसे मयक ललित से कुछ मिलता-जुलता भी दीखने लगा था, खास कर पीछे की ओर से। मयक वजीरअली के सदृश है यह बात तो कल्पना मे भी अब तक उसके मन मे न उठी थी। आज जब उस मजदूर से उसने यह सुना कि मयक हूबहू वजीरअली के सदृश है तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही। मजदूरो के क्वार्टरो मे वह मयक और वजीरअली की सूरतो का स्मरण करती रही। उसे दोनो मे कोई सामजस्यता न सूझी। मजदूर बस्ती से लौटते हुए उसने निश्चय किया था कि घर पहुँचते ही वह मयक के मुख का वजीरअली के चित्र से मिलान करेगी। जब उसने यह मिलान करके देख लिया तब उसे इसके झूठ होने से तो सन्तोष हुआ, पर उसका चित्त ग्लानि और क्रोध से और अधिक भर गया। वजीरअली की तस्वीर और बिजली का टार्च कुर्सियो पर पटकते हुए उसने जो वाक्य कहे थे उनमे यही ग्लानि और क्रोध भरे हुए थे। अब इन्दुमती के मन मे फिर इकट्ठी अनेक बाते उठने लगी और वे भी बिना किसी खास सिलसिले के।

"कितने·· कितने·· झूठे है इस समाज के सारे, हाँ, शायद सारे के सारे व्यक्ति। मेरे शुद्ध, नितान्त शुद्ध रहते हुए जिस पतिपरायणा, पातिव्रत को समाज महत्त्व देता है उसका पालन करते हुए ललितमोहन को ही विज्ञान के सहारे फिर से प्राप्त करने के पवित्र अनुष्ठान···पवित्र से पवित्र अनुष्ठान पर समाज ने एक बवण्डर उठा दिया था। · आज···आज जिन्होने वजीरअली और मयक दोनो को देखा है, वे···वे कहते है झूठ···नितान्त मिथ्या कि मयक हूबहू वजीरअली के माफिक है।·· और उस पार्वती पार्वती को भी तो देखो · कहती थी ··'थोडी देर को मै अगर यह भी मान लूँ कि यह सब सही है।' · पर झूठी बात थोडी · हाँ, थोडी देर को·· भी कैसे मानी जा सकती है ? · पर थोडी देर को क्यो ? ·आज सात वर्षो से झूठी बात ही तो सच मानी जा रही है।···और···और शायद मेरी मृत्यु तक सच ही मानी जायगी।· पवित्र नितान्त पवित्र मै। · 'सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली है।' · और और यह कहते है वे·· वे मजदूर जो ऐसा कोई ऐसा कुत्सित कोई घृणित काम नही, जिसे न करते हो। · एक बात तो पार्वती

ने ठीक कही—'ऐसे मरदो के मुँह से ये बाते सोभा नही देती जो दुनियाँ का कोई ऐसा दुराचार नही जिसे न करते हो।' तो·· तो मर्द कुछ भी कर सकते है—शराब पी सकते है, जूआ खेल सकते है, दिन और रात वेश्याओ के घरो मे पडे रह सकते है, पर औरत···औरत कुछ नही कर सकती ।···मर्द औरत के पति है न ?···पृथ्वीपति, नरपति, गजपति, अश्वपति के समान नारीपति भी। ··और सचमुच मे वीरभद्र के समान व्यक्ति तो नारीपति · सच्चा नारी-पति हो भी सकता है। ··कैसा ऊँचा-पूरा, गठा हुआ शरीर है उसका !·· काला रग भी कितना···कितना सुन्दर होता है।·· तभी · तभी तो राम और कृष्ण दोनो, हाँ, दोनो काले थे। · कैसी ·कैसी चमक है वीरभद्र के रग मे। · गोरे रग में कभी ऐसी चमक होती है ?···ऐसे···ऐसे वीरभद्र को मै नारीपति मान सकती हूँ।· एक नारी का पति नही अनेक का भी।··· गायो के खिरको मे अनेक गायो के साथ एक ही साँड तो रहता है। हाथियो, बकरियो, भेडो के झुण्ड मे भी एक-एक दो-दो ही । ऐसे नरपुगव नारीपति · अनेक नारियो के पति भी हो सकते है। · पर बाकी··· बाकी के वे मजदूर···गन्दे से गन्दे कीडे-मकोडे।· घृणित से घृणित जन्तु। ·· और·· और ऐसे मजदूर करे मेरी आलोचना। · एक उच्चात्मा की· एक पवित्रात्मा की, ऐसी गन्दी, · ऐसी घृणित आलोचना · पर···पर मै उच्च, पवित्र अब भी रही हूँ क्या ? · वीरभद्र के प्रति मेरी जो भावनाये है उनके ·· उनके रहते भी मै उच्च मै पवित्र ?·· क्यो···क्यो नही ?·· मैने· मैने विवाह-सस्था पर कभी विश्वास ही नही किया।·· समाज मे पहले विवाह था ही नही।·· फिर ऐसा समय भी था जब एक नारी कई नरो और एक नर कई नारियो के साथ रहते थे।···कैसी पतिपरायणता ? कैसा पातिव्रत ?· ललितमोहन के बाद मैने किसी के साथ विवाह इसलिए नही किया, मै किसी के साथ इसलिए नही रही, कि वैसा शारीरिक सम्पर्क किसी से रखना मुझे पसन्द न था।··अब अब अगर वीरभद्र मुझे पसन्द है तो ? पर पर · पार्वती जो है।···इससे क्या ? · पार्वती के रहते भी वह वेश्याओ के पास जाता है। साहित्य मे भी जार नायक तथा परकीया नायिका का कितना वर्णन है । ·· कृष्ण, जिन्हे ईश्वर का पूर्ण अवतार माना जाता है, और राधा जिन्हे शक्ति का पूर्ण अवतार, जार नायक और परकीया नायिका ही तो थे।· ·वरन् जार

नायक और परकीया नायिका के प्रम में जो उत्कटता रहती है, वह साहित्यज्ञो के कथनानुसार किसी अन्य प्रेम मे नही। सच भी यही जान पड़ता है।... इतना उत्कट प्रेम मेरा किस पर हुआ...त्रिलोकीनाथ और उस समय के अन्य साथियो...ललितमोहन किसी...किसी के प्रेम से इस प्रेम की तुलना नही की जा सकती। कारण...कारण स्पष्ट है। ..त्रिलोकीनाथ और उस समय के साथी कुँआरे थे। ललितमोहन से विवाह ही हो गया। यह.. यह है जार और परकीया प्रेम !...सबसे उत्कट सबसे महान् ! पर मेरी ओर तो वह आँख उठाकर भी नही देखता।...यह...यह क्यो ? कौन ..कौन वेश्या मुझसे अधिक सुन्दर होगी ?"

और यह सोचते-सोचते इन्दुमती एक आदमकद शीशे के सामने खडी हो गयी। बिजली के तेज बल्ब नही जल रहे थे अतः जब उसे अपना स्वरूप भली भाँति न दीखा तब उसने तेज बल्बवाली बत्तियो के स्विच खोले और स्विच खोलकर फिर से शीशे के सामने खडी हुई। वीरभद्र की ओर खिचाव होने के बाद वह अपने सादे कपडो को भी ध्यान से पहनने लगी थी, बाल इत्यादि भी सावधानी से सँवारती थी, पर अब तक शीशे के सामने उसने अपने को इतने गौर से न देखा था। इन्दुमती को जान पडा कि लगभग ३४ वर्ष की अवस्था मे भी वह सुन्दर है, अत्यन्त सुन्दर, और उससे अधिक सुन्दर स्त्री का होना या तो असम्भव है अथवा असम्भव के नजदीक अवश्य। इन्दुमती को पार्वती अपने तलुओ के समान भी न जान पडी। कोई वेश्या उसके समान नही हो सकती यह भी उसके मन मे उठा। पर अनेक प्रयत्न करने पर भी यह उसकी समझ मे न आया कि वीरभद्र उसकी ओर आकर्षित क्यो नही हो रहा है।

अब आगे उसे क्या करना चाहिए इसके सम्बन्ध में उसके मन मे फिर कई बाते इकट्ठी उठना शुरू हुआ, उसी तरह बे सिलसिले से। टहलते-टहलते वह सोचने लगी—

"उस उस गन्दी बस्ती उन घृणित मजदूरो मे...उनके मेरे प्रति ऐसे भाव अब रहते हुए मेरा जा सकना कैसे सम्भव हो सकता है ? कितना कितना उपकार किया मैने उनका ?.. उस गन्दी से गन्दी जगह को भी सुधारा ! ..उनकी नालियाँ ..उनके पाखाने तक साफ करवाये। ..उनके

कपडे धुलवाती उनके बच्चो को कपडे बनवाती।···उन्हे मिठाई बॉटती। ·· और भी क्या-क्या·· हॉ, क्या-क्या उनके लिए करने की बाते सोच रही थी,·· योजनाएँ बना रही थी · योजनाएँ।·· पर देखो तो इन कृतघ्नो को। ·· नीच से नीच जीव-जन्तु। घृणित से घृणित कीडे-मकोडे।· पर पर हानि किसकी होगी ? उन्ही मजदूरो की न ? मेरी कौनसी हानि होने-वाली है ? कभी कभी उस बस्ती मे अब पैर न रखूँगी।·· पडे रहे, सडा करे वे उसी नरक मे। पर · पर वीरभद्र ? · फिर वीरभद्र से मिलना कैसे होगा ? · उसे किस तरह अपनी ओर आकर्षित कर सकूँगी ?"

उसके मजदूरो की बस्ती मे जाना बन्द होते ही उसकी वीरभद्र से भेट भी बन्द हो जायगी, उसको अपनी ओर आकर्षित करने का सारा प्रयास ही समाप्त हो जायगा, ज्यो ही इन्दुमती ने यह सोचा त्यो ही उसका टहलना रुक गया। वह खडी हो अपने सामने की ओर देखने लगी। उसे यह देखकर आश्चर्य-सा हुआ कि इतनी गरमी मे भी उसने न कमरे की खिडकियाँ खोली है और न पखा। उसने अपनी गर्दन पर यह देखने को हाथ रखा कि गरमी के कारण उसे पसीना तो नही आ गया है। वह सचमुच पसीने से लथपथ थी। उसने जल्दी से पहले पखे का स्विच खोला और फिर खिडकियाँ खोली। खिडकियाँ खोलकर तो मानो वह मजदूरो की बस्ती मे न जाकर वीरभद्र से मिलने-जुलने का और कोई रास्ता खोल रही हो।

एकाएक उसके मन मे आया कि वीरभद्र को यही क्यो न बुलाया जाय।

इतनी छोटी-सी बात अब तक उसके ध्यान मे क्यो न आयी, इस पर उसे आश्चर्य हुआ।

उसने तय किया कभी भी मजदूर क्वार्टरो में न जाना, मजदूरो से कोई सरोकार न रखना और वीरभद्र को अपने यहॉ ही बुलाना।

इस निर्णय को कर कुछ सन्तुष्ट-सी इन्दुमती पलँग पर लेट निद्रा और किसी सुस्वप्न का आवाहन करने लगी। उसे इस समय जान पडा जैसे उसके शरीर के सारे जोड ढीले पड गये है और उसके कानो के चारो ओर से गरम-गरम लपटें-सी निकल रही है।

: ३१ :

जब इन्दुमती प्रात काल उठी तब उसने देखा कि मजदूरो की बस्ती मे न जाकर, मजदूरो से कोई सरोकार न रखकर, अपने घर वीरभद्र को बुलाना कोई सहज बात नही है। एकाध बार किसी काम के बहाने वह उसे बुला सकती थी, पर बिना मजदूरो की बस्ती मे गये और उनमे काम किये निरन्तर वीरभद्र को वह किसी भी तरह न बुला सकती थी। कल रात को उसने जो कुछ सुना था उसके बाद मजदूरो की उस बस्ती मे जा, मजदूरो के बीच काम करना उसके लिये सम्भव न था और वीरभद्र के बिना जीवन व्यतीत करना भी नही। तब वह करे क्या, यह परिस्थिति उसके लिए एक बडी भारी समस्या हो गयी।

त्रिलोकीनाथ के प्रति आकर्षण के बाद आदरपूर्वक वह उसके साथ अपना सम्पर्क रख सकी थी। ललितमोहन के प्रति प्रेम के पश्चात् उसने उससे विवाह ही कर लिया था। वीरभद्र के सग के लिए उसने उस गन्दी से गन्दी जगह मे जाकर वहाँ के घृणित से घृणित जीवो के बीच अपना समय बिताना शुरू किया था। पर वह मार्ग बन्द हो गया। कल रात को उसने वीरभद्र को अपने घर बुलाने का निश्चय किया था और उसे इस बात पर आश्चर्य हुआ था कि इतनी छोटी-सी बात अब तक उसके ध्यान मे क्यो नही आयी थी, पर उसने देखा कि वीरभद्र से सम्पर्क रखने का यह मार्ग तो उसके लिए बिलकुल ही बन्द था।

इन्दुमती को याद आया कि पार्वती ने उसके सम्बन्ध में रात को जो बाते सुनी थी उसके बाद भी यह कहा था कि 'वे तो झूठ होगी ही।' वह सोचने लगी—"तो•••तो मै अगर न जाऊँ तो शायद पार्वती ही आवे। यह सोचकर कि जिन मजदूरो का मै इतना उपकार कर रही हूँ उनकी ऐसी बाते सुनकर ही मै न आयी होऊँगी, शायद वह वीरभद्र को भी लावे, और दोनो आकर शायद मुझे मनाकर ले जावे। उन मजदूरो से कहे कि वे मुझसे माफी माँगे। इतना•••इतना भी अगर हो जाय। तो•••तो फिर मै वहाँ जाना शुरू कर दूँ

पर बिना इसके मेरा वहाँ जाना · ?"

इन्दुमती को जान पडा कि पार्वती का वीरभद्र के साथ उसके घर आना सर्वथा स्वाभाविक है और इसमे 'शायद' का कोई स्थान नही है। पार्वती और वीरभद्र का आना निश्चित समझ वह उनकी बाट जोहने लगी।

एक पर एक दिन बीतने लगा, देखते-देखते सप्ताह पर सप्ताह, पर न पार्वती का पता था और न वीरभद्र का। पहले दो-चार दिन इन्दुमती सोचती रही आज न आये न सही कल आयेगे। और कितनी · कितनी प्रतीक्षा, हर घडी, हर क्षण उनकी प्रतीक्षा मे जाता रहा उसका। सड़क पर कोई भी आहट होती, ताँगे-इक्के आदि की, बाहर से किसी के भी मकान मे आने की पदध्वनि होती, इन्दुमती को जान पडता, वीरभद्र और पार्वती आ रहे है। सडक की ऐसी आहटो पर कितनी शीघ्रता से वह बाहर जा सडक की ओर देखती, पदध्वनि की आहटो पर कितनी उत्सुकता से वह दरवाजे को विलोकती। पर कहाँ वीरभद्र, कहाँ पार्वती ? जब अधिक समय बीतने लगा तब उसे निराशा-सी होने लगी। एक दिन एकाएक उसके मन मे उठा कहीं वीरभद्र बीमार तो नही हो गया। पर वीरभद्र के सदृश व्यक्ति का बीमार होना उसे असम्भव-सी बात जान पडी।

ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता वह मजदूर बस्ती में जाने के लिए अधीर होती जाती, पर आत्म-सम्मान को महान् महत्त्व देनेवाली इन्दुमती के लिए वीरभद्र का ऐसा आकर्षण भी उसे मजदूर बस्ती मे ले जाने मे समर्थ न हो पाता।

एक दिन एकाएक उसके मन मे उठा वजीरअली से मिल मजदूरो के अपमान का सारा हाल उससे क्यो न कह दे। वजीरअली ने ही उसे अपनी सस्था की ओर आकर्षित किया था। वह उसकी मजदूरो की सेवा की कई बार तारीफ भी कर चुका था, यह भी कह चुका था कि उससे मजदूरो को बडी-बडी आशाएँ है। वजीरअली मजदूरो का यह सारा हाल सुन उन्हे जरूर ही डाँटे डपटेगा और उनसे माफी भी मँगवा देगा। बस आगे का उसका रास्ता फिर से खुल जायगा। जिस तरह उस रात को उसे इस बात पर आश्चर्य हुआ था कि अपने घर वीरभद्र को बुलाने की इतनी सरल-सी बात उसने क्यो न सोची उसी तरह वजीरअली के पास वह अब तक क्यो न गयी इस पर उसे

आश्चर्य हुआ और वह सन्ध्या को मोटर पर सोशलिस्ट लीग के दफ्तर को चल पडी।

सोशलिस्ट लीग के दफ्तर वह बहुत समय के बाद आयी थी। अनेक कार्यकर्त्ता उसे वहाँ मिले और सब ने मजदूरो के क्वार्टरो मे उसके काम की भूरि-भूरि प्रशसा की। वजीरअली वहाँ न था। इन्दुमती को मालूम हुआ कि कई हफ्ते से वजीरअली कानपुर सोशलिस्ट लीग के काम को गया हुआ है।

तब अब वह क्या करे? अन्य कार्यकर्त्ताओ से मजदूरो के उस दिन के अपमान का वृत्त कहने का उसे साहस न हुआ।

मजदूर बस्ती मे बिना गये वीरभद्र से अब उसका मिल सकना सम्भव न था। इन्दुमती का धैर्य अब टूट चुका था। अत अब बिना और कुछ सोचे उसने मजदूर बस्ती जाने का निश्चय किया और ड्राइवर से मोटर मजदूर बस्ती ले चलने को कहा। कितनी जल्दी थी उसे इस समय वहाँ पहुँचने की। पर ज्यो ही ईट के खडजे के निकट उसकी मोटर पहुची कि एक टायर में पक्चर हो गया। ड्राइवर को बीसो बाते सुना, मोटर से उतर, ड्राइवर को मोटर वही रखने को कह, वह पैदल मजदूर बस्ती की ओर रवाना हुई। पहले दिन के सिवा और कभी वह यहाँ पैदल न आयी थी और जिस प्रकार पहले दिन वह बिना किसी ओर देखे मजदूर बस्ती पहुँची थी, उसी तरह आज भी हुआ। त्रिलोकीनाथ से सम्पर्क न रखने का निश्चय करने के बाद भी एक दिन वह बोर्डिंग हाऊस पहुँच गयी थी, पर बिना सोचे-समझे। इस बार वह मजदूर बस्ती बिना विचारे नही गयी थी, सोच-समझ कर गयी थी।

बस्ती से अब वह सीधी वीरभद्र के क्वार्टर को पहुँची। पर है—यह क्या? क्वार्टर मे ताला पड़ा था। पडोसियो से पूछने पर मालूम हुआ कि वीरभद्र पिता का श्राद्ध करने सकुटुम्ब गया चला गया था। इन्दुमती को कैसी निराशा हुई! पर इस निराशा मे भी एक खुशी उसे थी। उसके मन मे बार-बार उठ रहा था कि यदि वह गया न गया होता तो···तो पार्वती के साथ उसके यहाँ अवश्य आता · अवश्य अवश्य।

× × ×

अब इन्दुमती वजीरअली के कानपुर से और वीरभद्र के गया से लौटने का रास्ता देखने लगी। उसने अपने मन मे तय कर लिया था कि दोनो के

लौटते ही वह दोनो को बुलवायेगी, उनसे मजदूरो ने उसके साथ जो व्यवहार किया है, उसकी साफ-साफ शब्दो मे शिकायत करेगी और मजदूरो से माफी मँगवाने के लिए कहेगी। जहाँ तक वजीरअली का सम्बन्ध था उसे निश्चय था कि जब वजीरअली ने उसका गर्भाधान और मयक के जन्म के समय ऐसा समर्थन किया था तब इस समय तो, जो मजदूर उसके अनुयायी थे, उन्हे वह ठीक ही न कर देगा वरन् एक-एक से नाक रगडवा-रगड़वाकर वह उनसे माफी मँगवायेगा। माफी वे मजदूर जिस तरह माँगेगे उन दृश्यो की कल्पना कर इन्दुमती को एक तरह का आनन्द हो रहा था। और इस प्रकार मजदूरो के माफी माँग लेने के बाद मजदूर बस्ती मे फिर से उसके जाने का रास्ता बिलकुल खुल जायगा, इसमे भी उसके मन मे कोई सन्देह न रहने के कारण इस आनन्द मे और वृद्धि हो रही थी। जहाँ तक वीरभद्र का सम्बन्ध था इन्दुमती स्पष्ट रूप से यह नही चाहती थी कि वह पतिपरायणा, साध्वी और पतिव्रता है यह वीरभद्र को सुबूत किया जाय। बार-बार उसके मन मे उठता कि वीरभद्र का तो इस सम्बन्ध मे सदिग्ध रहना ही ठीक है। परन्तु मजदूरो को उसके पातिव्रत का सुबूत देना तथा वीरभद्र को सदिग्ध रखना ये दोनो बाते कैसे हो, यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। इस विषय मे उसके मन में एक उधेडबुन सी मची हुई थी। बहुत सोचने-विचारने के बाद उसे पहले इसका एक रास्ता सूझा। वजीरअली किसी तरह वीरभद्र के पहले आ जाता। मजदूरो से माफी मँगवाने का प्रकरण किसी तरह वीरभद्र की गैरहाजिरी में समाप्त हो जाता। परन्तु यह रास्ता भी उसके उद्देश्य की पूर्ति कहाँ तक करेगा, इस पर भी उसे सन्देह हो गया, क्योकि आखिर वीरभद्र आवेगा तो यही और आने पर उसे सब हाल मालूम ही हो जायेगा। इसीलिए अन्त मे मौके पर जो होना होगा हो जायगा यह सोच, यद्यपि वह वजीरअली को कानपुर से बुला सकती थी, तथापि उसने उसे नही बुलवाया।

एक दिन इन्दुमती अपने प्रात.काल के कृत्यो से निवृत्त हो बैठकखाने मे आयी ही थी कि उसने देखा बाहर से कई आदमी उसी के यहाँ आ रहे है। आगन्तुक कौन है इसे वह उत्कण्ठा से देखने लगी और उसे यह देखकर बडा हर्ष हुआ कि आनेवालो मे वजीरअली, वीरभद्र तथा सोशलिस्ट लीग के अन्य कई कार्यकर्त्ता है। इन्दुमती ने आगे बढ बडे उत्साह से सबका स्वागत किया।

गला साफ करते हुए वजीरअली ने कहा—'बहन, हम सब तुमसे कुछ भीख माँगने आये है ।'

कुछ प्रसन्नता से इन्दुमती बोली—'कैसी ?'

वजीरअली ने उत्तर दिया—'लखनऊ और कानपुर दोनो जगह अब हमारे मजदूरो के यूनियन बन गये है । मजदूरो की तनख्वाहे बढाने साथ ही और भी कई तरह की सहूलियतो के लिए यह यूनियन कारखानो के मालिको को लिखेगे । कारखानेवाले सीधी तरह हमारी बाते मानने के नही यह निश्चित-सी बात है । ऐसी हालत मे सम्भव है हमे हडताल करनी पडे । हडताल मे न जाने कितनी तकलीफे मजदूरो को उठानी पड़ती है । बेचारो को खाने के भी लाले पड जाते है । इसलिए पहले से चन्दा वगैरह जमा कर लेना उचित होता है । यह काम हमने मजदूरो मे तो शुरू कर ही दिया है । तुम मजदूरो से सहानुभूति रखती हो, उनमें काम भी करती हो, तुम भी इसमे कुछ दो ।' अन्तिम वाक्य पूरा करते-करते वजीरअली ने पतलून की जेब से कुछ कागज निकालकर इन्दुमती को दिये ।

इन्दुमती ने ध्यान से इन कागजो को देखा । ये थे दान देनेवालो के नामो तथा उनकी रकमो की सूची । पच्चीस रुपये से लेकर एक आना देनेवालो तक के नाम थे । ज्यादातर चन्दा मजदूरो का ही था । इसीलिए जो रकमे कम की थी वे ही अधिक थी । फिर सरसरी तौर पर इस सूची पर दृष्टि-विक्षेप कर, कागजो को वजीरअली को लौटाते हुए इन्दुमती ने सहज भाव से कहा—'मेरी तरफ से पाँच हजार रुपया इस कोष मे लिख लीजिए ।'

सारे के सारे आगन्तुक अवाक् और स्तब्ध से रह गये । किसी को इस रकम की कल्पना तक न थी । वीरभद्र तो कुछ मुँह खोल आँखे फाड़ इन्दुमती की तरफ देखने लगा । अत्यधिक अच्छी और बुरी दोनो ही बातो का कुछ धक्का-सा लगता है ।

जब कुछ क्षणो मे इस आघात का असर कम हुआ तब वजीरअली ने पहले अपने ओठो से कुछ सीटी सी बजायी और फिर अपने साथियो से कहा—'मेरी बहन के काम कभी छोटे-मोटे नही हुआ करते ।' इसके बाद वजीरअली कभी अपने हाथो और कभी अपने पैरो को इस तरह देखने लगा जैसे उसने इन्हे पहले कभी देखा ही न हो ।

एक साथ कुछ व्यक्तियो के मुख से निकला—'इसमें अब भी कोई शक हो सकता है···अब भी कोई शक हो सकता है।' पर इन बोलनेवालो में वीरभद्र शामिल न था। वह तो अभी भी उसी तरह मुँह खोले और आँखे फाडे हुए इन्दुमती की ओर देख रहा था।

× × ×

सब लोग इन्दुमती का अभिवादन कर बाहर निकले और सोशलिस्ट लीग के दफ्तर को रवाना हुए, पर कुछ कदम सबके साथ चलने के बाद वजीरअली अपने मित्रो से यह कह कि उसका अन्य जरूरी काम इन्दुमती से रह गया है, वापस इन्दुमती के पास लौट आया।

यद्यपि इन्दुमती की इच्छा भी जल्दी से जल्दी वजीरअली से बाते करने की थी, परन्तु वह अन्य साथियो के सामने अकेले वजीरअली को नही रोकना चाहती थी। फिर इतने वर्षो मे वह वजीरअली के स्वभाव को अच्छी तरह पहचान गयी थी। वह जानती थी कि उसके इतने बडे दान के बाद वजीरअली तत्काल उससे अकेले मे बात करने न आवे यह सम्भव नही। वजीरअली को उल्टे पैर लौटते देख इन्दुमती को कोई आश्चर्य न हुआ। वह कमरे में इधर-उधर टहल रही थी। वजीरअली को देखते ही वह खडी हो गयी।

वजीरअली ने कमरे मे घुसते-घुसते कहा—'गजब···गजब करती हो बहन, तुम भी।' और यह कहते-कहते वजीरअली एक कुरसी पर बैठ गया।

किस सम्बन्ध में गजब करने की बात कही गयी है इसे इन्दुमती न समझ गयी हो, यह बात नही, पर इतने पर भी यह कहते हुए कि—'क्यो क्या हुआ, वजीर ?' वह भी एक कुरसी पर बैठ गयी।

'क्या हुआ ? यह भी क्या कहने की जरूरत है ? सदा कोई न कोई आश्चर्य की बात करोगी और फिर कहोगी "क्या हुआ ?" जब मैने भीख माँगी, और किसने क्या दिया है इसकी सूची भी दे दी, तब तुम्हे इतना समझ ही लेना चाहिए था कि मै तुमसे कितना चाहता हूँ ?'

'ओह ! उस पाँच हजार के सम्बन्ध मे कह रहे हो ?'

'बेशक।'

'पर, भाई ने बहन से पहले-पहल भीख माँगी थी और वह भी इतने अच्छे काम के लिए।'

'ठीक है। किसी दूसरे धनवान ने इससे भी ज्यादा दे दिया होता तो मुझे खुशी ही होती, पर इस तरह तुम्हारा रुपया तो मै नही फिकवाना चाहता।'

गम्भीर होकर इन्दुमती ने कहा—'वजीर, मै किसी काम को भी उस काम में बिना डूबे नही कर सकती। इतने वर्षो के मेरे जीवन से यदि तुम्हे इसका भी पता न लग पाया तो मुझे दु ख है। तुम्ही ने मुझे सोशलिस्ट लीग मे खीचा। तुम्ही मुझे मजदूरो की बस्ती मे ले गये। मैने तुम्हारी लीग के सिद्धान्तो को अच्छी तरह समझा है। मै इसे मानती हूँ कि स्वय श्रम किये बिना केवल उत्तराधिकार की कमायी पर गुजर करना पाप है। मै व्यक्तिगत सम्पत्ति के अस्तित्व को भी अनुचित समझने लगी हूँ। मेरा इस पर भी विश्वास हो गया है कि हर व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार उत्पादन करना चाहिए और अपनी आवश्यकता के अनुसार पाना। जो मजदूर आज बुरी से बुरी अवस्था मे रहते है उन्ही को अच्छी से अच्छी हालत मे रहना चाहिए, और जब तक इस तरह का सामाजिक सगठन नही हो जाता तब तक मेरा मत हो गया है कि जिनके पास जिस प्रकार की शक्ति है, उन्हे उस शक्ति का उपयोग समाज की ऐसी स्थिति लाने के लिए करना चाहिए। ये पाँच हजार क्या, अब जो कुछ भी मेरे पास है सब मजदूरो के लिए ही समझो।'

'यदि हमारे सारे धनवानो का महात्मा गाधी के शब्दो मे हृदय परिवर्तन हो जाय तो वे इस धन के सच्चे ट्रस्टी हो सकते है।'

'और, वजीर, अब मुझे अपने कर्तव्य का पालन करते हुए इस बात की चिन्ता भी नही रही है कि जिनके प्रति मै अपने कर्तव्यो का पालन कर रही हूँ, वे मुझे किस दृष्टि से देखते है। मेरा काम है अपना फर्ज अदा करना, चाहे कोई मुझे कैसा ही क्यो न समझे।'

'मजदूर तो तुम्हे देवी समझते है, बहन, देवी। देखा नही तुम्हारे चन्दा देने के बाद उनके अगुआ वीरभद्र का चेहरा?'

'खैर, वह बात तुम छोड दो। मै जानती हूँ कि ये मजदूर मुझे कितनी घृणा की दृष्टि से देखने लगे है।'

अत्यन्त आश्चर्य से वजीरअली ने कहा—'घृणा की दृष्टि से देखने लगे है! कैसी बात कहती हो, बहन?'

'जो कुछ मै कह रही हूँ उसका मेरे पास प्रमाण है, वजीर।'

'पर, बहन, जब उनकी बस्ती मे तुम मेरे साथ जाती थी, उस वक्त का हाल मुझे मालूम है। कितनी अजीजी भरी रहती थी तुम्हारे लिए उनकी हर हरकत मे। किस तरह तुम्हारी आज्ञा मानी जाती थी वहाँ हर बात में।'

एक लम्बी साँस लेकर इन्दुमती ने कहा—'वह जमाना बीत गया, वजीर। इन दिनो तुम मेरे साथ वहाँ नही गये। अब वहाँ के लोगो के व्यवहार में न वह अजीजी है और न वहाँ मेरा कोई हुक्म ही माना जाता है। · पर·· पर इससे क्या ? इससे नुकसान मेरा नही, उन्ही का होगा।'

'पर मजदूरो के बर्ताव मे फर्क का कोई कारण ?'

'कारण कारण वही मयक के जन्म का रहस्य।'

दोनो हाथ कुरसी के हत्थो के नीचे डालते और कुरसी की पीठ पर जोर से टिकते हुए वजीरअली के मुख से केवल एक शब्द निकला—'ओह !' और वह चुपचाप ऐसा विवश-सा बैठ गया मानो आकाश मे किसी बैलून के नीचे बँधा हो।

कुछ देर कोई कुछ न बोला। कुछ समय बाद इन्दुमती ने उस रात के मजदूरो के वार्तालाप का सारा हाल खूब नमक-मिर्च लगाकर वजीरअली को बताया।

वजीरअली ने सब बाते ध्यानपूर्वक सुनने के बाद अपना हाथ अपनी छाती पर रखा। उस समय न जाने कैसे उसकी उँगलियाँ कुछ फैल-सी गयी, मानो वे बता रही थी कि वहाँ कितने भिन्न-भिन्न भावो का सघर्ष चल रहा है। कुछ देर बाद उसने उठते-उठते कहा—'मै अभी · अभी जा रहा हूँ उन बदजातो के पास। या तो वे सब के सब तुमसे यहाँ आकर क्षमा माँगे या फिर मै न रखूँगा कोई·· कोई सम्बन्ध उनके यूनियन से या उनकी किसी बात से।' वजीरअली के उठने और सारी हरकतो मे आज वैसी ही शीघ्रता दिखायी देती थी जैसी उस दिन थी जब उसने ललितमोहन के साथ इन्दुमती के विवाह का बीडा उठाया था।

वजीरअली के उठते ही इन्दुमती भी खडी हो गयी थी। वह बोली—'पर जाने भी दो। वे बेसमझ है। धीरे-धीरे खुद ही अपनी भूल जान जायँगे। अपन तो जो कुछ उनके लिए कर रहे है, या करना चाहते है, अपना कर्तव्य

समझकर।' जो इन्दुमती स्वय मजदूरो से माफी मँगवाने की बात कहनेवाली थी, वही अब यह कह रही थी।

'नही, नही, यह कभी नही'··'कभी नही हो सकता। तुम्हारी बेइज्जती अब मै भावी पीढी की बेइज्जती समझता हूँ।'

वजीरअली ने इन्दुमती के बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये हुए शाघ्रता से प्रस्थान किया।

इन्दुमती ने अब तक जो कुछ भी भला-बुरा किया था अपनी आन्तरिक भावनाओ के अनुसार। उन्हे उसने कभी किसी से न छिपाया था। आन्तरिक भावनाओ को परदे मे रख आन्तरिक भावनाओ के विपरीत दिखावा, आन्तरिक भावनाओ को छिपा, जाहिर मे और कुछ बता, किसी से कोई काम कराना, उसके लिए एक नयी बात थी। ललितमोहन को प्रथम पत्र लिखते समय उसने उस पत्र के कई मसौदे फाडे थे और अन्त मे उसे नीद आ जाने पर भोजन के समय जब उसके पिता ने जगाया था उस समय भी सच्ची बात छिपाकर उसने पिता से कहा था कि वह लेख लिख रही थी। उसके कुछ समय बाद जब उसके पिता सेठ रामस्वरूप का आया हुआ पत्र लाये थे तब भी उसने अपनी भावनाओ को छिपाया था। पर उसमे और आज वह जो कुछ छिपा रही थी उसमे अन्तर···महान् अन्तर था। असहयोग मे ललितमोहन के साथ-साथ उसने काग्रेस मे जो काम किया था, और ललितमोहन की मृत्यु के बाद उसकी अन्तिम इच्छाओ की पूर्ति के लिए, वह भी उसकी आन्तरिक भावनाओ के सर्वथा अनुकूल न था, पर उसमे और इस समय जो कुछ वह अपनी आन्तरिक भावनाओ को छिपाकर कर रही थी उसमे भी अन्तर था · महान् अन्तर। जार प्रेम, चाहे इन्दुमती नीच न मानती हो, पर समाज नीच मानता था। उस प्रेम से प्रेरित हो इन्दुमती, समाज जिस सेवा को उच्च मानता था, उसका दिखावा कर रही थी। और वह दिखावा न होकर सच्ची बात है यह सिद्ध करने के लिए किसी भी मार्ग, किसी भी व्यक्ति को काम मे लाने मे उसे कोई सकोच न हो रहा था। इन्दुमती ने इसके पूर्व यह कभी न किया था, और आज यह करते हुए भी उसे अपने कार्य से सन्तोष मिल रहा था, अपनी कार्यपटुता पर हर्ष हो रहा था। अपने को सन्तोष देने के लिए आजकल इन्दुमती प्राय जर्मन उपन्यासकार टॉमसमैन का एक कथन

याद किया करती—'दुनियाँ का सम्बन्ध जो कुछ मै उसके लिए करती हूँ उससे है; किस उद्देश्य से करती हूँ इसका सम्बन्ध है मुझ से, दुनियाँ से नही।'

जिस इन्दुमती ने प्रचलित सामाजिक नैतिकता के सम्बन्ध में भी कोई छलछन्द नही किया था वही अब बौद्धिक छलछन्द का मूर्तिमन्त रूप हो गयी थी। भावी कोष में शायद बुद्धिमत्ता के अनेक शीर्षक और विभाग किये जायँगे।

जो कुछ वह कर रही थी उससे इन्दुमती का तो मानसिक अधःपतन हो ही रहा था, परन्तु साथ ही समाज के जिस दायरे में उसका काम हो रहा था, उसे भी उससे (इन्दुमती से) कम भय नही था, क्योकि इन्दुमती के सारे कार्यों का जो उद्देश्य था वह न दीखकर, वे यथार्थ मे मजदूरो के हित मे हो रहे है, यह दिखायी पड़ता था। मजदूरो का इन कार्यो से हित हो भी रहा था अतः इन्दुमती का मिथ्या आचरण सत्य के आवरण से ढक गया था। इस प्रकार की मिथ्या को पूर्ण मिथ्या न कहकर अर्द्ध-मिथ्या ही कहा जा सकता है। अर्द्ध-मिथ्या पूर्ण मिथ्या से भी बुरी चीज है। पूर्ण मिथ्या अपने सच्चे रूप मे प्रकट हुए बिना क्वचित् ही रहती है, और जब वह प्रकट हो जाती है तब उससे होनेवाली हानि भी बहुत दूर तक रुक जाती है, लेकिन अर्द्ध-मिथ्या में चूँकि सत्याश मिला रहता है इसलिए एक तो उसका अपने सच्चे रूप मे प्रकट होना ही कठिन होता है, दूसरे यदि वह प्रकट भी हो जाय तो पूर्ण रूप से यह सिद्ध नही हो पाता कि वह मिथ्या है। एक दल उसे सत्य कहने लगता है तथा दूसरा मिथ्या, और ऐसी कलहाग्नि उत्पन्न होती है कि दूर-दूर तक उसकी आँच पहुँचे बिना नही रह सकती।

: ३२ :

इन्दुमती को विश्वास था कि बहुत शीघ्र मजदूर उससे माफी माँगने आवेगे। उनके साथ शायद उनका नेता वीरभद्र भी आवे ? 'शायद क्या उसे आना ही चाहिए' इन्दुमती ने अपने आप से कहा। वजीरअली भी कदाचित् उनके साथ फिर आ जाय, उसके मन मे उठा। पर उसने देखा कि उसका हृदय चाहता है कि वजीरअली न आवे। वह चाहती थी मजदूरो के साथ अकेले वीरभद्र का आगमन। अपने चन्दे की घोषणा के बाद का वीरभद्र का मुख उसे बार-बार याद आता था। वीरभद्र की मुद्रा उस समय ऐसी हो ही गयी थी कि उसे विस्मृत करना कठिन था। वजीरअली तक ने अपनी बाद की बातचीत मे वीरभद्र के चेहरे की उसे याद दिलाते हुए कहा था—'देखा नही तुम्हारे चन्दा देने के बाद उनके अगुआ वीरभद्र का चेहरा।' वजीरअली यदि मजदूरो के साथ न आया और अकेला वीरभद्र आया तो वह क्या करेगी, इन्दुमती सोचने लगी। जब इन्दुमती वजीरअली और वीरभद्र के लौटने का रास्ता देख रही थी तब वह यह नही चाहती थी कि वह पतिपरायणा है, साध्वी और पतिव्रता है, यह वीरभद्र को सुबूत किया जाय। बार-बार उसके मन मे उठता था कि वीरभद्र का तो इस सम्बन्ध मे सन्दिग्ध रहना ही ठीक है। इस समय भी वह यही चाहती थी। परन्तु मजदूरो को उसके पातिव्रत का सुबूत देना तथा वीरभद्र को सन्दिग्ध रखना, ये दोनो बाते एक साथ कैसे हो सकेगी, यह उसकी समझ मे न उस समय आया था और न इस समय आ रहा था।

दिनभर उसका इसी उधेडबुन मे गुजरा। सन्ध्या हो रही थी। जाडे के दिन आ गये थे और जाडो मे मध्याह्न के पश्चात् अपरान्ह होते चाहे कुछ समय भी लगे, पर अपराह्न के बाद सन्ध्या होते विलम्ब नही लगता। इन्दुमती अभी भी उसी उधेडबुन मे लगी हुई थी कि वीरभद्र एक बहुत बडे मजदूरो के समूह के साथ पहुँचा। इन्दुमती जो चाहती थी वही हुआ। वजीरअली इस समुदाय के साथ नही था।

इन्दुमती के बैठकखाने मे सोफा सैट आदि थे, इतने अधिक आदमियो के बैठने का वहाँ स्थान न था इसलिए वह जल्दी से बरामदे मे निकल आयी। बरामदे मे कुर्सियाँ आदि भी थी पर साथ ही दरी भी बिछी हुई थी। इन्दुमती ने सबको आदर से दरी पर बैठने को कहा और स्वय भी उन्ही के साथ दरी पर बैठ गयी। वीरभद्र तथा उसके अन्य कुछ साथियो ने उसे कुर्सी पर बैठने के लिए बहुत कुछ कहा, परन्तु उसने एक न माना।

जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब इन्दुमती बोली—'बडी''बड़ी कृपा की आप सब ने, कहिए क्या आज्ञा है ?'

गला साफ करते हुए वीरभद्र ने कहा—'हम सब ने यहाँ आ कर किरपा नही की, देवीजी, हम सब आये है फिर से आपके किरपा पात्तर बनने। हम आज्ञा देने नही आये है, देवीजी, हम आये है अपने अपराधो के लिए छमा माँग आप से आज्ञाएँ लेने।"

एक अन्य मजदूर बोला—'हाँ, हाँ, हम सब ने बडा दोस किया है।'

एक साथ कई ने कहा—'बड़ा'''बडा !'' माफ करे आप'' माफ।'

'पर हुआ क्या ? कैसा अपराध ? कैसा दोष ? कैसी माफी ?' इन्दुमती ने पूछा।

वीरभद्र ने कहा—'अपराध ऐसा है, श्रीमतीजी, कि सब्दो मे कहना कठन है। पर आप जानती है हम सब है बे पढे-लिखे , गँवार।'

'यदि आप बे पढे-लिखे गँवार है तो आपका दोष नही है। यह दोष है हम सब पढे-लिखो का, हम सभ्य सुसस्कृतो का, जिन्होने बहुजन समाज को बे पढा-लिखा और गँवार रखा है।' इन्दुमती बोली।

'वह होगा, श्रीमतीजी' वीरभद्र ने कहा 'परन्तु जिन आपने हमारे सब तरह के सुधारो का बीडा उठाया है, उनके लिए तो हमारे मन मे सिर्फ एक ही भावना रहनी चाहिए न, सरधा की, भगती की।'

'और ऐसी देवी के लिए सरधा और भगती छोड़कर हम और कुछ सोचने लगे तब तो हम पापी है न।' एक अन्य मजदूर बोला।

कई ने एक साथ फिर कहा—'बडे से बडे पापी'''बडे से बडे।'

'पर हुआ क्या है यह मुझे अभी भी नही मालूम हो रहा है।' इन्दुमती बोली।

'वह हम मे से किसी के मुँह से न निकल सकेगा। हमे तो आप इतना ही कह दे कि हमारा जो भी अपराध हुआ हो वह आपने छमा कर दिया।' वीरभद्र ने कहा।

इन्दुमती बोली—'यदि आपका अपराध न जानते हुए भी मेरे कह देने से कि मैने आपको क्षमा कर दिया आपको सन्तोष हो जाय तो मै कह देती हूँ कि मैने आपको क्षमा किया।'

एक साथ कई व्यक्तियो ने कहा—'सन्तोस...हो गया हम सब-को सन्तोस।'

एक मजदूर बोला—'हमारी देवी ने अपने भगतो को छमा कर दिया। इससे जादा सन्तोस की बात भगतो के लिए और कौनसी हो सकती है।'

'कोई नही, कोई नही।' एक साथ फिर कई व्यक्ति बोले।

इन्दुमती कुछ गद्गद् से स्वर मे कहने लगी—'आप लोगो की अपने पर इस तरह की कृपा देख मेरे भी सन्तोष की सीमा नही है। हम अभिजात वर्ग और मध्यम श्रेणी के लोगो ने अपने बहुजन बन्धुओ पर शताब्दियो से अत्याचार किये है, अनगिनती लोगो को भूखा और नगा रखा है। न उन्हे पढाया, न लिखाया, न उन्हे सभ्य और सुसस्कृत बनाया। अपराधी, पापी हम है, आप नही। मैने आप लोगो के सुधार का बीडा नही उठाया है, मैने अपने वर्ग के पापो का प्रायश्चित्त करने का प्रयास आरम्भ किया है। आपकी बस्ती मे जो काम मै करती थी अपना कर्तव्य समझकर करती थी। आपके लिए मेरा जो खर्च होता है वह आया कहाँ से है यह भी आपने सोचा है? वह किसी न किसी तरीके से आपके पास से ही आया है। मै आपसे सिर्फ एक बात चाहती हूँ और कुछ नही, आपकी जो सेवा करने का मैने सकल्प किया है उस मे आप लोग सहयोग दे। अपने वर्ग के पाप का जो प्रायश्चित्त मै कर रही हूँ उस अनुष्ठान में मै सफल होऊँ इसमे मेरी सहायता करे।' उपर्युक्त भाषण देते समय इन्दुमती ने अपने सामने बैठे हुए हर व्यक्ति की ओर थोडी-थोडी देर के लिए अपनी दृष्टि घुमायी, पर वह दृष्टि इस प्रकार घूमी कि किसी का भी यह कहना या सोचना कठिन था कि इन्दुमती ने उसकी ओर देखा या नही।

इन्दुमती के इस भाषण ने मजदूरो के इस समुदाय में से अनेक के आँसू

बहवा दिये, कई के कण्ठ रुँध गये । एक विचित्र प्रकार का सन्नाटा छा गया इस वक्तव्य के बाद । कुछ देर उपरान्त इस सन्नाटे को तोड़ते हुए एक मजदूर बोला—'देखा, भाई, देखा, कैसी है हमारी देवीजी ?'

अब तो एक साथ कई स्वर फूट निकले—'धन्न है । धन्न है ।' 'सच्ची देवी है सच्ची देवी ।' 'हम क्या-क्या सोचने लगे थे ऐसी देवी के लिए ।' 'हाँ, हाँ क्या-क्या · क्या-क्या ?'

इन्दुमती ने असहयोग के समय सन् २१ मे, कानपुर काग्रेस के अधिवेशन को सफल बनाने के लिए सन् २५ मे, अनेक भाषण दिये थे, उनमे से कई में करुण रस भी था, पर उन भाषणो के शब्द उसके कण्ठ से निकले थे, हृदय में जो सच्चा करुण रस भरा था उसमे डुबकी लगा-लगा कर, आज उसने जो कुछ कहा था वह, उसके जो सच्चे भाव थे, उनसे कोई सम्बन्ध न रखता था। दिखावा, सचाई से रहित दिखावा हर क्षण बढता जा रहा था । और इतने पर भी इन्दुमती ने देखा कि मजदूर उसके प्रति कितने खिच गये है । जिन मजदूरो को वह घृणित से घृणित जीव-जन्तु समझती थी उनमे सरलता भी कितनी अधिक है यह उनके रूप का दूसरा रुख था। इन्दुमती को एक बात का थोडा-सा खेद अवश्य था कि मजदूरो के साथ उनकी स्त्रियाँ नही आयी । जिन स्त्रियो ने उस दिन रात के वार्तालाप मे भाग लिया था, जिनमे से एक ने यहाँ तक कह दिया था—'मेरा बस चले तो मै मजदूरो की बस्ती में ऐसी औरत को पैर न रखने दूँ ।' वे भी अगर इन मजदूरो के साथ आ जाती ।

वीरभद्र उठ खड़ा हुआ । उसके उठते ही उसके अनुयायियो ने उसका अनुसरण किया । इन सबके उठने पर इन्दुमती भी खड़ी हो गयी ।

वीरभद्र ने कहा—'बहुत समय खराब किया हम लोगो ने आपका । अब आज्ञा हो ।'

'समय खराब किया ? कैसी बाते करते है आप ? अब मेरे शेष जीवन का काम ही जो आप लोगो की सेवा है ।'

फिर से एक बार 'धन्न-धन्न है ।' शब्द गूँज गये ।

वीरभद्र अपने साथियो के साथ इन्दुमती को अभिवादन कर रवाना हुआ, पर उसने पीठ फेरी ही थी कि उसे इन्दुमती का स्वर सुनायी दिया । इन्दुमती कह रही थी—

'हाँ, वीरभद्रजी, कुछ देर आप ठहरिए न। आगे के काम की योजना पर जरा हम लोग विचार करे।'

वीरभद्र ने इन्दुमती की ओर घूमकर कहा—'जैसी आज्ञा।'

वीरभद्र को रोकने का पहले से कोई इरादा न रहने पर भी हठात् इन्दुमती ने उसे रोक लिया था। वीरभद्र से एकान्त मे बातचीत करने, उसे अपने यहाँ बुलाने, इस प्रकार की न जाने कितनी इच्छाएँ इन्दुमती के मन मे एक नही, अनेक बार उठ चुकी थी। आज भी मजदूरो के समुदाय के साथ वजीरअली न आकर अकेला वीरभद्र आवे, यह उसकी इच्छा थी। पर जिस क्षण उसने वीरभद्र को रोका उस क्षण के पहले इस समय वीरभद्र को रोकने की उसने कोई योजना न बनायी थी। वीरभद्र के रुकने के बाद वह उससे कौनसी बात किस तरह करेगी, यह भी वह एकाएक न सोच सकी। पर वीरभद्र को उसी ने रोका था। उसके साथी चले गये थे और वह अकेला उसके सामने खडा था। धक्‌धक् करते हृदय से इन्दुमती ने वीरभद्र को बैठकखाने मे चलने के लिए कहा। बैठकखाने मे दोनो ने प्रवेश किया। एक कुरसी पर वीरभद्र को बैठने के लिए कह उसी के निकट की दूसरी कुरसी पर इन्दुमती बैठ गयी। आज पहला दिन था जब इन्दुमती वीरभद्र के साथ एकान्त मे बैठी थी। उसका हृदय जोर-जोर से धडक रहा था। एकान्त मे वीरभद्र के साथ रहने की उत्कट इच्छा होने पर भी आज जब उसे वीरभद्र के साथ एकान्त मे बैठने को मिला तब उसकी समझ में न आया कि वह करे क्या? यहाँ तक कि बातचीत कहाँ से आरम्भ हो, किस तरह चले, यह भी वह निर्णय न कर सकी। आज प्रात काल ही वीरभद्र इसी कमरे मे आया था, पर कितना•••कितना फर्क था उस और इस परिस्थिति मे।

दोनो कुछ देर चुप बैठे रहे। एक विचित्र-सा दृश्य था। अन्त मे उस सन्नाटे को तोडते हुए वीरभद्र ने ही कहा—'तो दीजिए मुझे आज्ञा, आगे के काम के सम्बन्ध मे।'

इन्दुमती कुछ चौक-सी पड़ी, पर उत्तर तो चौकने से दिया न जा सकता था; अत वह बोली—'पहले यह बताइए कि आपकी खातिर क्या की जाय, आज आप पहली मरतबा जो मेरे घर आये है।'

वीरभद्र को कुछ आश्चर्य-सा हुआ। उसने कहा—'पहली मरतबा, श्रीमती

जी ! आज सुबह भी तो हाजिर हुआ था।'

फिर से कुछ चौककर इन्दुमती बोली—'हाँ ··हाँ, पर वह···वह दूसरी बात थी।'

दूसरी बात क्यो थी, यह वीरभद्र की समझ मे न आया। इन्दुमती भी कहने को तो कह गयी कि 'वह दूसरी बात थी', पर समझा न सकी कि दूसरी बात क्यो थी। वीरभद्र इस 'दूसरी बात' का कोई उत्तर न दे सका। कुछ देर बाद इन्दुमती ने अब बात को ही दूसरी तरफ मोडते हुए कहा—

'मैने आपको इसलिए रोका कि यदि हमे हडताल ही करनी पडी तो इस हडताल के सम्बन्ध मे सारी योजना ब्योरेवार बननी चाहिए।'

'योजना बनाने का काम है वजीरसाहब का और आपका। हम लोग तो हुकम की तामीली करेगे।'

'लेकिन मै इससे सहमत नही हूँ। योजना बनाने मे भी आप सदृश समझदार मजदूरो का भी हाथ रहना चाहिए।'

'मै समझदार, श्रीमतीजी !'

'केवल समझदार ही नही, वीरभद्रजी, आपके समान व्यक्ति बिरले ही होते है।'

वीरभद्र की इस प्रकार की प्रशसा अब तक किसी ने न की थी। उसे कुछ सकोच-सा हुआ। सकुचते-सकुचते वह बोला—'मेरे समान बिरले व्यक्ति ! न एक अच्छर मै अगरेजी जानता, न मै हिन्दी ही पूरा पढा-लिखा, न सभा-सोसायटी का मुझे कोई तजोरबा।'

'पढने-लिखने और सभा-सोसायटी के तजुर्बे से ही सब कुछ नही होता, वीरभद्रजी, अग्रेजी हमारे देश की भाषा नही। हमारे कितने देशवासी अग्रेजी जानते है ? आप हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी अच्छी तरह जानते है। और फिर आप मे वे सब गुण मौजूद है जो सच्चे नेता मे होते है। प्रकृति ने आपको जैसा भव्य रूप दिया है वैसा ही मन भी। आपकी वीरता, आपका साहस ··'

'भव्य रूप ! वीरता ! साहस ! अपने पीछे चलनेवालो को नेता यदि उछाह न दे तो पीछे चलनेवाले बिचारे कुछ कर ही न सके। इसीलिए आप मुझे बढावा दे रही है, श्रीमतीजी।'

'नही, नही, यह बात नही। मै सच कहती हूँ, जो कुछ मैने आपसे कहा बढावा देने के लिए नही। मै तो मुग्ध हूँ आप पर मुग्ध !'

अपने अन्तिम वाक्य पर इन्दुमती स्वय ही कुछ चौक-सी पड़ी और अब फिर से बात को दूसरी ओर मोडते हुए जल्दी से वह बोली—'हाँ, मेरे चरित्र के सम्बन्ध मे जो चर्चा आपकी बस्ती मे चलने लगी थी आज आप लोग, उसी के लिए, माफी माँगने आये थे न ?'

'अब आपने हमें माफ ही कर दिया। छोडिए उस चरचा को।'

'नही, नही, उस सम्बन्ध मे मुझे आपके सामने अपने विचार जरा स्पष्ट रूप से रख देने है, जिससे आगे-पीछे हम लोगो के बीच कोई गलतफहमी न हो।'

इन्दुमती इस आशय से चुप हो वीरभद्र की ओर देखने लगी कि वह उसकी बात का शायद कोई उत्तर दे, पर जब वह कुछ न बोला तब वह कह चली—'वीरभद्रजी, समाज का जो संगठन अब है वह सदा से ऐसा ही नहीं था। उसमें समय-समय पर परिवर्तन हुए है। आपको शायद न मालूम हो, पहले विवाह-सस्था नही थी। एक नारी अनेक पुरुषो को अपने साथ रख सकती थी और एक पुरुष अनेक नारियो को अपने साथ। इसीलिए मै पातिव्रत धर्म या पत्नीव्रत धर्म नही मानती।'

'पत्नी बिरत धरम तो मैने भी नही सुना, पर पतिब्रत धरम तो है।'

'जब पत्नीव्रत ऐसा कोई धर्म नही तब पातिव्रत धर्म कैसे हो सकता है।'

'हम लोगो मे इस तरह की तरक वगैरा करने की तो सक्तो नही है, पर हम तो उसी को धरम मानते है, श्रीमतीजी, जिसे बडे-बूढे धरम मानते आये है।'

'इसीलिए तो यह देश रसातल को चला गया।'

'पतिब्रत धरम मानने के कारण से ?'

'एक इसी धर्म को मानने से नही, पर इसी तरह की बदलती हुई नैतिकताओ को धर्म मानने के कारण। और इस सम्बन्ध में भी एक बात तो स्पष्ट है, यदि पत्नीव्रत कोई धर्म नही तो पातिव्रत धर्म कैसे हो सकता है ? यह तो पुरुषों का स्त्रियो पर सीधा-साधा अत्याचार है।'

इन्दुमती फिर से वीरभद्र की ओर देखने लगी। वह सोच रहा था। कुछ

देर निस्तब्धता रही। अन्त मे वीरभद्र बोला 'पर श्रीमतीजी, अगर पतिव्रत धरम न रहे तो फिर तो सबकी सब औरते खानगी हो जायँगी।'

एक ठहाका मारकर इन्दुमती ने कहा—'वाह ! वाह ! यह आपने खूब कहा। पत्नीव्रत धर्म न होने के कारण क्या सब पुरुष खानगे हो गये है ?'

वीरभद्र फिर सोचने लगा। सोचते-सोचते उसने कहा—'मै जादा तो इस सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकता, पर इतना जरूर कह सकता हूँ कि पतिव्रत धरम न रहा तो समाज रसातल को चला जायगा।'

'और जब विवाह ही नही होता था, तब समाज क्या रसातल मे था ?'

वीरभद्र फिर सोच मे पड़ गया। कुछ देर बाद वह बोला—'उस बखत का हाल मै नही जानता। मै तो आज की बात कहता हूँ।'

'आज जो कुछ हो रहा है वह सब यदि ठीक है तो फिर पूँजीपति को पूँजीपति और मजदूर को मजदूर ही रहना चाहिए।'

वीरभद्र को एक ठोकर-सी लगी। अब वह कोई उत्तर न दे सका और इन्दुमती की ओर देखने लगा। कुछ देर ठहर इन्दुमती ने कहा—'वीरभद्रजी, जो कुछ हो रहा है वह ठीक है, यदि यह मान लिया जाय तो बहुजन समाज के दु ख का निवारण ही न हो सकेगा। यदि पूँजीवादी मजदूरो पर अत्याचार कर रहे है तो पत्नीव्रत धर्म न रहने पर पातिव्रत धर्म की दुहाई देनेवाले पुरुष स्त्रियो पर। हमे समाज के सारे अत्याचारो का मूलोच्छेदन करना है। फिर मै प्राचीन ग्रन्थो से आपको सिद्ध कर सकती हूँ कि पहले समाज मे विवाह नही था। जब विवाह ही धार्मिक चीज नही, तब कैसा पातिव्रत धर्म और कैसा पत्नीव्रत धर्म ? इसीलिए मेरी जिन बातो पर आपकी बस्ती मे बवाल मच गया था उन्हे मै कोई महत्त्व ही नही देती। जिससे मेरा विवाह हुआ था उसे छोड अब तक मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नही रहा यह मै आपको कह सकती हूँ, पर कल यदि मेरी इच्छा किसी से विवाह करने की हो, या बिना विवाह के ही वैसा सम्बन्ध रखने की, तो इसमें मै कोई पाप या अपराध नही समझती।'

वीरभद्र फिर उसी तरह आँखे फाड़ और मुँह खोल इन्दुमती की ओर देख रहा था, जिस तरह उसने आज प्रात काल, जब इन्दुमती ने पाँच हजार के दान का घोषणा की तब उसकी ओर देखा था। अपनी ओर वीरभद्र को इस प्रकार

देखते देख इन्दुमती ने कुछ मुस्कराकर कहा—'मेरे इस प्रकार के विचार आपको रुचिकर नही जान पडते ?'

'नही, नही, ऐसी कोई बात नही। अपने-अपने विचार तो ठहरे। फिर आप पढी-लिखी है। इस सम्बन्ध मे आपने गिरन्थ पढे है। और फिर ये सब आपके बिचार ही तो है। ब्योहार मे तो आपने कहा न कि ललितमोहनजी के बाद ...'

वीरभद्र का कथन समाप्त होने के पहले ही उस कमरे मे शीघ्रता से वजीरअली ने प्रवेश किया। वजीरअली को देखते ही वीरभद्र और इन्दुमती दोनो उठ खडे हुए। इन्दुमती के चेहरे से स्पष्ट झलक रहा था कि वजीरअली का इस समय का आगमन उसे बड़ा ही बुरा जान पडा, पर साथ यह भी दिख रहा था कि वह अपने भावो को छिपाने का प्रयत्न कर रही है। वीरभद्र ने इसे देखा या देखकर भी समझा या नही यह कहना कठिन था, पर वजीरअली का ध्यान उस ओर बिलकुल न गया। उसने आते-आते ही कहा—

'सख्त ..सख्त अफसोस है बहन, कि मै मजदूरो के सग तुम्हारी सेवा मे न आ सका। सब ठीक हो गया न ?'

'ठीक . ठीक होने को था ही क्या, सब ठीक ही था।' इन्दुमती बोली।

'हम लोगो ने श्रीमतीजी से सच्चे हिरदे से छमा माँग ली है और श्रीमतीजी ने हमे छमा भी कर दिया है।' वीरभद्र ने कहा।

इन्दुमती, जिसने अब अपने भावो पर पूरी विजय प्राप्त कर ली थी, मुस्कराते हुए बोली—'और अब हम लोग भावी कार्यो के सम्बन्ध मे योजना बना रहे थे।'

'हाँ, हाँ, वह तो अब बहुत जरूरी है।' यह कहते हुए वजीरअली एक कुरसी पर बैठ गया।

इन्दुमती और वीरभद्र भी वजीरअली के साथ-साथ ही अपनी-अपनी कुर्सियो पर बैठ गये थे।

: ३३ :

देश में दिनो-दिन मजदूर सगठन बढ रहा था। लखनऊ मे यह कार्य सोशलिस्ट लीग कर रही थी। लखनऊ के मजदूर सगठन के लिए वजीरअली और उसके साथियो ने दिन और रात एक कर डाला था। लखनऊ का मजदूरो का सगठन अब इस योग्य हो चुका था कि हर मोर्चे पर दुश्मन का जी तोड मुकाबला करे। वीरभद्र और उसके मजदूर साथियो ने जी तोड कोशिश कर अपनी बस्ती मे एक आग-सी फैला दी थी। हर मजदूर उतावला हो रहा था कि कुछ किया जावे। हर व्यक्ति इस बात के लिए बेचैन था कि कब उसे त्याग का अवसर मिलता है। इधर कारखानो के मालिक मजदूरो को अभी तक कीडे-मकोडे और घृणित जन्तु ही समझे बैठे थे। इन्हे अपने धन-दौलत का नशा, सरकार की तरफदारी का घमण्ड और सदा से बडे रहने का गरूर था। उन्होने मजदूर वर्ग की नाडी पर हाथ रखने की भी पर्वाह न की और उनकी हलचल को अपनी ताकत के जोर पर दबा देना चाहा। उनके जरखरीद पिट्ठुओ ने और उनके खुशामदी मैनेजरो ने अपने मालिको को प्रसन्न करने के लिए उनकी बदली हुई तेवरियाँ देखकर मजदूरो को जरा-जरा सी बातो पर तग करना आरम्भ किया। उठने, बैठने, आने-जाने, खाँसने और साँस लेने तक पर नियत्रण लगाये। बात-बात पर मजदूरो को अपमानित करना, जरा-जरा से अपराध पर बडे-बडे जुर्माने लेना, नौकरी से निकाल देना, कारखानो का नित्य-प्रति का कार्य हो गया।

वजीरअली की मजदूर यूनियन के मजदूर जिस कारखाने मे काम करते थे उस कारखाने के मालिको और प्रबन्धको को गिरती हुई कीमतो का सामना करने के लिए यही मार्ग दीखा कि जिस प्रकार भारत सरकार ने दफ्तरो में वेतनो की औसत दस प्रतिशत कम कर दी थी उसी तरह उस कारखाने मे भी कर दिया जाय, मजदूरो को अधिक घण्टे काम करने के लिए विवश किया जाय और कम मजदूरो से उतना ही काम लिया जाय जितना अधिक मजदूर करते है। तत्काल हुक्म निकल गया कि तीन सौ मे से नब्बे मजदूरो को अपनी

नौकरी से हाथ धोना पडेगा। लखनऊ मे मिल मजदूर का औसत मेहनताना चौदह से सोलह रुपये महीना था। इसके लिए हुक्म हुआ कि मजदूर पीछे एक से डेढ रुपये महीने की कटौती होगी और मजदूरो को अब नौ घण्टे के स्थान पर दस घण्टे काम करना पडेगा।

ज्योही मजदूरो ने मिल के फाटक पर यह नोटिस लगा देखा, उन्होने समझ लिया कि अब लडाई का समय आ पहुँचा है। आग पहले ही से लगी हुई थी। इस नोटिस ने तेल का काम किया और शोले भडक उठे। मजदूर तो चाहते थे कि तत्काल मिल के बाहर आ जायँ, परन्तु वीरभद्र और दूसरे मजदूर नेता, जिन्हे इतने समय से काम करते-करते अब कुछ अनुभव हो चुका था, मौके को कुछ-कुछ समझने लगे थे। इन्होने सोचा कही इस आग की लपटे इतनी न फैल जायँ कि अपने काबू मे भी न रहे। इसलिए उन्होने मजदूरो को तत्काल मिल के बाहर आने से रोका।

मजदूरो को यह समझाकर वीरभद्र और उसके साथियो ने उन्हे काम पर भेजा और स्वय वजीरअली से मिलने चले। वजीरअली और वे दिनभर लोगो से मिलने मिलाने, सोशलिस्ट लीग के कार्यकर्त्ताओ को जमा करने और यूनियन के भिन्न-भिन्न विचारवाले नेताओ से परामर्श में लगे रहे।

अन्त मे यूनियन ने हडताल के पक्ष मे निर्णय किया। किसी का यह साहस न हुआ कि झगडा फैला सके। एक हड़ताल-कमिटी बनी, जिसे मजदूरो की माँगे और हडताल की योजना बनाने का पूरा-पूरा अधिकार दिया गया। इस कमिटी में यूनियन के कुछ और कार्यकर्त्ताओ के साथ वजीर-अली, वीरभद्र और शमशेरखाँ भी चुने गये।

हडताल का दिन नियत किया गया। हडताल के चार दिन पहले सारी बस्ती मे हडताल-दिवस मनाया गया। बस्ती की बस्ती लाल झडो से सजायी गयी, मुहल्ले-मुहल्ले में सभा हुई, चौराहो पर प्रचार किया गया। बस्ती भर मे दीवारो पर बडे-बडे पोस्टर लगाये गये। शाम को बस्ती की सडको पर एक बडा भारी जुलूस निकाला गया। 'दुनियाँ के मजदूरो एक हो जाओ' इस नारे को हर मजदूर के हृदय मे जमा कर बिठा दिया गया। अब तक स्वय-सेवको का भी एक दल तैयार हो चुका था। ये स्वयसेवक लाल झण्डे के सिपाही थे। इन्होने मजदूरो की सेवा में जान तक बलिदान कर देने की कसमें

खायी थी। ये ही हड़ताल के दिन पिकेटिंग करनेवाले थे और मिल में जाने वालो की जूतियो के तले कुचले जाने तक की इनकी तैयारियाँ थी। पुलिस की लाठियो और गोलियो, जेलो और वहाँ की तकलीफो— सब कुछ सहन करने का इनका निश्चय था। ये घूमते रहे अब अपनी तैयारियो मे— जब तक कि हडताल का दिन न आ गया।

आखिर हडताल का दिन आ ही पहुँचा, क्योकि मिल मालिक ने मजदूरो की माँगो को ठुकरा दिया था। सूर्योदय के बहुत पहले पुलिस के सिपाही थानो से निकल आये और अभी सूर्य की किरणो मे चमक भी पैदा न हुई थी कि पुलिस के अफसरो की पेटियाँ और पगडियाँ चमकने लगी। रेंगती हुई मोटरे और सरसराती हुई लारियाँ दिलो मे एक हौल पैदा करने लगी। मिल के अधिकारी पुलिस अफसर और मजिस्ट्रेटो के साथ किसी खास बात की तैयारी के लिए जख्मी शेरनी की तरह इधर से उधर फनफनाते फिर रहे थे। उनकी आँखो मे खून था और चेहरो पर क्रोध। फिर भी दिल मे डर छिपा था जो वे अपने हावभाव मे छुपा न सकते थे।

भोपू बजने से कुछ ही देर पहले स्वयसेवको की एक टोली मिल के फाटक के सामने आकर खडी हो गयी। भोपू बजा, परन्तु आज का दृश्य ही दूसरा था ! अपना चौडा-सा फाटक मुँह के सदृश फैलाये मिल ऐसा दिखायी पडता था जैसे कोई दानव मुँह खोले अपनी शिकार की प्रतीक्षा कर रहा हो, पर शिकार उसे कही दूर-दूर भी दृष्टिगोचर न होता हो।

आज कोई मजदूर न आया। दस बजे पुलिस की एक लारी में सात मजदूर कही से पकडकर लाये गये। स्वयसेवको ने दूर से देखा, वे मौका भाँप गये और सब एक जान होकर मिल के फाटक के सामने खडे हो गये। लारी रोक ली गयी, पुलिस का गोरा सार्जेन्ट नीचे उतरा और इन स्वयसेवको को सामने से हट जाने का हुक्म दिया। जब उन्होने हटने से इकार किया तब उन्हे लाठी चार्ज करने या गिरफ्तार करने की धमकी दी गयी। धमकी का जवाब दृढता से मिला, हुक्म हुआ कि ये सब फौरन गिरफ्तार कर लिये जायँ। लारी मे लाये गये मजदूरो को उतारा गया और स्वयसेवको को उसी लारी मे भरकर जेल भेज दिया गया। इनकी गिरफ्तारी ने शहर मे एक तहलका मचा दिया। मजदूरो का जुलूम मजदूर बस्ती से निकलकर शहर मे आया।

मजदूरो की आवाजे झोपडो से निकल कोठियो मे पहुँचने लगीं। शहर के कुछ लोगो और कालेजो के विद्यार्थियो ने मजदूरो का समर्थन किया। विश्व-विद्यालय मे जलसे हुए और मजदूरो के प्रति सहानुभूति के प्रस्ताव पास किये गये।

उधर सरकार ने इस सब को दबा देने की ठान ली। लाठी चार्ज हुए, गिरफ्तारियाँ हुई, तलाशियाँ हुई, जुबान बन्दी के हुक्म जारी हुए, जमानते तलब की गयी, मुचलके लिये गये और कानून के सैकडो हाथ तथा पैर जहाँ तक हो सका फैलाये गये। परन्तु हड़ताल जारी रही। मजदूर अपने इरादे मे अटल रहे। कोई सख्ती उनका कदम न हिला सकी। पुलिसवाले नित्य सुबह-शाम, दिन-रात उनकी बस्तियो मे बावले कुत्तो की तरह चक्कर लगाते, बिना पूछे-ताछे उनके घरो मे घुस जाते, उनकी औरतो को जलील करते, उनके मर्दो को मारते और उनके बच्चो को लारियो मे भरकर सात-सात मील दूर छोड़ आते। वहाँ से बिचारी नन्ही-नन्ही जानो को पैदल आना पड़ता। मजदूर बिचारे यह सब देखते और चुप रहते। हर बार सोच लेते—'यह अन्तिम जग है जिसको जीतेगे हम एक साथ।'

धीरे-धीरे हड़ताल के सात दिन बीत गये। मजदूर अपनी जगह से जरा भी टस से मस न हुए। सरकार और मिल मालिक ने सारे प्रहार मजदूरो पर किये। खुले खजाने मजदूरो की बस्ती के पानी के नल तोड दिये गये, सरकारी बमपुलिस मे ताले लगा दिये गये, हफ्तेबारी बाजार लगना नाजायज करार दिया गया और साहूकारो को मजबूर किया गया कि वे मजदूरो से अपने कर्जे के रुपये तत्काल वापस माँगे। इसके अतिरिक्त छुपा चोरी, इक्का-दुक्का मजदूर यहाँ-वहाँ पीटे भी गये। दो-चार जगह चोरियाँ भी हुई। परन्तु इन सब सख्तियो से मजदूरो के हृदय और दृढ हो गये, उनके इरादे पक्के हो गये, उनकी एकता अधिक घनिष्ट हो गयी, उनके कदम मजबूत हो गये और उनकी सख्तियो से मुकाबला करने की हिम्मते दुगनी-चौगनी हो गयी।

कितना काम किया वजीरअली तथा वीरभद्र ने इस सप्ताह मे और कितनी सहायताएँ दी इन्दुमती ने इन दोनो को। सभी की कृति मे उतनी ही गति आ गयी थी जितनी विचार मे।

हड़ताल चलते हुए दो हफ्ते बीत चुके थे। उसके टूटने की कोई सम्भावना न थी। टूटती क्यो ? इन्दुमती के कारण न कोई मजदूर भूखा मर रहा था, और न किसी को किसी प्रकार का अन्य कष्ट ही था। पहले तो काम करके लोगो को खाने और अन्य खर्च चलाने के लिए पैसा मिलता अब मिलता इन्दुमती की कृपा से मुफ्त मे। फिर भला हड़ताल क्यो समाप्त होती ? हाँ, प्रचार आदि के कार्यो मे नेता और मजदूर मेहनत अवश्य कर रहे थे और वह भी हद दर्जे की।

हडताल चलते हुए ही एक दिन रात को करीब दो बजे इन्दुमती के मकान के दरवाजे जोर-जोर से भडभडाये गये तथा उसे जोर-जोर से पुकारा गया। इन्दुमती चकपकाकर उठी और दरवाजे खोलकर देखा कि वजीरअली उसे पुकार रहा है और दरवाजे भडभड़ा रहा है। वजीरअली विचित्र प्रकार के कपडो मे था। वह रात को सोने का स्लीपिग सूट पहने था। न सिर पर टोपी थी और न पैर मे जूते, बाल फैले हुए थे और मुख पर हवाइयाँ उड रही थी। वजीरअली से इन्दुमती को मालूम हुआ कि मजदूरो के क्वार्टरो मे भीषण अग्नि लगी है। इन्दुमती गरमी के कारण एक हलकी सी साडी और चोली पहने हुए थी, शलूका तक नही। उसे भी कपडे बदलने का इस समय होश न रहा और दोनो मोटर पर बैठ मजदूर बस्ती को रवाना हुए। वजीर-अली लाया था टैक्सी। इन्दुमती जल्दी से जल्दी मजदूर बस्ती पहुँचना चाहती थी, ड्राइवर को उठा मोटर मँगाने मे देर होती, इसलिए उसने वजीरअली की टैक्सी में जाना ही उचित समझा।

जब ये दोनो मजदूरो की बस्ती पहुँचे तब इन्होने देखा कि मजदूरो की बस्ती ने ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया है। सब तरफ से लाल-लाल पीली-पीली लपटे और काला-काला नीला-नीला धुँआ निकल रहा था। कभी कोई चीज जलकर चटकती और उससे चिनगारियाँ भी निकल पड़ती। कभी कोई वस्तु जलकर गिरती और उसके अँगारे बन जाते। एक तो ग्रीष्म-ऋतु फिर आग अतः गरमी का ठिकाना न था। सड़क पर बडी भीड़ थी, पर भीड थी तमाशबीनो की। हल्ला सब मचा रहे थे, पर आग बुझाने अथवा जिनका इस आग मे सब कुछ स्वाहा हो रहा था उन्हे या उनके कुटुम्बियो, उनके 'सामान को बचाने कोई अग्रसर न होता था। क्वार्टरो में

रहनेवाले भी सभी बाहर खडे थे। ये लपटो के बहुत नजदीक थे, क्योकि ये अभी-अभी इन क्वार्टरो से निकल पाये थे और निकलते-निकलते अपने बच्चो तथा जो थोडा सा सामान निकाल पाये थे, उन्हे सँभाल रहे थे। बहुत थोडा सामान ये बचाकर ला सके थे। इनमे से कई की जान और उनके बच्चे ही जब कठिनाई से बच पाये थे तब वे सामान कैसे लाते ?

वजीरअली और इन्दुमती भीड को कठिनाई से चीरते हुए वहाँ तक पहुँच गये जहाँ क्वार्टरो मे रहनेवाले मजदूर खडे थे। इन मजदूरो मे इन्दुमती की आँखे बडी आतुरता से किसी को ढूँढने लगी ; परन्तु जिसे वह ढूँढ रही थी वह उसे न दीखा। उसका पता उस समय उसे आँखो ने न दे कानो ने दिया। एक मजदूर इन्दुमती को देख उससे कहने लगा—

'बहनजी, आपने अगर यहाँ स्वयसेवको की भरती न की होती, अगर उन स्वयसेवको का सरदार वीरभद्रजी को न बनाया होता तो आज इस बस्ती का एक भी बच्चा न बचता।'

'खुशी हुई मुझे यह सुनकर कि स्वयसेवको और वीरभद्रजी ने बच्चो की जान बचा ली। सब बच्चे बच गये न ?'

एक दूसरा मजदूर बोला—'जहाँ तक जान पड़ता है एक को छोड सब आग के बाहर आ गये।'

'और एक ?' वजीरअली ने पूछा।

'उसे भी ढूँढने वीरभद्रजी गये है।'

'इस भीषण अग्नि मे !' इन्दुमती के स्वर मे चिन्ता, व्यथा और आतुरता तीनो का एकदम मिश्रण हो गया था।

इन्दुमती के पास ही जो एक स्वयसेवक खडा था, बोला—'बहनजी, कुछ देर तक तो हम सब स्वयसेवको ने भी काम किया, पर फिर बात हमारे बूते के बाहर हो गयी। फिर तो अकेले हमारे सरदार ने ही न जाने क्या-क्या किया है।'

उसी के पास खडे हुए एक दूसरे स्वयसेवक ने कहा—'हाँ, अकेले आग की लपटो के बीच घुस-घुम कर, अगारो को खोदते हुए उन पर चल-चल कर. ऊपर से जलती हुई चीजो के गिरने की परवाह न कर उनके नीचे दौड-दौड़ कर, हाथो से ही दरवाजो को तोड-तोड़ और खिडकियो के लोहे के सीखचो

तक को टेढे-मेढे कर उन्हे खिडकियो मे से निकाल-निकाल कर न जाने कितने बच्चो और कितने सामान को उन्होने इस आग से निकाला है।'

'और अभी भी वे आग मे घुसे हुए है ?' और अधिक चिन्तित, व्यथित तथा आतुर होकर इन्दुमती बोली।

एक तीसरे स्वयसेवक ने कहा—'जब यहाँ मालूम हुआ कि हमारे एक भाई के बच्चे का पता नही है तब सब के मना करते हुए भी वे उसे ढूँढने इस आग मे घुस गये।'

'यो ही काफी जलभुन और झुलस गये थे वे, आग भी बहुत बढ गयी थी, पर उन्होने ज्योही यह सुना कि किसी का बच्चा भीतर रह गया है फिर भला वे बाहर कैसे रहते ? एक का कहा न माना उन्होने।' एक अन्य स्वयसेवक बोला।

एक दूसरे स्वयसेवक ने कहा—'और फिर वह बच्चा उस मजदूर का था जिसने हडताल मे हमारा साथ नही दिया था, बल्कि जब हमने धरना दिया था तब वह हमें खोदता हुआ काम करने कारखाने मे गया था।'

'क्या बहुत देर हो गयी हे उन्हे गये ?' वजीरअली ने पूछा।

'हाँ, काफी देर हो गयी।' उसी स्वयसेवक ने उत्तर दिया।

इन्दुमती ने हडबडाकर कहा—'तब · तब तो वे·· वे शा···शायद · ' इन्दुमती आगे कुछ न कह सकी। उसकी चिन्ता, व्यथा और आतुरता अब उस सीमा को पहुँच गयी थी जहाँ पहुँचने पर वे आवाज बन्द कर देती है।

पर इसी समय उन आग की लाल-पीला चमकीली लपटो मे से धुँए के सदृश काली पर कुछ ठोस सी एक ऊँची वस्तु इन्ही लागो की ओर आती दिखायी पडी। यह वस्तु आ रही थी उस स्थल से जिसके चारो ओर तो लपटे थी, पर बीच के हिस्से मे कुछ काली पोल सी दिखायी पडती थी। इसी काली पोल मे से यह वस्तु निकल रही थी। आग से बाहर निकलने में जो त्वरा रहती है वह इस चीज की गति मे न थी, वरन् त्वरा के स्थान मे इसमे शिथिलता···अत्यधिक शिथिलता दृष्टिगोचर हो रही थी।

ज्वालाओ की पोल के बीच से बाहर निकल यह चीज एकाएक गिर पडी। इन्दुमती, वजीरअली और इन दोनो के साथ अनेक स्वयसेवक उस जगह पहुँचे जहाँ यह चीज गिरी थी और जो स्थान कुछ सैकिण्डो मे ही

लपटो से भर जानेवाला था। इन्दुमती, वजीरअली और स्वयसेवको के सिवा बहुत दूर से एक स्त्री भी लगभग चार वर्ष की उम्र की एक बालिका के साथ इस ओर दौडी थी। इन्दुमती आदि को निकट आते यह ज्ञात हुआ कि यह स्त्री और बालिका पार्वती और कमला है। बहुत दूर तक भीड होने से अब तक न ये इन्दुमती और वजीरअली को देख सकी थी और न ये लोग ही उन्हे देख पाये थे।

इस समुदाय ने देखा कि वह गिरी हुई वस्तु और कुछ न होकर वीरभद्र ही है। वीरभद्र के कमर मे एक छोटी सी वस्तु और बँधी थी। कमला वीरभद्र को देखकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी—'बाबूजी ! बाबूजी · ' सब लोगो ने मिलकर वीरभद्र को उठाया और शीघ्रता से उसे उस स्थान पर लाये जहाँ ये सब पहले खडे हुए थे।

वीरभद्र अचेत था। वह कई जगह बहुत बुरी तरह झुलसा और जला था। पहने हुए था वह सिर्फ एक लँगोट। उसकी कमर मे एक जनानी धोती से बँधा हुआ था एक बच्चा और यह बच्चा भी बेहोश था। दोनो जीवित थे, मरे न थे, यह उनकी चलती हुई साँसो से मालूम हो रहा था।

जिस वक्त यह समुदाय वीरभद्र को अस्पताल ले जाने की तैयारी कर रहा था, उसी समय जोर-जोर से घण्टी बजाता हुआ आग बुझाने का एजिन पहुँचा, जिसकी न जाने कितनी देर से यहाँ प्रतीक्षा की जा रही थी। इस एजिन के कार्यकर्त्ता यद्यपि लोगो का कष्ट निवारण करने आये थे, तथापि अपनी काली वर्दी और विचित्र टोप के कारण देखने मे यमदूतो से जान पड़ते थे। मरनेवाले प्राणी को लेने के लिए जब यमदूत आते है तब भी यथार्थ मे वे बीमारी से मुक्त कर उस प्राणी का कष्ट ही दूर कर देते है।

: ३४ :

वीरभद्र और वह बच्चा दोनो ही अस्पताल लाये गये थे। बच्चा जला न था इधर-उधर थोड़ा-बहुत झुलसा भर था। उसे जल्दी होश आ गया और मल्हमपट्टी होने के बाद उसके माँ-बाप उसे ले गये। पर वीरभद्र बहुत बुरी तरह जला था। सिर, चेहरा, हाथ-पैर, छाती, पेट, पीठ कोई भी ऐसा अग न था जिसे अग्नि ने कही न कही न जलाया हो। और पैर-हाथ तो उसके इस तरह सूज गये थे जैसे उन पर मधुमक्खियाँ या बर्रैयो के छत्ते टूट पडे हो।

वीरभद्र को अस्पताल मे पडे हुए आज तीसरा दिन था, पर वह न बोलता था और न उसे होश ही आ रहा था। उसका सारा शरीर सफेद पट्टियो से आच्छादित होने के कारण वह काले से एकदम सफेद हो गया था। साँस लेने के सिवा वह जीवित है इसका कोई सुबूत भी न था। डाक्टरो के मतानुसार जीवन और मृत्यु के बीच वह झूल रहा था।

पार्वती भी चिन्ताग्रस्त थी, चैन उसे भी न पडता था, पर वीरभद्र की पत्नी होते हुए भी उसकी चिन्ता और बेचैनी का पारा इन्दुमती के सदृश न चढा था।

इन्दुमती ने इन तीन दिनो मे क्षण भर के लिए भी विश्राम न किया था। पार्वती और वजीरअली के अत्यधिक आग्रह के कारण उसे भोजन के समय थोडा-बहुत खाना अवश्य पडता, पर कौर ही उसके गले के नीचे न उतरता। खाने को बैठती तो वह इसलिए जिससे पार्वती भी थोड़ा-बहुत खा ले। पार्वती को भी भूख न लगती, फिर भी इन्दुमती से तो वह अधिक ही खा लेती। इसका शायद यह कारण भी था कि मजदूर वर्ग अभिजात वर्ग से अधिक खाता ही है। पार्वती थोडा-बहुत ऊँघ भी लेती, पर इन्दुमती की आँखो में नीद न थी।

सातवे दिन प्रात काल वीरभद्र को स्पष्ट रूप में कुछ होश आया। उसने आँखे खोल अचकचाकर अपने चारो ओर देखा और एकाएक कहा—'कहाँ

…कहाँ हूँ…' पर तत्काल ही उसने फिर आँखे बन्द कर ली और फिर बेसुध हो गया। इन्दुमती और पार्वती ने कई बार उसे पुकारा, पर इसका कोई फल न हुआ। उसी दिन तीसरे पहर फिर उसने आँखे खोलकर चारो ओर देखा। जिस समय इस बार उसने आँखे खोली, इन्दुमती उसी की ओर देख रही थी। वह लपककर उसके पलँग पर बैठ उससे बोली—'कहिए पहचानते है मुझे ?'

'हाँ, हाँ, इन्दुमतीजी। पर कहाँ हूँ मै ?'

अब पार्वती भी उसके निकट आ गयी और इस बात का उत्तर पार्वती ने दिया—'अस्पताल मे है आप। और ऐसी सेवा कर रही है आपकी इन्दु बहन कि कोई सगी बहन भी न करेगी।'

वीरभद्र ने इन्दुमती की ओर देखा। इन्दुमती ने कहा—'इनकी फिजूल बात न सुनिए आप। आपकी सेवा मै क्या सारी दुनियाँ करे तो थोड़ी है। कौन दूसरो के लिए अपनी जान इस तरह हथेली पर रखता है।'

× × ×

वीरभद्र को अच्छी तरह बैठने-उठने के लायक होते-होते तीन महीने लग गये। इन्दुमती ने इन महीनो मे कैसी सेवा की उसकी। पार्वती की सेवा तो इन्दुमती की सेवा के सामने तुच्छ थी। वीरभद्र को शुरू-शुरू मे इन्दुमती से सेवा कराने मे सकोच भी बहुत हुआ, पर जो वीरभद्र इन्दुमती की सेवा लेने में आरम्भ मे इतना सकोच करता, वही धीरे-धीरे इन्दुमती के सिवा किसी अन्य के हाथ से दवा न लेता, किसी अन्य से थरमामीटर न लगवाता अर्थात् सारा काम इन्दुमती से ही कराता। कितना हर्ष होता इन्दुमती को अपने प्रति वीरभद्र का इतना खिचाव देखकर।

चौथे महीने मे जिस दिन वीरभद्र अस्पताल से निकला उसी दिन कारखाने वाले और मजदूरो के प्रतिनिधियो के समझौते के कागज पर दस्तखत हुए। मजदूरो की जीत हो गयी।

वजीरअली, वीरभद्र, सोशलिस्ट पार्टी के अन्य कार्यकर्त्ताओ और मजदरो के हर्ष का ठिकाना न था। मजदूरो की विजय का प्रधान श्रेय दो व्यक्तियो को दिया गया, ये थे—इन्दुमती और वीरभद्र।

जब वीरभद्र अस्पताल से निकल रहा था तब पार्वती ने इन्दुमती को एक

ओर ले जाकर कहा—'बहन, तुम्हारे अहसानो से न मै उऋण हो सकती हूँ और न वे, वरन् एक भी मजदूर नही। एक ही प्रार्थना है जिस तरह तुमने इनका शरीर अच्छा कर दिया, उसी तरह इनका मन भी कर दो।'

'मन! ऐसे वीर के मन ठीक करने की जरूरत··'

बीच ही मे पार्वती बोली—'वीर मे भी बुरी आदते हो सकती है। तुम क्या इनकी वे आदते नही जानती? यहाँ से जाते ही फिर से वही शराब, जूआ और रात-रात रण्डियो के घर जाना शुरू होगा ··और मुझे पीटना भी।'

'अच्छा-अच्छा, उस ओर भी ध्यान दूँगी, बहन। अब तुम उस सम्बन्ध मे भी निश्चिन्त रहो। मै वचन देती हूँ—इस काम को मै करूँगी।'

इन्दुमती जब मजदूर बस्ती से अपने घर पहुँची तब उसने देखा कि उसके घर की और उसकी दशा इससे ठीक विपरीत थी। कैसा सूना था वह घर, मयक स्कूल गया हुआ था, सुलक्षणा पूजाघर से निकलती ही न थी, सब कुछ सायँ-सायँ-सा कर रहा था। अस्पताल के चार महीने के कर्मण्य जीवन के बाद इस घर का यह अकर्मण्य वायुमण्डल! इन्दुमती ललितमोहन के चिर वियोग के प्रसगो को छोड इन वर्षो मे कभी न रोयी थी, जब वीरभद्र जीवन और मृत्यु के बीच मे गोते लगा रहा था तब भी नही, आज इन्दुमती के एकाएक आँसू बहने लगे।

वह मन ही मन कहने लगी—'स्वप्नो की सिद्धि के लिए प्रत्यक्ष जीवन का यह जूआ।' पर उसी समय उसे एकाएक याद आया कि श्रीकृष्ण ने गीता मे द्यूत को अपना रूप कहा है और वह सोचने लगी कि मजदूर बस्ती मे उसने जूए को बन्द करने का प्रयत्न कर कोई अनुचित बात तो नही की है?

× × ×

वीरभद्र को अच्छा करने के लिए इन्दुमती को लगातार चार महीने अस्पताल मे वीरभद्र के साथ रहना पडा था। वीरभद्र के अधिक से अधिक साथ रहे बिना जब वह उसका शरीर ठीक न कर सकती थी तब बिना उसके सग रहे वह उसका मन कैसे ठीक करती? परन्तु अस्पताल मे वीरभद्र के सग रहना जितना सरल था उतना अब नही। इसके अनेक कारण थे। अस्पताल से वीरभद्र ही कही न जा सकता था। अस्पताल मे वह बीमार था, और बीमार

की तीमारदारी मे किसी का भी रहना कभी भी अपवाद का कारण नही हो सकता। भला-चगा वीरभद्र अस्पताल के सदृश एक ही जगह न रह सकता था। वह अपने काम पर जाता और काम के अलावा भी कई जगह जैसे कलारी, वेश्याओ के घर इत्यादि। फिर अस्पताल मे इन्दुमती उसकी तीमारदारी के लिए उसके कमरे मे रहती। अब वह यदि उसकी झोपडी मे रहना भी चाहे तो किस कारण से ? मनुष्य को हर बात मे कानून नही बाँधते, वह अपने नित्य के व्यवहारो मे स्वतन्त्र भी बहुत दूर तक है। वह नित्य की अपनी कृतियाँ, जैसे वह कहाँ बैठता है, कहाँ सोता है, क्या करता है, इत्यादि की कैफियत भी किसी को देने के लिए बाध्य नही है, परन्तु उसके सामाजिक प्राणी होने के कारण कानून से वह जिन बातो मे बाध्य नही है, और जिन बातो की उसे किसी को कैफियत नही देनी पडती, ऐसी बाते भी उसे इस तरह करनी पडती है जो किसी को आपत्तिजनक न जान पडे। मनुष्य को अपनी सारी दिनचर्या इस तरह चलानी पडती है जैसे बिना किसी के कैफियत माँगे ही वह सबको अपने चाल-चलन की कैफियत देते हुए सारे कार्य कर रहा है। इन्दुमती ने समाज की कभी कोई परवाह न की थी फिर भी जैसे मजदूर बस्ती मे काम करने के सिवा अन्य कोई उपाय उसे वीरभद्र से सम्पर्क रखने का न मिला था उसी प्रकार अस्पताल के सदृश चौबीसो घण्टे वीरभद्र के साथ रहने का उसे कोई रास्ता न सूझ पडा। मजदूर बस्ती मे काम करते हुए जिस तरह अब तक उसने वीरभद्र के साथ सम्पर्क रखा था, उसी प्रकार अब भी वह रख सकती थी, पर इतने कम सम्पर्क से वह अपना पार्वती को दिया हुआ वचन पूरा न कर सकती थी। और सबसे बडी बात तो यह थी कि अस्पताल मे चौबीसो घण्टे वीरभद्र के साथ का चसका लगने के बाद अब उसे वीरभद्र के बिना क्षण-क्षण बिताना कठिन हो रहा था अत्यन्त कठिन।

अस्पताल मे वह वीरभद्र के निकट अवश्य आ गयी थी, होश मे आने के कुछ दिनो बाद तो वीरभद्र किसी दूसरे के हाथ से न दवा पीता और न थरमामीटर लगवाता, पर इतने पर भी वीरभद्र के हृदय मे उसके प्रति कैसे भाव है, इसका पता चार महीने तक चौबीसो घण्टे साथ रहने पर भी इन्दुमती को न लग पाया था। बीमारी का वह समय भी, चाहे चौबीसो घण्टे साथ रहने के अनुकूल हो, पर इस प्रकार के पता पाने के लिए अनुकूल न था। और

फिर पार्वती जो निरन्तर उसके साथ रहती। वीरभद्र की जिन भावनाओ का इन्दुमती पता लगाना चाहती थी वह केवल वीरभद्र और इन्दुमती के साथ रहने से ही चल सकता था, किसी तीसरे के सग रहने से नही।

वीरभद्र की ओर इस तरह का खिचाव होने के बाद से ही अनेक बार एकात मे वीरभद्र के साथ रहने की इन्दुमती की इच्छा हुई थी, परन्तु लगभग डेढ वर्ष बीत जाने पर भी केवल एक बार, जब वीरभद्र मजदूरो के साथ माफी मॉगने आया था, ये दोनो कुछ देर एकान्त मे साथ रहे थे। उस समय इन्दुमती ने अपने कुछ सिद्धान्तो की चर्चा भी वीरभद्र से की थी, पर उसी समय वजीर-अली के आने के कारण बात अधूरी रह गयी और वह वीरभद्र की भावनाओ का पता न पा सकी। उस दिन के बाद वह वीरभद्र को फिर से एकान्त मे बुलाने के लिए लालायित थी, लेकिन अपने पॉच हजार के चन्दे के वीरभद्र पर पडे हुए प्रभाव को देख उसने स्वय ही निर्णय किया था कि एकान्त का यह मिलन उसे तब तक रोके रखना चाहिए जब तक हडताल समाप्त न हो जाय और वीरभद्र पर उसके कुछ और प्रभाव न पड जायँ।

हडताल मे इन्दुमती ने जो कुछ किया था, और हड़ताल के साथ ही वीरभद्र के प्रति, उससे उसे इस बात मे तो सन्देह ही न था कि वीरभद्र पर उसका इस समय जितना प्रभाव है उतना किसी का नही। हडताल के पहले वह ऐसे अवसर की कल्पना कर रही थी जब उसका वीरभद्र पर और अधिक प्रभाव हो सकेगा, पर इस समय वह ऐसे समय की कल्पना भी न कर सकती थी जब भविष्य मे उसका प्रभाव वीरभद्र पर बढ सके।

एकाएक लगभग बीस वर्ष पूर्व का इन्दुमती को वह समय याद आया जब उसने अपने प्रति त्रिलोकीनाथ की भावनाओ को जानने के लिए राखी पूनम को अपने उद्यान मे एक भोज रखा था और राखी बॉधने का प्रपच रचा था। और यह बात स्मरण आते ही इन्दुमती के मन मे उठा कि एक बार वीरभ को भोजन के लिए क्यो न बुलाया जाय। त्रिलोकीनाथ की भाव़ाया ? को जानने की इच्छा पर भी उसने उस राखी-पूनम के भोज मे
मित्रो को भी बुलाया था, पर वीरभद्र को वह चाहती थी सआज जितना मे। वीरभद्र को बुला, पार्वती और कमला को न बुलाना कहॉ ही दवा के ज्ञान पडेगा, यह इन्दुमती के मन मे उठा, परन्तु उसी समय उसे ग्रा

अस्पताल से चलते समय पार्वती को दिया हुआ वचन। इन्दुमती ने तय किया कि वह अकेले वीरभद्र को ही बुलायेगी और पार्वती से कह देगी कि वीरभद्र की बुरी आदतें छुडाने के लिए उसे अब वीरभद्र के साथ एकान्त मे बात करनी होगी। और ज्यो ही उसे यह याद आया त्यो ही उसके मन मे यह भी उठा कि वह वचन तो एक बार नही अनेक बार वीरभद्र के साथ एकान्त मे रहने मे सहायता दे सकता है, कभी उसे भोजन के लिए बुलाने मे, कभी उसे साथ-साथ सिनेमा ले जाने मे, इत्यादि। किसी बात को निश्चय करने के बाद उसे कार्यरूप में परिणत करने मे इन्दुमती को देर लगती ही न थी, अत उसने एक दिन वीरभद्र को भोजन करने का निमन्त्रण दिया। पार्वती को एकान्त मे उसने बता दिया कि वीरभद्र को सुधारने के लिए उसके और वीरभद्र के एकान्त मे मिलन का यह निमन्त्रण श्रीगणेश है।

इन्दुमती का वीरभद्र से लगभग डेढ वर्ष से सम्बन्ध था। वह मजदूरो की बस्ती में महीनो से काम कर रही थी। वहाँ रोज ही घण्टो वीरभद्र के यहाँ रहती थी। अस्पताल मे भी महीनो तक वीरभद्र की सेवा कर चुकी थी। वीरभद्र उसके लिए कोई नया व्यक्ति न था, पर इतने पर भी वीरभद्र उसके यहाँ भोजन करने आ रहा है, इससे उसे बडा सकोच-सा प्रतीत हुआ। उसके नौकर-चाकर क्या कहेगे, अडोस-पडोस मे क्या कहा जायगा, न जाने कितनी बाते उसके मन मे उठी। पर एक ओर यदि उसे सकोच हो रहा था, तो दूसरी ओर वह इस भोज की उत्तम तैयारी भी करना चाहती थी।

आठ बजे रात का निमन्त्रण था। ठीक समय पर वीरभद्र पहुँच गया। अस्पताल मे उसने निश्चित किये हुए काम को ठीक समय पर करन की आदत डाल ली थी। वीरभद्र की वेषभूषा वैसी ही थी जैसी सदा रहती थी— टोपी, कुरता, ढीला पाजामा, गरम जाकेट, ऊपर धुस्मा, सारे कपडे मिल के हुए।

कुछ दिन्मनी ने बडे प्रेम तथा उत्साह से उसका स्वागत किया और उसके दोनो थरमामीटर हाथो मे ले कुर्सी पर बैठाया। एक सरसरी दृष्टि मे वीरभद्र ने भाव है, इसदेखा, न किसी चीज की ओर कोई खास ध्यान दिया और न मती को न की प्रशसा ही की।

रहने के आते उठकर खाने के कमरे मे गयी। यहाँ नौकरो ने सारी व्यवस्था

ठीक कर रखी थी। इन्दुमती वापस आकर वीरभद्र को ले भोजन के कमरे मे पहुँची। टेबिल पर खाने का इन्तजाम था। यद्यपि इसके पहले अस्पताल को छोड घर मे वीरभद्र ने कभी टेबिल पर न खाया था, पर वह छुआछूत न मानता था, अत उसे टेबिल पर बैठकर खाने मे कोई आपत्ति न हुई। दोनो ने खाना शुरू किया और नौकरो ने परोसना। नौकरो को आज के महमान को देखकर बडा आश्चर्य-सा हो रहा था।

छोटी-छोटी फूली हुई पूरियाँ वीरभद्र का एक ही कौर होता। कचौरियाँ, समोसे, बरफियो आदि का भी वह एक ही कौर करता। लगभग आधा घण्टा दोनो के खाने में लगा। इतनी देर मे जितना इन्दुमती ने खाया उससे दस गुना वीरभद्र ने। नौकरो को परोसने मे चाहे देर होती, पर उसे उसके साफ करने मे नही। इन्दुमती ने उसका खाना अस्पताल मे ही देखा था, जहाँ उसे खाना डाक्टरो की राय के अनुसार हलका और एक खास मिकदार मे दिया जाता था। यहाँ उसने खाया था पेट भरकर।

भोजन के समय वीरभद्र और इन्दुमती मे कोई बातचीत न हो सकी। इन्दुमती ने कई बार बातचीत करने का प्रयत्न किया, पर जब जब भी इन्दुमती ने कुछ कहा वीरभद्र ने थोडा-सा मुस्करा देने के सिवा उसका कोई उत्तर न दिया। इन्दुमती को वीरभद्र की इस चुप्पी पर आश्चर्य भी हुआ।

पूरा भोजन कर एक जोर की डकार लेते हुए वीरभद्र बोला—'छमा करना, बहन, मै भोजन करने मे बोलता नही हूँ।'

इन्दुमती के मन मे उठा ऐसा खानेवालो के लिए यह नियम ही उपयुक्त है। उसे यह भी महसूस हुआ कि वीरभद्र के सदृश शरीरवाले को उस शरीर की रक्षा के लिए कितने भोजन की जरूरत पड़ती है। परन्तु इन बातो को मन मे ही रख उसने कहा—'पर अस्पताल मे तो तुम खाने के समय बोलते थे।'

'अस्पताल की बात छोडो, बहन। वहाँ खाना मैने एक दिन भी खाया? वहाँ तो खाना भी दवा था।'

इन्दुमती को वीरभद्र का कहना कितना सच्चा जान पडा। आज जितना उसने खाया था, उसके मुकाबले मे अस्पताल का खाना सचमुच ही दवा के समान था।

जिस प्रकार वीरभद्र ने कमरे की सजावट आदि की कोई तारीफ न की थी उसी तरह भोजन-सामग्री की भी कोई प्रशसा न की और दोनो हाथ धो कर बैठक के कमरे मे आये।

कमरे मे आ, बैठते-बैठते इन्दुमती ने कहा—'अब आज तुम्हे गाना भी सुनाऊँगी।'

'अच्छा, तुम गाती भी हो, बहन ?'

'यो ही थोडा-बहुत।' यह कहकर इन्दुमती हारमोनियम पर बैठी। पहले कुछ देर उसने सरगम बजायी और फिर गाना शुरू किया। उसने गाया एक श्रृगारी पद—

बिहरत बन दोउ मन इक करे।
एक भाव इक भये लपटि कै, उर-उर जोरि धरे।
मनो सुभट रण एक सग जुरि, करिवर नही डरे।
अधर दशन छत नखछत उर पर, घायन करहि परे।
यह सुख यह उपमा पटतट को रति सग्राम लरे।
सूर दास निरखत अन्तर भइ रतिपति काज सरे।

पद अश्लील था। गाते-गाते वह मुस्कराते हुए वीरभद्र की ओर देखती भी जाती थी, पर वीरभद्र न पद ही समझ रहा था और न इन्दुमती की मुस्कराहट का कारण।

जब पद समाप्त हो गया तब इन्दुमती ने पूछा—'कहो, पसन्द आया ?'

वीरभद्र ने स्पष्ट उत्तर दिया—'पसन्द तब आता, जब समझ सकता।

इन्दुमती कुछ सोच मे पड़ गयी। पर कुछ ही देर में वह बोली—'अच्छा देखो, अब एक ऐसी चीज गाती हूँ जो तुम जरूर समझ जाओगे।' और यह कह इन्दुमती ने फिर गाना शुरू किया।

कॉटो लागो, रे देवरिया,
मोसे सग चलो ना जाय।

वीरभद्र हँसते हुए बोला—'हॉ, इसे·· इसे खूब समझता हूँ।'

वीरभद्र की बात सुन इन्दुमती हारमोनियम छोड़ उठ खडी हुई। जल्दी से दूसरे कमरे मे गयी और शीघ्र ही लौट भी आयी। जब वह लौटकर आयी तब छमाछम करती लौटी, पैरो मे उसने घुँघरू बाँध लिये थे। वीरभद्र के

सामने गाने का तो उसका इरादा था, इसीलिए उसने हारमोनियम, सितार आदि इस कमरे में रखे थे, पर नाचने का नहीं। जो गाना उसने अब शुरू किया था, वह इसे गायगी यह भी उसने न सोचा था। उसकी दृष्टि से यह निकृष्ट कोटि का गाना था, पर न जाने कैसे यह उसके कण्ठ से फूट निकला और इस गाने के साथ ही उसके मन में नाचने की बात उठी। अब इन्दुमती ने नाच और उसी के साथ उपर्युक्त गायन शुरू किया। साथ ही वह हाव-भाव बताने लगी। ललितमोहन के मरने के बाद उसने उसके विरह मे उसके चित्र बनाते हुए, मयक को ललितमोहन के किस्से सुनाते हुए, गाया कई बार था, परन्तु ललितमोहन के साथ काश्मीर से लौटने के बाद वह नाची कभी न थी। आज गाना, नाचना और हाव-भाव बताना सब साथ चल रहे थे।

काँटो लागो, रे देवरिया,
मोसे सग चलो ना जाय।
अपने महल मे मै अलबेली,
जोबन खिल रह्यो फूल चमेली,
धूप लगे कुम्हलाय।
काँटो लागो, रे देवरिया,
मोसे सग चलो ना जाय।

जब गाना समाप्त हो गया और इन्दुमती कुसरी पर बैठी तब वीरभद्र ने कहा—'बहन, तुम नाचती भी बहुत अच्छा हो, और बताती भी खूब हो।'

इन्दुमती ने कोई उत्तर न दिया। वह कुछ सोच रही थी।

कुछ देर सन्नाटा-सा रहा।

वीरभद्र फिर बोला—'क्या बहुत थक गयी हो ?'

इन्दुमती ने अब कहा—'नही, नही, मै कुछ सोच रही थी।' वह फिर चुप हो गयी।

उसे फिर चुप देख वीरभद्र बोला—'क्या सोच रही हो, बहन ?'

इसके उत्तर मे भी इन्दुमती को कुछ समय लगा। कुछ समय बाद उसने कहा—'मै सोच रही थी कि यदि कही तुम मेरे देवर होते। जानते हो देवर का अर्थ क्या है ?'

'क्या ?'

'पति का छोटा भाई। सस्कृत मे शब्द है "द्विवर" अर्थात् वर के बाद देवर दूसरा वर होता है।'

वीरभद्र उसके मुख से देवर का अर्थ सुनते ही उसकी मनोदशा को समझ गया था, पर वह कुछ बोल न सका और मुँह खोले तथा आँखे फाडे बैठा रहा। इन्दुमती कुछ देर चुप हो उसकी ओर देखते हुए फिर कह चली—

'तुम्हे मेरी बात सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तुम्हारा आश्चर्य मै स्वाभाविक मानती हूँ। तुम्हे देखकर मेरे मन मे जब प्रथम बार इस प्रकार की भावनाएँ उठी तब मुझे भी अपने ऊपर आश्चर्य हुआ था। पर कुछ चीजे दुनियाँ मे ऐसी होती है जिनका कारण न समझा जा सकता है और न समझाया। मेरी इन भावनाओ के सम्बन्ध मे भी यही कहा जा सकता है।'

वीरभद्र अभी भी चुपचाप मुँह खोले और आँखे फाडे इन्दुमती की ओर देख रहा था।

कुछ देर बाद इन्दुमती ने कहा—'तुम्हे याद होगा जब तुम मजदूरो के साथ मुझ से माफी माँगने आये थे उस दिन मैने इस सम्बन्ध मे तुम्हे अपने सिद्धान्त बताये थे। मै विवाह-सस्था पर ही विश्वास नही करती। और जहाँ तक भाई-बहन अथवा माँ-बेटे के आपस के सम्बन्ध है वहाँ तक भी वर्तमान वैज्ञानिको ने इस सम्बन्ध मे जो खोज की है, उन्हे मै मानती हूँ।'

'भाई-बहन और माँ-बेटे के सम्बन्ध मे बिग्यानको की खोज!' और अधिक आश्चर्य से वीरभद्र ने कहा।

'हाँ, वीरभद्र, पहले भाई-बहन और माँ-बेटे मे भी पति-पत्नी के सदृश सम्बन्ध होते थे।'

'ओह!' 'ओह! बहन!'

'हाँ, हाँ, मै सत्य, सर्वथा सत्य कह रही हूँ। मै तुम्हे इस सम्बन्ध मे प्रमाण दे सकती हूँ—बडे-बडे विद्वानो के लिखे साहित्य से।'

'लेकिन''लेकिन, बहन, मै'''मै तो ऐसी बात सोच'''सोच तक नही सकता।'

कुछ क्रुद्ध होकर इन्दमती ने कहा—'तुम वेश्याओ के पास जा सकते हो, तुम'' तुम'''

'वह ''वह दूसरी बात है, बहन, लेकिन'''जिसने बडी बहन के समान

मेरी सेवा कर मुझे जीवन दान दिया है, उसे·· उसे मै बेस्या-बेस्या के समान कैसे ।'

'परन्तु ··परन्तु, वीरभद्र, जिसने तुम्हे जीवन दान दिया उसके मन मे तुम्हारे लिए भाई के भाव थे या ·'

'उससे मुझे मतलब नही, मैने तो उसे बड़ी बहन के समान···'

कुछ और क्रुद्ध होकर इन्दुमती ने कहा—'पर मै और तुम भाई-बहन कैसे ? किस माँ के पेट से हम दोनो ने साथ-साथ जन्म लिया था ? किस एक कुटुम्ब मे हम पैदा हुए है ?'

'पर, बहन, एक माँ से जनम न लेने पर भी, एक कुटुम्ब मे पैदा न होने पर भी मैने तुम्हे सदा बहन ·बडी बहन माना है।'

'मूर्ख ! मूर्खता की पराकाष्ठा है यह !' अत्यन्त क्रुद्ध होकर इन्दुमती ने कहा और कुछ रुककर फिर वह बोली—'वेश्याओ से तो मै अच्छी ही होऊँगी, वीरभद्र !' इस समय उसके मुँह पर क्रोध की लाली और पराजय की पीतता साथ-साथ चित्रित हो गयी।

जब वीरभद्र फिर चुप हो गया तब वीरभद्र की ओर देखते-देखते इन्दुमती रो पडी, और रोते-रोते वह काँपने भी लगी। उस समय उसे यह तक समझना कठिन हो गया कि वह काँप रही है या सारा विश्व ? इस कप के कारण साडी का पल्ला उसके सिर से नीचे खिसक गया। उसकी जबान से उस समय कुछ न निकल सका, उसे जान पडा कि जैसे उसकी जीभ को लकवा मार गया है।

वीरभद्र उसके आँसू न सह सका। जिसने उसकी जान बचायी थी, उसके वर्ग के लिए उसके (वीरभद्र के) कारण इतना किया था, जितना किसी का कर सकना असम्भव था, उसके सामने रो रही थी। वीरभद्र बोला—'बहन, तुम्हारे मुझ पर इतने उपकार है जिनसे मै एक जनम क्या, अनगिनती जनम लेकर भी उरिन नही हो सकता।' और इस वाक्य को पूरा करते-करते वीरभद्र की आवाज ने डुबकी सी लगायी, पर कुछ ही सेकिण्डो मे वह फिर सतह पर आ गयी और वीरभद्र कह चला—'तुम्हारी जो भी इक्षा हो उसे पूरा करना मेरा धरम है। तुम्हारा जो भी हुकुम हो उसकी तामील करना मेरा करतब है। लेकिन मुझे समय दो, बहन। चाहे मेरे दकियानूसी ही विचार क्यो न

हो, पर मुझे उन्हे बदलन मे थोड़ा-बहुत समय तो लगेगा। मुझे अपन को तैयार करने के लिए बखत दो, बहन।'

वीरभद्र ने ये बाते इन्दुमती को छलने या धोखा देने को नही कही थी, यह उसके स्वर और उसकी मुद्रा सब से जान पडता था। इन्दुमती को यह भी मालूम था कि वीरभद्र के सदृश व्यक्तियो मे छलने और धोखा देने की क्षमता ही नही होती। वीरभद्र के उपर्युक्त कथन ने उसे शान्त कर दिया। वह कुछ प्रसन्नता से बोली—

'हाँ, हाँ, समय तुम चाहे जितना ले सकते हो।'

'धन्यवाद।' एक ही शब्द वीरभद्र के मुख मे निकला। और इसी के साथ उसकी आँखो की पुतलियाँ झुकी हुई आँखो के कोनो पर पहुँची। पुतलियो की उस गति ने उसकी आँखो को भी फिर से कुछ ऊपर उठा दिया।

कुछ देर तक फिर निस्तब्धता रही। इस निस्तब्धता के काल मे वीरभद्र बैठा रहा अपनी दाहनी टाँग बाँयी टाँग पर तथा अपनी बायी हथेली दाहनी हथेली पर रखे हुए। इन्दुमती के नेत्रो मे इस समय एक प्रकार के विश्वास की झलक थी, पर साथ ही आगे प्रश्न करने की इच्छा। कुछ देर बाद इन्दुमती ने पूछा—'और अब तुम्हारी और मेरी ये सब बाते पार्वती को, तुम्हारे अन्य मित्रो को, सबको मालूम होगी।'

कुरसी के हत्थे पर हाथ फेरते हुए वीरभद्र ने कहा—'तब, बहन, तुमने मुझे अभी तक नही पहचाना। ये सब बाते यही छोड़कर मै जाऊँगा।'

हँसते हुए इन्दुमती बोली—'यदि इन बातो को यहाँ छोडकर जाओगे तो फिर अपने को तैयार कैसे कर सकोगे?'

'नही, नही, यही छोडकर जाने का अरथ तुम्हे और मुझे छोड किसी दूसरे को न मालूम होना है। जहाँ तक अपने को तैयार करने का सवाल है वहाँ तक तो फिर से तुम्हे विसवास दिलाता हूँ कि इस कोसिस मे कोई कोर-कसर न रखूँगा।' इस समय वीरभद्र की कनपटी की नसे कुछ मोटी हो फडकने लगी थी मानो वे यह बता रही थी कि उसके मस्तिष्क मे इस समय कितनी हलचल है।

दूसरी बार वीरभद्र के इस आश्वासन ने इन्दुमती को और अधिक प्रसन्न कर दिया। कुछ देर बाद वीरभद्र ने बिदा ली और इन्दुमती ने सहर्ष उसे

दरवाजे तक पहुँचाया।

जब इन्दुमती अपने कमरे मे लौटी तब उसे आज अपना मन जितना हलका प्रतीत हुआ उतना इन डेढ वर्षो मे कभी न जान पडा था। अब उसके और वीरभद्र के बीच कोई परदा न रह गया था। जिसे वह इतना प्यार करने लगी थी उसके सामने इतनी निर्लज्जता का प्रदर्शन भी उसे इस समय दु ख न दे रहा था। भावी आशा उसे फिर दिमागी विषय-लोलुपता की ओर खीच रही थी। उसे इस बात पर भी सन्तोष था कि उसने इसके पहले वीरभद्र से यह सब न कहा था, क्योकि उसे स्पष्ट दिख रहा था कि इतने अहसान लादने के पहले यदि वह वीरभद्र से यह सब कहती तो वह इकार कर देता इतना ही नही, सारे शहर मे वह बात फैला भी देता। जो इन्दुमती समाज की तनिक भी परवाह न करती थी उसे आज इस बात पर भी कितनी तुष्टि थी कि वीरभद्र को और उसको छोड इस बात की अन्य किसी को कानोकान खबर न होगी।

× × ×

इधर इन्दुमती का वीरभद्र के साथ प्रेम-प्रकरण चल रहा था और उधर कानपुर मे मजदूरो की हडताल की तैयारियाँ चल रही थी। लखनऊ की हडताल से यह हडताल कही बडी होनेवाली थी, क्योकि सर रामस्वरूप के जिस कारखाने मे यह हडताल होने की बात थी वह कारखाना लखनऊ के कारखाने से कही बडा था। कानपुर के इस कारखाने के मजदूरो की सख्या भी लखनऊ के कारखाने के मजदूरो से बहुत अधिक थी। जहाँ लखनऊ के कारखाने के मजदूरो की सख्या सैकडो तक सीमित थी, वहाँ कानपुर के इस कारखाने के मजदूरो की सख्या हजारो तक पहुँची हुई थी।

सर रामस्वरूप के गोद बैठे हुए लड़के को मजदूरो की माँगे भेजी जा चुकी थी। लखनऊ की जीत के बाद मजदूरो की माँगो का बढा-चढा रहना स्वाभाविक ही था।

कारखाने का कोई भी मालिक यदि वह कारखाने का मालिक रहना चाहता था तो ये माँगे स्वीकार न कर सकता था। पर नये सेठजी ने इसलिए नही कि ये माँगे ही स्वीकार करने के योग्य नही थी, पर इसलिए कि उनके सलाहकार इन्हे मजूर न करना चाहते थे, इन्हे अस्वीकृत कर दियाँ।

हडताल के सिवा अन्य कोई उपाय न था और हडताल का नोटिस दे दिया गया।

जिस दिन कानपुर मे हडताल होनेवाली थी उसके दो दिन पहले तीसरे पहर लखनऊ मे सोशलिस्ट लीग के दफ्तर मे मजदूर आन्दोलन के चोटी के नेताओ की हडताल के पूरे कार्यक्रम पर विचार करने के लिए एक बैठक हुई। बैठक मे इन्दुमती, वजीरअली, वीरभद्र, शमशेरखाँ और लखनऊ की हडताल मे एक जिस अन्य व्यक्ति ने बहुत काम किया था वह भी मौजूद था। इसका नाम था—गिरिवर शरण। आज की इस बैठक के बाद इन्दुमती को छोड शेष चारो व्यक्ति कानपुर जा रहे थे और यद्यपि हडताल के सम्बन्ध में समय-समय पर इनके परामर्श होते रहते थे तथापि जाने के पहले आज हडताल की सारी योजना का अन्तिम स्वरूप निश्चित होना तय पाया था।

अब तक वीरभद्र श्रोता था, पर ज्योही पूरी योजना तय कर ली गयी त्योही वह बोला—'अब शायद इस योजना के सम्बन्ध मे किसी को कुछ नही कहना है ?'

सब ने एक दूसरे की तरफ देखा और अन्त मे वजीरअली ने कहा—'आप ठीक कह रहे है, किसी को कुछ नही कहना है।'

वजीरअली के समर्थन मे वीरभद्र को छोड शेष दोनो ने सिर हिलाये।

वीरभद्र ने कहा—'पर मुझे कुछ कहना है।'

'हाँ, हाँ...जरूर...जरूर।' सभी बोले।

'मै चाहता हूँ इस योजना मे एक चीज को और सामिल किया जाय।' वीरभद्र बोला।

'कौनसी ?' वजीरअली ने पूछा।

'सर रामस्वरूप के महल में आग लगाकर उसे राख कर देना।' वीरभद्र ने कहा।

सबके सब अवाक्-से रह गये।

वीरभद्र ने क्रमश सबकी ओर देखा और फिर कह चला—'आप सब को मेरी बात पर ताजुब हुआ दिखता है। लेकिन ताजुब की तो कोई बात नही है। लखनऊ की हड़ताल के वखत कारखाने के मालिक ने हमारे झोपड़ो को जलाया था। इस हडताल मे हमे कारखाने के मालिक के महल को फूँक

देना है। हमे यह सुबूत कर देना है कि "यह कलजुग नही करजुग है इस हाथ दे उस हाथ ले। क्या खूब सौदा नगद है इस हाथ दे उस हाथ ले।" '

सभी स्तब्ध-से थे। वजीरअली गला साफ करते हुए बोला—'हम सब चाहते तो यही है कि इन पूँजीपतियो के महल ही नही इनका सब कुछ खाक मे मिल जाय, पर जो बात आपने कही उसमे कुछ सवाल उठते है।'

'कैसे ?' वीरभद्र ने पूछा।

'पहला प्रश्न तो यही है कि सर रामस्वरूप का महल यदि हम जला भी दे तो क्या पूँजीवाद खाक मे मिल जायगा ?' वजीरअली ने कहा।

'बिलकुल बजा फरमाया आपने।' शमशेरखाँ बोला।

इन्दुमती और गिरिवर शरण चुप रहे।

वीरभद्र ने फिर कहा—'पूँजीवाद खाक मे मिले या न मिले, पर जो कुछ उन खूनियो ने हमारे साथ किया उसका फल उन्ही की जात के एक खूनी का मिल जाता है।'

'और दूसरा सवाल यह उठता है कि क्या हम सर रामस्वरूप के महल को जलाने मे सफल हो सकते है ?' वजीरअली ने कहा।

'इसे आप मुझ पर छोड़ दीजिए। वह महल राख का ढेर भर रह जायगा और कुछ नही। आग बुझाने का इञ्जन तक वहाँ न पहुँच सकेगा और किसी को कानोकान खबर भी न होगी।' वीरभद्र बोला।

अब गिरिवर शरण की वाचा खुली—'लेकिन वीरभद्रजी, इससे क्या लाभ होगा ? देखिए, हिसा से प्रतिहिसा जागती है और प्रतिहिसा से फिर हिसा। पूँजीपतियो ने मजदूरो के झोपडे जलाये या और किसी ने, यह कोई नही कह सकता। अब मजदूर पूँजीपति का महल जलाये, फिर पूँजीपति मजदूरो के झोपडे। इससे अन्त मे किसी का कल्याण न होगा। हमारे मन में किसी से व्यक्तिगत द्वेष नही, हम किसी के विरोधी नही। हम चाहते हैं समाज की वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्त्तन। इस व्यवस्था मे यदि मजदूर दुखी है तो पूँजीपतियो को भी सच्चा सुख नही। हम चाहते है सब का सुख। और सच्चे सुख की प्राप्ति किस मार्ग से होगी, इसमे मतभेद हो सकता है, विचारो का एकीकरण असम्भव है, पर उनका समन्वय अवश्य किया जा सकता है और अगर उनका ठीक समन्वय हो जाय तो विचारो के एकीकरण न होने पर

भी किसी कृति मे कोई बाधा न पहुँचेगी ।'

'पूँजीपति दुखी है, हम चाहते है सबका सुख !' खिल्ली-सी उडाते हुए वीरभद्र बोला । गिरिवर शरण के भाषण के सुख की प्राप्ति किस तरह हो सकती है इस अश से अन्त तक के अश पर वीरभद्र का ध्यान ही न गया था। वह तो पूँजीपति भी दुखी है इसी पर चिढ गया था । इसी चिडचिडाहट मे वह आगे कह चला—'सात-सात खड के महलो मे रहनेवालो, हाथ-हाथ भर नीचे धँस जाने वाली कुर्सियो पर बैठने और पलगो पर सोनेवालो, पसमीने के मुलायम-मुलायम कपडो को जाडो मे और फूँक से उड जानेवाले कपडो को गरमियो मे पहननेवालो, नित नये षट्रस विजन खानेवालो, फस किलास और सलूनो मे मुसाफरी करनेवालो को बडा, बहुत बडा कलेस है ! पूँजीपतियो को सच्चा सुख कहाँ ? · उस दिन उस दिन की आग आपने तो सायद दूर से ही देखी थी, गडबड सरनजी, पर मुझ उसका अनुभव है । आह ! किस तरह जल रही थी वह बस्ती । किस तरह राख हो रहे थे हमारे तन ढाँकने के इक्के-दुक्के कपडे-लत्ते, किस तरह भसम हो रहा था वह खाने-पीने का सामान, जिसमे हम अपने रूखे-सूखे टुकडे बना-बना कर रोज खाते थे । वह·· वह तो भगवान ने रच्छा की, नही तो जीते के जीते बच्चो की उस बस्ती मे चिताएँ बन जाती, चिताएँ । जिन बच्चो की कोमलता के कारन हमारे यहाँ हिन्दुओ मे वे मरने पर भी जलाये न जाकर गाडे जाते है वे जल जाते, जीते के जीते, सुना आपने, जीते के जीते ! मै घुसा था उस आग मे, मैने तोडे थे न जाने कितने दरवाजे वहाँ, मैने झुका-झुका कर निकाले थे न जाने कितने लोहे के सीखचे वहाँ की खिड़कियो से । और इस सबके नतीजे को ही भोगा था मैने चार महीने अस्पताल मे पडे-पडे । मुझे ··मुझे तो कानपुर की इस हड़ताल से तभी सतोस होगा जब सर रामस्वरूप का वह महल आग लगाकर राख कर दिया जायगा । फिर यह काम आप मे से किसी को नही करना है । आप मुझे इजाजत भर दे दीजिए ।'

वीरभद्र के इस समय के स्वर से ऐसा जान पडता था जैसे उसका हृदय उसके कण्ठ की ओर खिच रहा हो । उसका भाषण पूरा होते-होते उसके दोनो हाथ उसके दाहने घुटने पर पहुँच गये और उसने न जाने क्यो बलपूर्वक अपने हाथो से अपना ही दाहना घुटना पकड लिया । वीरभद्र के इस लम्बे भाषण

के चलते हुए ही नही, पर इसके पूरे होने के बाद भी कुछ देर तक कुछ कहने का किसी का साहस न हुआ। सब चुपचाप एक दूसरे की ओर देख रहे थे। कभी-कभी कोई वीरभद्र की तरफ देख लेता था, पर तुरन्त वहाँ से दृष्टि हटा लेता था।

अन्त मे इस निस्तब्धता को भग करते हुए वजीरअली ने एक-एक से पूछना शुरू किया। पहले उसने गिरिवर शरण से पूछा—'कहिए, आपकी क्या राय है ?'

'मै तो अपनी राय दे ही चुका। मै तो सिद्धान्त की दृष्टि से इसके विरुद्ध हूँ।'

अब वजीरअली ने शमशेर खाँ की तरफ देखा। उसने कहा—'मै आपसे मुत्तफिक हूँ। सर रामस्वरूप के महल को जलाने से पूँजीवाद राख में नही मिल सकता।'

इसके बाद वजीरअली ने इन्दुमती की ओर दृष्टि डाली। इन्दुमती ने कहा कि वह इस मामले मे कोई राय नही देना चाहती। इस समय इन्दुमती को सबसे अधिक चिन्ता थी वीरभद्र को प्रसन्न रखने की। वह भला वीरभद्र के खिलाफ कोई बात कैसे कहती।

अन्त मे वजीरअली ने कहा—'जिसे कुछ सहना पडता है उसके खयालात कैसे हो जाते है इसे वही जानता है जिसने कुछ सहा होता है। जीवन भर और खास कर लखनऊ की उस आग के दौरान मे जितना वीरभद्रजी ने सहन किया है उतना किसी ने नही। वीरभद्रजी ने जो कुछ अभी कहा वह उनकी जबान से न निकल उनकी अन्तरात्मा से निकला है। मुझे उनके खयालात से हद दर्जे की सहानुभूति है। मै उनकी बातो की भी बहुत इज्जत करता हूँ। परन्तु जो प्रस्ताव उन्होने अभी रखा उससे हमारा कोई भी मकसद पूरा नही होता। यहाँ पर उपस्थित कोई भी उसके पक्ष मे नही। फिर यह तजवीज ऐसी तजवीज भी नही जो हमारे पूरे यूनियन के सामने रखी जा सके। इसलिए हडताल की हमारी जो योजना है उसमे फिलहाल इस प्रस्ताव को शामिल नही किया जा सकता।' अपना कथन पूरा करते-करते वजीरअली को जान पड़ा कि उसके गले मे बँधा हुआ मफलर एकाएक कडा हो गया है अतः वह उसे कुछ ढीला करने लगा।

'मरजी आप लोगो की।' वीरभद्र कुछ निराशा भरे स्वर मे सिर्फ इतना

ही कह चुप हो गया, परन्तु उसकी इस चुप्पी मे इस समय के उसके विषैले विचारो के विष का पुट दिखायी पड रहा था।

बैठक समाप्त हुई और सब लोग उठ खडे हुए।

× × ×

इन्दुमती ने तीन दिन जिस प्रकार निकाले उसका ही जी जानता था। ज्यो-ज्यो वीरभद्र के लौटने का समय आता जाता उसकी आतुरता बढती जाती। कैसी-कैसी कल्पनाएँ कर रही थी वह वीरभद्र के पुनरागमन पर उससे मिलने के समय की। पर है! यह क्या हुआ? जिस दिन वीरभद्र आनेवाला था उसी दिन उसने यह क्या सुना?

कानपुर मे एक महा भयानक खबर लेकर सोशलिस्ट लीग का एक कार्यकर्त्ता लखनऊ आया। खबर इस प्रकार थी—

जिस दिन हडताल हुई उसी दिन आधी रात के करीब सर रामस्वरूप के महल में आग लगी। आग चारो तरफ से लगी थी जिससे स्पष्ट था कि वह अपने आप न लगकर लगायी गयी थी। आग इतनी भयानक थी कि क्षणो में सर्वत्र फैल गयी। पहले टेलीफोन से आग बुझाने का एँजिन मँगाने का प्रयत्न हुआ, पर टेलीफोन बिगड गया था। आदमी खबर देने म्यूनिस्पैल्टी गये। खबर होते ही आग बुझाने का एँजिन म्युनिस्पैल्टी से महल की ओर चला, पर महल के पास पहुँचते-पहुँचते ड्राइवर गोली से उडा दिया गया। सर रामस्वरूप का गोद लिया हुआ लडका और उसकी औरत इस अग्निकाण्ड मे स्वाहा हो गये। महल का कोई हिस्सा और सामान जलने से न बचा। अन्तिम समाचार यह था कि वीरभद्र और उसके आठ साथियो को पुलिस ने इस सम्बन्ध मे गिरफ्तार किया है।

इन्दुमती की यह खबर सुन ऐसी दशा हुई जिसका मिलान न उसके पिता की मृत्यु के समय की उसकी दशा से किया जा सकता था और न ललितमोहन की मृत्यु के समय की उसकी दशा से। जीवन मे ये ही दो महान् शोक उसने भोगे थे। दूसरे शोक मे तो वह पागल हो गयी थी। अवधबिहारीलाल और ललितमोहन दोनो का उस पर अगाध प्रेम था। वह भी दोनो को अत्यधिक प्रेम करती थी। दोनो का उससे चिर-वियोग हुआ था।

वीरभद्र का और उसका सम्बन्ध न अवधबिहारीलाल के सदृश स्नेह का

सम्बन्ध था और न ललितमोहन के सदृश प्रेम का। यदि वह वीरभद्र से प्रेम करती थी तो वह दूसरी प्रकार का प्रेम था और चाहे वह अपने मन मे उस प्रेम और ललितमोहन के प्रति उसका जो प्रेम था उससे मिलान करती हो पर दोनो दो प्रकार के प्रेम थे, दोनो मे कोई सामजस्य न था ; ललितमोहन मे विवाह के पश्चात् सुहागरात को उसे एक अनुभव हुआ था कि शारीरिक सम्बन्ध एक दूसरे को निकट लाने का जरिया भर है। उसे यह अनुभव भी हुआ था कि प्रेम मानवों मे ही हो सकता है, पशुओ मे नही। पशुओ का जीवन उनकी अन्त प्रवृत्ति के अनुसार चलता है, मानवो का उनकी बुद्धि के अनुसार। प्रेम मस्तिष्क की चीज न हो हृदय की चीज होने पर भी केवल अन्तःप्रवृत्ति नहीं, उससे परे की वस्तु है। वह यथार्थ में पवित्र है। काम-चेतना तो उसके साथ बहुधा इसलिए आ जाती है कि मनुष्यों के भी शरीर तो है ही। यद्यपि इन्दुमती वीरभद्र के प्रति खिचाव के बाद मानसिक स्थिति मे न रही थी जिसमें वह ललितमोहन और वीरभद्र के प्रति अपने प्रेम का भेद समझ सके तथापि वह भेद था। तो वीरभद्र के प्रति उसका प्रेम नही था वह एक प्रकार का खिचाव भर था जिसमे बल चाहे जितना ही क्यो न रहे पर पशुओं के आपसी अन्तःप्रवृत्तिवाले खिचाव से ही इस खिचाव का मिलान हो सकता है, मानवो के पवित्र प्रेम से नहीं।

अवधबिहारीलाल और ललितमोहन के सदृश वीरभद्र से उसका चिर-वियोग भी न हुआ था।

तो अवधबिहारीलाल और ललितमोहन की मृत्यु के समय इन्दुमती की जो हालत हुई थी वह इस समय न हुई।

खबर सुनते ही आरम्भ मे वह स्तब्ध अवश्य हो गयी, एक दम स्तब्ध। उसका मुँह और मुट्ठियाँ दोनो इस प्रकार बन्द हुई कि दाँत ओठो पर और नाखून हाथों पर गड़ से गये। दबाव के कारण गडे दाँत के आस-पास ओंठ और गडे हुए नाखूनों के सिरे भी पीले से दिखने लगे। कुछ देर तक तो उसकी मुद्रा से ऐसा जान पड़ा जैसे उसकी विचार-शक्ति ही नष्ट हो गयी हो। धक्का स्तब्ध करने के सदृश था ही, पर कुछ देर बाद ही वह सोचने-विचारने की मनोदशा में आ गयी। सर्वप्रथम उसके मन में उठा—'मुझसे मुझसे बचने के लिए ही तो वीरभद्र ने यह घोर कर्म नहीं किया है?' पर यह विचार बहुत

देर तक उसके मन मे नही टिका। तीन दिन पहले का पाँच व्यक्तियो की बैठक मे दिया गया वीरभद्र का भाषण याद आते ही वीरभद्र की ईमानदारी पर उसे फिर से विश्वास हो गया और उसके मन मे उठा—'ऐसे व्यक्ति इस तरह के छलछिद्रवाले नही होते।' विचारधारा और आगे बढी 'तो तो पूँजीवादियो के प्रति घोर घृणा और लखनऊ के अग्निकाण्ड का बदला लेने के लिए ही वीरभद्र ने यह किया है।' और जब इन्दुमती ने यह सोचा तब उसे उस अग्निकाण्ड का दृश्य, उसमे वीरभद्र का वीरकार्य तथा उसकी अस्पताल की हालत याद आ गयी। इन्दुमती को जान पडा कि वीरभद्र असाधारण रूप से वीर, असाधारण रूप मे साहसी, असाधारण रूप से सीधा और असाधारण रूप से मूर्ख है। ऐसा वीरभद्र अभी मरा नही था, वह सिर्फ गिरफ्तार हुआ था और गिरफ्तार वीरभद्र को कानून के चगुल मे जिस तरह भी हो बचाना इन्दुमती ने निश्चय किया। उसके मन मे बार-बार उठने लगा वीरभद्र को जिस प्रकार मृत्यु के मुख मे उसने बचाया था उसी तरह कानून के फन्दे से भी वही उसे बचायगी और बचने के बाद वीरभद्र तीन दिन पहले दिये हुए अपने वचन को भी अवश्य पूरा करेगा। आज न सही कुछ दिन बाद उसकी मनोकामना पूरी होगी ही और इस कामना के पूर्ण होने के लिए ठहर तो वह सकती ही है। जिस दिन उसने वीरभद्र को भोजन के लिए बुलाया था उस दिन भी उससे कह दिया था— हाँ, हाँ, वक्त चाहे तुम जितना भी ले सकते हो।'

वीरभद्र को इस प्रकार कानूनी चगुल से बचाने का निश्चय करने के बाद इन्दुमती को सर रामस्वरूप के महल जल जाने से एकाएक सन्तोष सा हुआ। जिस ललितमोहन का जीवन मे अब वह कोई स्थान न रखना चाहती थी उसका अन्तिम स्मारक रामस्वरूप का वह भवन जलकर राख होने से ललितमोहन का स्मरण दिलानेवाली चीज न रही, यह तो उसकी प्रसन्नता का विषय था ही, पर इसी के साथ इस बात की भी उसे खुशी हो रही थी कि रामस्वरूप ने मयक को अपना वारिस न बना जिस लडके को वारिस बनाया था वह भी उस महल के सग ही जल-भुन कर राख हो गया, अकेला नही, सपत्नीक।

वीरभद्र की कृति पर इन्दुमती अब मन ही मन हर्षित-सी हो गयी।

: ३५ :

लखनऊ मे मर रामस्वरूप के मकान की आग के ढग मे यह बात बिल्कुल साफ हो गयी थी कि आग जान-बूझ कर लगायी गयी थी और बहुत सोच-समझ बूझ कर आग बुझाने के सारे साधन बेकार कर दिये थे । मजदूरो के ऊपर स्वाभाविक शक था । सुबह के मजदूरो के पत्र मे बडी-बडी काली लकीरो मे यह लिखा था—

"वीरभद्र तथा उसके आठ साथियो को रात को दो बजे गिरफ्तार कर पुलिस किसी अज्ञात स्थान मे ले गयी है ।'

यद्यपि नौ व्यक्ति गिरफ्तार हो गये थे फिर भी उस अग्निकाण्ड का कोई ठीक पता नही चल रहा था । पुलिस ने केवल सन्देह पर वीरभद्र तथा उसके साथियों को गिरफ्तार किया था । मजदूर-पत्र का प्रतिनिधि पुलिस के पास गया था, किन्तु पुलिस ने उस बात पर कोई भी प्रकाश डालने से इकार कर दिया था ।

शाम के अखबार मे कुछ नही आया, पर दूसरे दिन सुबह के पत्र मे निम्नलिखित बाते थी—

'वीरभद्र तथा उनके आठ साथी जो गिरफ्तार हुए है उन पर आगजनी, नर-हत्या और साजिश के अभियोगो मे ताजीरात हिन्द की ४३६, ३०२ और १२० बी तथा ३०२ दफाएँ लगायी गयी हैं , पुलिस ने जमानत लेने से इकार कर दिया है । करीब चार दिन बाद फिर पुलिस ने १५ दिन के लिए और हिरासत मे रखने का हुक्म बढवा लिया ।

बडी दौड-धूप के बाद इन्दुमती और मुलजिम पक्ष के वकीलो को वीरभद्र और उनके साथियो से भेंट करने की इजाजत मिली । मुलजिमो मे सबके शरीर पर पट्टियाँ बँधी थी । पूछने पर मालूम हुआ कि पुलिस ने एक झूठा झगड़ा शुरू कराकर इन लोगो को करारी मार दी है और जेल मे झगडा करने के अपराध मे हर एक को काल कोठरी मे अलग-अलग बन्द कर रखा है । काल कोठरी मे वीरभद्र को छोडकर सबको घोर यातना दी गयी है

दामोदर को तो सबसे अधिक।

अदालत मे मुकदमा शुरू हुआ, जमानत का तो कोई प्रश्न ही नही उठता था, क्योंकि हाईकोर्ट तक से जमानत की दरखास्त अस्वीकृत कर दी गयी थी।

श्री सुन्दरनाथ की अदालत जेल के बाहरवाले चक्कर मे लगायी गयी, यद्यपि भीतर जाने के लिए प्रमाण-पत्र चाहिए थे, पर फिर भी अदालत खचा-खच भरी थी। जरा खलबली-सी मची और सगीनो के बीच वीरभद्र तथा उसके साथी आते दीखे। पर यह क्या ? दामोदर कहाँ है ? ये तो वीरभद्र और सात ही है। इसके पहले कि कोई कुछ बोल सके दामोदर को पुलिसवाले अलग सगीनो से घेर कर ले आये और पुलिसपक्ष के गवाहो की तरफ बैठा दिया।

दामोदर, बेचारा दामोदर ! किसी ने कहा दुष्ट जन-घाती दामोदर मुखबिर बन गया। वह अपने साथियो के खिलाफ सारी अनर्गल बाते बकेगा।

मामला पेश करते हुए मियाँ फारुकी ने कहा—'जनाब असेसर साहिबान और जज साहब ! सर रामस्वरूप के बेटे शुरफाए शहर के सेहरा थे। खुदा जानता है कि कितने लोग यतीम होकर आज उनकी जन्नत परवाजी से दाने-दाने को···'

मिस्टर सुन्दर दौरा जज ने बीच ही मे रोका—'फारुकी साहब ! अदालत का वक्त और असेसर साहेबान का समय भावुकता के बखान मे बरबाद न कर मामले पर रोशनी डालने मे खर्च कीजिए।'

फारुकी ने कुछ रुककर कहा—'सर रामस्वरूप के महल मे जब यकायक आग लगी देखी गयी और पडोसियो ने आग बुझाने के सिलसिले मे जब फायर ब्रिगेड के लाने के लिए टेलीफोन करना चाहा तो पता लगा कि टेलीफोन बेकार है। कुछ लोग फायर ब्रिगेड लेने दौडे। एक एँजिन भी बेकार कर दिया गया था और दूसरा जब किसी तरह लाया जा रहा था तब रास्ते मे पिस्तौल से उसका चलानेवाला मार दिया गया। देखते-देखते लाखो का घर खाक हो गया, मय उसकी ऊपर की मजिल मे रहनेवालो के, क्योंकि आग चारो तरफ से इस तरह लगायी गयी थी कि वहाँ रहनेवालो का बचना गैर-

पेश करना तय किया है। पुलिस के गवाह आपको यह बतायेंगे कि वीरभद्र और उसके साथियों ने साजिश कर किस तरह आग लगायी, किस तरह टेलीफोन के तार काटे, किस तरह आग बुझाने के एक एंजिन को बेकार किया और किस तरह आग बुझाने के दूसरे एंजिन के ड्राइवर को गोली से उड़ाया। मजदूरों की गैरकानूनी ज्यादतियों से तंग आकर दामोदर ने सरकारी गवाह होना मंजूर कर लिया है। इसलिए मुकदमा अब वीरभद्र और उनके सात साजिश कुनिन्दाओं पर ही चलेगा।'

एक-एक बात को साबित करने के लिए कई-कई गवाह पेश किये गये।

पुलिस का आखिरी गवाह दामोदर था। दामोदर ने एक बडा लम्बा-चौडा बयान दिया।

श्री सुन्दरनाथ ने पुलिस की गवाही खत्म हो जाने के बाद अभियुक्तों के बयान की तैयारी की।

सबसे पहले वीरभद्र का बयान हुआ; अदालत ने पूछा—'क्या आप वहाँ के मजदूर-संघ में काम करते हैं?'

'जी हाँ।'

'क्या आपने अमराही में गुप्त मीटिंग की थी, जहाँ पर कोई बिना प्रवेश-पत्र के नहीं जा सकता था?'

'जब तक कोई मीटिंग पबलिक न हो, अपने-अपने समुदाय की मीटिंग इसी प्रकार की हुआ करती है। अमराही की मीटिंग में मैंने प्रवेश-पत्तर का सवाल ही नहीं रक्खा था।'

'मीटिंग में आपने मजदूरों का आतंक जमाने के लिए जोशीली स्पीच देकर स्वयंसेवक माँगे थे, जो ठोस कदम उठाने और जान जोखिम में डालने को तैयार हों?'

'किसी भी काम को जान जोखिम में डालकर ही आदमी सफल कर सकता है।'

'आपने १५० आदमियों में से कुल १५ आदमी चुने थे जो आपके खास साथी रहे?'

'जी हाँ।'

'आपने उन १५ आदमियों के साथ बैठकर साजिश की थी?'

'जी नही ।'

'आपने साजिश मे हर एक की एक ड्यूटी लगा दी थी, हरिया को आग बुझाने वाले ऍजिन वालो को ठीक करने की, बुनकाई को टेलीफोन सचालको को रोक रखने की, राजन और छज्जू को महल के रक्षको की देख-रेख करने की और गनेश को चारो तरफ की खबर रखने की ? और फिर तुमने आग लगाने की एक कमेटी बनायी, जिसके तुम, गनेश और दामोदर मेम्बर थे ?'

'बुनकाई सदा से टेलीफोन दल का सेक्रेटरी है, हरिया फायर ब्रिगेड का प्रेसीडेन्ट है, राजन गुमास्ता घरू नौकर सघ का सचालक है और सब यूनियनो का तालमेल रखने वाला छज्जू है। ये सब काम मैने इन्हे नही सौपे। इन लोगो को इन-इन खातो मे काम करने वाले मजदूरो ने चुना है। मैने आग लगाने की कमेटी नही बनायी।'

'दामोदर कहता है कि तुम लम्बी मशाल लिये गनेश के साथ थे और जब आग लगी देखी तो उसने पूछा कि "काम हो गया ?" तो तुम चुप रहे ?'

'और क्या करता ? मैने तो आग लगायी नही।'

'जानते हो, आग से महल जलकर खाक हो गया और उसमे सर रामस्वरूप का लडका और उसका परिवार तुम्हारी साजिश से जलकर मर गये ?'

'सुना है, महल मे आग लगायी थी किसी ने। मैने कोई साजिश नही की।'

'आग लगाने के बाद तुम्हारे गले में माला डाली गयी और फतह का नारा बुलन्द किया गया। और तुम्हे कार्य की सफलता के लिए बधाई दी गयी ?'

'जी नही, यह गलत है।'

'तो फिर लोग ऐसा क्यो कहते है ?'

'लोगो को मजदूर सगठन खटकता है। वह यह बर्दास नही कर सकते कि उनके सामने उनसे गरीब उनका मजदूर या नौकर सर उठाकर बात करे या अपना मावजा माँग सके। और चूँकि मैने सदा से मजदूर होने के नाते उनकी ठोकरे खायी है और अब मजदूर को मारग दिखाया करता हूँ, इसलिए मुझे रास्ते का काँटा समझकर पूँजीवादी और पुलिस मेरे खिलाफ साजिश करते है। पुलिस का हर एक गवाह पूजीवाद का खम्भा है। उसी को आगे

ढकेलकर पूँजीवादी मजा करना चाहते है, पर यह सम्भव नही कि ज्यादा दिनो तक उनकी गाडी चल सके। अनादिकाल से मनुष्य अन्याय का मुकाबला करता चला आया है। जब भी अन्याय बढा है उसने अन्यायियो को पटकने की कोसिस की है। जब तक भूखे, नगो की समाज मे जगह रहेगी, यह विकट युद्ध चलता रहेगा। मनुष्य जाति का कल्यान चाहने वालो को यह चाहिए कि वे ऐसे समाज-निर्मान मे सहायता दे, जो मनुष्य-मनुष्य के भेद को बिलकुल मिटा दे। बेचारा दामोदर तो सुरू से ही खतरे से घबराता था, पर उसमे इतना नैतिक बल न था कि आगे बढकर वह इस सकट मारग से हट जाय। समाज की परिपाटी बदले बिना समाज का कल्यान नही हो सकता।'

'और कुछ कहना है ?'

'कुछ नही। मै निरदोस हूँ।'

वीरभद्र के हर एक साथी के इसी तरह बयान हुए। हर एक ने जन शोषणवाद का खडन किया और कहा कि चाहे आप हमे दोषी समझे और कैसी भी सजा दे, पर आने वाली नस्ले आपको इन बातो को घृणा की दृष्टि से देखेगी कि आप मनुष्य-मनुष्य मे भेद मिटाने की जगह भेद बढा रहे है। जन-राज्य, और जन-शासन का यह सिद्धान्त है कि यदि शासक गलती से या अनजाने मे भी समाज के दिये मताधिकार का ठीक उपयोग नही करते तो शासको को फौरन अपना स्थान रिक्त कर देना चाहिए। मनुष्य आता और जाता है पर समाज चलता रहता है। हमे व्यक्तियो का नही, पर समाज का भला करना है। हम लोग जानते है कि हमारा जुर्म कुछ भी नही फिर भी चूँकि हमने कुछ व्यक्तियो के मुँह पर चाँटा लगाया है अतः हमारा आप जो चाहे, करे।

अब पुलिस पक्ष के कोई गवाह बाकी नही रह गये थे, अभियुक्तो का बयान हो चुका था, उन्होने सफाई पेश करने से इकार कर दिया था। मियाँ फारुकी ने अदालत से कहा कि अब वह मुकदमे पर बहस करेगे।

उनकी बहस के बाद श्री विश्वेश्वर ने सफाई पक्ष से बहस की। असेसरो की राय अगले दिन ली गयी; पाँच असेसरो मे से एक की राय थी कि अभियुक्त छोड दिये जायँ, और शेष चारो ने राय दी कि वे दोषी है।

दौरा जज श्री सुन्दरनाथ ने अपना फैसला दो दिन बाद दिया। अदालत

खचाखच भरी हुई थी। उन्होने कहा—'पुलिस की गवाही से यह साफ जाहिर है कि अभियुक्तो की साजिश से आगजनी और नर-हत्या हुई है। यह तो नही कहा जा सकता कि हर एक अभियुक्त एक ही समान दोषी है, पर यह बात जरूर है कि हर एक अभियुक्त ने षड्यन्त्र मे भाग लिया, जिसके कारण यह अग्निकाण्ड हुआ। अतएव इन्हे फॉसी की सजा दी जाती है। दामोदर को सरकार के हुक्म से छोडा जाता है, पर उसके बचाव का काफी प्रबन्ध करना होगा; इसलिए मै हुक्म देता हूँ कि वह अभी हिरासत में ही रखा जाय और जब तक उसके बचाव का सारा प्रबन्ध न हो जाय, पुलिस उसे हिरासत मे ही रखे।''

इधर इन्दुमती, वजीरअली, विश्वेश्वर बाबू और रवीन्द्र चारो विश्वेश्वर के घर रवाना हुए। वही इन लोगो ने यह फैसला किया कि तुरन्त एक अपील हाईकोर्ट मे दायर कर दी जाय और देखा जाय कि क्या न्याय होता है ?

हाईकोर्ट की अपील मे भी पूरी चहल-पहल रही, पूरा हाईकोर्ट इस सगीन मामले के सुनने के लिए बैठा। दोनो तरफ से खूब बहस हुई।

हाईकोर्ट ने जो फैसला दिया उसका साराश यह था—"अभियुक्तो ने साजिश की है, आग लगवायी है और महल के साथ-साथ सर रामस्वरूप के बेटे को सपरिवार खत्म करा दिया है। इतने पर भी हम इन अभियुक्तो को फाँसी की सजा न देकर आजन्म कैद काले पानी की सजा का हुक्म देते है।"

: ३६ :

वीरभद्र के मुकदमे की समाप्ति के साथ-साथ इन्दुमती की मजदूरो के प्रति दिलचस्पी भी समाप्त हो गयी। ललितमोहन की मृत्यु के बाद उसका पागलपन जाते ही काग्रेस के कार्य मे उसने इसलिए अनुराग लिया था कि वह ललितमोहन को उसके अधूरे कामो को पूरा करने का वचन दे चुकी थी,

यद्यपि यह अनुराग भी उसका बहुत दिन न चला था। वीरभद्र के अधूरे कामो को पूरा करने का उसके सामने कोई प्रश्न ही न था, अतः उसने सोशलिस्ट लीग के दफ्तर, मजदूरो के क्वार्टर आदि सब जगह जाना बन्द कर दिया। हाँ, वह सोशलिस्ट लीग की सदस्या अवश्य बनी रही। कानपुर की हड़ताल असफल होने से और वीरभद्र के मुकदमे के कारण सोशलिस्ट लीग का अन्य कार्य भी प्राय बन्द-सा हो गया था। सोशलिस्ट लीग के कार्यकर्त्ताओ को अब कोई नये काम की जरूरत थी। यह उन्होने किया कम्यूनिस्ट दल मे अपनी सोशलिस्ट लीग का विलयन करके। कम्यूनिस्ट सगठन इस समय सारे देश में खूब बढ गया था तथा और बढता जा रहा था। वजीरअली ने साम्यवाद पर कुछ पुस्तिकाएँ लिखने का एक नया काम और ले लिया।

पार्वती और कमला से भी इन्दुमती किसी तरह अपने को मुक्त कराना चाहती थी। बहुत सोचने के बाद उसने एक को वनिताश्रम और दूसरी को अनाथालय में भरती करा दिया। पार्वती को यह अच्छा न लगा, पर वह करती ही क्या, मजदूरी करने के वह योग्य न थी अतः विवश थी।

इन चार वर्षो मे जैसा तेजी से लखनऊ और कानपुर मे मजदूर आन्दोलन और वीरभद्र का मुकदमा चला था वैसी ही तेजी से ससार और भारतवर्ष मे अनेक घटनाएँ घटी थी। जर्मनी में हिटलर अधिकार में आ गया था तथा इटली के मुसोलिनी के फासिस्ट दल के समान ही जर्मनी में नात्सीदल बना था। यहूदियो को जर्मनी से बाहर निकालने की नित नयी योजनाएँ बना-बनाकर उन्हे कार्यरूप मे परिणत किया जा रहा था। इटली-अबासीनिया की लडाई, स्पेन का गृह-युद्ध और सुदूरपूर्व मे जापान के चीन पर बोले गये धावे किसी भावी विश्वव्यापी युद्ध के द्योतक थे। भारत मे सन् ३५ मे नया गवर्नमैण्ट आफ इण्डिया एक्ट आया था। सन् ३४ में पुराने विधान के अनुसार ही केन्द्रीय असेम्बली और सन् ३६ के प्रान्तीय असेम्बलियो के चुनाव हुए थे। और फिर प्रान्तो मे अस्थायी मन्त्रिमण्डलो के बाद कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बने थे।

और जिस तेजी से इन चार वर्षों में संसार और भारतवर्ष मे ये घटनाएँ घटी थी उसी तेजी से मयक का शरीर और बुद्धि भी बढी थी। स्कूल मे पढते हुए उसे चौथा वर्ष चल रहा था। घर मे भी उसकी पढाई के लिए योग्य शिक्षक

रखा गया था। उसके पढने-लिखने का सारा इन्तजाम वजीरअली के जिम्मे था और अन्य कामो मे व्यस्त रहते हुए भी वजीरअली उसकी पढाई की ओर सदा ध्यान रखता था। वजीरअली की देख-रेख मे मयक की अच्छी प्रगति हो रही थी। स्कूल मे अपनी कक्षा मे वह हमेशा प्रथम रहता तथा घर मे भी ध्यान से पढता।

एक दिन मयक ने स्कूल के कुछ साथियो से अपने घर चलने को कहा। इसके पहले भी कभी-कभी ये लडके उसके घर गये थे। पर आज इनमें से सबसे बड़ा लड़का, जो दो बार फेल हो चुका था, बोला—'नही, हम तुम्हारे घर नही जायेगे।'

मयक ने कुछ आश्चर्य से पूछा—'क्यो मेरे घर क्यो नही चलोग ?'

उस लडके ने उत्तर दिया—'मेरी माँ कहती थी कि किसी लड़के को तुम्हारे घर नही जाना चाहिए।'

'तुम्हारी माँ कहती थी कि किसी लड़के को मेरे घर नही जाना चाहिए ?' मयक ने और ज्यादा ताज्जुब से कहा।

'हाँ।'

'पर क्यो ?'

'बता ही दूँ ?'

शेष लडके बिना कुछ कहे इन दोनो के सम्वाद को ध्यान से सुन रहे थे और उनका कौतूहल बढता ही जाता था।

'हाँ, हाँ, जरूर·· जरूर बताओ।'

'वे कहती थी, तुम्हारे बाप नही है।'

'बाप तो हम में से कई के मर गये होगे, मेरे ही नहीं है।' एक दूसरे लड़के ने कहा।

पहले वाला लडका फिर बोला—'नही, नही, यह बात नही, मयक के बाप था ही नही।'

'मेरे बाप नही थे! कैसी बात कहते हो ? बिना बाप के कोई हो सकता है ?' मयक ने नितान्त आश्चर्य से कहा—'मेरे बाप की एक नही न जाने कितनी तस्वीरे है।'

'जिन ललितमोहन की वे तस्वीरे है, वे तुम्हारे बाप नही थे।'

'तो वे क्या थे ? वे ही मेरे बाप थे ।'

'पर, भाई, वे मर गये थे तुम्हारे पैदा होने के दो-तीन बरस पहले ।'

गम्भीरता से सोचते हुए मयक ने कहा—'तो इससे क्या ?'

कई लड़के एक साथ बोल उठे—'हाँ, तो इससे क्या ?'

और गम्भीरता से विचार करते हुए मयकमोहन ने उसी लडके से पूछा—'तुम्हारी दादी है ?'

'नही, वे तो मेरे पैदा होने के चार-पाँच साल पहले ही मर गयी थी ।'

उसी तरह मेरे बाप मेरे जन्म के दो-तीन वर्ष पहले मर गये । तुम्हारी पैदाइश के चार-पाँच साल पहले मरने पर भी जिस प्रकार तुम्हारी दादी थी, उसी तरह मेरे जन्म के दो-तीन वर्ष पहले मरने पर भी मेरे बाप थे ।'

कई लडको ने उछलते हुए कहा—'ठीक, बिलकुल ठीक ।'

जिस लडके ने मयकमोहन के घर जाने से इकार किया था, उसका मुँह छोटा सा हो गया । उसे तथा २-४ लडको को छोड शेष लड़के मयक के साथ उसके घर चले गये ।

पर दूसरे दिन वही विवाद फिर छिड़ गया । पहले दिन मयक के घर न जाने वाले लडको मे से एक ने कहा—'देखो, कल जो बात हुई थी, उसके निस्बत मुझे भी कुछ कहना है ।'

लडके ध्यान से उसकी बात सुनने लगे ।

वह बोला—'न मयक के बाप था और न लीलाधर के दादी ।'

एक लडके ने कूदते हुए कहा—'अच्छा !'

वही लड़का फिर बोला—'हाँ, हाँ, क्योकि मयक ने अपने बाप को नहीं देखा और लीलाधर ने अपनी दादी को नहीं । पर मेरी दादी भी थी और बाप भी है, क्योकि मैने अपनी दादी को देखा था और बाप को रोज ही देखता हूँ ।'

मयक ने कहा—'तो तुम्हारा यह मतलब है कि जिसे हमने देखा नही, वह था ही नही ।'

'बेशक ।'

सोचते हुए मयंक बोला—'तब ईश्वर को तो हमने किसी ने नहीं देखा वह काहे को होगा ।'

कई लडको ने एक साथ कहा—'नही, नही, ईश्वर तो है ही।'

'और मैने तो उसे देखा भी है।' एक लड़के ने कहा।

एक दूसरे लडके ने कौतूहल से पूछा—'तुमने ईश्वर को देखा है ?'

'बिलकुल, अपने सामने, इन्ही आँखो से।'

कई लडके एक साथ बोल उठे—'अच्छा !'

और कई लड़को ने एक साथ कहा—'झूठा कही का !'

'नही, नही, सच कहता हूँ। उसका एक इतिहास है। पूरा सुनोगे तो मान जाओगे कि मैने उसे जरूर देखा है।'

कई लडके एक साथ कहने लगे—'कहो, कहो।' 'जरूर-जरूर'। 'हम पूरा सुनेगे'। 'हाँ, पूरा इतिहास।'

उस लडके ने कहना आरम्भ किया—'एक बार मेरे मन में न जाने कैसे समा गया कि ईश्वर-वीश्वर कुछ नही है। फिर तो, भइया, क्या पूछते हो ? उसी दिन रात को ठीक बारह बजे ईश्वर ने मुझे जगाया।'

'ईश्वर ने जगाया ?' एक लडके ने आश्चर्य से पूछा।

'हाँ, साक्षात् परमात्मा ने। और, भइया, कैसा वह था हाथी से भी कई गुना बडा ! हाथी के दाँतो से बडे-बडे थे उसके दाँत ! लम्बे-लम्बे हाथ, लम्बी-लम्बी टाँगे ! और ईश्वर ने मुझे अपने एक हाथ से पकड लिया ! खानेवाला ही था वह मुझको, पर मैने प्रार्थना शुरू कर दी—"जगदीश्वर को धन्य है जिन उपजायो ससार।" प्रार्थना सुनते ही तो वह मेरे बराबर ही छोटा सा हो गया। एकदम से रूप बदला, भइया, एकदम से। और मेरे साथ खेलने लगा।'

एक लडके ने कहा—'अरे, सपना आया होगा, सपना।'

'सपना कैसे जी, मैने उसे प्रत्यक्ष देखा है, प्रत्यक्ष।' वही लड़का बोला।

'ईश्वर को मैने भी प्रत्यक्ष देखा है।' एक दूसरे लडके ने कहा।

'तुमने कैसा देखा ?' 'हाँ, तुम भी बताओ।' कुछ लड़के एक साथ बोले।

'मैने तो उसे स्याम बरन, पीताम्बर पहने, शख, चक्र, गदा, पद्म लिये चतुर्भुज रूप में अपनी माँ की कोठरी मे देखा।'

'इसने तस्वीर देखी होगी, और समझ लिया कि प्रत्यक्ष देखा।' एक अन्य लडके ने कहा।

मयक बोला—'अच्छा, ईश्वर की बात छोडो, यह बताओ कि लन्दन शहर किसी ने देखा है ?'

सब लडके एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

मयक ने फिर कहा—'लन्दन शहर न देखने पर भी हम नक्शो मे उसे देखते है और मानते है कि लन्दन शहर है। इसी तरह जिन्हे हमने नही देखा है उनकी तस्वीरे देखकर हमे मानना पड़ता है कि वे थे। मेरे बाप की न जाने कितनी तस्वीरे है। पर वे सब बडी-बडी है। मै माँ से कहूँगा कि उनकी छोटी-छोटी तस्वीरे बनवाकर मुझे दे दे और मै तुम सबको बाँट दूँगा, तब तो मान जाओगे कि मेरे बाप थे।'

फिर बहस मे मयकमोहन की जीत हो गयी और लडके चुप रह गये।

इन्दुमती फिर से मयक की ओर आकृष्ट हो गयी थी। वीरभद्र के आकर्षण के बाद इन्दुमती ने जब मयक को आया के सिपुर्द किया था और उस समय मयक को जो डाँटा-डपटा गया था तथा दो-चार बार चपत भी जडी गयी थी उसे मयक भी भूल गया था। मयंक ने माँ से आकर कहा—'माँ, मुझे बाबूजी की कुछ छोटी-छोटी तस्वीरे चाहिएँ।'

इन्दुमती ने कुछ आश्चर्य भरे स्वर मे पूछा—'क्यो, बेटा ?'

'मेरे स्कूल के कुछ दोस्तो को देना है।' सहज भाव से लडके ने उत्तर दिया।

'स्कूल के लडको को तेरे बाबूजी की तस्वीरे !' कुछ अधिक आश्चर्य से इन्दुमती बोली।

'हाँ, माँ, कुछ लडको ने कहा है कि मेरे बाप ही नही थे। भला बताओ तो दुनियाँ मे बाप के बिना कोई हो सकता है।'

इन्दुमती के चेहरे का सारा रग गायब हो गया, इतना ही नही, उसे चक्कर सा आ गया और यदि उसने पास रखी हुई कुरसी को न पकड लिया होता तो वह गिर पडती। परन्तु मयक का ध्यान उस तरफ नही था। कुछ रुककर वह कहने लगा—

'माँ, स्कूल के बहुत से लड़के तो बहुत शरीफ हैं पर कुछ शरीर भी हैं। मुझे हर परीक्षा मे सबसे ज्यादा नम्बर मिलते हैं, इससे कुछ लडके मुझसे जलते हैं। उन्हे मेरे खिलाफ और कुछ न मिला तो वह कहने लगे कि मेरे

बाप ही नही थे। यदि मुझे साफ-साफ कह दे कि उन्हे मेरा अधिक नम्बर पाना अच्छा नही लगता, तो मै उन्हे राजी करने के लिए अपने परचे कुछ बिगाड दिया करूँ, क्योकि मै किसी से झगडा नही रखना चाहता। पर, देखो तो, माँ, सीधी बात न कर उलटी बात करते है। एक लीलाधर है जो दो बार फेल हो चुका है उसने यह बात उठायी और कहा कि "तुम्हारे घर पर कोई लडका न जायगा क्योकि तुम्हारे बाप नही थे।" बहस मे तो मै सबको हरा आया, पर जहाँ मैने बाबूजी की तस्वीरे बाँट दी कि मेरी बात पक्का हो जायगी, खास कर इसलिए और कि तुम कहा ही करती हो कि मै बाबूजी से मिलता-जुलता ही हूँ।'

मयक के चुप होने पर भी इन्दुमती कुछ न बोली। उसकी मुद्रा से जान पडता था कि वह कही और ही थी तथा उसने बालक के इतने लम्बे भाषण का बहुत सा अश न सुना था और न समझा। कुछ रुककर मयक ने उसकी ओर देखते हुए कहा—'क्या सोच रही हो, माँ, वह लीलाधर बड़ा शरीर लड़का है न ?'

फिर भी जब इन्दुमती ने कुछ न कहा, तब लडके ने इन्दुमती को कुछ दिखाते हुए कहा—'दोगी न, माँ, मुझे बाबूजी की छोटी-छोटी तस्वीरे ?'

इन्दुमती चौक सी पडी और अपने को सम्हालते हुए उसने जल्दी से कहा—'हाँ, हाँ, जरूर···जरूर दूँगी।'

मयक प्रसन्न हो खेलने चल दिया और इन्दुमती अपने सोने के कमरे मे पलँग पर जाकर गिर सी पडी। कई वर्षो के बाद आज फिर से वही प्रश्न उठा था और इस बार उठा था उसके स्वय के सम्बन्ध मे नही, उसके लडके के सम्बन्ध मे। इन्दुमती के मन मे उठा—'तो···तो क्या यह समाज मेरे पुत्र पर भी प्रहार करेगा !···मन चाहे मेरा वीरभद्र की ओर आकर्षित हुआ हो, पर शरीर से मैने कोई पाप नही किया। · मयक के जन्म के सम्बन्ध मे तो मन से भी नही।···मेरे कोई पाप न करने पर भी, मुझ पर समाज के क्या यथेष्ट आघात नही हो चुके है ?···और···और यदि समाज मुझे पतित भी समझता है तो भी मेरे पापो का फल मेरे पुत्र को मिले, यह कैसा न्याय ?··· पर पाप···कैसा पाप ?···यह एकाएक मेरे हृदय में कैसी बात उठी ?··· कहाँ, कौनसा पातक किया है मैने ?···जब विवाह-सस्था नही थी, एक स्त्री

कई पुरुषो के पास जा सकती थी, और एक नर कई नारियो के, जब गण लग्न थे, तब तो यही पता न लग सकता था कि कौन किसका पुत्र है ?·· सारे प्राचीन देशो के इतिहास मे यह बात मिलती है—प्राचीन भारत, चीन, यूनान सभी जगह।···फिर वैधव्य होने पर सन्तान के लिए नियोग की प्रथा थी। भारत, यूनान, रोम अनेक देशो मे। इतना ही नही, ईरान और मिश्र देश मे बहन भाई से सन्तानोत्पत्ति कराती। इक्वेटर पर रहनेवाली पियोजे' (Pioje), तथा उत्तर अमेरिका की 'चिपेवान' (Chippewan) आदि जातियो मे विधवा अपने पुत्र के पास सन्तान की कामना से जाती।···उनके मरने के बाद यदि मै फिर से विवाह कर लेती और मेरे सन्तान होती तो कुछ दकियानूसी लोगो को छोड मुझ पर या मेरी सन्तान पर सारे समाज का ऐसा भीषण आक्रमण न होता। लेकिन लेकिन कब ··कब मैने परवाह की है समाज और समाज के इस तरह के आघातो की ?' और यह सोचते ही इन्दुमती अपने पलँग से नीचे कूद पडी। उसने शीशे मे अपने को देखा, कुछ देर खडी-खडी देखती रही, फिर अपनी पुरानी स्वाभाविक अकड से इधर से उधर और उधर से इधर कुछ समय तक घूमी। लेकिन फिर एकाएक कुरसी पर बैठ गयी। अपना चेहरा अपने हाथो पर रख लिया और उसके मुख से निकल गया ··'लेकिन अब तो समाज का सामना मुझे नही करना है, वह करना है मयक को।' कुछ देर वह फिर चुपचाप बैठी रही। हठात् फिर उठी और पुन. टहलते हुए जोर से कहने लगी—'तैयार करूँगी, मयक को भी समाज का सामना करने के लिए · जरा और बडा हो जाय·· जरा और समझ आ जाय।'

: ३७ :

ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेन ने जर्मनी के पोलैड पर आक्रमण करते ही ३ सितम्बर सन् ३९ के ११ बजे दिन को जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दी। उसी दिन ४ बजे सन्ध्या को फ्रास की जर्मनी पर युद्ध-घोषणा हुई।

चीन और जापान का युद्ध चल ही रहा था । भारत था परतन्त्र और परतन्त्र भारत की ओर से भारत के वाइसराय ने बिना भारतीय नेताओ अथवा भारतीय व्यवस्थापिका सभाओ से सलाह लिये इस युद्ध मे भारत को भी सम्मिलित कर दिया । इस प्रकार सितम्बर की काली घटाओ के साथ ही युद्ध की काली घटाओ ने भी भारतीय आकाश को ढक लिया ।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी इस समय मे गैर-कानूनी घोषित की जा चुकी थी । कुछ साम्यवादी नेता गिरफ्तार हो चुके थे, जो देवली कैम्प मे रखे गये थे, और कुछ फरार थे । फरार नेताओ की गिरफ्तारी के लिए सरकार द्वारा इनामे घोषित थी ।

लड़ाई शुरू होते ही कम्युनिस्ट पार्टी के जो नेता अभी गिरफ्तारी से बचे हुए थे उन्होने गुप्त रूप से युद्ध के विरुद्ध प्रचार का कार्य आरम्भ किया । वजीरअली भी इन्ही मे से एक था ।

साम्यवादियो ने मजदूरो के मनो में युद्ध विरोधी आग सुलगा दी । युद्ध के समय की कठिनाइयो और मँहगाई ने इस आग पर तेल का काम किया । जगह-जगह हड़ताले होने लगी, कारखानो मे, मिलो मे, रेलवे मे, मँहगाई की माँगो पर, वेतन बढाने के प्रश्न पर तथा अन्य सहूलियतें माँगने के लिए । हर जगह और हर महकमे मे हडताले हुई और हडतालो का जोर कुछ इस तरह बढा कि सरकार के कामो मे यथेष्ट बाधा पडने लगी । इसलिए सरकार का रुख भी कड़ा होने लगा । पुलिस को आज्ञा हुई, साधन सँभालने और बढाने की । वारण्ट, तलाशियाँ, गिरफ्तारियाँ दुगनी और चौगुनी हो गयी ।

एक रात बिजली चमक रही थी, बादल गरज रहे थे, रिमझिम वर्षा हो रही थी । इन्द्र के दूतो ने चारो ओर से दृश्य को घेर रखा था । पूरे लखनऊ पर भयानक अँधेरा छाया हुआ था । मुगलिया खानदान की यह चमकती और दमकती यादगार आज सुनसान सी पड़ी थी । उसकी चिकनी-चुपडी सडकें सायँ सायँ कर रही थी । ऐसे समय वजीरअली बिलकुल अकेला बगल मे पोस्टर दबाये छुपता-छुपता दीवारो पर पोस्टर लगाता फिर रहा था । उसने अब गंजीराम माधोराम की दूकान के सामने लायड बैंक की बडी सी दीवार के सहारे अपनी छोटी सी नसेनी खड़ी की । बगल मे दबे बडे से पोस्टर के

पीछे लेई लगायी और दीवार पर लिखे हुए उस नोटिस के नीचे कि यहाँ इश्तहार लगाना मना है अपना पोस्टर चिपका दिया। पोस्टर चिपकाकर वह नसेनी से नीचे उतरा और पोस्टर पर एक दृष्टि डाल सतोष की साँस ली, मानो युद्ध को कोसो दूर भगा दिया। अपने और अधिक सतोष के लिए उसने अपनी टार्च निकालकर पोस्टर पर डाली और अभी वह पहली पक्ति भी न पढने पाया था कि किसी के टार्च की तेज रोशनी ने उसकी आँखो मे चकाचौध पैदा कर दी। इसके पहले कि वह सँभले, उसे तेज सीटियो की आवाज सुनायी दी और उसने देखा कि चार-पाँच पुलिस के जवान उसकी ओर बढे चले आ रहे है। वजीरअली के पैरो के नीचे से जमीन निकल-सी गयी। भागने का प्रयत्न निरर्थक था, उसने जेब से माचिस की डिब्बी निकाली और बगल मे दबे हुए सारे पोस्टरो को आग लगा दी। अग्नि के प्रकाश मे वजीरअली का चेहरा साफ दिखायी पडा। पुलिसवाले अभी थोडी दूर थे, पर उनकी कानाफूसी की आवाज वजीरअली तक पहुँच गयी। उसने सुना—एक कह रहा है 'वजीरअली'। फिर सीटियाँ, चीख, फुंकार और पुलिसवाले उसके पास आ गये। वह खड़ा था चुपचाप। नसेनी खडी थी लायड बैंक की दीवार के सहारे बडे से पोस्टर के नीचे। सडक पर बाकी पोस्टर जल रहे थे और उनकी लपटे कह रही थीं 'यह आग कभी न बुझेगी' और पुलिस के सिपाही खडे थे वजीरअली को घेरे हुए।

वजीरअली हजरतगज के थाने पर लाया गया और डिप्टी साहब के हुक्म से उसकी तलाशी ली गयी। जेब मे एक माचिस की डिब्बी, तीन पैसे और एक फटा हुआ रूमाल निकला। हाथ में एक टार्च था और बालो मे कुछ तिनके और सूखे पत्ते। सिपाही उसकी तलाशी ले रहे थे और उसकी आँखे कह रही थी, 'जेबो मे क्या निकलेगा ? दिल को टटोलो उसमें समुद्र है, तूफान है, पहाडो की दृढता है, बिजलियो की कड़क है। उसमे इरादा ही इरादा पडा हुआ है, डर का कोई स्थान ही नही, न तकलीफो से घबरा जाने के लिए कोई जगह।'

सिपाहियो के बयान लिये जाने के बाद डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट ने वजीरअली को अपने कमरे मे बुलाया। कमरे मे सोफे और आराम कुरसी पडी हुई थी। सामनेवाले सोफे पर डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट आधा लेटा हुआ था। उसके

मोटे-मोटे ओठो पर घनी सा काली-काली मूँछे अपनी छाया सी किये हुए थी। ओठो के बीच एक सिगरेट दबा था जिसमे से थोडा-थोड़ा धुँआ निकल रहा था। उसके पास रखी हुई सामने वाली छोटी-सी मेज पर वजीरअली की जेब मे से निकले तीन पैसे, फटा सा रूमाल और माचिस की डब्बी रखी हुई थी। सामने वजीरअली चोर बना हुआ खड़ा था और दरवाजे के पास दो सिपाही तैनात थे। डिप्टी साहब ने एक हल्की सी करवट ली और अपने दाये हाथ से बाई मूँछ को प्यार करते हुए बोले—'तुम कौन हो जी ?'

वजीरअली ने एक उचटती हुई नजर सिपाहियो पर डाली और चुपके से कहा—'मै वजीरअली हूँ।'

'अच्छा, आप वजीरअली है।' यह कहते हुए डिप्टी साहब सोफे पर सीध हो गये और निकट के पायचे मे हाथ डाल कान खुजाते हुए बोले, 'तो आप ही वजीरअली है। क्या कर रहे थे आप इस वक्त सडक पर ?'

डिप्टी की आवाज मे जरा कडक पैदा हो गयी थी। वजीरअली चुप रहा। कुछ रुककर डिप्टी ने फिर कहा—'आपका सिर फिरा है, आपको कोई काम-धाम नही, आप समझते है इन पोस्टरो से आप आधी दुनियाँ पर राज करने वाली ब्रिटिश हुकूमत का मुकाबला करेगे। न पैर मे जूते और न सर पर टोपी, आप सल्तनत को मिटाने चले है। जरा आपकी सूरत मुलाहिजा हो।'

वजीरअली की दृष्टि दरवाजे के पास खडे हुए सिपाहियो के चेहरो पर पड गयी। दोनो के मुँह फटकर कानो की गदियो को छूने की कोशिश कर रहे थे, दाँत कुछ ऐसे बाहर निकले हुए थे कि एक-एक करके पूरे बत्तीस गिन लो। डिप्टी साहिब को उनकी इस हँसी मे कुछ गुस्ताखी नजर आयी। उसने कडककर कहा—'तुम बाहर ठहरो।' और अभी सिपाही कमरे के बाहर भी न निकले थे कि टेलीफोन की घटी बजी। डिप्टी साहब ने फौरन रिसीवर उठा लिया। एक मिनिट के बाद सिपाहियो पर गुर्रानेवाला शेर मिनमिना रहा था—'जी हुजूर, जी सरकार, बहुत अच्छा गरीब-परवर, मै उससे सब पूछ लेता हूँ, मै हर बात का पता लगा लूँगा।' डिप्टी ने रिसीवर रख दिया और वजीरअली से बोला—'यह सुपरिण्टैण्डैण्ट साहब का टेलीफोन है। वे मालूम करना चाहते है कि आप ये सब पोस्टर कहाँ छापते है ?' वजीरअली

फिर भी चुप रहा। 'आपकी खामोशी से कुछ न बनेगा।' कहकर डिप्टी ने थोड़ी देर इन्तजार करने के बाद फिर कहना शुरू किया—'मै बहुत बेढब आदमी हूँ, मेरा नाम है खगसिंघ। मै आदमी को मजे करने के लिए जेल नही भेजता हूँ, बल्कि खाल खीचकर भुस भरा देता हूँ, समझे?' और कुछ रुककर खडे होकर वे कहने लगे—'आपको सुबह होने से पहले बताना पडेगा कि आपके पास ये सब कुछ छपा हुआ मसाला कहाँ से आता है? और आपके साथ कौन-कौन है? इन खुराफातो की अब और इजाजत नही दी जा सकती।' अब डिप्टी ने अपनी कमर पर हाथ रख लिया और कमरे में इधर से उधर घूमने लगा। वजीरअली ने अपने मन में ठान ली थी कि वह कुछ न बोलेगा। लेकिन डिप्टी साहब ने यह निश्चय किया था वह उनसे सब उगलवाकर रहेगे। वह टहलते-टहलते रुक गया और बोला—'सीधी अँगुलियो घी न निकला तो मुझे दूसरी तरकीबो का सहारा लेना पडेगा।'

वजीरअली ने दबी जुबान मे कहा—'देखिए, मुझे कुछ नही मालूम और यदि मालूम भी हो तो मै बताऊँगा नही चाहे आप कुछ भी करे।'

डिप्टी की भवे तन गयी, आँखो के डोरे लाल हो गये, ओठो के कोने कँपकँपाने लगे। उसने मुट्ठियाँ बाँध ली और सोफे पर बैठते हुए चिल्लाया—'जुम्मन खाँ!'

एक राक्षस-सा व्यक्ति कमरे मे घुसा। चढी हुई डाढी, चौडा चकडा सीना, फैले हुए कन्धे। वह सामने आया, एडियो के बजने की आवाज हुई और बिजली सी तेजी से उसका हाथ ऊपर उठ कान के बराबर आ गया। 'जरा आपका मिजाज पूछो।' डिप्टी साहब ने उसे हुक्म दिया।

जुम्मन खाँ वजीरअली की तरफ बढा और उसके पास पहुँचते ही एक छक से धमाका हुआ। वजीरअली की आँखो के सामने अँधेरा छा गया। वह इस बात का अन्दाजा ही न लगा सका कि जुम्मन का हाथ कब ऊपर उठा, कब आगे बढा और कब उसके गाल पर पडा। उसका सिर चकरा गया और जब आँख खुली तब उसने देखा कि जुम्मन खाँ उसके सामने खडा चिड़ी के गुलाम की तरह मुस्करा रहा है। जुम्मन खाँ ने वजीरअली का हाथ पकडकर खीचा, कन्धा पकड़कर धक्का दिया और मुट्ठी बाँधकर कोख मे एक ठूँसा लगाया, बिलकुल चुपके से जैसे किसी को छिपाकर लड्डू दे रहा हो। इसके

बाद वह वजीरअली को ढकेलता हुआ कमरे के बाहर ले गया।

जब वजीरअली के जाने के पश्चात् डिप्टा कमरे मे अकेला रह गया तब उसने ठडी साँस ली और मेज पर पडे हुए पैसो, रूमाल तथा माचिस की डिबिया को देखने लगा। माचिस की डिब्बी उलटी पडी थी और उस पर कुछ लिखा हुआ था। डिप्टी ने उसे उठा लिया और उस पर लिखे हुए को पढने की कोशिश करने लगा। एकाएक उसकी आँखो मे चमक आ गयी। 'कोई है ?' उसने पुकारा। एक कास्टेबल ने आकर सलाम किया। हुक्म हुआ—'दरोगाजी को बुलाओ।' दरोगाजी आये। डिप्टी साहब ने उन्हे माचिस की डिब्बी बतायी और बताया कि माचिस पर इन्दुमती का नाम लिखा है। 'यह इन्दुमती'—उन्होने कहा—'एक रईस विधवा औरत है। इसने मशहूर कर रखा है कि वजीरअली को अपना भाई मानती है। पर मेरा खयाल है कि वजीरअली से उसके नाजायज ताल्लुकात है और मजदूरो मे काम करने के बहाने वह ऐयाशी करती है। गजब की मनचली औरत है, साहब।' उसने आँखे मटकाते हुए कहा। 'अभी जरा जवान है।' दोनो ने आपस मे कुछ तय किया और दरोगाजी तेजी से कमरे के बाहर हो गये।

जब दिन निकला तो वजीरअली के सैल के बाजूवाले सैल मे इन्दुमती भी बन्द थी। यद्यपि इन्दुमती युद्ध-विरोधी कोई काम न कर रही थी, परन्तु वजीरअली की जेब से जो माचिस की डिबिया निकली उस पर इन्दुमती का नाम लिखा रहना ही इन्दुमती की गिरफ्तारी के लिए पर्याप्त कारण था। थाने मे एक विचित्र प्रकार की उत्सुकता फैली हुई थी। हर आदमी का चेहरा एक प्रश्नसूचक चिह्न बना हुआ था। सबकी आँखो मे एक उत्कठा भरी ईहु थी।

पहरे का सिपाही क्वार्टर गार्ड को छोड हवालात के सामने टहलने लगा। तुकाराम जमादार कान पर जनेऊ डाल वही लुटिया माँजने बैठ गये। खलासी चौकीदार भी वही पर दरोगाजी के घर की लकडियाँ ले आया और एक बडे से कुल्हाडे से फाड़ने की कोशिश करने लगा। रज्जू मेहतर भी झाडू देते-देते खलासी चौकीदार के पास आ गया और न जाने क्या कानाफूसी करने लगा। सामने बरामदे मे मुशी रहमतउल्ला जुम्मन खाँ को साथ लिये बडे-बडे रजिस्टरो की कुछ इस तरह देखभाल कर रहे थे मानो इण्डियन क्रिमिनल

कोड की कोई सबसे बडी कमजोरी इनके हाथ लग गयी है, और वे बैठे कानून बनानेवाले लोगो की अक्ल को रो रहे है। उन्होने अपनी आँखो पर चढा हुआ मोटे-मोटे शीशोवाला चश्मा नाक के सिरे पर रख लिया और जुम्मन खाँ से कहने लगे—'इन कानून बनानेवालो को पुलिस की मुश्किलात का क्या अन्दाजा। कभी कोई चालान किया होता, कभी कोई रपट लिखी होती, तो मालूम होता आटे-दाल का मोल। मोटी-मोटी किताबो से कुछ नही होता है, जुम्मन खाँ! यह साले जरायम पेशा बडे हरामी होते है। इनकी माँ के दूध मे ईट का इक्का। किसी पिनल-विनल को नजर मे नही लाते। अब इसी को देखो, मतलब है, एक बहाना है देशभक्ति का। किसी बहन चो···पिनल बनानेवाले ने आज तक इस जुर्म का पता लगाया!'

जुम्मन खाँ कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि थाने के सहन में एक गडबड सी पैदा हुई और जब उन्होने नजर उठाई तो सामने डिप्टी साहब आ गये थे। जुम्मन खाँ फौरन आगे बढा। पूरी योजना कदाचित् तय हो चुकी थी। एक नया-सा मोटर दनदनाता हुआ आया और मानो डिप्टी साहब के कदमो मे खडा हो गया। उन्होने आँखो ही आँखो से पहरे के सिपाही से कुछ कहा और उसने मतलब समझकर हवालात के ताले खोले। वजीरअली और इन्दुमती दोनो को हवालात से निकाला गया और मोटर की पिछली सीट पर लाकर बैठाया गया। डिप्टी साहब तथा जुम्मन खाँ आगे बैठे और मोटर चल दी। किसी की कुछ समझ मे न आता था कि क्या बात है और ये लोग कहाँ ले जाये जा रहे है।

पन्द्रह, बीस मिनिट पूरी स्पीड से चलने के बाद ये लोग शहर से दूर एक कोठी के पास आकर उतरे। देखने से मालूम होता था कि यहाँ कोई रहता नही है। कोठी के चारो ओर एक बडा-सा आम का बाग था, जिसमे पडे हुए सूखे पत्तों और टूटी हुई क्यारियो के कारण हर कोई यह समझ सकता था कि बहुत दिनो से इसकी देख-भाल नही हुई है। जुम्मन खाँ ने मोटर का दरवाजा खोल जल्दी से आगे बढकर कोठी के सामनेवाले दरवाजे के ताले को खोला। यह एक कमरा था जिसमे मखमली सोफे रखे हुए थे। बीचोबीच एक ऊनी कालीन बिछा था। कमरे की दीवारो पर जगह-जगह औरतो की तस्वीरें लटकी हुई थी, जिनसे कमरा परीखाना बना हुआ था। किन्तु

कालीन, सोफो और तस्वीरो पर जमी हुई धूल साफ पता देती थी कि मुद्दतों के बाद आज कमरा खोला गया है। जुम्मन खाँ ने आगे बढकर जल्दी-जल्दी एक सोफा साफ किया। डिप्टी साहब उस पर आकर बैठ गये। पास मे जुम्मन खाँ खडा रहा। सामने वजीरअली और इन्दुमती सवाल से बने खडे थे। उनके बदन थके हुए थे, आँखे बोझिल हो रही थी। हवालात की बेचैनी और मच्छरो तथा कम्बलो के खटमलो के काटने के चिह्न उनके हाथो और चेहरो पर साफ दृष्टिगोचर हो रहे थे।

बिना और समय बरबाद किये डिप्टी साहब ने उनसे कहना शुरू किया—'यहाँ मै आपको इसलिए लाया हूँ कि अकेले मे जो कुछ मै पूछूँ आप बता दे। मै आपसे कसम खाकर वादा करता हूँ कि दुनियाँ मे किसी को भी न मालूम होगा कि आपने मुझे कुछ बताया है। मै आपसे सिर्फ यह पूछना चाहता हूँ कि ये तमाम चीजे आपके पास कहाँ से आती है?' कुछ रुककर उन्होने फिर कहा 'आप शरीफ लोग है। आप बैठ जाइए। मै चाहता हूँ कि आप इत्मीनान से ये सब बाते मुझे बता दे। चुपचाप ही सब काम हो जायगा, तो आपका बाल भी बाँका न होगा, वरना आप जानते ही है, पुलिस के लोग बडे कमीने होते है। खामखाह आप पर ज्यादती करेगे, आपको बेइज्जत करेगे और मुझे तकलीफ होगी। खास तौर से जब आप मे से एक औरत है। मै नही चाहता ··'

एक औरत के कारण नरमी की जा रही है यह इन्दुमती कैसे सहन कर सकती थी। वह बीच ही मे बोली—'इस सहानुभूति के लिए धन्यवाद है; पर मै आपको साफ-साफ बता देना चाहती हूँ कि इसके बाद हम दोनो मे से कोई भी अपने मुँह से एक शब्द भी न निकालेगा। आपका जो जी चाहे कीजिए।'

'तुम बडी गुस्ताख मालूम होती हो।' डिप्टी साहब चिल्लाये 'तुम्हे मालूम है कि किससे बात कर रही हो? पुलिस आफीसरो के अख्त्यारात का कुछ अन्दाजा है तुम्हे?'

वजीरअली धीरे से बोला—'हमे किसी बात का अन्दाजा नही इसीलिए तो हम लोगो ने तय किया है कि एक शब्द भी मुँह से न निकालेगे।'

डिप्टी साहब खडे हो गये। 'तुम लोग बडे बेहूदा हो। जूतो के भूत बातों

से नही मानते। मुझे आखिर वही करना पडेगा जो मै न चाहता था। ·· जुम्मन खाँ!' उन्होने आवाज दी। आवाज के साथ ही एडियाँ बजी। 'इनका मिजाज पूछो।' यह कहते हुए डिप्टी तेजी से बराबर वाले कमरे मे चला गया।

अब जुम्मन खाँ पूरी परिस्थिति के मालिक थे। वे आगे बढे। चढी हुई डाढी पर एक हाथ फेरा और बोले—'तुम मुझे नही जानते, मगर मै तुम दोनो को खूब जानता हूँ। दो साल तुम्हारा पीछा किया है और एक-एक बात का पता चला लिया है।' बात पूरी करते-करते जुम्मन खाँ साहब डिप्टी वाले सोफे पर बैठ गये और फिर कहने लगे—'बडे इन्कलाबी बने फिरते हो। मै कहता हूँ जो काम करो खुले खजाने करो, हिम्मत है तो। और बुरे काम के लिए ज्यादा अकल चाहिए, समझे, बाबू साहब। मुझे हुक्म मिला है कि आपकी कुछ खिदमत करूँ। पर देखिए, मुझ मे इतना दम तो है नही कि मै अपने हाथ थकाऊँ, आप अपना काम हाथ से कीजिए। चलिए, आगे बढ़िए और अपने कपडे उतारिए। और, मेम साहब, आप यहाँ बैठ जाइए, मेरे बाजू मे। आपने बहुत कुओ का पानी पिया है। जरा आज पुलिस की बावड़ी का मजा भी चख लीजिए।'

वजीरअली और इन्दुमती दोनो चुप खडे थे। उनकी समझ मे न आ रहा था कि वे क्या करे। जुम्मन खाँ अपनी कुर्सी पर से उठा और बड-बडाता हुआ आगे बढा—'ये बहनचो ··ऐसे थोड़ा मानेगे। तुम जानते नहीं हो, हजरत! मेरे इस काले बूट की टो मे वो ताकत है कि डेढ गज पखाना ऊपर चढ जाता है।' यह कहते हुए जब उसने वजीरअली की चूतडो पर एक जोर की ठोकर जमायी तब वजीरअली को भी उसकी बात मे कुछ-कुछ सच्चाई नजर आने लगी। इन्दुमती भी कुछ सिटपिटा-सी गयी। अब जुम्मन खाँ इन्दुमती की तरफ लपका और उसकी गर्दन पकड़कर धक्का देते हुए बोला—'तुम वहाँ बैठो। इन्होने तय किया है कि कुछ नही बतायेगे। यहाँ दीवार से बात उगलवा लेते है। हम बहन चो·· इतन हरामी और ये हमें बात न बताये।' अब उसने वजीरअली का गला पकडकर इतनी जोर से खीचा कि उसका कमीज फट गया। कमीज को बेपरवाही से वही छोड उसने वजीरअली के मुँह पर दो चाँटे लगाये, और बोला—'अपने कपड़े

उतारो।' वजीरअली की समझ मे न आता था कि वह सच कह रहा है या दिक कर रहा है और अगर वह सच कह रहा है तो वजीरअली क्या करे। वजीरअली सोच ही रहा था कि एक घूँसा उसके मुँह पर और पडा। वजीर-अली को जान पड़ा कि उसके सब दाँत टूट गये है। एक मिनिट को सिर चकरा गया और अगर वह पासवाली दीवार का सहारा न लेता तो अवश्य गिर पड़ता। जब उसे होश आया तो उसने देखा कि जुम्मन खाँ के जालिम हाथो ने उसे नगा कर दिया है। फटा हुआ कमीज और नीचे गिरा हुआ पाजामा देखकर उसके होश उड़ गये। सामने इन्दुमती बैठी थी। जब उसने वजीर-अली को इस हालत मे देखा तो आँखे बन्द कर ली। क्रोध से इन्दुमती का चेहरा तमतमा रहा था, परन्तु क्रोध था उसका कितना निरर्थक। इसी समय डिप्टी साहब ने पुनः कमरे मे प्रवेश किया। इन्दुमती और वजीरअली पर एक नजर डाल वे ठट्ठा मारकर हँसने लगे और जुम्मन खाँ के पास पहुँचकर उसकी पीठ ठोकते हुए बोले, 'साबाश खाँ साहब, इसीलिए मै तुम्हे पसन्द करता हूँ। रोज एक नयी तरकीब सोचकर निकालते हो।'

जुम्मन खाँ ने आगे बढकर डिप्टी साहब के कदम छू लिये और बोले—'अपनी जूतियो का तुफैल है, सरकार, वरना बन्दा किस काबिल है।'

'मामला कहाँ तक आया है?' डिप्टी साहब ने पूछा।

'हुजूर का इकबाल सलामत चाहिए।' जुम्मन खाँ ने कहा—'मै सब कुछ उगलाकर रख दूँगा, मगर अभी तो मैने शुरू ही किया है। मिजाज तो अब पूछूँगा।'

डिप्टी साहब यह कहते हुए कि 'अच्छा तुम अपना काम करो।' फिर कमरे से बाहर चले गये।

अब जुम्मन खाँ दौड़ा-दौडा बाहर गया और मोटर में से एक हण्टर, एक बिजली का हीटर, लोहे के कुछ टुकडे और इसी प्रकार का बहुत सा सामान ले आया। बीचवाली मेज पर इस सामान को रखते हुए वह इन्दुमती से बोला,—बाई साहब, उठिए और आप मेरे काम में कुछ मदद कीजिए।'

इन्दुमती उसी तरह बैठी रही। जुम्मन खाँ को एकदम गुस्सा आ गया, 'उठ री औरत!' उसने कहा 'नही तो तेरी चुटिया पर भी हाथ डालना पडेगा।' वह अब तेजी से इन्दुमती की ओर बढा। जुम्मन खाँ ने इन्दुमती

के हाथ में हीटर का तार देते हुए कहा—'चलो, इसे प्लग मे लगाओ और हीटर पर ये टुकडे गरम करो। तुम्हे आज अपने हाथ से इस मरदूद को दागना होगा, तुम्हारा भाई है न। अपनी एक निशानी लगा दो, जो उमर भर याद रखे।'

जब इन्दुमती फिर भी अपनी जगह से न हटी तो उसने उसका हाथ पकड़कर जोर से खीचा। वजीरअली से ये सब देखा न जाता था। वह कमरे के एक कोने में बैठकर बच्चो की तरह सिसकने लगा। इस समय उसे बार-बार याद आ रहा था वीरभद्र के मुकदमे का मुखबिर दामोदर। वह सोच रहा था, पुलिस के इन अत्याचारो को झेलकर अपनी बात पर अडे रहना मजबूत से मजबूत आदमी के लिए भी सरल काम नही। जुम्मन खाँ ने जब वजीरअली की यह आवाज सुनी वह जोर से हँसता हुआ बोला—'तुम तो बडे बहादुर बनते थे। क्या इन आँसुओ से इन्क्लाब उठाओगे ? इन हिचकियो से सल्तनत को मिटाओगे ?'

इन्दुमती ने गरजकर कहा—'भाई, हिम्मत न हारो। हम जान दे देंगे, पर कुछ न कहेगे।'

इन्दुमती पर आँखो से आग बरसाते हुए इन्दुमती को छोड़ जुम्मन खाँ फिर वजीरअली की ओर बढा और मोटर मे से लाये सामान मे से एक रस्सी निकाल वजीरअली के दोनो हाथ कमर के पीछे बाँधे तथा दोनो पैर एक दूसरे से मिलाकर जकड दिये। अब वह केवल लेटा रह सकता था।

वजीरअली और इन्दुमती के इस कोठी मे तीन दिन बीत गये। इन तीन दिनो मे और भी कई पुलिसवाले इस कोठी मे आये और बारी-बारी कई ने काम किया। वजीरअली बहत्तर घण्टे बँधा रहा। इन्दुमती को चौबीस घण्टे खड़ा रखा गया। तब तक वह खडी रही जब तक बेहोश होकर गिर न गयी। तीन दिन तक दोनो के मुँह में एक दाना भी न गया। हाँ, कभी-कभी नमक और ग्लूकोज़ का मिला हुआ पानी दोनो को अवश्य पिलाया गया। डराने, धमकाने की हर चीज उनके सामने लायी गयी। गरम लोहा उनकी आँखो के सामने रख दिया गया, हण्टर, छुरी, पिस्तौल हर चीज से उन्हे धमकाया गया, पर किसी ऐसी वस्तु का स्पर्श उनके शरीर से न कराया गया, जिससे उनके शरीरो पर कोई चिह्न हो जाता। पर इन सारे अत्याचारो

पर भी दोनो अपनी जगह अटल रहे। इन्दुमती का क्रोध उसको सहायता दे रहा था और वजीरअली को उसके सिसकते समय कहा गया इन्दुमती का छोटा सा वाक्य। उस कथन के बाद तो वजीरअली की कभी आँखे भी न भरी। हर अत्याचार के पश्चात् भी पुलिस हार गयी। पुलिस को इनसे किसी बात का भी पता न लगा। अन्त मे दोनो को भारत रक्षा कानून का मुलजिम करार दिया गया और इन्दुमती को लखनऊ जेल तथा वजीरअली को दिवली कैम्प भेज दिया गया।

: ३८ :

इन्दुमती पर न मुकदमा चला था और न उसे किसी जुर्म पर सजा हुई थी। वह भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत जेल मे कैद भर कर दी गयी थी। जेल में औरतो के वार्ड की एक छोटी सी बैरक में उसे सबसे अलग रखा गया था। इस बैरक मे उसके आराम के सारे प्रबन्ध थे। सोने के लिए पलँग, एक टेबिल, एक कुर्सी, एक छोटी सी आलमारी, लकड़ी की एक टिकटी पर पानी की मटकी और उस पर लकडी का ढक्कन तथा उसके पास ही एक बाल्टी और एक लोटा, गिलास। इन्दुमती को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पलँग पर उसी के घर का बिस्तर लगा हुआ है और उस पर मच्छरदानी पडी हुई है। पलँग के पास ही उसका सूटकेस रखा है। उसने उसे खोलकर देखा तो उसमे जो सामान उसके साथ मुसाफिरी मे जाता था वह सब बन्द पाया। बैरक मे एक स्त्री वार्डर के सिवा और कोई न था। उसकी ओर मुखातिब हो इन्दुमती ने पूछा—'मेरा यह सारा सामान कहाँ से आया ?'

'पुलिस ने आपके मकान से यह सामान पहले से ही मँगाकर इसलिए यहाँ रखा है जिससे आपको कोई तकलीफ न हो।

इन्दुमती को इस बात पर महान् आश्चर्य हुए बिना न रहा कि एक ओर

तो पुलिस ने उसे इतना कष्ट दिया और दूसरी ओर उसके आराम की यह व्यवस्था की। पुलिस के अत्याचारो की ब्यौरेवार रिपोर्ट करने की उसे इन तीन दिनो मे कई बार इच्छा हुई थी पर उसने देखा कि जहाँ पुलिस के पास उसे आराम से रखने के सारे प्रबन्ध करने के सुबूत है वहाँ उसके पास पुलिस के अत्याचारो को सिद्ध करने के लिए एक भी सुबूत नही। और जब उसके मन मे यह उठा तब उसे याद आया कि धमकाने के लिए अगणित सामान इकट्ठा करने पर भी उसके और वजीरअली के शरीर से पुलिस ने एक भी ऐसी चीज का स्पर्श न कराया था जिससे उनके शरीर पर उन अत्याचारों के सुबूत के लिए कोई चिह्न तक बन जाता। इन्दुमती सोचने लगी कि पुलिस के कार्य करने की प्रणाली भी एक अनोखी चीज है।

कुछ देर बाद वार्डर ने पूछा—'खाना आप जेल का खायँगी या खुद बनायेगी ?'

'अच्छा मै खुद भी खाना बना सकती हूँ ?'

'जी हाँ, आप आराम से रहे इसके लिए हमे सब कुछ करने का हुक्म है।'

कुछ मुस्कराकर इन्दुमती बोली—'केवल एक शर्त पर कि मैं इन सीखचो के अन्दर भर रहूँ।'

वार्डर इस बात के उत्तर मे मुस्करा भर दी।

कुछ ठहरकर इन्दुमती ने कहा—'आज तो मै यहीं का खाना खा लूँगी, कल सोचूँगी बनाने की बाबत।'

इन्दुमती तीसरे पहर जेल मे लायी गयी थी। अब समय सन्ध्या के समीप था। वार्डर ने कहा कि सन्ध्या को ताले बन्द होने के पहले उसका खाना उसकी बैरक मे आ जायगा। इन्दुमती ने तीन दिन से खाना न खाया था। उसे भूख लगी थी। वार्डर को उसने खाना लाने के लिए भेजा। वार्डर गयी बैरक के दरवाजे मे बाहर से ताला बन्द कर। वार्डर के आने के पहले इन्दुमती मुँह-हाथ धो, कपडे बदलकर तैयार हो गयी। वार्डर एक साफ-सुथरी थाली-कटोरियो मे खाना ले आयी और थाली उसने टेबिल पर रखी। इन्दुमती ने जब खाना खाया तब उसे जान पडा कि खाना बूरा न था। तीन दिन की भूख भी शायद इसका कारण हो।

जब इन्दुमती खा रही थी उसी समय ताले बन्द होने की घण्टी हुई। वार्डर नमस्कार कर बैरक मे फिर ताला लगाकर चल दी। थोड़ी देर मे जेलर आया और बैरक के बाहर से ही इन्दुमती को देख उसे अदब से नमस्कार कर चला गया।

खाना खा, हाथ-मुँह धो जब इन्दुमती पलँग पर लेटी तब कितनी बाते उसके मन में उठने लगी—'इसी जेल मे ललितमोहन आया था। उसने जेल-जीवन का जो हाल बताया वैसा तो यहाँ का जीवन नही जान पडता। तो क्या ललितमोहन ने गलत बात इसलिए कही थी कि जिससे उसकी देश-भक्ति पर सान चढे ?· नही, नही, उसकी बीमारी और उसी बीमारी से अन्त मे मृत्यु इस बात का प्रमाण है कि उसे जेल मे कितना कष्ट हुआ था। · पर वह जेल-जीवन था इसके सत्रह व ँ पहले का। यतीन्द्रनाथ दास ने अपना बलिदान कर जो इसे बदल दिया है। ··यदि यतीन्द्रनाथ का बलिदान ललित-मोहन के जेल आने के पहले हो जाता···यदि इस प्रकार के जेल-जीवन मे ललितमोहन आता ?···तो क्यो वह बीमार होता और क्यो मरता ?···तो उसकी मृत्यु अकाल मृत्यु हुई ? और क्या ? और यदि वह न मरता। तो··· तो मेरा जीवन ? · आह !' और ललितमोहन को याद करते-करते इन्दुमती को वीरभद्र याद आ गया। 'वह·· वह तो इस समय का जेल-जीवन भोग रहा है।·· तभी···तभी तो जब-जब मुकदमे के सम्बन्ध मे मुलाकात हुई कैसा हट्टा-कट्टा और प्रसन्न दिखा। इसी···इसी जेल मे तो होगा वह। किसी · किसी तरह यहाँ ही मिल जाय।'

जिस वीरभद्र को इन्दुमती ने अपने मन से हटा दिया था उसी की याद आने पर इन्दुमती को लगने लगा जैसे वीरभद्र की भेट के लिए ही भाग्य उसे जेल मे खीच लाया है। इन्दुमती और भाग्य मे विश्वास ! वह यह सोचते-सोचते सो गयी कि किस तरह यहाँ वीरभद्र से मिला जाय।

× × ×

युद्ध आरम्भ होने के पश्चात् अब तक यद्यपि ढाई महीने ही बीते थे, परन्तु इन ढाई महीनो की अभूतपूर्व कशमकश में एक नतीजा अवश्य निकल आया था कि कांग्रेस और सरकार के बीच की गुत्थी सुलझने की निकट भविष्य में कोई सम्भावना नही है। साथ ही एक बात और भी सिद्ध हो गयी

थी कि काग्रेस और मुस्लिम लीग में भी समझौते की कोई आशा नही। यद्यपि मुस्लिम लीग लडाई मे सरकार की प्रत्यक्ष रूप से कोई सहायता न कर रही थी, पर काग्रेस के सदृश लीगी मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफे नही दिये थे और काग्रेस मन्त्रिमण्डलो के इस्तीफे देने पर मुस्लिम लीग ने तमाम देश मे 'मुक्ति-दिवस' मनाया था।

इसके पश्चात् लगभग एक वर्ष, जब योरप मे लगातार जर्मनी की जीत हो रही थी, फ्रास के सदृश राष्ट्र तक हार चुका था, भारतीय राजनैतिक क्षेत्र मे शिथिलता रही। इस शिथिलता का मुख्य कारण था काग्रेस कार्य-कारिणी और गान्धीजी मे हिसा और अहिंसा के प्रश्न पर मतभेद ; जिसके कारण गान्धीजी चुपचाप अलग होकर बैठ गये थे। अब तक गान्धीजी के अतिरिक्त भारत ने कोई ऐसा नेता पैदा ही न किया था जो सक्रियता से कार्य कर अपने साथ देश की जनता को ले जाता। हाँ, सन् १९४० के मार्च में एक महान् साम्प्रदायिक घटना अवश्य हुई थी, जिसने आगे चलकर राजनैतिक रूप ले लिया। यह घटना लाहौर मे मुस्लिम लीग के अधिवेशन का प्रस्ताव था, जिसमे पाकिस्तान की स्थापना मुस्लिम लीग का ध्येय बना था।

लगभग एक वर्ष की राजनैतिक शिथिलता के बाद फिर से राजनैतिक जागृति के आसार नजर पड़ने लगे। सरकार से कोई समझौता न होता देख काग्रेस नेताओ ने फिर से गान्धीजी को नेतृत्व करने का आमन्त्रण दिया और गान्धीजी ने सन् १९४० के नवम्बर मास मे व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया। इस सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही थे श्री विनोबा भावे।

भारत मे जब व्यक्तिगत सत्याग्रह चल रहा था और अनेक नेता जेल मे थे तब एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हुई। १९४१ के स्वतन्त्रता दिवस २६ जनवरी को लोगो ने पत्रो मे पढा कि सुभाषचन्द्र बोस ता० १ जनवरी को एकाएक गायब हो गये। भारतीय सरकार के नाना प्रकार के पहरे-चौकी तथा आधुनिक से आधुनिक शीघ्रगामी आवागमन के साधन होते हुए भी सुभाष बाबू का यह पलायन एक स्तम्भित कर देनेवाली घटना थी। सुभाष बाबू के इस पलायन की तुलना अगर किसी ऐतिहासिक घटना से की जा सकती थी तो छत्रपति शिवाजी के मुगल-राजधानी स भागने से, किन्तु उस समय और इस समय में बड़ा भारी अन्तर था। उस वक्त पते के ऐसे साधन

कहाँ थे जैसे आज है ; फिर वह मुगल राज्य के बाहर इसी देश मे जाना था और यह था भारत के बाहर निकलना । अतः भारतीय सरकार की नाक पर जो चूना सुभाष बाबू ने लगाया वह सम्राट औरगजेब की नाक पर छत्र-पति शिवाजी द्वारा लगाये चूने से कही तीखा था ।

इसके छै महीने बाद तक योरप मे लड़ाई चलते रहने और भारत मे व्यक्तिगत सत्याग्रह चलते रहने के सिवा कोई नयी घटना न हुई । पर ता० २२ जून सन् ४१ को योरप की लडाई मे एक बडी भारी बात फिर हुई । यह थी जर्मनी का रूस पर आक्रमण । यह आक्रमण क्या एक ऐसा मानवीय भूचाल था जैसा इसके पहले मानव इतिहास ने कभी न देखा था । लगभग दो हजार मील की लम्बाई का युद्ध मोर्चा जिसमे लाखो नही करोडो सैनिक ! जर्मन सेनाओ ने प्रलय के समुद्र की छोल के सदृश रूस मे बढना शुरू किया ।

ग्रेट ब्रिटेन और रूस का अब समान शत्रु जर्मनी हो गया । कम्युनिस्ट पार्टी पर से प्रतिबन्ध हटा और अधिकाश साम्यवादी कैदी छोड दिये गये ।

इन्दुमती और वजीरअली भी छूटे । जितने दिन ललितमोहन जेल मे रहा था लगभग उतने ही दिन इन्दुमती भी । पर जब देवली से लौट वजीर-अली इन्दुमती से मिला तब वह बोला—'बहन, तुम तो खूब तन्दुरुस्त होकर जेल से निकली हो ।'

इन्दुमती सचमुच मोटी होकर जेल से निकली थी । मुस्कराते हुए उसने वजीरअली को उत्तर दिया—'जिस तरह गधे पडे-पडे मुटा जाते है उसी प्रकार मै मोटी हो गयी हूँ ।'

इतने लम्बे समय तक जेल मे रहने और सारे प्रयत्न करने के बाद भी इन्दुमती वीरभद्र से न मिल पायी थी और मिलना तो दूर रहा उसे इस बात का भी पता न लग सका कि वीरभद्र लखनऊ जेल मे ही है या और कही ।

वीरभद्र की अपील का फैसला होने के बाद इन्दुमती के लिए वह मर ही चुका था । जेल जाने के कारण उसे वीरभद्र से मिलने की एक नयी आशा उत्पन्न हुई थी । इस आशा ने उसका जेल-जीवन कुछ सुखी भी कर दिया, परन्तु उसे अब विश्वास हो गया था कि वीरभद्र उसके जीवन मे कभी आनेवाला नही । निज के व्यक्तित्व को समझनेवाली इन्दुमती फिर से न जाने क्यो कोई अवलम्ब ढूँढने लगी और उसने फिर से देखा कि मयक-

मोहन के सिवा उसका अन्य कोई अवलम्ब नही। इन्दुमती ने फिर से अपने को मयकमोहन मे ही विलीन करने का निश्चय किया।

: ३६ :

सन् ४१ का अक्टूबर महीना था। मयकमोहन का तेरहवाँ वर्ष समाप्त हो, चउदहवाँ वर्ष चल रहा था।

वह इस समय प्रेम और परिचय का ही सबसे अधिक इच्छुक था। वह ललितमोहन के समान न होने पर भी ललितमोहन के सदृश सुन्दर था। वैसे ही गहरे, पतले, लहराते हुए बाल, और वैसे ही नेत्र—'अमी हलाहल मद भरे।' जितना वह सुन्दर था उतना ही पढने-लिखने में तेज। परन्तु यह सब होने पर भी, प्रेम और परिचय की इच्छा रखते हुए भी, वह किसी की ओर अग्रसर न हो पाता था। अब उसकी समझ में आ गया था कि किसी की पैदाइश के चार-पाँच साल पहले मरने पर भी उसकी दादी तो हो सकती है, पर जन्म के दो-तीन वर्ष पहले मरने पर बाप नही। स्कूल तथा स्कूल के बाहर सर्वत्र उसमे एक विशेष प्रकार की झेप रहती, वह किसी से खुलकर बात ही न कर सकता, झिझक-झिझक कर बोलता और जब वह देखता कि दूसरे भी उससे बचना चाहते है, न कोई उसका परिचय प्राप्त करना चाहते है, न प्रेम, तब वह और भी दूर हटने का प्रयत्न करता। इन्दुमती उसे कितना चाहती थी, यह वह जानता था, पर वह माँ से वैसा स्नेह न करता, जैसा माँ उससे, बल्कि दूसरो की अपेक्षा भी वह माँ से अधिक विलग रहता। मयक के यहाँ डाक्टर त्रिलोकीनाथ तथा वजीरअली को छोड़कर और कोई न आता। इन दोनो से मयक घृणा करता, और अनेक बार यह घृणा प्रकट भी हो जाती। उसे न जाने कैसा सन्देह था इनके और अपना माँ के आपसी सम्बन्ध के विषय मे।

इन्दुमती को आशा थी कि बडे होने पर मयकमोहन ललितमोहन के

समान ही हो जायगा, पर उसने देखा कि उसका चहरा तो ललितमोहन के समान नही, पर पीछे से वह ललितमोहन के सदृश अवश्य दिखता है। इन्दुमती ने निश्चय किया था वह मयक को समाज का सामना करने के लिए तैयार करेगी, जरा और बडे होने पर, थोडी और समझ आने पर, किन्तु लडके का उसके प्रति यह व्यवहार उससे भी छिपा न रहा। अतः उसने देखा कि उसके पिता अवधबिहारीलाल ने उस (इन्दुमती) मे जिन भावनाओ को भर उसे समाज का सामना करने के लिए तैयार किया था, वैसा वह (इन्दुमती) मयक को करने में असमर्थ है। अनेक बार निश्चय करने पर भी वह मयक से इन मामलो के सम्बन्ध मे बात न कर पाती।

दशहरा आ रहा था। परन्तु इन्दुमती और मयकमोहन इस समय ऐसी मनोवृत्ति मे थे जिनके लिए साधारण दिवस और त्यौहार दोनो ही प्रकार के दिन एक-से रहते है।

इन्दुमती को इन दिनो मे अपने पिता का यह कथन कि 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' बार-बार फिर याद आने लगा था, और इस स्मरण के साथ वह अब फिर अपने जीवन का सिहावलोकन करने लगी थी। सिहावलोकन में वह देखती कि इस कथन को अधिकाश जीवन मे सिद्धान्त रूप से मानते हुए भी उसने व्यवहार सदा इसके विपरीत ही किया है। उसने विवाह न करने का निश्चय किया था, पर उसने विवाह किया। विवाह के पश्चात् भी उसे ललितमोहन को अन्य वस्तुओ के सदृश अपने आनन्द के लिए साधन मानना चाहिए था, पर उसने अपने आपको ललितमोहन मे ऐसा विलीन कर दिया कि उसकी मृत्यु के पश्चात् वह पागल हो गयी। स्वस्थ होने पर सँभल जाती, सो भी नही, ललितमोहन को ही फिर से प्राप्त करने की इच्छा की दासी हो गयी और मयक को भी वह अपने सुख का साधन न बना सकी एव अपने को मयक मे लीन कर दिया। किस तरह उसने मयक का पालन-पोषण किया, किस प्रकार के कष्ट पाये मयक के लालन-पालन में। वही मयक आज उसकी ऐसी अवहेलना कर रहा है कि वह तरसती रहती है उसे देखने के लिए और वह उसके पास तक नही आता। वह तडपा करती है उसकी बोली सुनने के लिए और उसे उसका स्वर श्रवण करना भी मयस्सर नही होता। उसने देखा कि उसने चाहे सारे मानव समाज को क्षुद्र माना हो,

किन्तु उन्ही मानवो मे से कुछ के सामने वह स्वय क्षुद्र रही है, वीरभद्र के सामने तक। उसे यह महसूस होने लगा कि पिता के उस उपदेश को कि 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।' यथार्थ मे न उसने कभी माना था, न आज मयक को अपने आनन्द के लिए एक साधन मान वह उसे मानने की मानसिक अवस्था मे थी।

मयकमोहन सारे ससार से कटकर एक नितान्त एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा था। जिस एकाकी जीवन में ज्ञान के कारण सुख रहता है यह, वह एकाकी जीवन न था, पर यह था बहिष्कृत जीवन का एकाकीपन। जो माँ उससे स्नेह करती थी, उस पर उसका थोड़ा भी प्रेम न रह गया था। शेष समाज मे उसे प्रेम-पात्र तो दूर रहा, सच्चा परिचय-पात्र तक न मिला था। उसका कोई ऐसा मित्र भी न था जिसके सामने वह हृदय खोल सके। फिर चौदह वर्ष की उसकी यह ऐसी अवस्था थी जो सुख पाने के मार्ग मे उसे बलात् ढकेलती। इसीलिए वह बार-बार प्रयत्न करता कि कहीं भी, किसी बात मे भी तो उसे सुख, शान्ति, सन्तोष कुछ तो मिले। पर आनन्द की जिस पगडण्डी में वह पैर रखता वही उसके लिए टेढी-मेढी सर्पाकार हो जाती। कभी वह आवश्यकता से अधिक हँसकर ही सुखी होने की कोशिश करता, पर तत्काल इसका परिमार्जन होता, घण्टो ही नही, दिनो की चुप्पी में। कभी वह मीलो भ्रमण करने जाता एव प्राकृतिक दृश्यो को ही देख आनन्द लूटने का प्रयत्न करता, पर इसका परिणाम यह निकलता कि लौटकर वह अपने कमरे मे इस तरह घुसता कि सप्ताहो तक बाहर ही निकलना असम्भव हो जाता। कभी वह ज्यादा सोकर ही शान्ति प्राप्त करना चाहता, बारह-बारह, चौदह-चौदह घण्टे सोता, जागता तो फिर तत्काल सोने का यत्न करता, इसका फल होता, लगातार अनेक राते जागृत अवस्था में बिताना। अब यह मैट्रिक का कोर्स पढ रहा था, पर न स्कूल ही बराबर जाता, न घर मे ही ठीक तरह अध्ययन कर सकता। उसे न काम मे सन्तोष मिलता, न निठल्लेपन मे, न नीद मे, न जागृत अवस्था मे, न घर मे और न बाहर।

अब तक हर त्यौहार पर वह माँ के पैर छूने जाता था। इस बार माँ लगभग दो वर्षो तक जेल मे रहकर लौटी थी, पर इस दशहरे को वह माँ के पास न गया। दिनभर वह अपने कमरे में ही बन्द-सा रहा। सन्ध्या को दुर्गा

की मूर्तियो के जुलूस निकले। रामलीला निकली। रावरण, कुम्भकर्ण, मेघनाद का वध हजारो वर्ष पहले हो चुका था, पर आर्यो को अनार्यो पर इस विजय को मनाने का सहस्रो वर्षो के बाद भी इतना उत्साह था कि वे कागज के बडे दीर्घकाय रावरण, कुम्भकर्ण और मेघनाद बना-बनाकर विजयादशमी के इस दिवस को उस विजय का वार्षिकोत्सव मनाते। पर मयक का इस सबसे कोई प्रयोजन न था। वह सन्ध्या को भी न अपने कमरे के बाहर निकला था, न ये जुलूस इत्यादि देखने की बात उसके मन मे उठी थी। जब अँधेरा हो चला तब नौकर ने आकर कमरे की बत्ती जला दी। अब मयक शौच तथा स्नान के लिए गुसलखाने जाने को उठा। जब वह स्नान कर लौटा तो उसने देखा कि उसके लिखने के टेबिल पर एक छोटा-सा फाइल रखा हुआ है। वह फाइल उसका नही था अत उसे कुछ कौतूहल-सा हुआ। उसने जल्दी से उसे उठाकर खोला और देखा कि उसमे पहले-पहल अग्रेजी का छपा हुआ एक लेख है। लेख का शीर्षक था—'आर्टीफिशल इनसेमिनेशन'। शीर्षक से लेख उसकी समझ मे न आया और उसने पढना आरम्भ किया। कुछ समझ मे आया और कुछ नही। पर उस छपे लेख के बाद उसने हिन्दी मे उसका अनुवाद फाइल मे देखा। यह लिखा हुआ था और अक्षर थे इन्दुमती के। उसने इस अनुवाद को पढा और सब विषय को समझ गया। इसके बाद फाइल मे डाक्टर त्रिलोकीनाथ की 'रायल एकेडमी ऑफ साइन्स' एव 'रायल कालेज फॉर मेडीसन' को भेजी हुई रिपोर्ट की प्रतिलिपि तथा उसका अनुवाद था। फिर वजीरअली का वह वक्तव्य था, जो उसने इन्दुमती के गर्भाधान सम्बन्ध मे पहले-पहल पत्रो को दिया था। तथा इसके बाद था डॉक्टर त्रिलोकीनाथ की मुलाकात का ब्यौरा, जो उसने इस गर्भाधान के सम्बन्ध मे अखबारो को दी थी। और इसके पश्चात् वजीरअली के उस वक्तव्य की अग्रेजी मे टाइप की हुई तथा हिन्दी मे लिखी हुई प्रतिलिपि थी, जो उसने 'रफाए आम' क्लब के सदस्यो की सभा मे मयक के जन्म के बाद दिया था और जिसमे अन्य बातो के साथ इन्दुमती की पवित्रता की भूरि-भूरि प्रशसा की थी।

मयक ने कितने चाव तथा कैसे वेग से इस सारे फाइल को पढ डाला! उसकी आँखो के सामने का परदा-सा फट गया और सारे भूतकाल के दृश्य को उसकी आँखो से निकलनेवाले आँसुओ ने धोकर साफ-सा कर दिया। उसके

मुँह से हठात् निकलने लगा—'तो···तो मेरी माँ ··मेरी माँ ऐसी ··ऐसी है ! उन्होने कोई बुरा काम नही किया।···वे कैसी शुद्ध···कैसी पतिपरायणा ·· कैसी साध्वी है। तो···तो यह रहस्य है, बाप की मृत्यु के तीन वर्ष पश्चात् मेरे जन्म का ! यह रहस्य है मेरे उनसे मिलते-जुलते होने का। कितना··· कितना पाप किया है मैने ऐसी·· ऐसी माँ से दूर हटने मे,···उन्हे कष्ट देने में, · स्वय क्लेश पाने मे। ··और···और मैने वृथा···वृथा ही डाक्टर त्रिलोकीनाथ तथा वजीरअली से भी घृणा की।···आह ! क्या-क्या···क्या-क्या मै सोचता था इनके सम्बन्ध मे !'

मयक ने उस फाइल को अपनी आलमारी में बन्द कर फिर से अच्छी तरह मुँह धो, बडी सावधानी से अपने बाल सँवारे। अच्छे से अच्छे खादी के रेशमी कपडे पहने। अपने को शीशे मे देखा तथा अपने साथ ही ललितमोहन के एक चित्र को। और इसके पश्चात् माँ के पास जाकर महान् श्रद्धा एव प्रेम से इन्दुमती के पैर छुए। मयक ने माँ को कुछ कहा नही, पर उसकी मुद्रा से इन्दुमती सभी कुछ समझ गयी। आखिर'फाइल वही तो मयक के कमरे मे रखकर आयी थी, इतने पर भी न समझती, पुत्र की भावनाओ को।

इन्दुमती जब से जेल से लौटी थी तब से उसने मयक को इतना सुखी, इतना उत्साहित न देखा था। मयक को ऐसा देख कुमुदनी के सदृश कैसा हृदय खिल गया इन्दुमती का। उसने बार-बार अपने मन मे कहा—'आह ! कैसा अच्छा दिन है आर्यो की इस विजयादशमी का।'

× × ×

मयक दशहरे की छुट्टियो के बाद स्कूल खुलने के समय का बडी आतुरता से रास्ता देख रहा था। जिस स्कूल जाने मे आजकल उसे नफ़रत-सी हो गयी थी, उसी स्कूल के फिर से खुलने के लिए वह व्यग्र था। वह सोचता रहता कि स्कूल के सारे शिक्षको और लडको से अब वह एक नये ढँग से मिलेगा। उनसे एक नये प्रकार से बात करेगा। कुछ लड़को को उस फाइल को भी दिखायगा। उसे अपने जीवन मे बिना जाने ही एक नया रस मालूम पड़ता था। उसने पढने-लिखने, घूमने-सोने, खाने-पीने, सभी बातो के लिए एक नया कार्यक्रम बनाया। माँ से वह उस फाइल के सम्बन्ध मे कोई बात न करता, परन्तु माँ के पास वह बहुत अधिक जाने लगा था, प्रेम से माँ से बाते करने

लगा था। उसके स्कूल में सभी उससे खिचे-खिचे रहते, पर एक शिक्षक उस पर कुछ कृपा रखते है, यह वह जानता था। वह बड़ा आतुर था उस फाइल को उन शिक्षक के पास ले जाने के लिए। वह उनके घर भी गया था, पर दशहरे की छुट्टियो के कारण वे उन्नाव चले गये थे, जहाँ के वे रहने-वाले थे।

आखिर किसी तरह स्कूल खुला। बडे अच्छे खादी के वस्त्र पहन मयक अपनी बग्घी मे स्कूल पहुँचा। लडाई के कारण पेट्रोल राशनिग था और मोटरे चलना बन्द-सा हो गया था अत वह अब गाडी पर स्कूल जाता था। वह आज अपने साथ अपने चमडे के बस्ते मे उस फाइल को भी ले गया था, पर उन शिक्षक महोदय को बताने के पहले उसने वह फाइल किसी अन्य को न बताने का निश्चय किया था। वह एक ऐसे ढँग से लडको से मिला, उसने इस प्रकार शिक्षको से अभिवादन किया, जैसे वह किसी निम्न श्रेणी से एक-दम किसी ऊँची श्रेणी मे आ गया है। उसने सबकी ओर ध्यान से देखा भी कि उसके व्यवहार में जो उसने परिवर्त्तन किया है, उसका कोई असर दूसरो पर पड़ा है या नहीं, पर जब उसे उनके बर्ताव में कोई फर्क न दिखा, तब वह कुछ निराश हो गया। किन्तु तत्काल ही उसे उस फाइल की याद आयी, और सोचने लगा, इस फाइल को जब लोग पढ लेगे, तब उनके व्यवहार मे अन्तर पडेगा। कई बार उसकी इच्छा कुछ व्यक्तियो को तत्काल फाइल दिखाने की भी होती, पर उसे अपना निश्चय याद आ जाता, वह सोचता, आज नही तो कल सही। वह अपने आप से कहता 'आज शाम तक उन शिक्षक से निपट कल बाकी लोगों से बात करूँगा।'

जब उन शिक्षक की क्लास खत्म हुई, तब मयक जल्दी से उनके निकट पहुँचा और उनसे बोला—'सर, आज मै छुट्टी के बाद आपका कुछ वक्त एकान्त मे चाहता हूँ।'

'हाँ, हाँ, छुट्टी के पश्चात् मेरे घर आ जाना।'

जिस स्कूल के खुलने की मयक आतुरता से बाट देख रहा था, आज उसके खुलते ही वह फिर उसके बन्द होने का अधीरता से प्रतीक्षा करने लगा, पर अभी तो कई घण्टे बाकी थे। आखिर किसी तरह छुट्टी हुई। मयक जल्दी से अपना बग्घी पर बैठ शिक्षक के घर पहुँचा, पर शिक्षक तब तक न लौटे थे।

उसके मन में उठा कि कही वे भूल तो नही गये कि उन्होने छुट्टी के बाद मुझे समय दिया है। उसके मन में विचार आया कि फिर वह एक बार स्कूल चल कर उन्हे देखे, पर स्कूल तो बन्द हो गया होगा। जब वह सोच रहा था कि वे शायद और कही चले गये, उसी समय साइकिल पर शिक्षक आ गये। शिक्षक को देख कितनी खुशी हुई मयक को। वह बग्घी से जल्दी-जल्दी उतरा। शिक्षक स्नेह से उसका हाथ पकड उसे मकान के अन्दर ले गये। बैठने का छोटा-सा कमरा था। कुछ साधारण-सी कुर्सियाँ, एक टूटी-सी टेबिल और एक तखत। तखत पर दरी बिछी थी और दरी पर मैली-सी खोली चढा हुआ एक मसनद रखा था। मसनद की एक और खोली के भीतर से उसका लाल खारुए का कपडा भी दिख रहा था, और उस कपडे मे से थोडी सी रुई भी निकली हुई थी। एक बडे आले मे अखबार बिछाकर कुछ पुस्तके रखी थी और उन पर काफी धूल नजर आ रही थी। शिक्षक ने मयक को एक कुरसी पर बैठने को कहा और स्वय जल्दी से भीतर चले गये। मयक सोचने लगा 'लो, ये तो फिर चल दिये, न जाने अब कब लौटेंगे।' पर शिक्षक अन्दर से शीघ्र ही लौट आये। उनके आने पर मयक खडा हो गया और जब वे तखत पर बैठ गये, तब वह भी बैठा।

शिक्षक ने स्नेहपूर्ण स्वर से कहा—'कहो, मयक ?'

मयक को शिक्षक का उसका हाथ पकडकर भीतर ले जाना, कुरसी पर बैठने के लिए कहना और यह स्वर सभी मे आज बडा स्नेह जान पडा। उसने धडकते हृदय और काँपते हाथो से अपने बस्ते मे से वह फाइल निकाला और बिना कुछ कहे उसे शिक्षक को दे दिया। शिक्षक फाइल ले खोलकर उसे देखने लगे और मयक टकटक उनका मुख। कैसे जोर-जोर से धडक रहा था उसका हृदय।

पहले कुछ देर गौर से देखने के बाद शिक्षक ने उस फाइल के कागजो को इधर-उधर से उलटकर देखना आरम्भ किया और फिर फाइल बन्द कर टेबिल पर रखते हुए बोले—'मै यह सारा हाल जानता हूँ, मयक।'

'तो''तो ये शिक्षक सारा हाल जानते थे। इसीलिए ये मुझ पर कृपा रखते थे, इसीलिए इन्होने मेरे प्रति आज इतना प्रेम प्रदर्शित किया। बाकी लोग जान जायँगे तो उनका बर्ताव भी मेरे साथ ऐसा ही हो जायगा।' मयक सोचने लगा। वह कुछ कह न सका और उसी प्रकार शिक्षक की ओर

देखता रहा ।

शिक्षक कुछ ठहरकर फिर बोले—'तुमको यह वृत्त शायद अब मालूम हुआ है ?'

'जी हाँ, दशहरे के दिन ।' मयक ने गला साफ करते हुए कहा ।

कुछ विचारते हुए शिक्षक बोले—'हाँ, लगभग पन्द्रह वर्ष पहले की बात हो गयी । उस वक्त तो सारे समाज मे इस घटना से तूफान-सा आ गया था, पर जनता की याद तो बहुत लम्बे समय तक नही रहती । लोग भूल गये ।'

'शायद इस समय के लोगो को यह हाल मालूम नही है ।' कुछ देर पश्चात् मयक ने कुछ भर्राये हुए स्वर मे कहा ।

'नही, बडे-बूढो को तो सभी को मालूम है, अपने स्कूल के कई शिक्षको को भी, लेकिन अब उसकी चर्चा कोई नही करता ।'

'और आपकी इस सम्बन्ध मे क्या राय है ?' फिर कुछ रुककर और भी भर्राये हुए स्वर मे मयक ने कहा । उसका दिल अब तो इतनी जोर से धड़क रहा था कि उसे जान पड़ता था कि वह उसके शरीर से बाहर निकलकर भाग जाना चाहता है ।

'मेरी राय ?' कुछ ठहरकर शिक्षक ने पूछा—'यह फाइल तुम्हारी माँ ने तुमको दिया है ?'

'जी हाँ ।'

'तो उन्होने यही समझकर दिया होगा कि तुम्हारी उम्र अब इन सब बातों को समझने लायक हो गयी ।' वे फिर कुछ ठहर गये और उन्होने पूछा 'चउदह-पन्द्रह साल के हो तुम ; क्यो ?'

'चउदह का हूँ, पर शायद कुछ अधिक का जान पडता हूँ ।'

'ठीक है, इस देश मे चउदह-पन्द्रह वर्ष के लडके भी इन मामलों को समझने लगते है । लड़कियो मे तो पहले बारह-बारह साल की लडकियो के बच्चे तक हो जाते थे । यह इस देश का दुर्भाग्य ही है ।—पर खैर । मै दूसरी ···मैं दूसरी ओर चला जा रहा हूँ ।·· तो तुम्हारी माँ ने तुम्हे यह फाइल कदाचित् इसीलिए दिया होगा कि तुम उन्हे अपनी राय दो , क्यो ?'

'यह तो उन्होने मुझे नही कहा । और · और खुद मुझे फाइल दिया भी नही; पर, दशहरे के दिन मुझे यह अपनी टेबिल पर मिला । और चूँकि इसके

कई कागजो मे मेरी माँ के अक्षर हैं, इसलिए मै समझता हूँ कि उन्होने ही इसे मेरी टेबिल पर रखा होगा।'

कुछ विचारते हुए शिक्षक बोले—'ठीक है, तुम्हारी माँ के सिवा और कोई इसे तुम्हारी टेबिल पर नही रख सकता और चाहे वे तुम्हारी राय न जानना चाहती हो, पर वे यह जरूर चाहती है कि तुम अपने जन्म का रहस्य समझ लो।' शिक्षक फिर चुप हो गये। मयक भी कुछ न बोला। कुछ ठहर कर शिक्षक ने पूछा—'तुम मेरी राय किस सम्बन्ध मे जानना चाहते हो?'

मयक के ओठ सूख गये थे, उसने ओठ गीले करते हुए कहा—'इस··· इस सारे··हाँ, सारे ही विषय पर, खास कर···खास कर इस पर कि मेरी माँ·· माँ के इस···इस काम को आप···आप उचित समझते है या नही?'

कुछ मुस्कराते हुए शिक्षक बोले—'तुम जानते हो कि मैं बहुत साफ-साफ कहने सुननेवाला आदमी हूँ।'

'सारा स्कूल यह जानता है। और इसीलिए तो मै यह फाइल मिलते ही आपके पास आया हूँ।'

'मेरी राय यह है कि तुम्हारी माँ ने उचित काम नही किया।' दृढता भरे स्वर मे शिक्षक ने कहा।

मयक का मुँह एकदम से उतर गया। उसने कुछ कहा नही। शिक्षक भी चुप हो गये। कुछ देर उस छोटे-से कमरे मे धैर्य विदीर्ण करनेवाली निस्तब्धता छा गयी। थोडे समय के पश्चात् मसनद से टिकते हुए शिक्षक ने कृत्रिम गर्भाधान के विरोध मे एक लम्बा व्याख्यान ही दे डाला।

व्याख्यान समाप्त हो ही रहा था कि उसी समय घर के भीतर से एक हाथ मे एक रकाबी मे कुछ मिठाई तथा नमकीन तथा दूसरे हाथ मे पानी का गिलास लेकर एक नौकरानी ने प्रवेश किया। रकाबी और गिलास को टेबिल पर रख वह वापस चली गयी।

मयक ने शिक्षक के इस सारे भाषण को मूर्ति के मानिन्द निश्चल बैठे हुए सुना था और बीच मे चार शब्द बोल देने पर भी उसकी निश्चलता में कोई फर्क न पडा था। खाने का सामान आने और शिक्षक के चुप हो जाने पर भी वह उसी तरह बैठा हुआ था मानो और कुछ सुनना चाहता है। यद्यपि शिक्षक की पूरी बाते मयक की समझ मे न आयी थी, पर जितना

उसने समझा था, उतना ही उसके लिए काफी था। शिक्षक उस पर कृपा रखते थे, आज उसने उनका स्नेह भी देखा था, एव अब खाने-पीने की यह व्यवस्था देख उसे यह भी विश्वास हो गया कि कम से कम ये शिक्षक उससे असहयोग की भावना अपने मन में नही रखते। और फिर यह सब तब, जब वे बाकी के लोगो के उसके साथ असहयोग का हाल जानते, तथा उनके असहयोग की निन्दा भी न कर, उसे स्वाभाविक समझते है। शिक्षक की अपने प्रति सहानुभूति का कारण भी मयक को मालूम हो गया था। उसके किसी पाप न करने की वजह से ही यह सहानुभूति थी। यह जानकर मयक का हृदय शिक्षक के प्रति मूक कृतज्ञता से भी भर गया। स्कूल मे भी इन शिक्षक की विद्वत्ता, चरित्र और स्पष्टवादिता की उसने हरेक के मुँह से प्रशसा ही सुनी थी। अत शिक्षक के इस लम्बे लैक्चर का मयंक के मन पर बहुत अधिक असर पडा। इन थोडे दिनो का मयक का सारा हर्ष मलियामेट होकर उसका हृदय फिर से उसी पुराने दु ख, अशान्ति, असन्तोष से भर गया। फिर अब तो इस दु ख, अशान्ति तथा असन्तोष मे ज्ञान की मात्रा का भी मिश्रण था। यह ज्ञान था जन्म भर माँ के पाप के प्रायश्चित्त का। पर जिस भाषण ने मयक को फिर से दु खी बना दिया था, उसी भाषण के सिलसिले को वह जारी रखना चाहता था।

जब शिक्षक ने उसे खाने के लिए कहा तब मयक चौक पडा। इकार तो वह न कर सका और उसने खाना भी शुरू किया, पर उसे भूख नही थी, अरुचि थी, इतना ही नही उसका गला रुका हुआ था। कौर ही वह न निगल सकता था।

× × ×

चउदह वर्ष के मयकमोहन के लिए उसके शिक्षक का वह भाषण शायद आवश्यकता से अधिक गम्भीर था। पूरी बाते उसकी समझ मे नही आयी थी, इतना ही नहीं, पर जो कुछ उसकी समझ मे आया था उसने भी उसके हृदय पर कुछ उल्टा-सीधा असर किया। उस भाषण के कुछ वाक्य बार-बार उसके मस्तिष्क में घूमने लगे—'मै नही जानता कृत्रिम गर्भाधान सफल हो सकता है या नही ?' 'स्त्री-पुरुष का परस्पर कोई सम्बन्ध ही न रहे और मानवो की रचना पिचकारियो से हो, यह तो सामाजिक ही नही किन्तु

प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध आधुनिकता का बलवा है, जिसकी आजकल इतनी प्रशसा हो रही है।' 'तब तो धार्मिकता तथा नैतिकता दूर रही, प्रेम के ढाई अक्षरो का अस्तित्व भी नष्ट हो जायगा।' 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है, बिना सामाजिक सहयोग के उसका एक दिन भी गुजर नही चल सकता।' 'तुम्हारे किसी दोष के कारण यह असहयोग नही है, अत यह और बडी ट्रेजिडी है।' 'तुम्हारी माँ ने चाहे वह पाप न किया हो, जिसे व्यभिचार कहते है, लेकिन उन्होने उससे भी बडा पाप किया है, क्योकि व्यभिचार तो समाज के प्रति पाप है, किन्तु उन्होने जो पाप किया है, वह निसर्ग के प्रति है।' 'तुम्हे माँ के पापो का प्रायश्चित्त करना पड रहा है, शायद जन्म-भर करना पडे, तब तक तो बहुत बडे परिमाण में, जब तक तुम्हारी माँ हैं।' 'कृत्रिम गर्भाधान पर विश्वास करनेवाली कोई भी स्त्री अपने लड़के की पत्नी के लिए किन-किन गुणो का होना आवश्यक है इस पर न जाने किस नजर से विचार करेगी और उस लड़के को भी सोचना होगा कि वह माँ की राय पर कहाँ तक चले।'

मयंक सोचने लगा—'शायद कृत्रिम गर्भाधान सफल न हुआ हो। सामाजिक सहयोग के बिना तो सचमुच कैसे चल सकता है ? कृत्रिम गर्भाधान सफल हुआ हो तो भी और सफल न हुआ हो तो भी, दोनो ही दृष्टियो मे माँ ने घोर पाप किया है। मुझे सचमुच ही माँ के पापो का प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है, शायद जन्म भर करना पडे और जब तक माँ है, तब तक तो सचमुच ही बहुत बडे परिमाण मे। और ऐसी माँ को भला मै पत्नी के चुनाव का अधिकार कैसे दे सकता हूँ।'

जिस पतिपरायणता के कारण माँ के लिए उसकी असीम श्रद्धा हो गयी थी, अपने को ललितमोहन से कुछ मिलता-जुलता पाकर, या न जाने क्यो मानकर, जो श्रद्धा न जाने कितनी गुनी बढ गयी थी, उसका कोई खयाल ही इस समय मयक के मन मे नही आया। वह बार-बार सोचने लगा—'किसी तरह यदि इस माँ से मेरा पिण्ड छूट सकता।'

उसने फिर माँ के पास जाना छोड दिया और दिन-रात पुन उसी प्रकार का एकाकी जीवन बिताने लगा।

इन्दुमती से मयक का दुबारा यह परिवर्त्तन छिपा न रहा। उस फाइल'

को पुत्र को दे वह अपना अन्तिम शस्त्र चला चुकी थी। वह बार-बार सोचने लगी कि उसके पिता अवधबिहारीलाल उससे जैसी स्पष्ट बाते कर सकते थे, वैसी वह मयक से क्यो नही कर सकती। जिस बात का उत्तर उसे अनेक बार के प्रश्नो पर न मिला था, एकाएक एक दिन सूझ पडा—अवधबिहारीलाल ने सिद्धान्तो पर बाते करने के सिवा कोई भी कार्य समाज की प्रचलित नैतिकताओ के विरुद्ध न किया था, परन्तु वह तो कुछ कर चुकी है, और जो कुछ वह कर चुकी है, उसे जब उसका पुत्र तक उचित नही मानता, फाइल पढ लेने पर भी नही, तब वह प्रत्यक्ष मे उससे कौनसी बात करे ? वह मयक को समाज का सामना करने के लिए तैयार करना चाहती थी, पर उसने देखा कि यह तभी सम्भव था जब उसने भी अवधबिहारीलाल के समान सिद्धान्तों पर केवल बाते ही बाते की होती। उसके लिए अब पुत्र को समाज का सामना करने के लिए तैयार करना सर्वथा असम्भव था।

: ४० :

सन् ४१ के अन्तिम मास दिसम्बर का आरम्भ हो रहा था। व्यक्तिगत सत्याग्रह भारत की राजनीति में जो एक नया जोश लाया था वह इस एक वर्ष में समाप्तप्राय हो चुका था। गान्धीजी की इस आज्ञा को कि सत्याग्रही जेल से छूटते ही पुन. सत्याग्रह करें बहुत कम लोगो ने माना। भारतीय राजनैतिक वायुमण्डल में पुन शिथिलता आ गयी थी। हॉ, कम्युनिस्ट पार्टी ने रूस के विरुद्ध जर्मनी का आक्रमरण होते ही युद्ध को जनता का युद्ध कह युद्ध मे सरकार को पूरी-पूरी सहायता करने का आन्दोलन अवश्य आरम्भ कर दिया था। सन् ३९ मे लडाई शुरू होते ही कम्युनिस्ट पार्टी ने जितनी तेजी से लड़ाई का विरोध किया था उतनी ही तेजी से अब वह लडाई का समर्थन कर रही थी। पर उस समय लडाई के विरोध में इस दल को जनता की जो थोडी-बहुत सहायता मिली थी, वह इस समय नही मिल रही थी। कारण

स्पष्ट था। सरकार ने कांग्रेस के द्वारा लडाई के उद्देश्यो के स्पष्टीकरण करने की मॉग को अब तक स्वीकार न किया था और भारत की जनता इस समय की राजनैतिक शिथिलता मे भी कांग्रेस के साथ थी।

वजीरअली कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य होने पर भी इस समय अपने दल से सहमत नही था। उसे रूस के साथ सहानुभूति अवश्य थी, और वह कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यो को ही न होकर सभी को थी, परन्तु रूस पर आक्रमण होने से ग्रेट ब्रिटेन जो युद्ध लड रहा था वह साम्राज्यवादी युद्ध न होकर जनता का युद्ध कैसे हो गया यह वजीरअली और कुछ अन्य साम्यवादी मित्रों के समझ मे न आ रहा था।

योरप मे अभी भी बराबर जर्मनी की जीत हो रही थी। मित्रराष्ट्रो की ओर से सन् ४१ के अगस्त महीने में 'एटलांटिक चार्टर' नामक घोषणा के अतिरिक्त और कोई नयी बात न हुई थी। इस घोषणा में लडाई के बाद हर देश की स्वाधीनता तथा हर देश के नागरिको के नागरिकता के अधिकारो के सम्बन्ध मे कुछ मीठी-मीठी बाते कही गयी थी, पर वे मीठी बाते भी भारत में अमल मे न लायी जायँगी, यह ९ सितम्बर, १९४१ को ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल ने कह दिया था।

इसी वायुमण्डल में तारीख ७ दिसम्बर सन् ४१ को जापान ने युद्ध की घोषणा की। जापानी सेनाएँ तो बर्मा, मलाया आदि देशो मे इस तेजी से बढी, जिस तेजी से जर्मन सेनाएँ भी योरप मे न बढने पायी थी। उसके दूसरे दिन ही अमरीका भी युद्ध में आ गया। यद्यपि बहुत समय से अमरीका मित्रराष्ट्रो को लड़ाई मे सहायता दे रहा था, परन्तु युद्ध की घोषणा उसने सन् ४१ के ५ दिसम्बर तक न की थी।

जापानी आक्रमण होते ही कांग्रेस को अपनी नीति मे परिवर्त्तन करना उचित प्रतीत हुआ। बारडोली मे ता० ३० दिसम्बर को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसने सरकार से बिना कोई समझौता हुए भी व्यक्तिगत सत्याग्रह वापस ले लिया। इसके पहले भी कांग्रेस बिना समझौते के सत्याग्रह आन्दोलन वापस ले चुकी थी।

बर्मा, मलाया आदि पर विजय करती हुई जापानी सेनाएँ बराबर बढ रही थी। जापान का भारत पर आक्रमण होने की भी सम्भावना थी।

यह सम्भावना देखते ही ब्रिटिश गवर्नमेट ने अपनी नीति मे एकाएक परिवर्त्तन किया और मार्च सन् ४२ मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारतीय राजनैतिक गुत्थी सुलझाने के लिए भारत भेजा। इस समय अग्रेजी साम्राज्य के प्रधान मन्त्री यद्यपि मि० चर्चिल ही थे तथापि गरज ने उन्हे भी झुका दिया। क्रिप्स ने आते ही बडे-बडे आशावादी वक्तव्य दिये, पर उनके भारत मे रहते-रहते ही अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति फिर से अग्रेजो के पक्ष मे सुधरती दिखी और स्टैफर्ड क्रिप्स ने इस उक्ति को तत्काल सार्थक कर दिया—

'गरज परे कछु और है
गरज सरे कछु और।'

क्रिप्स-मिशन असफल हुआ। परिणाम यह हुआ कि गान्धीजी के सदृश धैर्यशाली व्यक्ति भी तलमला उठे। लडाई चलते हुए लगभग ढाई वर्ष हो चुके थे। इन ढाई वर्षों मे काग्रेस ने लडाई मे सरकार की प्रत्यक्ष सहायता न करते हुए भी जर्मनी, इटली और जापान की नीति का सदा विरोध किया था और सरकार ने भारत से लडाई के लिए जो सहायता ली थी उसमे कोई रोडा भी न अटकाया था। भारतीय प्रश्न को इतने दीर्घकाल तक टालने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स को भेजा था और उन्होने आते ही जो वक्तव्य दिये थे उनसे देश का वायुमण्डल आशा से भर भी गया था। आशा में जब एकाएक निराशा की उत्पत्ति होती है, तब वह निराशा बड़ी तीव्र निराशा होती है। और ऐसी निराशा ने यदि गान्धीजी के सदृश व्यक्ति को भी तलमला दिया तो कोई आश्चर्य की बात नही।

गान्धीजी ने ऐलान किया—'अँग्रेज भारत छोडे।'

वजीरअली इस समय बम्बई आया हुआ था। उसने कम्यूनिस्ट पार्टी के नेताओ को बहुत समझाया कि वे रूस की ओर देखना छोड़ भारत की इस आजादी की लडाई मे हिस्सा ले, पर उन्होने जब वजीरअली का कहना न माना तब वह अपने कुछ मित्रो के साथ कम्यूनिस्ट पार्टी से इस्तीफा दे इस क्रान्ति में सम्मिलित हो गया। बम्बई से ही उसने इन्दुमती से एक साथी के हाथ पत्र भेजकर आन्दोलन को आर्थिक सहायता करने की प्रार्थना की। उसने इस पत्र के अन्त में लिखा—'बहन, कानपुर के मजदूरो के काम के लिए एक बार जब तुमने पाँच हजार की सहायता दी थी तब मैने उसे बहुत अधिक

बता तुम से इस तरह रुपया बर्बाद न करने के लिए कहा था, पर आज तुम जितनी ज्यादा से ज्यादा मदद दे सकोगी मै सहर्ष मजूर कर तुम्हे अगणित धन्यवाद दूँगा।' इन्दुमती मयक से ऊबी हुई थी ही। पत्रवाहक के हाथ ही उसने वजीरअली को दस हजार रुपया भेज दिया और भविष्य मे पूरी सहायता देने का वचन दिया।

हिमालय से ले कन्याकुमारी तक और अरब समुद्र से ले बगाल की खाडी तक देश मे क्रान्ति की आग लग गयी। तीन नारो के साथ यह आग फैली ··

'अँग्रेजो भारत छोडो।'

'करो या मरो।'

'खुला विद्रोह।'

इस आन्दोलन मे कुछ और बाते भी हुईं जो ध्यान आकृष्ट किये बिना नही रहती। मुस्लिम लीग का विरोध होते हुए भी जब तक आन्दोलन चला एक स्थल पर भी हिन्दू-मुस्लिम दगा नही हुआ। विद्यार्थियो ने इस क्रान्ति मे जितना भाग लिया उतना इसके पहले के किसी आन्दोलन मे नही लिया था। आन्दोलन देशी रियासतो मे भी हुआ। अनेक काग्रेसवादियो ने गुप्त रह कर अन्दर ही अन्दर आन्दोलन का सचालन किया और उसे प्रगति दी।

वजीरअली इन्ही गुप्त कार्य करनेवालो मे से एक था। इन्दुमती से आर्थिक सहायता ले न जाने कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार घूम-घूम कर अगणित कष्टो की परवाह न कर उसने अनेक प्रान्तो मे क्रान्ति को सहायता पहुँचायी। पर वह दो महीने से अधिक समय तक गुप्त रहकर कार्य न कर सका। सन् ४२ के अक्टूबर मे वह गिरफ्तार कर लिया गया।

: ४१ :

इन्दुमती को जेल से छूटे लगभग १६ महीने हो चुके थे और मयक को कृत्रिम गर्भाधानवाला फाइल दिये करीब एक वर्ष। इस फाइल को देखने के

पश्चात् मयक का उसके प्रति व्यवहार एक बार सुधरने के बाद बहुत जल्दी फिर बिगड गया था। इस अन्तिम बिगाड के पश्चात् तो मयक उसके पास आता ही न था। इन्दुमती की मनस्थिति अच्छी न रहती थी। वजीरअली की इस गिरफ्तारी के बाद उसके मन मे बार बार उठने लगा—'मै सुलग रही हूँ और धीरे-धीरे सुलग रही हूँ। किसी तरह ज्वालामुखी के समान यदि फट पड़ती।' हठात् इन्दुमती के मन मे आया—'क्यो आज मै अपने पिता के उस उपदेश को कि—"विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है" कार्य रूप मे परिणत नही कर सकती ? यथार्थ मे मैने अब तक माँ के उपदेश को कि "स्त्री का विकास तो पत्नित्व और मातृत्व मे ही है" कार्यरूप मे परिणत किया है। दोनो मे मै असफल रही। पिता के कथन पर तो अब तक मैने कभी अमल ही नही किया।' उसे अपने सारे जीवन की एक-एक घटना याद आने लगी। शनैः शनैः उसने सारे जीवन का फिर से सिहावलोकन कर डाला और उसने देखा कि जन्म लेने की गलती के सिवा जीवन की सारी गल्तियाँ उसी की की हुई थी। उसे जान पडा कि उसका जीवन था उसके माने हुए सारे सिद्धान्तो का खण्डहर। कुछ देर को उसे ज्ञात हुआ जैसे सब कुछ राख हो चुकी है और किसी भी कृति द्वारा राख मे से ज्वालाएँ नही पैदा की जा सकती। इन्दुमती के मन मे फिर आत्महत्या की बात उठी, पर इस बात को मन से निकाल फेकने मे उसे बहुत थोडा समय लगा। उसके मन मे आया—इस समय का जीवन बुरा होगा, परन्तु मृत्यु जीवन से अच्छी कैसे हो सकती है, वह मृत्यु जिसके समीप वह सन् १८ के इन्फ्लुएन्जा में पहुँच चुकी थी, वह मृत्यु जिसे उसने अपने पिता और पति पर आघात करते देखा था। और जब वह यह सोच ही रही थी, उसी समय उसे अपनी पढी हुई एक चीज याद आयी। उसने कही पढा था—'इच्छाओ और जीवन की अभिलाषा का कभी अन्त न होने देना सबसे महान् बात है।'

यह याद आते ही वह सोचने लगी—'आज भी यदि मै अपने को ही केन्द्र मानकर सब कुछ अपने लिए करूँ, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानूँ, तो क्या मेरा जीवन सफल तथा सुखी नही हो सकता ?' और यह विचारते-विचारते उसने एक बडे शीशे मे अपने को सिर से पैर तक देखा। जिस तरह आज उसने अपना अवलोकन किया, उस प्रकार

वीरभद्र की गिरफ्तारी के पश्चात् कभी न किया था। उसने देखा कि बयालीस वर्ष की होने पर भी वह अभी भी सुन्दर है। कानो के निकट कुछ बाल सफेद जरूर हो गये हैं, पर उन्हे काले कर लेना कठिन नही। आँखो के चारो ओर कुछ श्यामता भी आ गयी है तथा कुछ शिकन भी है, लेकिन आजकल कितनी तरह के रोगन और पाउडर निकल आये है। उसने 'लिपस्टिक', 'नेलपेन्ट' आदि अब तक कभी काम मे ही नही लिये थे। उन्हे उपयोग में लाने पर तो शायद वह इतनी सुन्दर दिखेगी जितनी इसके पहले कभी दिखी ही न होगी। और इन खादी के कपड़ो को छोडकर यदि वह पुन वैसे ही कपडे पहनने लगे, जैसे सन् २१ के पहले पहनती थी, कितनी खूबसूरती बढ जायगी उसकी। तब तब फिर से लोटने लगेगे ये सामाजिक कुत्ते उसके चरणो मे और···और वह उन्हे किस तरह दुत्कारेगी।

उसने अपना 'बेंक बैलेन्स' देखा। मजदूर आन्दोलन, वीरभद्र और पार्वती के मुकदमे और सन् ४२ के आन्दोलन मे सहायता देने के पश्चात् भी पिता उसे जितना दे गये थे उससे उसने अपना 'बैक ब्लेस' कितना बढा लिया था ; खास कर मयक के पेट मे आते ही तो उसने मयक के लिए किफायत कर-कर उपर्युक्त कुछ खर्च हो जाने पर भी एक-एक पैसा जोडा था और उसके बालिग होने पर लाखो रुपये की यह रकम वह उसे देनेवाली थी। उसके पिता सदा कहा करते थे—'स्त्री की हीनता यथार्थ मे उसकी आर्थिक पराधीनता के कारण है।' वह आर्थिक दृष्टि से किसी पर निर्भर नही। इस रुपये से वह ऐसा कौनसा सुख है जो नही खरीद सकती। और जब वह यह सोच रही थी, तब उसे कभी पढा हुआ अग्रेजी साहित्यकार समरसैट मोघम का यह कथन याद आया—'धन मनुष्य के लिए छठवी इन्द्रिय के समान है, जिसके बिना वह शेष पॉच इन्द्रियो का समुचित उपयोग नही कर सकता।'

फिर वह चित्रकार है, सगीतज्ञ है। कला उसे कितना आनन्द दे सकती है। मयक भी आखिर उन्ही परमाणुओ का सग्रह है। क्या वह मयक को नही छोड सकती ? और यथार्थ मे मयक ने उसे त्याग दिया है। तब वह यह कमजोरी क्यो दिखा रही है ? निर्बलता को उसने हमेशा ही ठुकराया है। अब तो ऐसा मौका है, जब उसे इस कमजोरी को इस जोर की ठोकर मारनी चाहिए, जैसी उसने इसके पहले कभी न मारी थी। हाँ, मयक को वह दुनियाँ

में लायी है अत उसके लिए समुचित प्रबन्ध कर देना भी उसका काम है। काफी स्थावर सम्पत्ति है। यदि इस सम्पत्ति का ट्रस्ट बना, सारा नकद रुपया स्वय ले, इस घर को वह सदा के लिए छोड दे। अपना नाम, अपना वेष, सब कुछ बदल फिर से यदि एक नया गोता इस ससार समुद्र मे लगावे और इस बार पिता के उस उपदेश का अक्षरशः पालन करने के लिए, तो ? मयक का भी शायद इसी मे अधिक कल्याण होगा। वह जैसा उचित समझेगा, समाज से बर्तेगा, सामना करना होगा, सामना करेगा, शरण जाना होगा, शरण जायगा। समझने सब कुछ लगा ही है। दो-तीन वर्ष मे बालिग हुआ जाता है। माँ है ही। जब वह (इन्दुमती) चल देगी, तब यह निरर्थक पूजा-पाठ छोड, माँ उसे बालिग होने तक आप ही सँभालेगी। और तब जब वह चल देगी, शायद मयक को भी मालूम होगा कि वह कैसी थी। मयक के बालिग होने तक उसकी इस तरह की व्यवस्था के सम्बन्ध मे जब इन्दुमती बार-बार विचार करने लगी तब उसके मन मे उठा—अठारह वर्ष की उम्र के नीचे नाबालिग तो सभी रहते है, पर बालिग होने पर जिन्हे कुछ मिलनेवाला नही है उनका और बालिग होते ही राज्य तथा सम्पत्ति के अधिकार पानेवालो का क्या मिलान किया जा सकता है ? अकिचन नाबालिगो के बालिग होते ही उनकी रक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ कानूनी हक भी चले जाते है, किन्तु सम्पत्ति-शाली नाबालिगो के बालिग होते ही उन्हे कितने अधिकार तथा अधिकारो को काम मे लाने के कितने साधन मिल जाते है। इसीलिए तो अकिचनो को जहाँ अपनी अवस्था का ध्यान नही रहता वहाँ श्रीमानो के पुत्र समझ आते ही बालिग होने के एक-एक दिन आतुरता से गिनने लगते है। इन्दुमती को जान पडा जैसे मयक भी अपने बालिग होने के दिन गिन रहा है और उसने सोचा कि मयंक बालिग होते ही उसे ठोकर मारकर उसे छोड़े, इससे कही अच्छा है कि वही उसे छोड़ दे।

और जब वह यह सब सोच रही थी तब उसकी दृष्टि ? उसकी दृष्टि इस समय निर्णयात्मक ही न थी, साहसपूर्ण ही न थी, पर उसमे निर्णय तथा साहस से भी बड़ी कोई चीज थी।

कई दिनो के मानसिक सघर्ष के पश्चात् इन्दुमती ने गृहत्याग का निश्चय किया। और जब उसने यह निश्चय किया तब एकाएक उसकी दृष्टि एक

मकड़ी के जाले पर पड गयी। इसके पहले उसने मकडी का जाला देखा न हो, यह नही, पर आज यह जाला देखते ही उसने जीवन का मिलान इस जाले से कर डाला। जाले का हर तन्तु एक दूसरे से जुडा हुआ था, व्यवस्थित, परन्तु इतने पर भी था वह जाला, जरा से धक्के से भग हो जानेवाला, पर इतने पर भी बड़ी-बडी आँधियो को सहन करने मे समर्थ ! मकडी के इस जाले ने उसके गृहत्याग के निर्णय पर मुहर लगा दी। और इस मुहर के लगते ही एकाएक उसका सिर कुछ और ऊँचा उठ गया तथा कन्धे कुछ पीछे को हट वक्षस्थल आगे को आ गया। उसने बिना किसी को भी जनाये, त्रिलोकीनाथ को भी बिना कुछ कहे, लखनऊ के एक वकील से अपनी स्थावर सम्पत्ति का मयक की नाबालगी तक के लिए ट्रस्ट लिखवाया। ट्रस्टी नियुक्त किये—सुलक्षणा और त्रिलोकीनाथ ; स्थावर सम्पत्ति की आमदनी मे से सुलक्षणा तथा मयक के खर्च के लिए काफी से ज्यादा रकम मुकर्रर की और वकील को जरूरत से कही अधिक फीस देकर उसे अपनी गैरहाजिरी मे सुलक्षणा और त्रिलोकीनाथ से मजूरी लेकर ट्रस्टडीड की रजिस्ट्री का काम सौपा। उसने वकील साहब से कह दिया कि वह दोनो के नाम चिट्ठी छोड जायगी और उसे विश्वास है कि उसकी गैरहाजिरी मे दोनो ट्रस्टी होना मजूर कर लेगे। इस सम्बन्ध मे अपनी तरफ से कुल कानूनी कार्रवाई करने के लिए उसने उस वकील की राय से एक सज्जन को अपना मुख्तारनामा दिया और उसी के साथ इतना बडा शुकराना, जितना उसे जन्म भर मे कभी किसी एक जगह से न मिला था। उसने वकील को अपना पता भी भेजने को कह दिया, जहाँ वह पन्द्रह दिन तक रहेगी। वकील इसके अन्दर कुल कानूनी कार्रवाई निपटाकर उसे सूचना भेज दे, पर उसके पते को अपने पास तक ही रखे। इसके बाद उसने सारा 'बैक बैलेन्स' इम्पीरियल बैक, इलाहाबाद बैक और सेण्ट्रल बैक में शशिबाला के नाम से कराया और स्वय अपना नाम शशिबाला रख, बैको पर चैक काटने के लिए अपने नये हस्ताक्षर का नमूना दे दिया। जब उसने अपना नाम बदलने का निश्चय किया तब उसे एकाएक याद आ गया कभी पढा हुआ फ्रास के महान् साहित्यिक अनातोले फ्रास का यह कथन—'गुणी जनो के एक से अधिक नाम हुआ करते है।' अनातोले फ्रास का यह कथन चाहे इस प्रकार नाम बदलने का समर्थन न करता हो, पर इन्दुमती ने तो इस वाक्य को

अपना समर्थक ही माना ।

एक दिन प्रात काल सुलक्षणा और त्रिलोकीनाथ दोनो को एक-एक छोटा-सा पत्र मिला । दोनो पत्रो का मजमून एक-सा था ।

'अपने और मयक दोनो की हित-दृष्टि से मै हमेशा के लिए घर छोड़ रही हूँ । मयक की नाबालगी तक जायदाद का एक ट्रस्ट बना जाती हूँ । आप ट्रस्टी होना मजूर न करेगे तो मयक के साथ घोर अन्याय होगा । ट्रस्ट का कुल कानूनी काम श्री अयोध्याप्रसादजी वकील निण्टावेगे ।

मेरी खोज खबर की कोई कोशिश न की जाय, इसे मै अक्षम्य मानूँगी ।

•••इन्दुमती'

दोनो पत्रो मे सम्बोधन भिन्न-भिन्न थे एक मे 'पूज्य माँ' और एक मे 'प्रिय त्रिलोकीनाथजी' ।

सुलक्षणा ने जब यह पत्र पाया, तब अपना सिर ठोककर इतना ही बोली—'हे भगवान् ! यह बेटी !'

त्रिलोकीनाथ तत्काल अयोध्याप्रसाद वकील से मिला और इसके बाद सुलक्षणा से ।

जब मयक को यह मालूम हुआ, तब उसके हर्ष का ठिकाना न रहा ।

और शशिबाला को उसके नये पते पर पन्द्रह दिन के अन्दर ही यह चिट्ठी मिल गयी कि सारी कानूनी कार्रवाई समाप्त हो गयी है । चिट्ठी के साथ ही ट्रस्टडीड की रजिस्ट्रार की मुहरवाली प्रतिलिपि भी थी । शशिबाला ने उसी दिन अपना वह पता भी बदल दिया ।

× × ×

बम्बई शशिबाला गयी थी अपने नाम के साथ ही बाह्यरूप के परिवर्त्तन के लिए । आधुनिकता मे बम्बई इस देश मे सबसे आगे है । बम्बई पहुँचकर पहले उसने अपने बालो को कटवाया । अब उसके केश 'बॉब्ड' हो गये । फिर उसने उन्हे, जहाँ-जहाँ सफेद हो गये थे, रगवाकर काले किया, और रगो की विधि अच्छी तरह सीखकर रंग का अच्छे से अच्छा सामान खरीद लिया । बालो से निपटकर उसने चमडी की झुर्रियो तथा आँखो के चारो ओर की श्यामता पर लगाने के लिए कुछ विशेषज्ञो की राय लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगन एव पाउडर खरीदे और उनका उपयोग करना भी अच्छी तरह सीखा ।

'लिपस्टिक' तथा 'नेलपेन्ट' भी लिये, पर इन्हे काम मे लाने की विधि कठिन न थी। इसके बाद वह कपडेवालो के यहाँ पहुँची। अच्छी से अच्छी 'जार्जेट', 'क्रेप' इत्यादि की विविध प्रकार के कामवाली साडियाँ खरीदी, अच्छे से अच्छे दरजियो से ब्लाउज, जम्पर वगैरह सिलवाये। चूँकि यहाँ से उसका विचार जाडा होने पर भी कुछ पहाडो पर बरफ गिरना देखने जाने का था, इसलिए कुछ गरम कपड़ा भी लिया तथा उसके कोट आदि बनवाये। परो से भरे हुए रेशमी गद्दे, तकिये, दुलाइयाँ और कोमल तथा गरम कम्बल भी खरीदे। इस समय लडाई के कारण यह सारा सामान उसे कठिनाई से मिला, बहुत मँहगा भी, कोई-कोई चोरबाजारो से, लेकिन किसी बात को ठानने के पश्चात् उसे पूरी करने मे जो विघ्न आते, उनका सामना करना वह जानती थी।

जिस प्रकार सन् २१ मे विदेशी और मिल के कपडो की होली कर उसने खादी पहनी थी, उसी तरह सन् ४२ मे खादी की होली कर फिर से उसने विदेशी और मिल का कपड़ा पहना। जब बालो को नये ढँग से सँवार, चेहरे पर रोगन, पाउडर, लिपस्टिक वगैरह का उपयोग कर जार्जेट की चमकती हुई साडी तथा जम्पर धारण कर एव जेवर पहन वह शीशे के सामने खडी हुई, तब उसने देखा कि सचमुच ही उसने अपनी उम्र दस-बारह वर्ष कम अवश्य कर ली है। अब वह तीस वर्ष के आस-पास दिखायी देती है। युवावस्था और सुन्दरता दोनो ने उसका साथ नही छोडा है। कितनी सुन्दर अभी भी है वह! वह एक बार तो अपने आप पर मोहित हो गयी। अपने को शीशे में देखते-देखते धीरे-धीरे उसने शीशे के निकट खिसकना आरम्भ किया। शनै शनै वह उसके इतने समीप आ गयी कि उसे अपने आपको देखना सम्भव न रहा। और वह अपने आपको आलिगन करने शीशे से भिड गयी, परन्तु हाय? उसमें कहाँ वह गरमी थी जो प्रेमियो के आलिगन मे रहती है! वह शीतल शीशा! इस घटना ने एकाएक उसे दु खी बना दिया। उसे वे दिन, वे घडियाँ, और वे क्षण याद आने लगे, जो उसने ललितमोहन के सग बिताये थे। उसके सौन्दर्य, उसकी युवावस्था के सम्बन्ध मे समय-समय पर कहे हुए ललितमोहन के वाक्य उसे याद आने लगे। उसे वीरभद्र भी याद आया, पर आज उतना नही जितना ललितमोहन। इन्दुमती को अपना सौन्दर्य और यौवन निरर्थक जान पड़ा, पर उसी समय हठात् याद आ गया उसे अपने पिता का कथन।

फिर उसे समाज स्मरण आया, जिसे उसने अब नये ढँग से पददलित करने का निश्चय किया था और समाज याद आते ही उसकी पुरानी उद्दण्डता तथा अकड शत-शत गुनी होकर उसमे फिर से भर गयी। इस शारीरिक और मानसिक परिवर्त्तन का असर उसके व्यवहार मे भी पडा। वह आपसे आप इस तरह का व्यवहार करने लगी जैसे उसकी उम्र पच्चीस वर्ष से अधिक न हो। उद्दण्डता और अकड उसके इस व्यवहार मे भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी।

अपने भावी जीवन के लिए उसने अपने व्यक्तित्व को ही सब कुछ समझ ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मान, पार्थिव दृष्टि से अधिक से अधिक सुख भोगते हुए अपना निम्नलिखित कार्यक्रम बनाया था—

(१) भारतवर्ष और विदेशो मे घूमकर दर्शनीय स्थानो को देखना।

(२) जो स्थान बहुत अच्छे जान पडे, उनके चित्र बनाना।

(३) जहाँ जाना वहाँ की प्रसिद्ध सार्वजनिक सस्थाओ को दान देना और देखना कि किस तरह लोग उसके चारो ओर मक्खियो के समान भिन-भिनाते है।

(४) कुछ प्रतिष्ठित कहलानेवाले व्यक्तियो को प्रेम के मार्ग मे भी अपनी ओर आकर्षित करना और फिर उन्हे कुत्ते के सदृश दुत्कार देना।

(५) अवकाश के समय साहित्य का अध्ययन करना।

शशिबाला ने बम्बई से ही अपना नया कार्यक्रम आरम्भ किया। पहले उसने हिन्दी के प्रसिद्ध प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यज्ञो के ग्रन्थ खरीदे, इसके पश्चात् हिन्दी मे अनूदित अन्य भारतीय भाषाओ की पुस्तके, और फिर उसने अग्रेजी मे इग्लिस्तान तथा योरप एव अमेरिका के कुछ प्रसिद्ध लेखको का साहित्य लिया। एक छोटा-सा चलता-फिरता पुस्तकालय ही उसके साथ हो गया और उसने तय किया कि जहाँ वह जायगी, अपने इस पुस्तकालय को 'लगेजवेन' मे डलवाकर साथ-साथ ले जायगी।

अब वह बम्बई के दर्शनीय स्थानो मे घूमने निकली, पर है! यह क्या? 'प्रथमग्रासे मक्षिकापात' उसे इन स्थानो मे घूमते हुए, ललितमोहन के सग बम्बई मे बिताये दिन क्यो याद आने लगे? जितना ही वह उन्हे भूलने की

कोशिश करती, उतने ही अधिक वे स्मरण आते। उसने तत्काल बम्बई छोड देना तय किया। उसने सोचा कि चूँकि बम्बई वह ललितमोहन के साथ आयी थी, इसलिए बम्बई मे यह हो रहा है। उसने निश्चय किया कि वह सिर्फ ऐसे ही स्थानो को जायगी, जहाँ वह ललितमोहन के साथ नहीं गयी है।

बम्बई से वह पूना गयी। उसका विचारना कुछ दूर तक ठीक था। यद्यपि यहाँ भी कभी-कभी हठात् ललितमोहन और मयकमोहन उसे याद आ जाते, पर बम्बई के सदृश यहाँ का हाल न था। वीरभद्र को तो वह धीरे-धीरे भूलती ही जाती थी।

पूना सार्वजनिक सस्थाओ के लिए प्रसिद्ध है। पूना मे उसने एक संस्था को एकदम से पाँच हजार का दान दिया। पत्रो मे यह समाचार निकलते ही यथार्थ मे वही हुआ, जो उसने सोचा था। मनुष्य सचमुच ही मक्खियाँ बन गये। कितनी संस्थाओ के कितने निमन्त्रण मिलना उसे आरम्भ हुआ। इन सस्थाओ मे कैसे-कैसे स्वागत हुए उसके।

पूना से वह महाबलेश्वर पहुँची। जाडा होने पर भी यहाँ बरफ नही गिरता था। महाबलेश्वर मे उसने कुछ प्राकृतिक दृश्यो के चित्र बनाये।

यहाँ से लौट उसने एलोरा, एलीफेन्टा और अजण्टा गुफाएँ देखी। और फिर वह सीधी दार्जिलिंग पहुँची, क्योकि एक तो वहाँ इन दिनो मे बरफ गिरता था, दूसरे, लम्बी यात्राओ का उसे शौक था। दार्जिलिंग वह तब तक रही, जब तक उसने बरफ गिरने का दृश्य अच्छी तरह देख न लिया। आकाश किस तरह मेघाच्छन्न होकर रुई के पहले के सदृश बरफ गिराता है। कँपकँपाती हुई ठण्डी मे भी कैसा अद्भुत आनन्द जान पडता है। बरफ गिरना खत्म होकर, बादल फट जब सूर्य निकलता है, तब पहाड, वृक्ष, रास्ते सब श्वेत होकर चाँदी के समान नही पर हीरे के समान किस प्रकार सूर्य के प्रकाश मे चमकते है। इस बरफ के दृश्यो के भी उसने चित्र बनाये।

दार्जिलिंग से वह शिलांग गयी और वहाँ से शिमला, वैन्गिगडन और मसूरी। जाडो के कारण ये सब स्थान सूने से थे, पर उसे बरफ गिरना देखने का कुछ चसका-सा लग गया था तथा पहाडो का जाडा उसे इतना अच्छा मालूम पडता था कि वह जाडे मे ही इन स्थानो मे पहुँची। फिर गरमी मे

तो वह मसूरी, नैनीताल, काश्मीर आदि कई पहाडो को गयी थी अब वह कुछ पहाड जाडो मे भी देखना चाहती थी।

इन पहाडो से निपटकर वह कुछ ऐसे स्थानो को गयी, जहाँ कुछ ऐतिहासिक वस्तुएँ देखने योग्य थी। इन स्थानो मे मुख्य थे—तक्षशिला, नालन्दा, साँची, सारनाथ और बुद्धगया। इनमे से कुछ स्थानो मे उसने छोटे-छोटे अजायबघर देखे, जिनमें इन्ही स्थानो से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओ का सग्रह था। इन्हे देख उसे भारतवर्ष के बडे-बडे अजायबघरो को देखने की रुचि पैदा हुई। उसने कलकत्ते का अजायबघर तथा विक्टोरिया मेमोरियल का सग्रह और जयपुर का अजायबघर देखा था, पर एक तो इसे वर्षो बीत गये थे, दूसरे इन्हे उसने उस समय उस कलात्मक दृष्टि से नही देखा था, जो अब उसमे उत्पन्न हो गयी थी। वह जानती थी कि कलकत्ते का अजायबघर ही सबसे बडा है, पर कलकत्ते जाने पर फिर कही बम्बई के समान ही उसकी हालत न हो, इसलिए कलकत्ता जाने से वह डरती थी। अतः उसने भारत के अन्य अजायबघरो का ठीक पता लगा, उनकी ओर प्रस्थान किया।

पहले वह मद्रास गयी। मद्रास के अजायबघर मे उसने दक्षिण भारत की धातु और अमरावती (विजयानगरम् साम्राज्य) की पाषाण-शिल्पकला की कुछ मूर्त्तियो का सुन्दर सग्रह देखा। इन्ही मे नटराज की वह धातु-मूर्त्ति थी, जिसकी न जाने उसने कितनी प्रशसा सुनी थी। मद्रास की अनेक सार्वजनिक सस्थाओ को उसने दान भी दिये और मद्रास मे उसका बडा आदर-सत्कार हुआ।

मद्रास से वह कुछ दिन के लिए उटकमाड पहुँची और ऊटी से मद्रास लौटकर कन्याकुमारी। कन्याकुमारी मे उसने सूर्योदय और सूर्यास्त के अद्वितीय दृश्य देखे। कुछ बडे-बडे चित्र बनाये उसने इन दृश्यो के। कन्याकुमारी से वह रवाना हुई सीधी लाहौर के लिए। वही लम्बी यात्रा की प्रवृत्ति।

लाहौर के अजायबघर में उसने 'राजपूत', 'मुगल' और 'पहाडी' स्कूलो के सुन्दर चित्र-सग्रह तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के हाथ के कला-कौशल मीने आदि की वस्तुओ को देखा। लाहौर की सार्वजनिक सस्थाओ को भी उसने दान दिये और यहाँ के आदर-सत्कार मे उसने देखा कि अनेक व्यक्ति उसके सौन्दर्य से भी आकर्षित हुए है। इनमें एक 'हिज-हाइनेस' भी थे। इन महाराजा

साहब से शशिबाला का कुछ अधिक रफ्त-जफ्त बढ चला। शशिबाला ने उन्हे काफी उत्साहित भी किया। महाराजा साहब कैसे अद्भुत-अद्भुत वेष धारण कर-कर उससे भेट करते। शशिबाला ने बचपन मे रामलीला बहुत देखी थी। महाराज के इन वेषो को देख उसे अनेक बार रामलीला के चेहरे और पोशाके याद आ जाती। फिर महाराजा बहादुर अपने वश की वीरता तथा वैभव की भी कितनी बाते उससे किया करते। आखिर जब बात आलिगन तक पहुँची, तब ऐसा जोर का चाँटा जड़ा शशिबाला ने महाराजाधिराज के मुख पर कि वे अपनी और अपने सारे वश की बहादुरी भूल गये। शशिबाला को कितना हर्ष हुआ समाज के इस महाप्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने में।

लाहौर से वह मथुरा आयी और वहाँ से दिल्ली। दिल्ली मे उसने पाण्डवो और पृथ्वीराज का किला, कुतुबमीनार, लालकिला, जामा मस्जिद आदि प्राचीन ऐतिहासिक स्थान और नयी दिल्ली अपनी इस नयी दृष्टि से देखे।

दिल्ली से वह आगरा गयी—ताज, सिकन्दरा वगैरह देखने। वहाँ से वह फतहपुर सीकरी पहुँची।

इन स्थानो को देखकर वह फिर दिल्ली इसलिए लौट आयी कि अब वह हिन्दुस्तान से बाहर जाना चाहती थी, लडाई चलते रहने पर भी इगलैड, रूस, अमरीका, चीन इत्यादि; और भारतीय सरकार से पासपोर्ट मिले बिना वह कही भी न जा सकती थी। एक तो वह लडाई के दृश्य देखना चाहती थी दूसरे इन देशो तथा वहाँ के प्रधान व्यक्तियो को भी। उसे इगलैड के साथ ही वहाँ के प्राइम मिनिस्टर मि० चर्चिल, रूस के सग ही रूस के डिक्टेटर स्तालिन, अमरीका के साथ ही वहाँ के प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट और चीन के सग ही चीन के सर्वेसर्वा जेनरलइस्मो चैगकाईशेक तथा मैडम चैग के भी देखने की बडी इच्छा थी। यह इसलिए कि मिस्टर चर्चिल ने हारी हुई लडाई का पाँसा पलट दिया था, स्तालिन ने अपने देश की रक्षा के लिए ऐसी लडाई लडी थी जैसी इसके पहले इतिहास में कभी भी, कही भी नही लड़ी गयी, रूजवेल्ट ने अमरीका को इस समय ससार का सर्वश्रेष्ठ देश सिद्ध कर दिया था और चैगकाईशेक आधुनिकता की दृष्टि से महाबलशाली जापान का बूढ चीन द्वारा इस तरह मुकाबला करवा रहे थे। बहुत खर्च-वर्च करने

पर उसे केवल अमरीका का पासपोर्ट मिला। उसने एरोप्लेन द्वारा अमरीका जाना तय किया और अमरीका जाने तक दिल्ली ही रहना तथा वहाँ की सार्वजनिक सस्थाओ को भी दान देकर वहाँ के प्रतिष्ठित समाज को मक्खियो के समान भिनकवाना।

गत छै महीनो से शशिबाला सारे भारतवर्ष मे चक्कर लगा रही थी। कितने पहाड, कितनी गुफाएँ, कितने खण्डहर, कितने ऐतिहासिक स्थान, कितने अजायबघर उसने देखे थे। कितने चित्र बनाये थे। कितनी जगह उसका मान-सम्मान हुआ था। कितनो को उसने मक्खियो के समान भिनकवाया और कुत्तो के सदृश दुत्कारा था। बचे हुए वक्त मे वह साहित्य पढती रहती थी। उसकी कोशिश यह भी थी कि उसे इस जीवन को बिताते हुए क्षरणमात्र का अवकाश भी अपने पुराने जीवन पर विचार करने के लिए न मिले। पर यह प्रयत्न वह कुछ जान-बूझ कर न कर रही थी, जब उसने अपने नये जीवन का कार्यक्रम बनाया, तब वह अपने पुराने जीवन पर विचार भी न करेगी, ऐसा कोई निश्चय न किया था, लेकिन इस प्रयत्न मे दत्तचित्त था आप से आप उसका मन। बात यह है कि बम्बई से जब वह भागी तब एक विशेष प्रकार के कष्ट के कारण भागी थी और उस कष्ट के अनुभव करने के पश्चात् उसके हृदय ने बिना किसी तर्क-वितर्क के यह मार्ग पकड़ा था। इतने पर भी कई बार अचानक कैसे याद आ जाते उसे ललितमोहन और मयकमोहन। हाँ, वीरभद्र अब उसके स्मृति-पटल से विलुप्त-सा हो गया था। कभी-कभी तो उसे अब इस बात पर आश्चर्य होता था कि वह वीरभद्र के प्रति उस प्रकार आर्कषित कैसे हुई।

: ४२ :

सन् ४३ की मई के मध्य मे शशिबाला सी प्लेन द्वारा अमरीका के लिए रवाना हुई। उसने अमरीका की 'अमोवा' यूनिवर्सिटी के एक भारतीय

प्रोफेसर सुधीन्द्र बोस की 'अमरीका मे पन्द्रह वर्ष' नामक पुस्तक साथ में ले ली थी। एरोप्लेन मे वह अब तक न बैठी थी अत उसे अमरीका देखने के सिवा एरोप्लेन की यात्रा के सम्बन्ध मे भी बड़ा कौतूहल-सा था।

जब एरोप्लेन का समुद्र से ऊपर उठना आरम्भ हुआ और जब उसने एरोप्लेन की खिडकियो से बाहर की ओर देखा तब उसे जान पड़ा, मानो वह स्वय कोई बड़ी सामुद्रिक चिड़िया है और समुद्र मे अपने पख भिगाकर उड़ रही है। धीरे-धीरे विमान की गति बढना आरम्भ हुआ और थोडी ही देर मे वह करीब दो सौ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चलने लगा। पर शशिबाला को उसकी गति का पता ही न लगा, उसे जान पड़ा, मानो वह खड़ा ही है। ऊपर नीलाकाश तथा नीचे समुद्र के सिवा मार्ग मे और कुछ न रहने के कारण यह गति और भी न जान पड़ती थी। पर कुछ दूर आगे बढने पर बादल मिलने आरम्भ हुए और अब शशिबाला को पता लगा कि एरोप्लेन कितने वेग से जा रहा है। ट्रेन में उसने पीछे की ओर दौडते हुए वृक्ष सदा ही देखे थे, पर यहाँ बादल पीछे भाग रहे थे। कुछ देर बाद बादल घने होना आरम्भ हुआ, अब पायलेट ने विमान को बहुत अधिक ऊँचा उठाया। एरोप्लेन मेघो के ऊपर हो गया। विमान के ऊपर निर्मल आकाश मे सूर्य था तथा नीचे बादल। घनो में कभी-कभी बिजली भी चमक जाती थी एवं कभी-कभी उनसे पानी भी बरसने लगता था। शशिबाला ने अपने ऊपर तो मेघमाला, दामिनी और वर्षा सभी देखे थे, पर अपने नीचे नही, यह एक विचित्र दृश्य था। जब बाहरी दृश्य देखते-देखते इसका मन कुछ भर-सा गया, तब वह फिर अन्तस्थल की ओर घूमा। एरोप्लेन तेज रफ्तार से जा रहा था और मन मे विचारो की रफ्तार भी वैसी ही तेज हो गयी। शशिबाला को फिर याद आने लगी उसके विगत जीवन की घटनाएँ। उसे एरोप्लेन की उडान से भी कही अधिक तेजी समय की गति मे जान पडी। जीवन के न जाने कितने दृश्य उसके स्मृति-पटल से गुजरने लगे। एरोप्लेन की गति इन सस्मरणो को और भी शीघ्रगामी कर रही थी।

शशिबाला का वायुयान २,२१६ मील की यात्रा ११ घण्टे मे समाप्त कर कैरो पहुँचा।

कैरो से चलकर १,३५० मील की १२ घण्टो में यात्रा कर एरोप्लेन

कैसाब्लेका मे उतरा और थोडी देर यहाँ ठहर यहाँ से ६८० मील की ५ घण्टो मे यात्रा कर एज्योर द्वीप मे। एज्योर से न्यूयार्क की यात्रा सबसे लम्बी थी। २,७०० मील के लगभग की यात्रा थी और यह पूरी हुई १४ घण्टो मे।

शशिबाला ने न्यूयार्क के 'पेन्सिलवेनिया होटल' मे ठहरने का केबिल द्वारा पहले ही प्रबन्ध कर लिया था। होटल का गाइड भी मौजूद था, इसलिए उसे होटल तक पहुँचने मे कोई कष्ट न हुआ। पर होटल के अन्दर पैर रखने के पहले उसे ऐसी कई चीजे दिखी जो उसने इसके पहले कही न देखी थी। पहले तो होटल के प्रवेश-द्वार का ही पता यदि गाइड न होता तो न जाने कितनी कठिनाई से लगता। होटल का सामना था दूकानो से सुसज्जित और दरवाजा था इन्ही दूकानो की तड़क-भड़क मे ढका मुँदा सा। फिर वहाँ इतनी भीड-भाड थी कि गाइड के रहने पर भी शशिबाला को एक कतार मे खडे रहना पड़ा, कठिनाई से कुछ देर मे वह होटल के अन्दर घुस सकी। उसके लिए कमरा रिजर्व था होटल के सोलहवे मजिल पर। गाइड ने कमरे की चाबी उसे दे दी और किस लिफ्ट मे वह वहाँ पहुँच सकती है इसका नम्बर उसे बता, उसका सामान उसके कमरे मे पहुँच जायगा, यह कह, उससे रुखसत ली। दुर्भाग्य से शशिबाला लिफ्ट का नम्बर भूल गयी। नतीजा यह हुआ कि अनेक लिफ्टो को बदलने और कई मजिलो का चक्कर काटने के बाद वह सोलहवी मजिल के अपने कमरे पर पहुँच सकी। उसका सामान उसके कमरे के सामने रखा हुआ था। कमरे को खोल वह कमरे मे दाखिल हुई। विशाल और सुन्दर कमरा था, अच्छे से अच्छा फर्नीचर था। आवश्यकता की सब चीजे मौजूद थी। सब कुछ ऐसा था जैसा शशिबाला ने अब तक किसी होटल मे नही देखा था।

श्री सुधीन्द्र बोस की 'अमरीका मे पन्द्रह वर्ष' पुस्तक से काफी प्रभावित रहने के कारण शशिबाला पहले उन्ही से मिलना चाहती थी। तार द्वारा समय निश्चित कर वह उनसे मिली। बोस साहब उसे बडे सज्जन व्यक्ति जान पडे। जब उन्हे मालूम हुआ कि वह चित्रकार है, तब उन्होने उसे सर्व-प्रथम 'बोस्टन म्यूज़ियम' के 'ओरिएन्टल सैक्शन' के क्यूरेटर डॉक्टर आनन्द कुमारस्वामी से मिलने की सलाह दी। डॉक्टर कुमारस्वामी का नाम शशिबाला जानती थी अत उसे भी श्री सुधीन्द्र की राय पसन्द आयी। बोस साहब ने

ही डॉक्टर कुमारस्वामी से शशिबाला का एपाइटमैट करा दिया।

डॉक्टर कुमारस्वामी से मिलकर शशिबाला को और अधिक प्रसन्नता हुई, क्योकि डॉक्टर साहब का तथा उसके कार्य का एक ही क्षेत्र था। कुमारस्वामी ने उसका अमरीका और वहाँ के सारे जीवन के निरीक्षण का एक ब्यौरेवार कार्यक्रम बना दिया। उसने उसी कार्यक्रम को कार्यरूप मे परिणत करना आरम्भ किया।

करीब छै हफ्ते में शशिबाला ने अमरीका देश के मुख्य-मुख्य स्थानो और चीजो को देख डाला, खास-खास व्यक्तियो से मुलाकात कर ली। नाइग्रा जलप्रपात, मिसिसिपी नदी, केलीफोर्निया के कुछ स्थानो तथा अन्य जगहो के भी चित्र बना डाले और फिर वह डॉक्टर कुमारस्वामी से मिली। अब वह डॉक्टर कुमारस्वामी से कला पर कुछ बात करना चाहती थी, बोस्टन अजायबघर को अच्छी तरह देखना चाहती थी और अपने चित्र कुमारस्वामी को दिखाना चाहती थी। उसकी इच्छा कुछ समय तक डॉक्टर कुमारस्वामी के निकट ही किसी होटल्न मे रहने की थी।

डॉक्टर साहब के साथ उसका यह नया कार्यक्रम भी प्रारम्भ हो गया, उसने कुमारस्वामी के नजदीक ही एक होटल में रहने का इन्तजाम कर लिया और जो समय भी डॉक्टर के अवकाश का रहता, वह उनके पास जाती।

डॉक्टर कुमारस्वामी के निकट रहते-रहते और उनसे मिलते-मिलते शशिबाला ने मोहनजोदडो के समय से लेकर अब तक मूर्त्तिकला और चित्रकला का विकास भारतवर्ष मे किस-किस प्रकार हुआ तथा किस काल की कला में क्या-क्या विशेषताएँ है, यह समझा।

शिल्प तथा चित्रकला के इस विवेचन के बाद डॉक्टर कुमारस्वामी से उसे मालूम हुआ कि जहाँ तक नृत्यकला का सम्बन्ध है वहाँ तक अब यह मत सभी निष्पक्ष कलावेत्ताओ ने मान लिया है कि ससार मे सर्वप्रथम नृत्यकला का प्रादुर्भाव और विकास भारत मे ही हुआ। भारतीय नृत्यकला के पाँचो विभाग 'भरत नाट्य', 'कथाकली', 'कथक', 'गरभा' और 'मनीपुर नृत्य' की विशेष-विशेष बातो को भी शशिबाला ने डॉक्टर साहब से समझा। सगीत के सम्बन्ध मे डॉक्टर कुमारस्वामी से उसे विशेष ज्ञान प्राप्त न हुआ, हाँ, इतना

अवश्य मालूम हुआ कि भिन्न-भिन्न राग-रागनियो मे जैसा सुन्दर और बारीक विभाजन भारतीय सगीत में है वैसा ससार के किसी देश के सगीत मे नही।

नृत्यकला सम्बन्धी सारी बातो को समझने के बाद डॉक्टर कुमारस्वामी ने शशिबाला को बताया कि उसने जो नृत्य सीखा है, वह है तो 'कथक' नृत्य ही, जैसा वह समझती है, पर उस प्रणाली के साथ वह 'मनीपुर' और कभी-कभी 'गरभा' का मिश्रण कर देती है, जो समझनेवालो से छिपा नही रह सकता।

डॉक्टर ने उसे यह भी बताया कि पश्चिम मे रूस के 'बैलेड' नृत्य के अतिरिक्त और किसी भी नृत्यप्रणाली का विकास कही भी नही हुआ। 'बैलेड' नृत्यप्रणाली की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी मैडम पवलवा (Pawlawa) जब बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे भारत गयी और उन्होने वहाँ की नृत्यकला को देखा, तब ससार को पहले-पहल भारतीय नृत्यकला का महत्त्व मालूम हुआ। मैडम पवलवा ने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की कि नृत्यकला मे भारत सबसे आगे है। जब वे हिन्दुस्तान गयी थी, तब वृद्धावस्था के निकट थी, अत उन्होने कहा कि यद्यपि उनके लिए अब सारे भारतीय नृत्यो का प्रदर्शन सम्भव नही, तथापि वह 'राधाकृष्ण' नृत्य अवश्य दिखायँगी। अपने साथ इस प्रदर्शन के लिए उन्होने उदयशकर को चुना, जो उस समय लन्दन के सबसे बडे 'रायल कॉलेज ऑफ आर्टस' के एक विद्यार्थी थे और आज भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ नृत्य करनेवाले है। जिस समय योरप और अमरीका मे मैडम पवलवा उदयशकर के सग 'राधाकृष्ण' नाच नाचती, उस समय जहाँ-जहाँ यह नृत्य होता, दर्शको का समुद्र सा उमड आता।

और जब कुमारस्वामी मैडम पवलवा का यह वृत्तान्त कह रहे थे तब शशिबाला के मन मे एकाएक आया यदि वृद्धा मैडम पवलवा 'राधाकृष्ण' नृत्य में मनुष्यो के समुद्र उमड़वा सकी तो क्या वह इस अवस्था में यह नही कर सकती।

× × ×

अब शशिबाला पुस्तक-विक्रेताओ के यहाँ पहुँची। हैवल, गागोली और कुमारस्वामी की कला सम्बन्धी जो पुस्तके अमरीका मे उसे मिली, उसने खरीदी तथा नृत्य के विषय में कुमारस्वामी की 'डान्स ऑफ शिवा' तथा 'दी जैस्चर

ऑफ इण्डियन आर्ट' तो तत्काल पढना ही आरम्भ कर दिया। इन पुस्तको को पढते-पढते शीशे के सामने उसने नृत्य की कुछ मुद्राओ का प्रदर्शन आरम्भ किया और वह यहाँ तक बढा कि उसकी सारी की सारी राते इसी कार्य मे जागते-जागते बीतने लगी। उसने १४-१५ वर्ष की अवस्था मे लखनऊ में गान के साथ नृत्य भी सीखा था, पर गान का उसे जितना अभ्यास था, नृत्य का नहीं, फिर भी पुरानी नींव तो मौजूद ही थी। इसके अलावा जैसे कुमारस्वामी ने कहा था, कला की ओर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी और निसर्ग से उसे वैसा रूप भी मिला था, जैसे रूप की नृत्य के लिए आवश्यकता होती है। डॉक्टर कुमारस्वामी ने उसके नृत्य की गलतियाँ भी उसे सुझा दी थी, अत कुमारस्वामी की सूचनाओ तथा इन पुस्तको के आधार पर शीशे के सामने नृत्य की मुद्राओ के अभ्यास ने उसे बहुत शीघ्र नृत्य मे दक्ष बनाना आरम्भ किया।

शीघ्र ही डाक्टर कुमारस्वामी के सहयोग से न्यूयार्क के सबसे बड़े थिएटर 'रेडिओ सिटी' मे शशिबाला के नृत्य का कार्यक्रम रखा गया। जब यह समाचार अमरीका के समाचारपत्रो मे छपा और इस समाचार के साथ डॉक्टर कुमारस्वामी तथा नर्त्तकी शशिबाला का नाम, तब अमरीका का सारा सभ्य समाज इस थिएटर पर उलट पडा। थिएटर में स्थान था लगभग छै हजार व्यक्तियो के बैठने का, परन्तु टिकिट लेनेवालो की सख्या इससे कही अधिक थी। हफ्तो पहले रिजर्वेशन होने पर भी न जाने कितनो को जगह न मिलने के कारण निराश हो जाना पड़ा। और जब आरचेस्ट्रा की मनोहारिणी ध्वनि के बीच यवनिका उठी तथा शशिबाला को दर्शको ने देखा, तब नृत्य तो बाद मे होने वाला था, पहले शशिबाला के रूप से ही दर्शक विमुग्ध हो गये।

शशिबाला से अधिक सुन्दर रमणी को इसके पहले शायद अमरीका निवासियो ने कभी न देखा था। नये ढँग से रहना आरम्भ करने के पश्चात् शशिबाला ने अपनी उम्र १०-१२ वर्ष तो स्वय ही कम कर ली थी। आज उसका 'मेक अप' हुआ था हालीवुड से बुलाये गये एक 'मेक अप' के विशेषज्ञ द्वारा। शशिबाला स्टेज पर २२-२३ वर्ष से अधिक की न दिखती थी। उसके मुख और अगो की सुषमा रश्मियो के समान फैल रही थी। 'उषा' के गुलाबी और सुनहरी वेष ने उसके सौन्दर्य को न जाने कितना बढा दिया था। उसके

हावभावो मे भी अल्पवयस्कता आ गयी। भिन्न-भिन्न पात्रो के भिन्न-भिन्न वेषो ने उसके बाह्यरूप के साथ ही आन्तरिक रूप के परिवर्त्तन मे भी सहायता दी। रँगमच पर उसके बदलते हुए रूप अल्पवयस्कता के इस आन्तरिक अनुभव को सहायता देने लगे।

'उषा', 'पनघट पर राधा' और 'पतँग' नृत्यो पर किस तरह बार-बार घनघोर घोष के साथ तालियाँ पिटी और जब पहले-पहल तालियाँ पिटी तब इन तालियो पर शशिबाला को हठात् अवधबिहारीलाल की जुबली पर किये गये 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के वक्त की तालियाँ, 'वसमोर' एव इन तालियो मे ललितमोहन का भी ताली बजाना तथा 'वसमोर' चिल्लाना याद आ गया, किन्तु तुरन्त ही उसने वहाँ से मन को हटाने का प्रयत्न किया।

इण्टर्वल के पश्चात् डॉक्टर कुमारस्वामी का छोटा सा भाषण हुआ। भाषण मे उन्होने जो कहा उसका साराश यह था—'शशिबाला व्यवसायी नर्तकी न होकर एक सम्पन्न भारतीय रमणी है। कला मे स्वाभाविक रुचि के कारण उन्होने चित्र और नृत्यकलाओ को अपनाया है। उनके नृत्य मे 'टेकनीक' की शायद कुछ भूले हो, पर उन भूलो का परिमार्जन स्वाभाविकता ने कर दिया है। टिकटो से जो धन प्राप्त हुआ है, उसमे से वह पाई भी नही चाहती और यह सारा का सारा रुपया अमरीका के भारतीय विद्यार्थियो के लाभ के लिए लगाया जायगा।'

इण्टर्वल के पश्चात् का कार्यक्रम भी उसी सफलता से पूरा हुआ जिस कामयाबी से इण्टर्वल के पहले का कार्यक्रम चला था और ज्यो ही अन्तिम यवनिका गिरी, त्यो ही डॉक्टर कुमारस्वामी घिर गये पत्रो के प्रतिनिधियो से। 'शशिबाला कौन है?' 'कब आयी?' 'किसकी लडकी है?' 'विवाहित है या अविवाहित?' 'विवाह के बाद तलाक वाली तो नही है?' न जाने कितने तथा कितने प्रकार के प्रश्नो की झड़ी सी लग गयी। डॉक्टर कुमार-स्वामी ने कहा कि 'वे एक भारतीय कलाप्रिय अत्यन्त सम्पन्न स्त्री है, इसके सिवा न वे कुछ जानते है और न दूसरो को ही जानने की जरूरत है।' पत्र-प्रतिनिधि शशिबाला की फ्लैश लाइट फोटो चाहते थे साथ ही उससे बाते भी। डॉक्टर कुमारस्वामी ने 'ग्रीनरूम' में जा शशिबाला, उसके सभी साथी नटो तथा आरचेस्ट्रावालो को बधाइयाँ दी और उससे कहा कि वह

बिना वस्त्र बदले पहले पत्र-प्रतिनिधियो से मिल ले।

शशिबाला की न जाने कितनी तस्वीरे उतरी और उससे उसी तरह के प्रश्न हुए जैसे कुमारस्वामी से हुए थे। उसने पिता का नाम ज्ञानशकर बताया, अपने को अविवाहित कहा और निवास-स्थान के सम्बन्ध मे सयुक्त प्रान्त के कन्नौज शहर का नाम दिया।

दूसरे दिन अमरीका के अधिकाश पत्र उसकी तस्वीरे, परिचय और उसकी नृत्यकला के सम्बन्ध मे भरे हुए थे। अनेक पत्रो ने उसके नाच की तारीफ करते हुए उस पर सम्पादकीय लेख और टिप्पणियाँ भी लिखी थी। अमरीका मे इन दैनिक पत्रो की सख्या करीब २,१०० थी और इनमे से १,६०० अग्रेजी भाषा मे छपते थे। इन पत्रो की करीब चार करोड़, बीस लाख प्रतियाँ रोज बिकती थी; अर्थात् अमरीका की कुल आबादी के एक तृतयाश व्यक्ति इन दैनिक पत्रो को खरीदते थे।

न्यूयार्क मे इस नृत्य की इतनी ख्याति हुई कि शशिबाला को वहाँ इसके कई प्रदर्शन देने पडे। फिर शशिबाला के नृत्यो का दौरा आरम्भ हुआ। नृत्यो के साथ उसके चित्रो की प्रदर्शनियाँ भी होती। दोनो प्रोग्रामो मे एक नयी विशेपता थी। टिकटो का रुपया दान में जाता, तथा चित्र बिकाऊ न थ, यह लिखा रहता। अब अमरीका के साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रो मे भी शशिबाला की चर्चा आरम्भ हुई, इनकी सख्या थी करीब साढे ग्यारह हजार और सारे मैगजीनो की करीब साढे ग्यारह करोड प्रतियाँ बिकती थी।

: ४३ :

शशिबाला को घर छोडे एक वर्ष पूरा होने को आ रहा था। लगभग छ महीने उसने भारत-भ्रमण किया था और करीब छै महीने से वह अमरीका मे थी। अवधबिहारीलाल के उपदेश का कि 'ससार में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है' उसने इस एक वर्ष मे अक्षरश. पालन किया था। अपने को

ही वह केन्द्र तथा दुनियाँ की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानती थी। फिर भी उसे अपने इस जीवन मे न सन्तोष का अनुभव हो रहा था और न शान्ति का ही। यद्यपि इस नयी जिन्दगी को आरम्भ करते ही बम्बई में एकाएक उसे ललितमोहन की याद ने व्यथित कर दिया था, इसके बाद भी समय-समय पर उसे ललितमोहन तथा मयकमोहन स्मरण आते रहे और न्यूयार्क के प्रथम नृत्य तथा उसके पश्चात् के नृत्यो की करतल ध्वनि इत्यादि के समय भी 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक एव उस समय की तालियाँ और 'वसमोर' याद आये, तथापि वह इस एक वर्ष से जीवन को इतनी तेजी से चलाये लिये जा रही थी, तथा गत जीवन के विस्मरण की इतनी अधिक कोशिश कर रही थी कि ये सस्मरण अब तक समय-समय पर कष्ट भर पहुँचा सके, पर उसके जीवन की नवीन गति का अवरोध न कर सके। आजकल वह ससार-प्रसिद्ध अभिनेत्री सारा बर्नहार्ड के निम्नलिखित कथन को प्राय. पढा करती—

'प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा पर सदैव विरोध मे भी दृढ रहना चाहिए। मैने समय से युद्ध किया है और उससे अधिक शक्तिशाली रही हूँ, मैने बीमारी से युद्ध किया है और उस पर विजय पायी है, मैने मृत्यु से युद्ध किया है और उसे ठहरकर आने के लिए बाध्य किया है। मेरे अक्षुण्ण यौवन का यही रहस्य है।'

जितने समय तक शशिबाला का नृत्य चलता, वह देखती, सबकी आँखें, सबके कान, उस (शशिबाला) से पूर्ण है। उसे दिखता कि यदि दो व्यक्ति एक दूसरे की ओर देखते भी है तो फिर से तत्काल उसकी ओर देखने लगते है। यदि कोई एक दूसरे से बात भी करते है तो उसे देख-देखकर। उसे जान पड़ता कि कोई बड़ी से बडी साम्राज्ञी भी इससे बड़ा आधिपत्य नही कर सकती। पर जब वह समय रग-बिरगे बादल के समान निकल जाता · ।

अमरीका के अपने जीवन में शशिबाला को तड़क-भडक भी दिखी। इसके पहले उसका जीवन अनेक बार चमकीला रह चुका था, पर उस चमक और इस तड़क-भड़क मे अन्तर था। उस चमक मे वह कुछ देख सकती थी, पर इस तडक-भड़क में उसकी दृष्टि ऐसी चकाचौध हो गयी कि उसे कुछ भी न दिखायी देता था।

शशिबाला को केवल एक नजारा दिखायी देता था, वह था—उसने अमरीका मे जो मनुष्यो के समुद्र को उमड़वा दिया था। पर यह क्या, ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते थे शशिबाला मे एक नयी तरह की शिथिलता कैसे आती-जाती थी ? उसने जनसागर तो उमडवा दिया, पर उसके हृदय समुद्र में ज्वार के स्थान पर भाटा क्यो आरम्भ हो गया ? बात यह है कि शशिबाला दर्शको को तो नशे मे झुमा सकती थी, पर खुद नशे मे न होने के कारण झूम नही सकती थी।

ज्यो ही इस जीवन की नवीनता मे पुरानापन आने लगा, ज्यो ही यह नृत्य नित्य की सी चीज हो गया, त्यों ही सारा बर्नहार्ड के कथन का पठन कम होते-होते शशिबाला का असन्तोष एव अशान्ति फिर से बढना आरम्भ हुए। उसे जान पड़ने लगा कि जो नृत्य के इस प्रकार के प्रदर्शनो से अपनी जीविका चलाते है, उनकी दूसरी बात है, पर उसके लिए इस तरह की जिन्दगी सदा बिताते रहना असम्भव है। उसे एक अनुभव और होने लगा कि जितना अधिक प्रयत्न वह कलात्मक होने का कर रही है, उतना ही अधिक वह जीवन से थकती जा रही है। तो ··तो क्या यह कलात्मक होने की कोशिश उस थकावट को दूर करने का साधन मात्र थी ? अब वह क्या करे, उसके सामने यह समस्या उठी। उसके मन मे उठने लगा कि फिर नवीन चीज के बिना वह अपने को न तरुणी रख सकेगी और न जिन्दा ही। यह नयी वस्तु कहाँ प्राप्त हो ? लडाई के कारण वह अब किसी नये देश को जा न सकती थी। छै महीने मे भारत तथा छै महीने मे अमरीका छान-छान कर उसने पुराने कर डाले थे। साहित्य भी उसने इन दिनो मे काफी पढा था। अपनी चित्र तथा नृत्यकला मे भी काफी उन्नति की थी। न अब उसका अमरीका मे मन लगता था, न साहित्य मे, न चित्र बनाने मे और न नृत्य करने मे। उसे ऐसा जान पड़ा कि उसके सारे के सारे बाह्य अग वैसे के वैसे रहने पर भी उसके हृदय को लकवा मार गया है। बलशाली शशिबाला लडखडा-सी पडी। उसे ऐसा मालूम होने लगा जैसे उसके कन्धो पर बोझ रख दिया गया है, जिसे सारा ससार मिलकर अपनी पूरी ताकत लगाने पर भी नही हटा सकता। यह बोझ किसी दु ख, किसी सकट का नहीं था। यह था स्वय जीवन का। अब वह उस मानसिक अवस्था की ओर बढ

रही थी जब मानव प्रयत्नो से थककर भाग्य का आश्रय लेता है। पर थकते-थकते भी उसने फिर एक बार सोचा—वह भारत ही लौटकर वहाँ के अजायबघरो, वहाँ की शिल्प-कलात्मक वस्तुओ को डॉक्टर कुमारस्वामी की बतायी हुई नयी पद्धतियो से ही क्यो न देखे ? बार-बार हिन्दुस्तान लौटने की बात उसके मन मे आने लगी और अचानक एक ऐसी घटना हो गयी जिसके कारण उसने फौरन भारत लौटना तय किया। यह घटना थी नृत्यो में कृष्ण का रूप लेनेवाले मुरलीधर का उसके प्रति व्यवहार। मुरलीधर के इस व्यवहार के कारण शशिबाला को अमरीका मे एक-एक दिन काटना कठिन हो गया; न कोई विचार ही सुखप्रद रहा और न कोई कृति ही।

मुरलीधर १८-१९ वर्ष का एक सुन्दर भारतीय विद्यार्थी था। कृष्ण बनते समय शशिबाला को राधा के रूप मे लगातार देखने तथा अपने नृत्य के समय शशिबाला के पति-प्रेम-प्रदर्शन का मुरलीधर पर धीरे-धीरे ऐसा असर हुआ कि वह शशिबाला से सचमुच ही प्रेम करने लगा। शनै शनै नृत्य के सिवा भी मुरलीधर ने कृष्ण के समान हाव-भाव कर अपनी मानसिक दशा को शशिबाला को समझाने का प्रयत्न शुरू किया। पहले तो शशिबाला इसे मजाक समझती रही, पर धीरे-धीरे उसे ज्ञात हुआ कि बात मजाक से कही आगे बढी हुई है। और वह सारे मामले पर एक दम चौक पडी। वही शशिबाला जिसने एक हिज हाइनेस को अपने प्रति आकर्षित होने मे सहायता देते हुए, चाँटा रसीद किया था, मुरलीधर से वैसा व्यवहार न कर सकी। मुरलीधर के लिए शशिबाला के मन मे प्रणय नही, किन्तु स्नेह हो गया था। नृत्य मे जब वह राधा बनती, तब चाहे उसे कृष्ण मान प्रणय का प्रदर्शन करती हो, पर नृत्य के पश्चात् वह उसे पुत्र या छोटे भाई के सदृश स्नेह करती। इस मनोदशा मे उसके लिए मुरलीधर के प्रणय के बदले मे न प्रेम देना सम्भव था और न उससे हिज हाइनेस के समान व्यवहार ही। शशिबाला को मुरलीधर के इस प्रेम ने एक नया अनुभव कराया। दो प्रेमी एक दूसरे को यदि भिन्न-भिन्न ढँग से चाहते हो, और एक दूसरे के प्रेम का बदला यदि उसी प्रकार के प्रेम द्वारा न दे सके, तो उनके सम्बन्ध मे एक ऐसी कटुता आ जाती है, जो शत्रुओ के बीच की कटुता से भिन्न, किन्तु अधिक कष्टप्रद होती है; और जो प्रेमी परिवर्तन में वैसा ही प्रेम न देने के लिए

जिम्मेदार होता है, उसकी दशा तो शोचनीय हो जाती है। वैर की अपेक्षा इच्छा के विरुद्ध किया गया प्रेम कही अधिक दुःखदायी होता है। अपने और वीरभद्र के सम्बन्ध के समय भी उसने इस बात का कुछ अनुभव किया था, परन्तु जैसा स्पष्ट अनुभव उसे इस समय इसका हुआ वैसा वीरभद्र के सम्बन्ध मे भी न हुआ था। इसका कारण था, वीरभद्र के और उसके प्रेम के समक्ष जो पात्र प्रेम को उसी रूप मे न लौटा सकता था वह था वीरभद्र। इस प्रेम मे वह अवस्थाऽधी स्वय शशिबाला की। अमरीका छोडने की बात शशिबाला के मन मे बार-बार उठ ही रही थी। इस प्रसग ने उसके तत्काल उस देश से चल देने के निर्णय मे सहायता कर दी।

मुरलीधर को जब यह वृत्त जान पडा कि शशिबाला अमुक-अमुक सी प्लेन से भारत जा रही है वह ऐसा विकल हुआ जैसी शायद राधा ही उस समय हुई होगी, जब कृष्ण ने व्रज छोडा था। वहाँ कृष्ण जा रहे थे राधा को छोडकर और यहाँ राधा जा रही थी कृष्ण को त्याग, इतना ही अन्तर था।

मुरलीधर ने होनेवाले इस वियोग दु:ख को जब शशिबाला के सामने नाना प्रकार के काव्यात्मक भावो, अनुभावो और विभावो द्वारा प्रकट किया एव कहा कि यदि उसे भी वह भारतवर्ष न ले चली, तो या तो वह आत्म-हत्या कर लेगा, अथवा पागल हो जायगा, तब शशिबाला ने उसे हर तरह समझाने की कोशिश की। इस समझाने मे तिरस्कार नही था, इसमे थे तर्क और उन्ही के साथ-साथ खेद। शशिबाला ने उसे कहा—रूपक और यथार्थता ये दोनो अलग-अलग वस्तुएँ है। यदि नाट्य और सत्य का इस तरह पार्थिव सम्मिश्रण कर दिया जाय तब तो एक नही, अनेक अनर्थ हो सकते हैं। वह केवल उसके 'मेकअप' की तड़क-भड़क के कारण उसके प्रति आकृष्ट हो गया है अन्यथा कहाँ मुरलीधर की १८-१९ वर्ष की अवस्था और कहाँ शशिबाला की ४३ साल की उम्र। इस तर्क मे वह भूल गयी थी कि उसकी और वीरभद्र की अवस्था मे भी काफी फर्क होते हुए उसका वीरभद्र के प्रति ऐसा ही खिचाव हो गया था। फिर उसने वर्षों से भारतीय नारी नही देखी, उसकी वेष-भूषा का अवलोकन नही किया, यह भी इस खिचाव का कारण है, क्योकि वह ऐसी अनेक घटनाएँ जानती है, जहाँ विदेश में रहनेवालो का अपने देश-

निवासियो, उनकी वेष-भूषा आदि को देखते ही इस तरह के आकर्षण हुए है। वह भारत लौटकर एक अन्य प्रकार के जीवन मे तल्लीन होनेवाली है, जहाँ उसका और मुरलीधर का साथ ही सम्भव नही, अत. मुरलीधर को अपनी जिन्दगी इस प्रकार बरबाद न कर अपनी पढाई पूर्ववत् जारी रखनी चाहिए। परन्तु अब जब सब बाते स्पष्ट हो गयी, तब मुरलीधर ने सकोच छोड़ रोना आरम्भ कर दिया। १८-१९ वर्ष का लड़का बच्चो के सदृश बिलख-बिलख कर रोया और शशिबाला को इस रोने ने और अधिक व्यग्र बना दिया। न वह इस वृत्त को किसी से कह सकती थी और न मुरलीधर से कोई कठोर व्यवहार ही कर सकती थी। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक निचे के कथन को इन्ही दिनो उसने पढा था। वह कथन यो था—'मनुष्य को समस्या न होकर समस्या की पूर्ति होना चाहिए।' उसकी समझ मे न आया कि इस नयी समस्या की पूर्ति कैसे हो ?

आखिर उसने मुरलीधर को वचन दिया कि वह भारत न लौटेगी और यह सिद्ध करने के लिए जिस प्लेन से वह जानेवाली थी, उसने अपना जाना मसूख करा लिया। मुरलीधर ने असख्य धन्यवाद दिये शशिबाला की इस कृति पर। महाकवि गेटे के प्रसिद्ध नाटक 'फॉस्ट' मे जिस ढग से कहा गया है—'बनी रहो ओ सुन्दर ! तुम इसी तरह बनी रहो।' उसी ढँग से मुरलीधर ने बार-बार शशिबाला से कहा। मुरलीधर को विश्वास हो गया कि अब वह अमरीका मे ही रहेगी और उसने शशिबाला की इस कृपा के बदले मे उसे वचन दिया कि वह उसके समीप रहने और उसे नितान्त शुद्धतापूर्वक प्रेम करने के अतिरिक्त और उससे कुछ नही चाहता। बीसवी सदी के अमरीका के जीवन मे सतयुग का यह सात्विकी प्रेम ! एक विचित्र घटना थी !

शशिबाला के अब तक के अनुभवो ने उसे सिद्ध कर दिया था कि हर मनुष्य अपना जीवन अपनी भावनाओ के अनुसार चलाने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी रुचि को ही ठीक समझता है, चाहे दूसरे उसे कैसा ही क्यो न समझे, और जब तक उसका जीवन उसकी भावनाओ के अनुसार चलता है तब तक उसे सन्तोष भी रहता है। परन्तु शशिबाला सोचती कि हरेक का जीवन क्या सदा उसकी भावनाओ के अनुसार चलता है और जीवन के आरम्भ से अन्त तक क्या रुचि एक-सी रहती है ? शशिबाला को

जान पडने लगा कि मनुष्य का एक असन्तोष तो तब होता है जब मनुष्य के सामने जीवन अपनी भावनाओ के अनुसार चलाने मे बाधाएँ उपस्थित होती है, और दूसरा असन्तोष तब जब उसकी रुचि मे ही परिवर्त्तन हो जाता है। शशिबाला को अनुभव होने लगा कि दूसरी स्थिति का असन्तोष ही सच्चा असन्तोष है। और यदि यह स्थिति ढलती अवस्था मे हो तब तो सारा जीवन खण्डहरवत् दिखायी देने लगता है, क्योकि उस वक्त कोई नयी चीज आरम्भ करने का मनुष्य को न साहस रहता है और न धैर्य। और इस प्रकार विचार करते-करते शशिबाला को जान पडा कि उसके जीवन की एक-एक आकाक्षा, एक-एक अभिलाषा, एक-एक इच्छा पहले तो पृथक्-पृथक् कब्र मे दफनायी गयी और फिर वे सारी कब्रे टूट-फूट कर मलमे मे मिश्रित हो गयी। जीवन की सारी आवाक्षाओ, सारी अभिलाषाओ, सारी इच्छाओ का यह मलमा देखते-देखते शशिबाला को मृत्यु का स्मरण हो आया। मृत्यु की याद आते ही उसे ललितमोहन की मृत्यु याद आयी। चाहे भ्रान्ति को ही ललितमोहन ज्ञान मानता हो, पर यह विश्वासी तो था। विश्वास के अवलम्ब के कारण वह युवावस्था मे भी सुख से मर सका था, किन्तु शशिबाला ने देखा कि वह भ्रान्ति से भी वचित् थी, वरन् उसने जब-जब किसी भ्रान्ति पर भी विश्वास करने का प्रयत्न किया था, तब-तब उसे और जोर की ठोकर लगी थी। ललितमोहन के विश्वास और शशिबाला के विश्वास मे अन्तर था। ललित-मोहन जिस ईश्वर मे विश्वास करता था, उसकी परख करने का उसने कभी कोई प्रयत्न नही किया, यहाँ तक कि उसकी प्रार्थनाओ तक मे उसने ईश्वर से कभी कुछ न माँगा, बीमारी और मौत की निवृत्ति तक नही। शशिबाला जिस दिन मन्दिर गयी उसी दिन से उसने याचना आरम्भ की, जिस समय से सूर्यपूजा प्रारम्भ की, उसी दिन से सूर्य को कुछ न कुछ करने के निमित्त कहा। चूँकि ललितमोहन अपने इष्ट से कुछ न चाहता था इसीलिए उसके विश्वास रूपी भवन मे कभी दरार तक न पड़ी थी और चूँकि शशिबाला की प्रार्थना और पूजा कुछ न कुछ पाने के लिए थी इसीलिए ज्यो ही उसे फल की प्राप्ति नही हुई, त्यो ही उसके विश्वास की इमारत भूकम्प मे गिरनेवाली इमारतो के समान अरअराकर गिर पड़ी।

शशिबाला यही सब सोचते-सोचते तलमला उठी। अमरीका में रहते हुए

भी उसका निवास अब यथार्थ मे उस मानसिक भवन में हो गया, जो अतीत के स्मरणो के कारण शीशमहल कहा जा सकता था और ऐसा शीशमहल जिसमे गुम्बजे भी थी और इन गुम्बजो से सदा एक प्रकार की ध्वनि हुआ करती थी। वह सोचने लगी—'जीवन प्रभात मे प्रखरता का आरम्भ रहता है, जीवन मध्याह्न तो प्रखर रहता ही है, परन्तु जीवन सन्ध्या ? जीवन सन्ध्या मे भी क्या मुझे शान्ति न मिलेगी ??' और यह सोचते-सोचते उसने कुछ पुस्तको को उलटना-पुलटना प्रारम्भ किया। स्टीवन्सन की एक पुस्तक के एक वाक्य पर उसकी दृष्टि जम गयी—'स्त्री ही सदा बार-बार नवीन प्रयोग करने के लिए उद्यत रहती है।' शशिबाला ने बार-बार अपने आप से इस वाक्य को कहना प्रारम्भ किया—'स्त्री ही सदा बार-बार प्रयत्न करने के लिए तैयार रहती है!' उसे एकाएक महसूस होने लगा कि जीवन यात्रा शायद ऐसी यात्रा है जिस यात्रा मे लौटा नही जा सकता, आगे ही जाना होगा, चाहे किसी तरफ भी जाओ, पर आगे, बस आगे। और जब वह यह सोच रही थी तब उसे एकाएक शेख सादी का कभी पढा हुआ यह कथन याद आ गया—'जीवन बर्फ के समान है और समय सूर्य के समान।'

शशिबाला को अमरीका मे अब एक-एक क्षण बिताना कठिन हो गया। उसने अब इस तरह चुपचाप भारतवर्ष के लिए रवाना हो जाना तय किया, जिससे उसके बिदा होने का हाल किसी को न मालूम हो सके। वह जानती थी कि मुरलीधर का यह प्रेम उसके लड़कपन के सिवा और कुछ नही है तथा शशिबाला के चले जाने पर न वह आत्महत्या करनेवाला है, न पागल होन वाला। मुरलीधर की भलाई भी वह अपने अमरीका छोडने में ही मानती थी। वह यह चाहती थी कि उसकी रवानगी के समय मुरलीधर का कोई दृश्य न हो, जिसके कारण उसे रुकना तक पडा था।

अन्त मे एक सी प्लेन से शशिबाला रवाना हो सकी और बिना किसा को भी पता लगे।

जब यह प्लेन न्यूयार्क के निकट एटलाटिक महासागर के ऊपर उठा तब कितनी निश्चिन्तता जान पड़ी शशिबाला को। अमरीका छोड़ते समय उसे मन ही मन जितना हर्ष था उतना कदाचित् अमरीका आते वक्त भी नही। उठते हुए एरोप्लेन के नीचे लहराते हुए समुद्र को देख बार-बार उसके मन मे

उठने लगा, जीवन भी घटनाओ का समुद्र है जहाँ हर घटना लहर के सदृश उठती और विलुप्त होती है ।

कुछ देर बाद शशिबाला सोचने लगी—क्या भारत लौटने के कारण उसे यह खुशी हो रही है ? पर इसमे उसे कोई ऐसे हर्ष की बात न जान पडी । अमरीका से अब वह ऊब अवश्य गयी थी, पर हिन्दुस्तान को वह इसीलिए आ रही थी कि और कही जा न सकती थी । भारतवर्ष लौटने के कारण उसे इतना हर्ष न हो सकता था, जितना इस वक्त उसके हृदय में था । तब इस खुशी की क्या वजह थी ? बहुत सोचने पर उसे जान पडा कि मुरलीधर से वह किसी तरह अलग हो सकी, यही शायद इस हर्ष का सबसे बडा कारण था । मुरलीधर को भी ससार की अन्य वस्तुओ के सदृश अपने आनन्द के लिए एक साधन उससे माना न गया । और मुरलीधर से उसने जैसा बर्त्ताव किया, उससे मुरलीधर के ही लाभ की सम्भावना थी । उसने देखा कि उसके जाने बिना ही उसकी इस खुशी का कदाचित् यही कारण है ।

प्रेम, स्नेह और लालसा तीनो के ही प्रसग उसके जीवन मे इसके पहले आ चुके थे । ललितमोहन से उसने जितना प्रेम किया था और मयकमोहन से जितना स्नेह, उतना कम पत्नियाँ अपने पति और कम माताएँ अपने पुत्रो से करती है । वीरभद्र के प्रति उसके मन मे जितनी उत्कट लालसा उत्पन्न हुई थी उतनी भी कम ही होती है और इस लालसा पर तो उसे अब ग्लानि आने लगी थी । ललितमोहन के प्रेम और मयकमोहन के स्नेह ने उसे चाहे क्लेश दिया हो, परन्तु इस प्रेम और स्नेह के सस्मरण उसके मन मे किसी प्रकार की ग्लानि को उत्पन्न न करते थे । लेकिन उस प्रेम तथा स्नेह मे और मुरलीधर के प्रति उसका जो स्नेह था, उसमे फर्क था । ललितमोहन के प्रणय और मयकमोहन के स्नेह में जो तीव्रता थी, वह मुरलीधर के स्नेह मे नही, पर उस तीव्रता के साथ ही उन दोनो सम्बन्धो मे जो ममत्व था, वह भी इसमें न था । ललितमोहन को वह इसलिए चाहती थी कि उससे उसे जो सुख मिलता था, वह अन्य से असम्भव था । मयक का निर्माण ही उसने स्वय के आनन्द के लिए किया था । उन दोनो प्रेम तथा स्नेह की तीव्रता के सग-सग ही उनमे आसक्ति थी । मुरलीधर का स्नेह यदि उस तीव्रता से रहित था तो किसी भी प्रकार की आसक्ति से भी । और इस पर विशेषता यह थी कि

उसे मुरलीधर से विलग होने में इसीलिए हर्ष हो रहा था कि इस वियोग से मुरलीधर की ही अधिक भलाई थी।

और जब शशिबाला इस उधेड़बुन में थी तब उसे एकाएक त्रिलोकीनाथ की देहातियो के सग के व्यवहार की याद आ गयी, उस समय की जब वह कालेज में पढती थी तथा एक दिन त्रिलोकीनाथ के साथ एक गाँव गयी थी। उस ग्राम के लड़को, वहाँ के निवासियो के साथ त्रिलोकीनाथ का उसने कैसा निस्पृह प्रेममय व्यवहार देखा था। उसके बाद तो इन्फ्लूएजा के समय उसने त्रिलोकीनाथ के कानपुर जाकर मुर्दे उठाने का हाल सुना था, उसके द्वारा की गयी ललितमोहन की सेवा एव ललितमोहन की मृत्यु के पश्चात् त्रिलोकीनाथ की शान्ति देखी थी, और कई नदियो की बाढो तथा बिहार के भूकम्प के अवसर पर त्रिलोकीनाथ जो पीडितो की सेवा के लिए गया था, उसका वृत्तान्त वह स्वय जानती भी थी। त्रिलोकीनाथ की इन कृतियो को याद करते-करते उसे उस (त्रिलोकीनाथ) के मुख पर सदा रहने वाले सन्तोष का भी स्मरण आ गया। अब वह विचारने लगी—'तो क्या पिताजी का वह कथन कि "विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सफल और सुखी होता है।" गलत है? और क्या त्रिलोकीनाथ का आसक्ति रहित सेवामय जीवन ही सच्चा सुख तथा सन्तोष देता है।' बहुत काल तक तर्क-वितर्क करते रहने पर भी वह किसी निर्णय पर न पहुँच सकी।

वह भारत लौटी थी, डॉक्टर कुमारस्वामी के सुझावो के अनुसार फिर से भारतीय अजायबघरो तथा शिल्पकला की वस्तुओ को देखने के लिए, पर हिन्दुस्तान पहुँचते-पहुँचते डॉक्टर त्रिलोकीनाथ से मिलकर इस सारे विषय पर बाते करने के लिए उसका चित्त इतना लालायित हो गया कि वह लखनऊ का टिकट कटाकर डॉक्टर त्रिलोकीनाथ के मकान पर जा पहुँची। बात यह है कि शशिबाला ने अब उस आत्मविश्वास को ही खो दिया था जिसने उसे जीवन के कठिन से कठिन अवसरो पर भी एक पथ को बदल दूसरे और दूसरे को बदल तीसरे पर चलाया था। इसी विश्वास के कारण वह छोड़नेवाले रास्ते को भूला मार्ग मान साहसपूर्वक नये पथ पर अग्रसर होती रही थी, परन्तु

आत्मविश्वास की अग्नि बुझ जाने से सब कुछ सीड गया था—साहस, स्फूर्ति, कर्मण्यता। आत्मविश्वास की अग्नि पुन प्रज्वलित करने के लिए इस समय वह स्वय काफी नही थी और उसे किसी सहायक की आवश्यकता थी।

: ४४ :

इन्दुमती और त्रिलोकीनाथ मे बात चल रही थी। और इस बातचीत के आरम्भ होने के पहले त्रिलोकीनाथ को देखकर आज इन्दुमती को एक बात पर न जाने क्यो आश्चर्य हुआ था कि जब से उसने त्रिलोकीनाथ को देखा, तब से उसमें अब तक कोई परिवर्त्तन न हुआ था। दुनियाँ कितनी बदल गयी थी, समाज कितना बदल गया था, वह स्वय कितनी बदल गयी थी, पर त्रिलोकीनाथ जैसा का तैसा था।

त्रिलोकीनाथ ने गम्भीरता से विचारते हुए कहा—'आपके पिता का कथन मै तो ठीक मानता हूँ। सचमुच इस विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है और जो अपने को ही केन्द्र मान सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सफल और सुखी होता है।'

इन्दुमती आश्चर्यभरे स्वर में बोली—'त्रिलोकीनाथजी, मेरे जीवन की सारी घटनाओं का सिंहावलोकन, घर को छोडने के बाद भारत-भ्रमण के वृत्तान्तो और अमरीका के हालात सुनने के पश्चात् भी आपकी यह राय है?'

बातचीत के यहाँ तक पहुँचने के पहले वीरभद्र के प्रसग को छोड इन्दुमती ने अपने जीवन की सारी बाते दुहरायी थी और त्रिलोकीनाथ ने उसकी गैर-हाजिरी मे उससे सम्बन्ध रखनेवाली जो-जो मुख्य बाते हुई थी वे भी उसे बता दी थी। इनमें थी उत्तरायण सूर्य, ज्येष्ठ मास की निर्जला एकादशी को मध्याह्न में भगवत् भजन करते हुए सुलक्षणा का देहावसान, इन्दुमती के जाने

के बाद मयंकमोहन का प्रसन्नतापूर्वक जीवन-यापन और वजीरअली की हाल ही मे रिहाई।

इन्दुमती की यह आश्चर्य भरी वाणी सुनने के बाद भी शान्त भाव से त्रिलोकीनाथ ने कहा—'हॉ, श्रीमतीजी, मेरा तो यही मत है।'

इन्दुमती अब इस प्रकार कह चली जैसे किसी बडे भारी सरोवर का बॉध टूटने पर उसका पानी बह पडे। 'परन्तु, डॉक्टर साहब, विश्व मे निज के व्यक्तित्व को सब कुछ मुझसे ज्यादा कौन मानेगा ? इस व्यक्तित्व के सम्मुख मैने घर तथा बाहर किसकी परवाह की ? अपने सामने हर व्यक्ति को भुनगे के समान समझा। सारे समाज और उसके नियमो की पल-पल पर अवहेलना की। याद कीजिए, मेरे कालेज के जीवन और सोशल गैंदरिग की तीन पैर की दौड को। स्मरण कीजिए, पिताजी की जुबली के समय मेरे नाटक मे अभिनय करने को। विवाह मैने किया अवश्य, लेकिन जाति-पॉति के विचारो की कोई भी चिन्ता न करते हुए माता-पिता से छिपकर। सन्तान जिस तरह मैने उत्पन्न करायी वह आपसे ज्यादा कौन जानता है ? फिर जो चीज भी मेरे मार्ग मे रोडा बनकर आयी, उसे मैने अपनी पूरी ताकत से ठोकर मारी। काग्रेस छोडी, प्रान्तीय असेम्बली की मेम्बरी से त्याग-पत्र दिया, क्लब छोड़ा और अन्त में घर तथा मयक तक को त्याग कर तमाम सुखो को भोगते हुए सारे भारतवर्ष का चक्कर लगाया, दान दे-देकर प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित व्यक्तियो को मक्खियो के समान भिनकवाया, एक हिज हाइनेस को चाँटा तक जडा। हिन्दुस्तान के बाहर जाकर भी न जाने कितनी तरह के आनन्द उठाते हुए ससार के इस समय के सबसे प्रधान राष्ट्र अमरीका को मोहित करने के लिए यदि खुद नाची तो अपने से अधिक नचवाया अमरीका निवासियो को। मुझसे ज्यादा अपने को केन्द्र तथा ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन माननेवाला व्यक्ति आपको शायद ही इस विश्व में कही मिले, और इतने पर भी मै सुखी नही। यह सब सुन लेने और जान लेने के पश्चात् भी आप यह कहते है कि मेरे पिता का कथन ठीक है ?'

'हाँ, आपके जीवन के कई अनुभवो को जानने और शेष को सुनने के बाद भी मेरी यही राय है कि आपके पिता का कथन ठीक है।' कुछ रुककर

त्रिलोकीनाथ फिर बोला। उसके बोलने का ढग उस नहर के प्रवाह के समान था, जिसका बन्द मुहाना खोल दिया गया हो। 'उन्होने अपने इस कथन की आपके सामने क्या व्याख्या की थी, यह मुझे नही मालूम, लेकिन इस कथन पर जिस तरह आप चलीं, उससे मुझे यह अवश्य मालूम हो गया कि या तो उन्होने ही आपको अपना कथन ठीक तरह समझाया नही या उसे आप भली भाँति न समझ सकी। विश्व मे निज का व्यक्तित्व तो सब कुछ है ही, क्योकि बिना निज को जाने कोई भी व्यक्ति विश्व को नही जान सकता। और जहाँ एक बार वह अपने व्यक्तित्व को समझ लेता है, वहाँ उसमे और विश्व में कोई भेद नही रह जाता। ससार की समस्त वस्तुएँ अपने आप उसके आनन्द का साधन बन जाती है। क्षमा कीजिए, यदि मै कहूँ कि आपने अपने व्यक्तित्व को पहचाना ही नही, अन्यथा आप न दूसरो को भुनगे के बराबर समझती, न समाज तथा उसके नियमो की अवहेलना करने का कष्ट उठाती और न किसी चीज को ठोकर मारती। जब दूसरे वही है जो आप स्वय, जब सारा विश्व वही है जो आप खुद, तब अपने को श्रेष्ठ तथा अन्य को हीन समझने का प्रश्न कहाँ उठता है? अहम्मन्यता के वशीभूत हो जो आचरण आपने किया वह हो कैसे सकता है?'

'आप शायद मुझे वेदान्त की ओर ले जा रहे है और आत्मा तथा परमात्मा के चक्कर मे डालना चाहते है।'

'हाँ, कुछ लोग इस ज्ञान को आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान भी कहते है।'

कुछ उतावलेपन से इन्दुमती ने कहा—'पर, डॉक्टर, मुझे ईश्वर, आत्मा और वेदान्त मे थोडा भी विश्वास नही। इसके भी मै कई तजुर्बे कर चुकी हूँ।'

'आपको विज्ञान और उसके परमाणुओ सारे भौतिक पदार्थ पर तो विश्वास है?' अत्यन्त धैर्य भरे स्वर मे त्रिलोकीनाथ ने कहा।

'यह तो विश्वास का सवाल नही है, यन्त्रो से सिद्ध मामला है।'

कुछ मुस्कराते हुए डॉक्टर बोला—'मै तो वैज्ञानिक ही हूँ और मैं आपको यह कह सकता हूँ कि यन्त्रो से अभी सब कुछ सिद्ध नही हुआ है। सर ओलिवर लॉज और लार्ड कैलविन जैसे वैज्ञानिक भी ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व मानते है। फिर अदृश्य के विश्वास का मजाक उड़ाना भी निरर्थक है, क्योकि

सभी को किसी न किसी तरह के अदृश्य पर विश्वास करना ही पडता है। लेकिन हमारी बहस इस समय, यन्त्रो से जो सिद्ध हुआ है, वही तक रहे, तो भी मेरा काम चल जाता है। आप ईश्वर और आत्मा को माने, यह मै नही कहता। आप यदि "परमाणु" और उनसे बने हुए भौतिक पदार्थो को मानती हैं, तो भी आप आप से आप उसी जगह पहुँचती है, जहाँ वह वेदान्ती पहुँचता है, जो सारे विश्व मे ईश्वर और आत्मा को मानता है।'

'कैसे ?' कुछ कौतूहल से इन्दुमती ने पूछा।

'ऐसे कि ज़िस तरह वेदान्ती के लिए हर वस्तु, सारा विश्व ईश्वरमय, आत्मामय है, उसी प्रकार वैज्ञानिक के लिए सारे भौतिक पदार्थ परमाणुमय। यदि सच्चा वेदान्ती अपने में और अन्य वस्तुओ मे कोई भेद नही समझता, तो सच्चा वैज्ञानिक कोई भेद कैसे समझ सकता है ? दर्शन और विज्ञान जीवन के दो ही सच्चे आधार है, जो दृश्य नही उसे दर्शन और जो दृश्य है उसे विज्ञान द्वारा जाना जाता है। दोनो का अन्तिम निष्कर्ष अभेद ही है।'

त्रिलोकीनाथ चुप होकर इन्दुमती का मुख देखने लगा, जो गम्भीरता से कुछ सोचते हुए नीचे की ओर झुक गया था। कुछ देर निस्तब्धता रही। थोडे समय के बाद त्रिलोकीनाथ ने फिर कहा—'कहिए, मानती है या नही ?'

विचारते-विचारते तथा सिर उठाते हुए इन्दुमती बोली—'तर्क मै शायद मान लूँ, पर ऐसा अनुभव नही होता !'

'ठीक...अब आप ठीक जगह आ गयी'...कुछ प्रसन्नता से डॉक्टर ने कहा और कुछ ठहरकर वह फिर बोला—'अब यह बताइए कि जिस व्यक्ति को इस अभेद का अनुभव होने लगे, वह व्यक्ति तो अन्यो को भुनगा मान, समाज की हर बात की अवहेलना करने का कष्ट उठा, हर वस्तु को ठोकर मार कर सारे आचरण तो न करेगा न ? उसके लिए जब अपने और विश्व के बीच कोई भेद न रह जायगा, तब वह तो भिन्न-भिन्न दिखनेवाली चीजो से उसी प्रकार का बर्ताव करेगा न, जैसा वह अपने से करता है। और ज्ञान के बाद अज्ञानी क्या करते है, उस ओर भी उसकी दृष्टि न जायगी, अत. संसार की समस्त वस्तुएँ आप से आप उसके सुख का साधन हो जायँगी।

अपने को सब में और सबको अपन में अनुभव करने के पश्चात् अहम्मन्यता रह ही नही जाती, जो सारे दु खो की जड़ है।'

त्रिलोकीनाथ फिर चुप होकर इन्दुमती की ओर देखने लगा। इन्दुमती चुपचाप विचार कर रही थी। कुछ देर पश्चात् इन्दुमती बोली—

'लेकिन, त्रिलोकीनाथ जी, यह अनुभव होना, कठिन•• अत्यन्त कठिन है।'

'असङ्भव तो नही न ?'

सोचते हुए इन्दुमती ने कहा—'असम्भव तो मैं कोई बात मानती ही नही।' वह फिर से रुक गयी और ठहरकर बोली—'पर, डॉक्टर साहब, यह अनुभव विश्व मे कितने व्यक्तियो को हुआ है ?'

'बहुत कम को, इसीलिए तो दुनियाँ मे इतने दुखी दिख पड़ते हैं और सुखी विरले ही। देखिए, मानव और मानव-समाज की प्रेरक तीन ही चीजें रही है : धर्म, नीति और प्रेम, परन्तु दुनियाँ में ऐसी कोई चीज ग्राह्य नही जो जीवन को किसी ऐसे दलदल मे फँसा दे कि उससे बाहर निकलना ही मुमकिन न रहे , फिर चाहे वह दलदल धर्म का हो, नीति का हो, या प्रेम का हो। हर व्यक्ति का पृथक् व्यक्तित्व है, और अलग अस्तित्व है। मै मै हूँ, आप आप है, वह वह है। सारा समाज और समाज ही क्या सारी सृष्टि हरेक के चारो ओर घूमती है, तब जो धर्म, जो नीति, जो प्रेम एक को दूसरे पर आधिपत्य करने का अधिकार देता है, या आधिपत्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है, वह त्याज्य है। जिस धर्म, जिस नीति, जिस प्रेम से बिना किसी को हानि पहुँचाए, या बिना किसी पर आधिपत्य की अभिलाषा के स्वय को व्यक्तिगत सुख मिलता है, वही ग्राह्य है। पर प्रश्न यह है कि क्या ऐसे भी कोई धर्म, कोई नीति, कोई प्रेम है, जो बिना अन्य को हानि पहुँचाये, या बिना अन्य पर आधिपत्य रखने की अभिलाषा के स्वय का उत्कर्ष करे, स्वय को सुख दे। बिना व्यष्टि और समष्टि के भेद का नाश और इस नाश तथा एकता का अनुभव हुए यह हो ही नही सकता।'

सोचते-सोचते इन्दुमती कुछ ऊँचे स्वर मे इस तरह बोली—जैसे उसके मुख से इस समय की विचारधारा के बाहर एकाएक कोई चीज निकल गयी हो—'डॉक्टर, आपको यह अनुभव हुआ है ? आप अपने मे और विश्व मे कोई भेद नही समझते ?'

धीरे-धीरे त्रिलोकीनाथ ने कहा—'मुझे यह अनुभव दूसरी प्रकार से हुआ है, श्रीमतीजी ।'

'कैसे ?'

'मै अब आप मे और विश्व की अन्य वस्तुओ तथा अपने मे कोई भेद नही समझता ।'

इन्दुमती ने इस तरह कहा, जैसे उसकी कुछ समझ मे न आया हो—'अर्थात् ?'

'समझता हूँ, मेरे साथ कष्ट कर एक दूसरे कमरे मे पधारिए ।'

त्रिलोकीनाथ इन्दुमती को एक छोटे-से कमरे मे ले गया । इन्दुमती ने देखा कि वह कमरा उस (इन्दुमती) की तस्वीरो से भरा हुआ है । भावनाओ से विहीन दिखनेवाले त्रिलोकीनाथ का यह कमरा अपनी तस्वीरो से भरा देख इन्दुमती आश्चर्य से स्तम्भित-सी रह गयी । त्रिलोकीनाथ शनैः शनै कहने लगा—

'मै विज्ञान के साथ दर्शन भी बडे चाव से पढता था । मैने धीरे-धीरे जीवन को ऐसे मार्ग मे चलाया, जिससे मुझे अपने और अन्यो मे कोई भेद महसूस न हो । पर उसी समय आप मेरे जीवन मे आ गयी । न जाने कैसे आप मे मेरी आसक्ति बढ चली । मुझे जान पड़ा जैसे मै अपने पथ से भ्रष्ट हो रहा हूँ । मैने बहुतेरे प्रयत्न किये कि आपकी तरफ से मै अपना चित्त हटाऊँ, पर हर तरह की कोशिशो के करने पर भी वह आपकी ओर से डिगता ही न था । आपके विवाह के उपरान्त भी न हटा, आपके वैधव्य के बाद भी नही और आपके गर्भाधान के पश्चात् भी नही । मेरे मन मे बार-बार उठने लगा—मनुष्य में देवत्व के साथ कितना पशुत्व है । यदि मनुष्य अपने ही पशु पर सवार हो सके । परन्तु यह कठिन महान् कठिन समस्या थी । अब मैने दूसरा प्रयत्न प्रारम्भ किया—समस्त विश्व मे आपका दर्शन । इस प्रयत्न मे मैने अनुभव किया कि यदि वासनाओ को रोककर दूसरी दिशा में मोड दिया जाय, तो वे वासनाएँ न रहकर साधनाएँ बन जाती है । समस्त विश्व मे आपके निरीक्षण का यह प्रयत्न इन चित्रो से शुरू हुआ और आज मै ससार की समस्त वस्तुओं में आपका निरीक्षण कर पाता हूँ । मुझे अब आप मे, विश्व की भिन्न-भिन्न दिखनेवाली चीजो मे, और अपने मे किसी भेद का अनुभव

नही होता। अपने इस प्रयास के पश्चात् मेरी समझ में आया कि मनुष्य को आसक्ति रहित सुख तभी प्राप्त हो सकता है जब या तो वह अपने को सब मे और सबको अपने मे देखने मे सफल हो जाय, या जिस व्यक्ति से यह प्रेम करता है, उसको सब मे और सबका तथा अपना उसमे निरीक्षण कर सके।' अपना यह कथन समाप्त करते-करते त्रिलोकीनाथ का चेहरा कुछ ऐसा हो गया जैसे उस पर उसका भूत, वर्तमान और भविष्य तीनो लिखे हुए हो।

कुछ ठहरकर त्रिलोकीनाथ ने फिर कहा—'मनुष्य को सच्चा सुख लेने मे नही, देने मे मिलता है। चाहे सामाजिक रचना पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद किसी भी वाद के अनुसार क्यो न रहे, या क्यो न हो जाय, मनुष्य को सच्चा सुख देने मे ही मिलेगा। आपने सदा लेना चाहा, देना नहीं, और यदि कुछ दिया भी तो लेने के लिए। बिना लिये या लेने की इच्छा के जो दिया जाता है, उसी से सच्चा सुख प्राप्त होता है, पर यह किसी भी समाज रचना मे बिना एकत्व की भावना के सदा होते रहना असम्भव है। बिना इस एकता के अनुभव के व्यक्तिगत जीवन की गाडी को सामाजिक जीवन की पटरी पर सफलतापूर्वक चलाया ही नही जा सकता। जिस ससार को अपना बनाने की चेष्टा दुःख का कारण होती है, अपने को उसी ससार का बना देने पर सुख मिलने लगता है, और यह होता है अभेद से। इस अभेद के अनुभव के बाद एक दिन और दूसरे दिन मे, एक स्थान और दूसरे स्थान मे भी कोई अन्तर महसूस नही होता, भूत की याद तथा भविष्य की चिन्ता भी नही होती, मनुष्य वर्तमान मे ही रहता है, और चूँकि कर्म के बिना मनुष्य क्षणमात्र भी नही रह सकता, इसलिए उसके द्वारा, सारी सृष्टि के हित के लिए वैसे ही कर्म होते है जैसे अपने व्यक्तित्व के लिए।'

कुछ ठहरकर त्रिलोकीनाथ फिर बोला—'और देखिए, विश्वकवि रवीन्द्र बाबू ने अपनी प्रसिद्ध कृति गीताजलि मे एक स्थान पर लिखा है—'ठीक स्थान पर पहुँचने के लिए न जाने कितने दरवाजे खटखटाना पडते हैं।' आपने जीवन में यदि अनेक दरवाजे खटखटाये, तो भी कोई बुरी बात न हुई। आवश्यक यही है कि अन्त में ठीक स्थान पर पहुँचने का दरवाजा मिल जाय।'

कुछ रुककर उसने फिर कहा—'आपका आज तक का जीवन विस्फोटक

पदार्थों से ही खेलते-खेलते बीता है, पर देखिए, आपकी उम्र अब पैंतालीस वर्ष के लगभग होगी। यह अवस्था ऐसी अवस्था है जब जीवन का बहुत सा तूफान जीवन पर से बह चुकता है और जीवन मे एक तरह की शान्ति आ जाती है। ऐसी शान्ति जो शिथिलता से रहित होती है, क्योकि इस उम्र का व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से भी पुरुषार्थ विहीन नही रहता, वह वृद्ध नही हो जाता। जीवन को नये पहलू से देख नया काम भी इस उम्र मे शुरू किया जा सकता है। उस नये कार्य के लिए पिछले जीवन का अनुभव रहता है और अभी भी काफी जीवन है, यह आशा रहती है। फिर आप जीवन भर जिज्ञासु रही है और अभी भी आप मे जिज्ञासा मौजूद है। इस सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ मानव है और मानवो मे सर्वश्रेष्ठ जिज्ञासु, क्योकि सारे विकास जिज्ञासु पर अवलम्बित है। आपने चाहे कुछ भी क्यो न खोया हो, पर अभी भी सुख की आशा को नही खोया है। आशा को छोडना आनेवाले कल को भी गये हुए कल के साथ खो देना है। फिर जो कुछ आप हाथ मे लेती है बच्चे के सदृश उसके पीछे पड़ जाती है, यह दुर्गुण नही, बडे से बड़ा सद्गुण है। लगन के बिना क्या किया जा सकता है ? अभेद का अनुभव कर सच्चे सुख प्राप्त करने के लिए किसी कार्य करने का विचार कर उसमे लग जाइए। और स्वामी रामतीर्थ ने जो एक बात कही है उसका सदा ध्यान रखिए। वे कहते है—"बुराई एक बीमारी है, लेकिन बुराई के लिए परेशान होना और भी बुरी बीमारी है।" आप जो कुछ भी करे, परेशानी को पास न फटकने दीजिए।'

इन्दुमती सोच रही थी और फिर-फिर कर सोच रही थी। उसे जान पड रहा था—एक जीवन होने पर भी मेरा जीवन उस पुस्तक के समान है, जिसमे कई भाग और उपभाग रहते है।

: ४५ :

लखनऊ के निकट के उसी गाँव मे, जहाँ एक बार त्रिलोकीनाथ के साथ और फिर एक बार अकेली भी इन्दुमती गयी थी, एक 'मातृगृह' बनाया गया था। यह मातृगृह बना था इन्दुमती के पास जो सम्पत्ति थी इन्दुमती द्वारा ही उस समस्त सम्पत्ति के दान से। व्यक्तिगत सुख और सामाजिक हित दोनों की दृष्टि से इन्दुमती साम्यवाद के व्यक्तिगत सम्पत्ति न रखने के सिद्धान्त को सर्वप्रथम आवश्यक मानने लगी थी और उसने अपनी समस्त सम्पत्ति इस सस्था को दे दी थी। पर व्यक्तिगत सम्पत्ति से पिण्ड छुडाना ही वह पर्याप्त न समझती थी अत इस सस्था मे वह सेवा का काम करती थी। गुजर-बसर के लिए कम से कम धन अपने श्रम के बदले मे माहवारी इस सस्था से ही, वह लेती थी। 'बाब्ड' बाल फिर बढ गये थे, यत्र-तत्र श्वेत भी दिख पड़ते थे। न रोगन था, न पाउडर, न लिपस्टिक, न नेल पेन्ट। जार्जेट, क्रेप आदि के स्थान पर फिर से खादी आ गयी थी तथा इस बार और भी सादी एव मोटी। कालेज में पढते समय जिन देहाती लड़को को मिठाई बाँटते हुए भी उसे घृणा हुई थी, उन्ही देहातियो के बच्चो के पालन-पोषण में, उन बच्चो के पैखाने एव पेशाब साफ करने मे भी उसे अब कोई ग्लानि न आती थी। धीरे-धीरे ये सारे बच्चे उसे मयक के समान जान पडने लगे थे और इतने पर भी उसे इनमे कोई आसक्ति न थी, जो उसकी शान्त मुद्रा से तब ज्ञात होता था, जब इनमे से किसी बच्चे का निधन हो जाता था।

इस मातृगृह में काम करने के सिवा इन्दुमती ने इस गाँव को आदर्श गाँव बना दिया था। यहाँ के कच्चे मकान धीरे-धीरे पक्के और व्यवस्थित ढग से बन गये थे। सड़के सँकरी होने पर भी पक्की थी। कूडा, करकट, गन्दगी आदि का कही नामोनिशान न था। एक पाठशाला बन गयी थी, जिसमे लडके और लड़कियो दोनो का पढना अनिवार्य था। एक रात्रि पाठ-शाला चलती थी जिसके कारण यहाँ कोई निरक्षर न रह गया था। एक पुस्तकालय था, जहाँ पुस्तके और समाचारपत्र दोनो की ही व्यवस्था थी और

हर सप्ताह वहाँ एक सभा भी होती थी जिसमे उस सप्ताह के समाचार सुनाये जाते और कुछ उपयोगी भाषण होते थे। मातृगृह के सिवा एक और छोटा-सा अस्पताल भी यहाँ था जिसमे आयुर्वेदिक और एलोपैथिक दोनो पद्धतियो की चिकित्सा का प्रबन्ध था। एक अच्छा डेरी फार्म और ब्रीडिग फार्म भी यहाँ था। न्याय पचायत और ग्राम-पचायतो के कारण यदि कभी कही कोई झगडे होते भी, जिनकी सख्या बहुत कम हो गयी थी, तो वे यही के यही निपट जाते थे। और यह सब हुआ था खेती की तरक्की—असीम तरक्की के कारण, जो अब यहाँ सहकारिता पद्धति से चलती थी। खेती के सिवा यहाँ अनेक गृह-उद्योग भी चलते थे जिनके कारण यहाँ के निवासियो की माली हालत ही न सुधरी थी वरन् वे सब दृष्टियो से स्वावलम्बी हो गये थे। एक स्वयसेवक दल यहाँ के सभी कार्यो मे सहायता पहुँचाने के लिए सदा सतर्क रहता था। सवर्ण हिन्दुओ और हरिजनो, हिन्दुओ और मुसलमानो मे भी यहाँ कोई भेद-भाव न रह गया था। सब एक दूसरे को भाई मानते। एक दूसरे के दु ख-सुख, एक दूसरे के त्यौहार, सामाजिक कार्यो मे शामिल होते। और यह सब कार्य हुआ था इन्दुमती—केवल इन्दुमती के कारण। अत. इन्दुमती यहाँ मानवी नही देवी मानी जाती थी। दूर-दूर के गाँवो तक इस गाँव की कीर्ति सुरभि फैल गयी थी और कई जगह इसके अनुसरण का प्रयत्न हो रहा था।

इस प्रकार मातृगृह मे इन्दुमती व्यक्तिगत रूप से और गाँवो के हर कार्य मे सामूहिक रूप से सेवा-कार्य मे दत्तचित्त थी।

अनेक बार इन्दुमती को अपना गत जीवन अब भी अवश्य याद आता था। उसने जीवन के साथ जो सघर्ष किया था वह उसके सामने घूम-सा जाता था। जीवन की सक्रियता और निष्क्रियता मे बीते हुए क्षण, घटिकाएँ, पहर, दिन, सप्ताह, मास और वर्ष, जीवन मे देखे हुए सुन्दर और फूहड दृश्य, किये हुए अच्छे और बुरे कार्य और सब के परिणामस्वरूप पाये हुए सुख और दुःख एक-एक उसे याद आते थे और जब-जब उसे यह स्मरण आता, तब-तब प्राचीन तत्वज्ञानियो का यह मत भी कि जीवन मे सुख के परिमाण मे दुःख कही अधिक है। परन्तु अपने जीवन के इस सिंहावलोकन से उसे जान पड़ता कि प्राचीन तत्त्वज्ञानियो का यह कथन सत्य नही। किसी प्रकार के भी सुख

से रहित पूर्ण दु खमय समय क्वचित् ही बीतता है। अधिकाश दु खो की कालिमा पर भी सुख की आशा का प्रकाश रहता है, जो उस दु ख को पूर्ण दु ख नही बनने देता। कई बार इन्दुमती को, उसने जिस प्रकार जीवन व्यतीत किया था, उस पर खेद भी होता, पर जब वह उन खेदजनक बातो पर पृथक् विचार करती, तब उसे जान पडता कि जो कुछ उसने किया था, वह उसे रोक ही न सकती थी और तब उसके मन में उठता कि ससार मे क्या भाग्यवाद ही सत्य है, जो कुछ मनुष्य करता है वह क्या उसके लिए अनिवार्य रहता है ? उसका बुद्धिवाद इसे असत्य बताता, पर बुद्धिवाद के तर्कों से भी उसे सन्तोष न होता और वह सोचने लगती कि यह जीवन क्या सदा ही एक अबुझी पहेली रहेगा ? इच्छा-स्वातन्त्र्य पर विश्वास करनेवाली इन्दुमती को अब जान पड़ता था कि यथार्थ मे इच्छा-स्वातन्त्र्य कोई चीज नही है। मनुष्य किसी अनजानी शक्ति के अधीन है, जो उसकी इच्छा के विरुद्ध भी उससे अनेक कार्य कराती है और उन कार्यो के हो जाने पर मनुष्य तर्कों द्वारा उलटा यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है कि जो कुछ उसने किया, वह ठीक है। उसे यह भी जान पड़ता कि जीवन मे कुछ बातो को रोकना वैसा ही असम्भव है जैसा प्राकृतिक तूफानो को। उसके मन मे यह प्रश्न भी उठा करता कि ज्ञान से प्रकाश तो अवश्य मिलता है पर क्या सन्तोष भी प्राप्त होता है ? साथ ही उसे यह भी जान पडता था कि अब तक के उपार्जित ज्ञान द्वारा विश्व की अन्तिम थाह असम्भव है और यह भी नही कहा जा सकता कि ज्ञान द्वारा कभी भी यह थाह मिल सकेगी या नही ? कभी-कभी वह यह भी सोचती कि जीवन मे क्या सारे प्रश्नो के उत्तर मिलना सम्भव है ?

देश और विदेश की मुख्य-मुख्य घटनाएँ उसे इस गाँव मे भी सुनने को मिल जाती थी। मित्रराष्ट्रो की योरप तथा जापान मे जीत का हाल तथा जिस अणुबम के कारण जापान ने एकदम घुटने टेक दिये थे उसका वृत्त ठीक समय उसे ज्ञात हो गया था। बगाल का मनुष्यकृत दुष्काल और उसमे लाखो की मृत्यु, सन् ४२ मे गिरफ्तार हुए काग्रेस नेताओ की रिहाई, प्रान्तो में पुन काग्रेस मन्त्रिमण्डलो की स्थापना, विलायत से आनेवाले त्रिमन्त्रिदल की हलचले और इन हलचलो के परिणामस्वरूप विधान-परिषद् का निर्वाचन,

पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे केन्द्र में भी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार के निर्माण तथा ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के जून सन् ४८ मे चले जाने की घोषणा के पहले ही १५ अगस्त, ४७ को भारत का स्वतन्त्र होना आदि खबरे भी उसके पास समय-समय पर पहुँचती थी। हिन्दू-मुसलमानो के बढते हुए वैमनस्य, पाकिस्तान की स्थापना और उसके बाद की मार-काट के वृत्त भी उसे मालूम हुए थे। आजाद हिन्द फौज के मुकदमो और उसी सिलसिले मे नेताजी सुभाष-चन्द्र बोस ने सुदूरपूर्व मे जो कुछ किया था, उसका हाल भी उसके पास पहुँच चुका था। वह इन सब समाचारो को ध्यान से सुनती, पढती, पर इनमे से किसी का भी उसके मन पर कोई खास असर न पडता।

धीरे-धीरे इन्दुमती की मानसिक अवस्था मे और परिवर्त्तन हुआ। अब उसे जीवन और मृत्यु मे कोई भेद न मालूम पड़ता था। सफलता और विफलता एक-सी दिखती थी। सुख और दु ख में कोई फर्क न मालूम होता था। सदा सुखी रहने की मनुष्य की सर्वप्रधान अभिलाषा उसे जीवन की अन्तिम भ्रान्ति ज्ञात होती थी, इसी प्रकार कीर्ति की उत्कट से उत्कट इच्छा भी अन्य बातो के समान ही एक भ्रम। अब द्वन्द की भावना का उस के चित्त से मूलोच्छेदन हो गया था। उसके लिए अब अलग-अलग दिखने वाली उलझनो रूपी नदियाँ एकता के समुद्र मे प्रविष्ट हो एकरूप हो गयी थी।

पुरानी बातो मे से उसका अनुराग अब केवल एक ही बात मे रह गया था, वह था सगीत। परन्तु उसमे भी एक अन्तर पड़ गया था। सर्वप्रथम वह गाती थी गान-विद्या सीखने के लिए, फिर गाती थी ललितमोहन को सुनाने के लिए, तदुपरान्त मयकमोहन को प्रसन्न करने के लिए, वीरभद्र को आकर्षित करने के लिए भी उसने गाया था, वल्लभ-सम्प्रदाय के मन्दिर मे उसने गाया था किसी अन्य प्रयोजन से, पर अब वह गाती थी पक्षियो के समान; सगीत उसकी एक निष्काम वृत्ति हो गयी थी।

कभी-कभी अभी भी वह अपने भूत जीवन का वर्तमान जीवन के साथ मिलान करती थी। पिता के दिये हुए उपदेश मे पिता का क्या अर्थ था, उसने उसका क्या अर्थ माना था और त्रिलोकीनाथ ने उसका क्या अर्थ समझाया था, इसे भी सोचती थी। पिता के कथन में पिता का जो अर्थ भी रहा हो,

उसने उसका जो अर्थ भी माना हो, पर अब इन्दुमती को इसमें सन्देह न रह गया था कि उस उपदेश का जो अर्थ त्रिलोकीनाथ ने उसे समझाया था, वही ठीक था। उसके इस विश्वास का सबसे बडा सुबूत उसका वर्तमान जीवन था, जिससे उसे पूर्ण सन्तोष तथा पूरी शान्ति मिल रही थी और अनुभव हो रहा था कि अपने आप से सन्तुष्ट होना ही दुनियाँ मे सबसे बडा सुख है।

अब उसे धीरे-धीरे आप से आप यह भरोसा भी हो चला था कि जब उसकी यह जीवन मजिल समाप्त होगी, तब भी उसके वर्तमान सन्तोष और शान्ति को कायम रखने मे उसके पिता के कथन का त्रिलोकीनाथ द्वारा बताया हुआ अर्थ उसे पूर्ण सहायता दे सकेगा और वह मन ही मन बार-बार कहती थी 'ठीक तो है—विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।'

समाप्त